

हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन

पाश्चात्य उपन्यास से तुलना-सहित

डा० एम० एम० गरोदाम
प्राध्यापक हिन्दी-विभाग मद्रास विश्वविद्यालय
मद्रास ३

राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली



हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन पाश्चात्य उपन्यास से तुलना-सहित

डा० एस० एन० गणेशन
प्राध्यापक हिन्दी-विभाग मद्रास विश्वविद्यालय
मद्रास ५

रामपाल एण्ड सन्स, दिल्ली



શ્રીમદ્ ગાંધી ૭૧૦ આર્થિકશાસ્ત્ર વિદ્યા

૫૫૫૫૫૫૫૫

પુસ્તક	૧	માસિક મુદ્રણ
મુદ્રણ સંસ્કરણ	૧	મિત્રબદ્ધ, ૧૯૧૯
મુદ્રણ	૧	માસિક મુદ્રણ સંસ્કરણ, વિદ્યા
મુદ્રણ	૧	માસિક મુદ્રણ, વિદ્યા

HINDI UPANYAS SAMITHI KA ADHYAYAN :
DR. N. N. GANESHAN : LITERARY CRITICISM

उपन्यास हमारे साहित्य का ऐसा एक क्षेत्र है जिसके प्रति हमारे सम्प्रतिष्ठ आलोचकों का ध्यान अधिक नहीं गया है। यदि सच्ची बात कही जाए तो हिन्दी के सर्वप्रथम आलोचकों ने कहा कि ही घोर किसी साहित्यिक विषय की इतनी उम्मेद की होगी जिसकी उपन्यास की। आज हमारे साहित्य में उपन्यास को जो सबसे अधिक जनता-वीय साहित्यिक विषय है वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ है जो उसे प्राप्त होना चाहिए।

उपन्यास सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्य विषय है। यतः उसमें आभिजात्य का अभाव है। उम्र बालक भी पढ़ते हैं। यतः वह मज़ेदार और बचकाना है। स्त्रियों का वह प्रिय है। यतः वह स्त्रीय एवं तिरस्करणीय है। उत पढ़ने में अधिक मत्वापत्ती करने की आवश्यकता नहीं रहती। इसलिये हमारे प्रौढ़ आलोचक महारथियों का उसकी उम्मेद करना अनिवार्य-सा हो गया है। यही कारण है कि हमें हिन्दी उपन्यास साहित्य के सम्बन्ध में प्रामाणिक प्रश्न अधिक प्राप्त नहीं हुए हैं। आलोचकों की इस अनास्था का उत्तरदायित्व बहुत कुछ हमारे उपन्यासकारों का भी है। क्योंकि अधिकांश उपन्यासकारों ने उपन्यास को जीवन का गम्भीर अध्ययन न समझकर केवल 'हल्के पढ़ने' की ही वस्तु समझ रखा है। और अपनी इस धारणा के आधार पर ही उस रूप दिया है। किन्तु अब भी उपन्यास की उम्मेद हो। यह कदापि उचित नहीं है। हाल में हमारे अधिकांश उपन्यासकारों का ध्यान उपन्यास के जीवन-मूल्य की ओर जाने लगा है। विषय एवं विषय की दृष्टि से उसमें कलात्मक सौष्ठव जाने का प्रयत्न किया जाने लगा है। ऐसी दशा में उपन्यास की विभिन्न प्रवृत्तियों का राष्ट्रीय अध्ययन करके उसका मूल्यांकन करने की नितांत आवश्यकता है। इसी आवश्यकता की पूर्ति का विनीत प्रयत्न है प्रस्तुत 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन' पाश्चात्य उपन्यास से तुलना-साहित्य'।

यह प्रबन्ध सन् १९३८ में 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन' और पाश्चात्य उपन्यास में उसकी तुलना' नाम से काशी विश्वविद्यालय की पी-एच डी उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ था। अब वही यन्त्र-तन्त्र कुछ सप्तकों के साथ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है।

क्षेत्र

यह स्वतंत्र रूप में हिन्दी उपन्यास का अध्ययन करने के साथ-साथ पाश्चात्य उपन्यास से उसकी तुलना करके परिनिष्ठित प्रतिमाओं के आधार पर मूल्य निर्धारित करने का भी प्रयत्न है। जिस कारण हिन्दी के सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य को ही नहीं तो भी उसका क्षेत्र विस्तृत है। यतः ही यूरोपीय उपन्यास की तुलना में उसकी उपसम्पत्ति बहुत ही सीमित हों। यन्त्र-तन्त्र पाश्चात्य उपन्यासों की भी विस्तृत वर्णन करने के कारण

अक्षय आचार्य का० हजारीप्रसाद द्विवेदी

के कर-कमलों में

सूक्ष्म

बारह रुपये

प्रथम संस्करण

सितम्बर १९६२

प्रकाशक

राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली

मुद्रक

श्रीमा प्रिण्टर्स दिल्ली

HINDI UPANYAS SAHITYA
DR S N GANESHAN

KA ADHYAYAN
LITERARY CRITICISM

प्रस्तावना

उपन्यास हमारे साहित्य का ऐसा एक क्षेत्र है जिसने प्रति हमारे राष्ट्रप्रतिष्ठ आलोचकों का ध्यान अधिक नहीं गया है। यदि सच्ची बात कही जाए तो हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ आलोचकों ने अन्याय ही और किसी साहित्यिक विधा की इतनी उपेक्षा की होगी जितनी उपन्यास की। चाहे हमारे साहित्य में उपन्यास को जो सबसे अधिक जनप्रिय साहित्यिक विधा है वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ है जो उसे प्राप्त होना चाहिए।

उपन्यास सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्य-विधा है और उसमें आधिकार्य का प्रभाव है उसे बालक भी पढ़ते हैं और वह पढ़ाई और बचकाना है। किन्तु जो वह प्रिय है और वह स्वतंत्र एवं तिरस्करणीय है। उसे पढ़ने में अधिक मत्वापत्ती करने की आवश्यकता नहीं रहती इसलिए हमारे प्रौढ़ आलोचक महारथियों को उसकी उपेक्षा करना अनिवार्य-भा हो गया है। यही कारण है कि हमें हिन्दी उपन्यास साहित्य के सम्बन्ध में प्रामाणिक शब्द अधिक प्राप्त नहीं हुए हैं। आलोचकों की इस अनास्था का उत्तरदायित्व बहुत कुछ हमारे उपन्यासकारों का भी है क्योंकि अधिकांश उपन्यासकारों ने उपन्यास को जीवन का गम्भीर अध्ययन न समझकर केवल 'हल्के पढ़ने' की ही वस्तु समझ रखा है और अपनी इस धारणा के आधार पर ही उन को दिया है। किन्तु जब भी उपन्यास की उपेक्षा हो वह कदापि उचित नहीं है। हमें हमारे जनप्रिय उपन्यासकारों का ध्यान उपन्यास के जीवन-मूल्य की ओर देने चाहिए। विषय एवं विषय की दृष्टि से उसमें कलात्मक सौष्ठव लाने का प्रयत्न करने सया है। ऐसी दशा में उपन्यास की विभिन्न प्रवृत्तियों का आलोचक अध्ययन करने उसका मूल्यांकन करने की नितांत आवश्यकता है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के बिना प्रयत्न है प्रस्तुत 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन' नामक पुस्तक के 'सुलना-महित'।

यह प्रबंध सन् १९२८ में 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन' नामक पुस्तक उपन्यास न उसकी सुलना' नाम से काशी विश्वविद्यालय की प्रोफेसर डॉ. उद्दि के लिए स्वीकृत हुआ था। जब कभी यन्त्र-गुण सुख सुखों के अन्त परों के अन्त प्रस्तुत है।

क्षेत्र

यह स्वतंत्र रूप में हिन्दी उपन्यास का अध्ययन करने के अन्तर्गत एक उपन्यास से उसकी सुलना करके परिनिष्ठित प्रवृत्तियों के अन्तर्गत अध्ययन करने का भी प्रयत्न है। बस जब हिन्दी के मूल्य-मूल्य का ही नहीं है भी उसका क्षेत्र विस्तृत है। अनेक ही यूरोपीय उपन्यास की अन्त में हमें उपन्यास बहुत ही सीमित हैं। यन्त्र-गुण पराजय उपन्यासों की ही अन्तर्गत है।

प्रबन्ध की क्षेत्र-विस्तृति और बढ गई है और अध्ययन अधिक कष्ट-साध्य हो गया है । किन्तु इस क्षेत्र-विस्तृति का प्रयोजन भी गण्य नहीं है । सम्पूर्ण हिन्दी उपन्यास साहित्य का एकसाथ निरीक्षण करने पर हमारे सेंसरों की विचारधारा के कमबल विकास का तथा हमारी सामाजिक दृष्टियों के क्रमिक परिवर्तन का जो सम्बन्ध इतिहास सामने पाता है वह केवल किसी विशेष समय के अथवा किसी विशेष प्रवृत्ति के ही उपन्यासों के अध्ययन से प्राप्त नहीं होगा । प्रत्येक प्रवृत्ति से उसकी पूर्वापर प्रवृत्तियों का सम्बन्ध जोड़कर सबका सही दृष्टि से मूल्य निर्धारित करने के लिए इस प्रकार एक साहित्य-विद्या की समस्त प्रवृत्तियों को एकसाथ लेना उपयोगी होगा ।

तुलना का महत्त्व

पाश्चात्य उपन्यास से हिन्दी उपन्यास की तुलना दो दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है । पहली बात यह है कि सैद्धान्तिक रूप में उपन्यास का अध्ययन करने के लिए उसकी अनन्त वैविध्यपूर्ण प्रवृत्तियों से परिचित रहना आवश्यक है । उपन्यास के विभिन्न प्रकारों का तथा उनकी मुख्य प्रवृत्तियों का परिचय पाश्चात्य भाषाओं के उपन्यास साहित्य के अध्ययन से तो मिलता ही है । साथ-साथ उन-उन भाषाओं में उपन्यास के सम्बन्ध में जो सैद्धान्तिक ग्रन्थ लिखे गए हैं उनसे भी पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकती है । हिन्दी में उपन्यास-सम्बन्धी प्रौढ़ सैद्धान्तिक ग्रन्थों का एकत्र समारंभ है अतः इस प्रकार के अध्ययन के लिए पाश्चात्य भाषाओं के ग्रन्थों से सहायता लेना अनिवार्य सा हो गया है । विभिन्न धाराओं में प्रवाहित तथा अत्यन्त विकसित यूरोपीय उपन्यास साहित्य के तथा उनसे सम्बन्धित समीक्षा-ग्रन्थों के अध्ययन से औपन्यासिक ढाँचों तथा सिद्धान्तों का समुचित ज्ञान प्राप्त करने पर हिन्दी उपन्यास का वास्तवीय अध्ययन अधिक सुगम होगा ।

इस तुलनात्मक अध्ययन से दूसरा प्रयोजन यह होगा कि हम हिन्दी उपन्यास का ठीक मूल्यांकन कर सकेंगे । विस्मयविस्माद कलाकारों के प्रसिद्ध उपन्यासों के सम्मुख हिन्दी उपन्यासों को भी रखकर दोनों की तटस्थ दृष्टि से देखें तो हमें सात होमा कि हमारा उपन्यास साहित्य कितनी दूर का मार्ग तय कर आया है वह कहाँ तक पहुँच सका है और उसकी वर्तमान दशा क्या है । निस्सन्देह पाश्चात्य उपन्यास के सामने हिन्दी उपन्यास पुत्रमूर्ति बालक के समान है अतः उसकी परिमितियों को ध्यान में रखकर ही उसकी आलोचना की जा सकती है । किन्तु बालक की परिमितियों और बस हीनताओं को मानने में भी हमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

विदेशी उपन्यास साहित्य के मापदण्डों से मापन एवं मूल्यांकन करते समय हिन्दी उपन्यास पर अत्यास करने की संभावना रहती है पर हिन्दी के अग्रभूषण की धारणा से विदेशी उपन्यासों की ओर ध्यान दिए बिना अध्ययन किया जाए तो वह मूल्यांकन की दृष्टि से अधिक महत्त्व का नहीं होगा । इस तरह तुलना रहित अध्ययन करें अथवा विदेशी उपन्यासों से तुलना करते हुए भी हिन्दी उपन्यास की बलहीनताओं को न मानें तो पलपाट का अपराध तो होता ही है सत्य की अवहेलना

भी समझ है। ऐसी अवस्था में हमें अत्यन्त सतर्क होकर तुलनात्मक अध्ययन करना ही उचित है। यह एक गर्वमाय विषय है कि इकोनॉमिस्टास्तु ने ब्रह्मवास्तव्यपत्नी गोर्की बान्बाब मोपसा जोमा आदि उपन्यासकार बिच-साहित्यकार हैं। सांस्कृतिक अन्तर बिच-भिल्लता राजनीति बिचार परम्पराभिन्न सामाजिक मान्यताएं आदि इन कलाकारों की रचनाओं का समावेश करने में बाधक नहीं दीयते। इनकी बिच बिच्यार रचनाओं में ऐसी कोन-मी बात है जिसमें उन्हें बिच भर के आधार का पात्र बना रखा है? और हमारे उपन्यास साहित्य में किस बात की कमी है जो उसे इस आधार से बचित किए हुए है? हमारी राजनीतिक पराधीनता तथा अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र में हमारी दुर्बलता को ही इसके कारण मानकर संतुष्ट होना भारी भूल होगी। वास्तव्यपत्नी एवं तुर्गनेव का नाम कम विषय नहीं था। इमन क नाटक प्रमाखित करते हैं कि किसी सेलक के बिचबिच्यार होने के लिए उनके देश के प्रबल राष्ट्र होने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञान और अनुभूति के लिए बिच सदा तरमता रखता है अतः उत्कृष्ट रचनाएं कहीं से भी किसी भी आकिर्भूत हुई हों उनका आनंद करता आया है। हमें हिन्दी उपन्यास का मूल्यांकन करते समय बाह्य परिस्थितियों से बच कर उनकी अपनी ही उपलब्धियों एवं अभावों की ओर देखना होगा और तुलनात्मक अध्ययन से मूल्यांकन के अधिक परीक्षित होने की समाप्ति है।

सीमाएं

इस तरह कई मापदण्डों के उपन्यास साहित्यों को अध्ययन का विषय बनाने पर विषय का सीमा निर्धारण आवश्यक हो जाता है। यूरोपीय मापदण्डों में केवल अग्रणी फ्रेंच तथा रूसी के उपन्यासों को ही प्रस्तुत प्रबन्ध में अध्ययन के लिए लिया गया है। इसका कारण यही है कि इन तीनों को लेने से ही बिच-उपन्यास की मुख्य प्रवृत्तियों का परिचय मिल जाता है। जर्मन स्वनिष्ठ इटालियन आदि मापदण्डों में भी कुछ अन्धे उपन्यास मिलते हैं किन्तु उन्होंने बिच-उपन्यास साहित्य को कोई मौलिक प्रवृत्ति प्रदान की है इसमें शक है। अतः उनकी अपेक्षा से हमारे अध्ययन में कोई कमी नहीं आएगी। जिन मापदण्डों के उपन्यास साहित्यों को अध्ययन के लिए लिया गया है उनकी प्रायः सभी प्रवृत्तियों को स्पष्ट किया गया है। इस दृष्टि से उनका सभी ओर अध्ययन इस प्रबन्ध में मिलेगा।

किन्तु इसमें न किसी सेलक का संपूर्ण अध्ययन मिलेगा न किसी विशेष उपन्यास का। मेरी दृष्टि सेलक या अन्य की ओर न रखकर प्रवृत्तियों की ओर अधिक रही है। इसलिए यथासक्ति अधिकारिक सेलकों की रचनाओं को समाविष्ट करने का प्रयत्न करने पर भी कई प्रसिद्ध लेखक और कई उत्कृष्ट उपन्यास छूट गए हैं। किन्तु कई साधारण लेखकों के उपन्यासों का अध्ययन किया भी गया है। इसका कारण यही है कि यद्यपि ये सेलक साधारण कोटिके हैं तो भी उनके उपन्यासों में जो प्रवृत्तियाँ हैं वे मौलिक हैं, अतः ही उनका महत्व कम हो। इस तरह बार मापदण्डों के सम्पूर्ण उपन्यास साहित्यों को लेने तथा प्रवृत्तियों के आधार पर

सीमा-निर्धारण करने का परिणाम यह हुआ कि भाव और कला की दृष्टि से अपार वैविध्यपूर्ण एक समूह हमारे सामने आया है। एक-एक करके अग्रणीत प्रवृत्तियाँ सामने आती हैं, जिनमें कुछ एक-दूसरी से मिलती हैं, कुछ नहीं मिलती। जहाँ तक हिन्दी उपन्यास का सम्बन्ध है उसके पिछले साठ-सत्तर वर्षों के प्रति तीव्र विमर्श का क्रम बड़ा इतिहास यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इन साठ-सत्तर वर्षों में हमारे देश ने राजनीति में अद्भुतपूर्व उन्नति-पुष्प देखी और निश्चित व्यक्तियों के लिए विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए प्रगति-पथ से प्रयाण किया। इसी समय हमारे उपन्यास में तीव्र गति से जो विकास हुआ उसे पूर्णतया समझना सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य को एकसाज लेने से ही संभव हुआ है।

दृष्टिकोण

इसने वैविध्यों से पूर्ण और कई संस्कृतियों एवं विचारवादाओं का प्रति-निधित्व करनेवाली विविध औपन्यासिक बाराओं का एकसाज निरीक्षण करते समय पक्षपात होने की संभावना रहती है। विभिन्न भाषाओं के साहित्यों में और एक ही भाषा के विभिन्न काल के साहित्यों में भाव एवं चिन्तन की दृष्टि से जिनताएँ होती हैं। समय-समय पर साहित्यिक मान्यताएँ बदलती आई हैं। ऐस-कामानुसार साहित्य के प्रतिमान बदलते आए हैं। अतः उत्काचीन और राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुसार साहित्य की प्रवृत्तियों में भी परिवर्तन होते आए हैं। इन सबके प्रति निरपेक्ष भाव से देखने का प्रयत्न मैंने किया है। अगर कहीं ऐसी उपन्यासों की उत्कृष्टता दिखाई नई हो तो वह आत्मप्रशंसा नहीं है और कहीं ऐसी उपन्यासों से विदेशी उपन्यासों को उत्कृष्ट ठहराया गया हो तो वहाँ परतर्जता का मनोभाव भी नहीं समझना चाहिए। मैंने न बचार्समय राष्ट्रीय परिस्थितियों का स्मरण रखते हुए सभी साहित्यों का निरीक्षण किया है। इसी तरह मैंने न प्राचीनता के सिर पर हाथ रखकर रोगे की भावस्थ कला समझी है न नवीनता की बाहु-बाड़ी करने की। मैंने सनातन धर्मकार के नाद में मुग्ध होकर वस्तु-वस्तु भूलने का प्रयत्न नहीं किया है और न इनकलाब के नारों के बीच में आत्मा की मृदु झंकार की भूलने का। अस्तिष्ठत अभिरूषियों के मापदण्ड से साहित्य की उत्कृष्टता का निर्णय करने से बड़कर पापी भूल और न होनी। अतः मैंने बचासाम्य उपन्यासों को उपन्यासकारों की आलोचकों की और पाठकों की दृष्टियों से देखकर अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है। भलाई-बुराई का धर्मवा उत्कर्ष-अपकर्ष का निर्णय करना इस प्रबन्ध का ध्येय नहीं है। जैसे कोई रसायन-शास्त्रज्ञ प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान नहीं रखता कि सोडियम क्लोराइड मैग्नीज-हाइड्राक्साइड और सल्फ्यूरिक एसिड मिलाकर गरम करने से उत्पन्न होनेवाली वस्तुएं धमकी होती हैं या बुरी बल्कि सनकी विशेषताओं का अध्ययन करने का ही प्रयत्न करता है और उसीसे सन्तुष्ट हो जाता है उसी प्रकार यहाँ भी विशेषताओं को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है।

और एक अस्तेजनीय बात यह है कि विविध धर्मियों को तयार करने के लिए

साहित्य-र विषयों के ग्रन्थों से लहायता लो गई है। जहाँ आवश्यक बात हुआ दाम मनोविज्ञान, राजनीति प्राणि-विज्ञान आदि विषयों का भी अध्ययन किया गया है।

विषय

विषय प्रवेश के रूप में प्रथम अध्याय में उपन्यास की परिभाषा देते हुए उन व्याख्या की गई है और उपन्यास का महत्त्व स्पष्ट किया गया है। उपन्यास जीन का ही प्रतिबिम्ब है अतः उसके मूल्य जीवन के ही मूल्यों के सामान है। इसी ही से मैंने उपन्यास को देखा है।

द्वितीय अध्याय में प्रायः के अध्यायों में प्रतिपादित विषयों की वृद्धभूमि दी गई है। हिन्दी चण्डी लेंच और कुम्भी के उपन्यास साहित्यों के विकास का इतिहास प्रस्तुत करना ही इस अध्याय का ध्येय है। इस अध्याय के प्रकाश में ही अन्य अध्याय लिखे गए हैं। उनमें प्रतिपादित प्रवृत्तियों के ऐतिहासिक क्रम को समझने के लिए। अध्याय उपयोगी होना। दूसरी बात यह है कि इस अध्याय में विभिन्न भाषाओं उपन्यासों की मुख्य प्रवृत्तियों का सामान्य रूप में अध्ययन भी किया गया है। अभिव्यक्ति में जो परिवर्तन आए, उनकी कवरेला सेवार की गई है। विशेष लेखकों और ग्रन्थों। विवेचना का विस्तार इस बात के अनुसार किया गया है कि वह धार के अध्यायों लिए वहाँ तक आवश्यक है। प्रायः सभी उल्लेख उपन्यासों के कथानकों के प्रति संकेत किया गया है।

इसके प्रायः के अध्यायों में मैंने प्रायः प्रत्यक्ष भूमियों को ही जोतने प्रयास किया है। ये अध्याय उपन्यासों के विषयों से सम्बन्धित होने पर भी सांकेतिक पहलुओं पर अधिक ध्यान रखकर ही लिखे गए हैं। विषय-विकास सामाजिक परिस्थितियों का निरूपण चरित्र-चित्रण मनोविज्ञान प्रचार्यवाद आदि का अध्ययन के समय विषय पर ही अधिक ध्यान रखा जाता तो विवेचना उपन्यासों के संक्षिप्त करण तक ही सीमित रह जाती। इसके बदले मैंने इन विषयों के सांकेतिक (टेक्नीकल) ग्रन्थों की ओर अधिक ध्यान दिया है। उदाहरण के लिए चरित्र-चित्रण में यह बिता के बदले कि उपन्यास साहित्य में किन-किन प्रकारों के चरित्रों का अध्ययन किया व है यही दिनामा है कि किन-किन प्रकारों से चरित्र-चित्रण किया गया है। इसी प्रकार द्वितीय से सप्तम तक के अध्यायों में उपन्यास के विभिन्न तत्त्वों के टेक्नीकल ग्रन्थों ही अध्ययन किया गया है।

तृतीय अध्याय 'विषय विकास' से सम्बन्धित है। हिन्दी के अधिकांश छात्राचारों में तथा प्राध्यापकों में उपन्यास में प्रतिपादित विषय के प्रति जितना ध्यान दिया है उन विषय के विकास के रूप पर नहीं दिया है। हमारे अधिकांश छात्राचारों

१. स्पष्ट यह जानना है कि पारम्परिक उपन्यासों के अध्ययन से प्रथम में विशेषकर द्वितीय अध्याय में हिन्दी उपन्यास के अध्ययन की आवश्यकता में कुछ व्यवधान था गया है। बाद में उपन्यास के ऐसे ग्रन्थों में वैयक्तिक वैयक्तिक का अध्ययन से सज्जने हैं।

में सीधे बंध से कहानी कहने की प्रथा ही दिखाई पड़ती है। जब पारंपारिक मापामों में विपन्न-विकास की दृष्टि से हस्त-विभाग सेमी पनोरमिक सेमी सरितोपम सेमी चेतना प्रवाह सेमी आदि अनेक विधाओं का प्रयोग हुआ है हिन्दी में इन सबका पूर्ण तथा समान नहीं हो तो कभी धरम है। कुछ उपन्यासों में इनका प्रयोग हुआ है तो भी हमारे आलोचकों का ध्यान उनमें प्रति नहीं गया है। यही कारण है कि हमें अब तक उपन्यास के हस्त-विभाग पर कोई प्रामाणिक ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ है। मैंने इस बात के प्रति ध्यान दिया है। उपन्यास में प्रतिपादित विषय ही नहीं जो मन को प्रभावित करता है उस विषय से प्रसिद्ध विकास की प्रणाली भी धर्मविक्रम महत्त्वपूर्ण होती है। विवरणार्थक उपन्यासों की सरलता हस्त उपन्यासों की प्रसिद्धिपुष्ता पनोरमिक उपन्यासों की विस्तृति तथा सरितोपम उपन्यासों की समानता आदि मन पर जो प्रभाव डालती है वे भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। उसी तरह पाठक के मनोविकारों को विकसित करने में बहुत की दृढ़ता और विविधता का विशेष महत्त्व होता है। इस नवन का उपन्यास विकारों को कसकर घुस बना लेता है और मन में एक आवेग का अनुभव कराता है जो विभिन्न बहुत का उपन्यास मानसिक तनाव को कम करके एक प्रसन्न स्थिति में विद्यमान होने को सहाय देता है। इसी तरह विपन्न का आधिक्य और अल्पत्व ऐक्य और ऐक्यहीनता भाव-बोध या टेम्पो की तीव्रता या मन्दता मनोवृत्ति (मूड) के अवस्थान्तर आदि पर भी उपन्यास का प्रभाव प्रबलित रहता है। मैंने इन सबके विस्तृत अध्ययन का प्रयास किया है।

चतुर्थ अध्याय उपन्यास और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करते हुए, हमारी सामाजिक बन्धनों के परिवर्तनों के अनुसार विकसित होत हुए हिन्दी उपन्यास के विकास-क्रम को व्यक्त करता है। 'परीक्षा घुब' से लेकर आज के व्यक्तिवादी उपन्यासों तक को हम एक विह्वल दृष्टि से देखें तो हमें एक बात को स्पष्ट दिखाई पड़ेगी वह यह है कि हमारे उपन्यास में विस्फेपण का महत्त्व बढ़ता गया है। प्रमचन्द के पूर्व के उपन्यासों में भी सामाजिक समस्याओं का प्रतिपादन होता था पर उनमें विस्फेपण का प्रभाव या मानुष्यता और रोमान्टिक कल्पना का आधिक्य था। इस दृष्टिकोण में प्रमचन्द अन्तिमारी परिवर्तन लाए, और उनके बाद विस्फेपण की प्रवृत्ति बढ़ती ही आई है। देश की बढ़ती हुई सामाजिक एवं वैयक्तिक चेतना का उपन्यास पर जो प्रभाव पड़ा है उसीके परिणाम में उपन्यास के सामाजिक स्वरूप का भी परिवर्तन हुआ है। अतः देश की परिस्थितियों के प्रकाश में उपन्यास की सामाजिक प्रवृत्तियों का अध्ययन यहाँ किया गया है। इस अध्याय में मैंने यूरोपीय उपन्यास की सामाजिक परिस्थितियों और प्रवृत्तियों का विस्तृत अध्ययन नहीं किया है क्योंकि मेरा ध्येय यूरोपीय उपन्यास का अध्ययन करना नहीं है। और हिन्दी उपन्यास के यूरोपीय उपन्यास की तुलना करते समय उनके सामाजिक स्वरूप के सम्बन्ध में दूसरे अध्याय में कहीं गई बातें पर्याप्त ज्ञात हुईं। परन्तु यहाँ विशेष रूप से विस्तृत चर्चा की आवश्यकता ज्ञात हुई यहाँ जोड़ा-बहुत विस्तार भी किया गया है। इस अध्याय के अन्त में मैंने यूरोपीय उपन्यासों की तुलना में हिन्दी उपन्यास के समाज-निरूपण का

मृत्योन्मत्त किया है ।

उपन्यास मानव-चरित्र का अध्ययन है । अतः चरित्र-चित्रण के अध्ययन के लिए अलग एक अध्याय हो रहा गया है । सात होना है कि उपन्यास की प्रारम्भिक रूपा में उनमें चरित्र चित्रण का विषय महत्त्व नहीं रहा । किन्तु धीरे-धीरे उपन्यास मनुष्य के अध्ययन की ओर उन्मुख हुआ और धार्मिक उपन्यास का सबसे मुख्य काम मानव चरित्र का अध्ययन हो गया है । चाहे वह व्यक्तिगत हो या सामाजिक । व्यक्तिवादी को एक-दूसरे से भिन्न प्रकट करनेवासी वैयक्तिक विशेषणों का आचरण या राष्ट्रों की जनता की सामान्य विशेषता को तथा समस्त मानव जाति की समानता और एकता को उद्घोषित करनेवासी सामाजिक विशेषणों का स्पष्ट करके मनुष्य की एकता में भिन्नता और भिन्नता में एकता को प्रकट करने का माध्यम चरित्र चित्रण ही है । इस तरह मनुष्य के विविध रूपों को समझाने का उपन्यासकारों ने जो प्रयत्न किया है उसका अध्ययन प्रस्तुत प्रबन्ध के पंचम अध्याय का विषय है । इस अध्याय में भी उपन्यास में बहुतो हुई विस्फेपण प्रकृति की ओर संकेत किया गया है । आरम्भ कासीन समतलीय (flat) पात्रों से लेकर धात्र के व्यक्तिवादी पात्रों तक का अध्ययन इस विस्फेपण प्रकृति के विकास को स्पष्ट करता है । विविध प्रकारों के पात्रों की वर्णन करते समय सामाजिक पृष्ठभूमि में ही उनको समझने का प्रयत्न किया गया है और अनेक सामाजिक मूल्य पर भी बिचार किया गया है ।

चरित्र का अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं होगा जब तक उसके मनोवैज्ञानिक पक्ष पर बिचार नहीं किया जाए । अतः मैंने छठे अध्याय में हिन्दी उपन्यास का मनो-वैज्ञानिक प्रकृतियों की वर्णन की है । यहाँ मैंने दो-एक बातों पर ध्यान रखा है । हमारे हम विषय पर डा० देवराज का एक प्रबन्ध प्रकाशित हुआ है जिसमें हिन्दी कथा साहित्य में मनोविज्ञान का विस्तृत अध्ययन किया गया है । डा० देवराज के अध्ययन के विषयों में कई एक की मैंने थोड़ा दिया है विष्टेपण से बचने के लिए डा० देवराज के त्रिज बिचारों से मैं सहमत नहीं हूँ उनपर मैंने अलग मत प्रकट किए हैं और इन मतों की वैज्ञानिक शक्तों के समझन द्वारा पुष्ट किया है । इसके प्रतिरिक्त डा० देवराज ने मनोव्यापारों (मिण्टल मेकैनिज्म) का जो भीवित अध्ययन प्रस्तुत किया है, उससे थोड़े बचकर मैंने हिन्दी उपन्यास के पात्रों के मनोव्यापारों का विस्तृत वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है । दूसरी बात जो ध्यान में रखी गई है वह है इस अध्याय में अपने अध्ययन की केवल मनोवैज्ञानिक उपन्यासों तक ही सीमित रहना । इसका कारण यही है कि जहाँ लेखकों ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य का अध्ययन करने का प्रयत्न नहीं किया है वहाँ हम वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उदाहरण हो जाएँ तो लेखकों पर अध्याय करने की सम्भावना रहती है । परन्तु मैंने अन्य उपन्यासों के मनोवैज्ञानिक पक्षों की अपेक्षा करना भी अनुचित समझा । अतः जिन उपन्यासकारों ने पात्रों को यथार्थ बनाने के उद्देश्य से उनका थोड़ा बहुत मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत है उनका विवेचन यथावकाश में सम्बंधित अध्याय के एक परिच्छेद में कर दिया है । यहाँ जहाँ लेखक की दृष्टि मनोवैज्ञानिक रही

वहाँ भी मनोविज्ञान बूढ़ा है पर वहाँ जिसकी दृष्टि यथार्थवादी रही वहाँ मैंने यथार्थवाद की खोज की है।

इस अध्याय के सम्बन्ध में एक और उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें पूर्णतया वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर ही अध्ययन किया गया है। मनोविज्ञान के विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित कतिपय धर्मों के अध्ययन की गूँथभूमि में हिन्दी उपन्यासों का अध्ययन का ही मेरा प्रयत्न रहा है। मूलवृत्तियाँ मानसिक कार्य-प्रवृत्तियाँ प्रवेदन, लिख, देख आदि के अध्ययन में यह वैज्ञानिकता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिन्दी उपन्यासों के अध्ययन के साथ-साथ कई रचनाओं पर पाश्चात्य उपन्यासों से तुलना भी की गई है।

भाषा है कि आदर्शवाद तथा यथार्थवाद की विवेचना करनेवाला सातवाँ अध्याय इन दोनों के सम्बन्ध में हमारे उपन्यासकारों तथा आलोचकों में पैदा हुई कई गपटी सित आरण्याओं के परीक्षण का अवसर दिया। 'बो है सो' का बिगुल यथार्थवाद के लिए 'जैसे का जैसा' बिगुल प्रत्यक्ष यथार्थवाद माना जाता है। इस आरण्या में ही बड़ा भ्रम है। प्रस्तुत अध्याय के आरम्भ में मैंने यथार्थ और आदर्श के स्वल्प विच्छेद हुए यथार्थवाद और आदर्शवाद के मूल सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला है। तत्पश्चात् आदर्श और यथार्थ से सम्बन्धित विभिन्न बातों का अध्ययन किया गया है। और उनकी मुख्य प्रवृत्तियों को हिन्दी उपन्यास में जो रचना बिना उनके प्रति भी संकेत किया गया है। इन प्रयोगों में बस्तु-निष्पन्न के साथ-साथ सिद्धान्त-विवेचन भी करने के कारण विस्तार कुछ बढ़ गया है। पर यह बिगुलता भी इसके बिना विषय को स्पष्ट करना कठिन बात हुआ। प्रकृतिवाद की विवेचना से सम्बन्धित परिच्छेद में कहीं नहीं आते विशेष रूप से प्रयोगों के आलोचनात्मक और रचनात्मक ग्रन्थ ही उसके तत्त्वों के समुचित परिज्ञान के लिए सहायक हो सकते हैं। जोना आदि के धर्मों के अध्ययन से हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि हिन्दी के आलोचकों ने सदा 'चतुरस्र' आदि जिन-जिन निष्कर्षों की प्रकृतिवादी समझ रखा है वे बस्तुतः प्रकृतिवादी नहीं हैं और 'प्रकृतिवाद' भी उतनी दृष्टिगत बस्तु नहीं है जैसा प्रायः समझा जाता है।

आदर्श और यथार्थ में किसीके प्रति मेरा पक्षपात नहीं है। अतः मैंने दोनों के स्पष्ट गुणों को विज्ञान के साथ उनकी कमजोरियों की ओर भी संकेत किया है। आदर्श और यथार्थ का अपना-अपना महत्त्व होता है और अपनी-अपनी सीमाएँ होती हैं। आदर्श के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उसकी सफलता उसके यथार्थ होने से या उसके यथार्थ होने की संभावना में ही निहित रहती है। और यथार्थ भी जीवन की नीच वृत्तियों में ही नहीं होता मानव की उन्नत वृत्तियों में भी होता है। कांटे ही नहीं फूल भी यथार्थ होते हैं। कांटों को यथार्थ और फूलों को आदर्श समझना भारी भ्रम होयी। बस्तुतः वास्तविक जीवन आदर्शवाद और यथार्थवाद की सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता है। अतः उपन्यास को भी इनकी सीमाओं में बाँधना नहीं चाहिए। यथार्थ और आदर्श जीवन नहीं हैं, जीवन के संश्लेष हैं अतः उपन्यास में भी उनको

यही स्थान देना चाहिए । इसी दृष्टिकोण से मैंने बादसबाब और यमार्चबाब पर विचार किया है और उनके विभिन्न भेदों की विवेचनाओं को स्पष्ट किया है ।

अन्तिम अध्याय **मुस्नाकन** है—पारबाराय उपन्यासों की पृष्ठभूमि में हिन्दी उपन्यास का ही मुस्नाकन यही बस्किर्भाषागत अन्तर पर ध्यान दिए बिना एक विद्याल दृष्टि से किया हुआ मुस्नाकन । मेरा प्रयत्न यही देखने का रहा है कि उपन्यास मनुष्य को समझने में उसकी अनुभूतियों को जागरित करने में और उसकी पारस्परिक सहानुभूति को बढ़ाने में कहां तक सफल हुआ है । इन गुणों से युक्त उपन्यास किसी भी भाषा के हों वे कला की दृष्टि से अच्छे माने जाएंगे । जहाँ यूरोपीय भाषाओं में ऐसे उपन्यास कई मिले गए हैं, पर हिन्दी में कम । इस बात को ध्यान में दिखाया है तो उसे आत्मपरीक्षण का कार्य ही समझा जाना चाहिए ।

कास लिया

अन्त में परिशिष्ट के रूप में हिन्दी उपन्यासों की ओरानिका दी गई है । उनमें किसी विशेष मौलिक अध्ययन के न होने पर भी यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसमें उपन्यासों की प्रकाशन तिथि ठीक-ठीक देने का प्रयत्न किया गया है । हिन्दी साहित्य का सबसे बड़ा अनिष्ट यह रहा है कि लेखक (अथवा प्रकाशक) जाने-अनजाने पुस्तक की प्रकाशन तिथि भ्रष्ट नहीं करते । कई उपन्यासों में किसी भी संस्करण की प्रकाशन तिथि नहीं मिली । जो प्रकाशक प्रकाशन-तिथि छपाते हैं वे भी प्रथम संस्करण में तो उसकी तिथि छपाते हैं पर बाद के संस्करणों में प्रथम संस्करण की प्रकाशन-तिथि छपाने की आवश्यकता नहीं समझते । ऐतिहासिक क्रम से अध्ययन करनेवाले शोध-छात्रों को संयोजक प्रथम संस्करण ही मिल गया तो उसका कार्य सुगम हो जाता है मस्यपा कभी-कभी लाख प्रयत्न करने पर भी उसे सही-सही तिथि नहीं मिलती ।

तिथि न देना भ्रष्ट होने पर भी क्षम्य है । लेकिन इसकी दुरिस्त और एक प्रवृत्ति भी बन रही है जो क्षम्य है । यह है अन्तों के नाम ही बदलकर विभिन्न कासों में प्रकाशित करना जिससे बड़ा भ्रम हो जाता है । मयवतीप्रसाद वाजपयी का 'मुस्कान' बसुरसेन शास्त्री का 'अमर अभिभाषा' उषा का 'बुझपा की बेटी' इसाचन्द्र बोधी का 'मर्जा' मरक का 'गिरणी बीमारें' और विष्णु प्रभाकर का 'जलती रात' क्रमशः 'स्यामयी' 'बहते धागू' 'मनुष्यान्ध' 'त्यागयी' 'चेतन' और 'निश्चिन्त' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं । इनमें 'मुस्कान' और 'अमर अभिभाषा' को छोड़कर अन्य उपन्यास बोड़े बहुत परिवर्तन या संश्लेषीकरण के साथ ही नये रूप में आए हैं और सेबकों में नये संस्करणों में यह बात बताने की सङ्भवता दिखाई है, फिर भी इनके पूर्व संस्करणों से बाद के संस्करणों का पता नहीं चलता दोनों को देखने पर ही भ्रम दूर होता है । 'स्यामयी' और 'बहते धागू' की बात बिलकुल भ्रम है । 'त्यागयी' का तृतीय संस्करण सन् १९६७ में सरस्वती प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद से और 'बहते धागू' का द्वितीय संस्करण बीकरी एण्ड सन्स बनारस से (तिथि नहीं दी गई है) प्रकाशित हुए हैं । इनके प्रथम संस्करणों की ओर मैंने कई पुस्तकालय

बड़ा मने मनोविज्ञान बड़ा है पर बड़ा सेसक की दृष्टि यथार्थवादी रही बड़ा मने यथार्थवाद की खोज की है ।

इस अध्याय के सम्बन्ध में एक धीर उत्प्रेक्षणीय बात यह है कि इसमें पूर्णतया वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर ही अध्ययन किया गया है । मनोविज्ञान के विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित कतिपय धर्मों के अध्ययन की पृष्ठभूमि में हिन्दी उपन्यासों का अध्ययन का ही मेरा प्रयत्न रहा है । मूलवृत्तियाँ मानसिक कार्य-प्रवृत्तियाँ प्रचेतन स्मितरूप सेसक धारि के अध्ययन में यह वैज्ञानिकता विशेष रूप से उत्प्रेक्षणीय है । हिन्दी उपन्यासों के सम्बन्ध के साथ-साथ कई स्थाओं पर पाश्चात्य उपन्यासों से तुलना भी की गई है ।

घासा है कि धार्मिकवाद तथा यथार्थवाद की विवेचना करनेवाला सातवाँ अध्याय इन दोनों के सम्बन्ध में हमारे उपन्यासकारों तथा आलोचकों में ऐसी हुई कई अपनी सित धारणाओं के परीक्षण का अवसर देगा । जो है सो का चित्रण प्रथम 'संवेका रीसा' चित्रण प्रथम यथार्थवाद माना जाता है । इस धारणा में ही बड़ा भ्रम है । प्रस्तुत अध्याय के आरम्भ में मने यथार्थ धीर धार्मिक के स्वल्प विचारों हुए यथार्थवाद धीर धार्मिकवाद के मूल सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला है । उत्तरदाता धार्मिक धीर बर्बाद से सम्बन्धित विभिन्न धर्मों का अध्ययन किया गया है । धीर उनकी मुख्य प्रवृत्तियों को हिन्दी उपन्यास में जो स्थान मिला है उसके प्रति भी संकेत किया गया है । इन प्रसंगों में वस्तु निरूपण के साथ-साथ सिद्धान्त विवेचन भी करने के कारण विस्तार कुछ बढ़ गया है । पर यह बिचसठा की इसके बिना विषय को स्पष्ट करना कठिन ज्ञात हुआ । प्रकृतिवाद की विवेचना से सम्बन्धित परिच्छेद में कड़ी गई बातें विशेष रूप से विचारणीय हैं । प्रकृतिवाद का उदय धीर विकास क्रम में हुआ था धीर उसके प्रयोजनों के आलोचनात्मक धीर रचनात्मक धर्म ही उसके उत्तरों के समुचित परिज्ञान के लिए सहायक हो सकते हैं । जोना धारि के धर्मों के अध्ययन से हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि हिन्दी के आलोचकों ने उद्यम चतुरसेन धारि बिना-बिना निष्कर्षों को प्रकृतिवादी समझ रखा है वे वस्तुतः प्रकृतिवादी नहीं हैं धीर 'प्रकृतिवाद भी उत्तरी कुक्षित वस्तु नहीं है बीसा प्रथम' समझ जाता है ।

धार्मिक धीर यथार्थ में किसीके प्रति मेरा पक्षपात नहीं है । धर्म मने दोनों के अन्तर्गत गुणों को बिलाने के साथ उनकी कमजोरियों की धोर भी संकेत किया है । धार्मिक धीर यथार्थ का अपना-अपना महत्त्व होता है धीर अपनी-अपनी सीमाएं होती हैं । धार्मिक के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उसकी सफलता उसके यथार्थ होने में या उसके यथार्थ होने की संभावना में ही निहित रहती है । धीर यथार्थ भी जीवन की नीच वृत्तियों में ही नहीं होता मानव की सदास वृत्तियों में भी होता है । कांटे ही नहीं फूल भी यथार्थ होते हैं । कांटों को यथार्थ धीर फूलों को यथार्थ समझना भारी भ्रम होती । वस्तुतः वास्तविक जीवन धार्मिकवाद धीर यथार्थवाद की सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता है । धर्म उपन्यास को भी इनकी सीमाओं में बाँधना नहीं चाहिए । यथार्थ धीर धार्मिक जीवन नहीं है जीवन के धर्म-मात्र हैं धर्म उपन्यास में भी उनको

यही स्पष्ट देना चाहिए। इसी दृष्टिकोण से मैंने आरम्भिक और मध्यम पर विचार किया है और उनके विभिन्न क्षेत्रों की विशेषताओं को स्पष्ट किया है।

अन्तिम अध्याय मूल्यांकन है—पारम्पर्य उपन्यासों की पृष्ठभूमि में हिन्दी उपन्यास का ही मूल्यांकन नहीं बल्कि आधुनिक काल पर अधिक ध्यान दिए बिना एक विचार दृष्टि से किया हुआ मूल्यांकन। मेरा प्रयत्न यही देखने का रहा है कि उपन्यास मनुष्य को समझने में उसकी अनुभूतियों को व्यक्त करने में और उसकी पारस्परिक सहानुभूति को बढ़ाने में कहां तक सफल हुआ है। इन गुणों से मुक्त उपन्यास किसी भी भाषा के हों वे कसा की दृष्टि से खोले जाने चाहिए। ही यूरोपीय भाषाओं में ऐसे उपन्यास कई मिले गए हैं, पर हिन्दी में कम। इस बात को अगर मैंने दिखाया है तो उसे आश्चर्यचकित का काम ही समझ जाना चाहिए।

कास निर्णय

अन्त में परिशिष्ट के रूप में हिन्दी उपन्यासों की वो तालिका दी गई है। उनमें किसी विशेष मौलिक अध्ययन के न होने पर भी यह पर्याप्त महत्वपूर्ण है क्योंकि उनमें उपन्यासों की प्रकाशन तिथि ठीक-ठीक देने का प्रयत्न किया गया है। हिन्दी साहित्य का सबसे बड़ा समिन्धन यह रहा है कि लेखक (प्रकाशक) जाने-अनजाने पुस्तक की प्रकाशन-तिथि मुद्रित नहीं करते। कई उपन्यासों में किसी भी संस्करण की प्रकाशन तिथि नहीं मिली। जो प्रकाशक प्रकाशन-तिथि छपाते हैं वे भी प्रथम संस्करण में तो उसकी तिथि छपाते हैं पर बाद के संस्करणों में प्रथम संस्करण की प्रकाशन-तिथि छपाने की आवश्यकता नहीं समझते। ऐतिहासिक रूप से अध्ययन करनेवाले लोग छात्रों को संशोधन प्रथम संस्करण ही मिल गया तो उनका काम सुगम हो जाता है अन्यथा कभी-कभी साख प्रयत्न करने पर भी उसे सही-नहीं तिथि नहीं मिलती।

तिथि न देना छुट्टि होने पर भी क्षम्य है। लेकिन इनसे भी दूरित और एक प्रवृत्ति भी चल रही है जो क्षम्य है। यह है ग्रन्थों के नाम ही बदलकर विभिन्न कालों में प्रकाशित करना जिससे बड़ा भ्रम हो जाता है। भयवतीप्रसार वाजपेयी का 'मुस्कान' चतुर्दश सालों का 'अमर अभिलाषा' उस का पुष्पा की बेटी' इत्यादि बोधी का 'सम्झा' मदक का 'गिरती बीमार' और बिष्णु प्रसाद का 'बल्लभ रात' कर्मदा 'रमागमनी' 'बहते घाँसू' 'मनुष्यात्म' 'हृणामयी' 'वैतन' और 'निशिकान्त' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें 'मुस्कान' और 'अमर अभिलाषा' को छोड़कर अन्य उपन्यास थोड़े बहुत परिवर्तन या संश्लेषण हैं। साथ ही नये रूप में आए हैं और लेखकों के नये संस्करणों में यह बात बताने की सहूलता दिखलाई है। फिर भी इनके पूर्व संस्करणों से बाद के संस्करणों का पता नहीं चलता दोनों को देखने पर ही भ्रम दूर होता है। 'रमागमनी' और 'बहते घाँसू' की बात विलुप्त चित्र है। 'रमागमनी' का तृतीय संस्करण सं० १९६७ में सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद से और 'बहते घाँसू' का द्वितीय संस्करण बीबी एन मन्दा बनारस से (तिथि नहीं दी गई है) प्रकाशित हुए हैं। इनके प्रथम संस्करणों की ओर में कई पुस्तकालय

ज्ञान हासने पर भी कोई प्रयाजन नहीं हुआ। अन्त में मेझको की सभी पुस्तकों का अध्ययन करने से ज्ञात हुआ कि हमने प्रथम संस्करण अमरा- 'मुस्कान' नाम से १९२९ में साहित्य मन्दिर प्रयाग से तथा 'अमर अभिलाषा' नाम से १९३३ में साहित्य मण्डल दिल्ली से प्रकाशित किए गए थे। पर नये संस्करणों में इस बात का उल्लेख तक नहीं।

साहित्य के इतिहासों में और आलोचना-ग्रन्थों में जो तिथियाँ दी गई हैं उनमें भी कई त्रुटिपूर्ण निकली। साधारण जलकों की साधारण पुस्तकों की बात छोड़िए। यह निश्चित ही बड़े आश्चर्य की बात है कि इस बीसवीं शती में ही हुए हमारे उपन्यास सम्राट् प्रमथन की ही कृतियों की प्रकाशन तिथियों के सम्बन्ध में हमारे आलोचकों में 'मत्तान्तर' है।

उपसृक्त कारणों से हिन्दी उपन्यासों के प्रथम प्रकाशन की तिथि निश्चित करके परिशिष्ट में दी हुई तालिका बनाने में बहुत प्रयत्न करना पड़ा है। इस काम में कई प्रकाशकों तथा जलकों ने बड़ी सहायता दी है। उनके प्रति बारीक कृतज्ञ हूँ। जो भी हो यह तालिका पूर्ण न होने पर भी बहुत कुछ (पूर्णतया नहीं) प्रामाणिक समझी जा सकती है। हो सकता है कठिन प्रयत्न करने पर भी कुछ त्रुटियाँ जा गई हों।

प्रस्तुत प्रबन्ध में उठाई हुई कई बातें अधिक अध्ययन के लिए मार्ग-संकेत कर सकती हैं। विषय के विस्तार के कारण प्रत्येक परिच्छेद को सीमित रखना मेरे लिए आवश्यक था। बिन-बिन बातों की चर्चा की गई है। उनको यथासम्भव स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। फिर भी इन सब विषयों के सम्बन्ध में अधिक अध्ययन के लिए क्षेत्र घुमा पड़ा है। मेरे इस लघु प्रयत्न से अध्ययताओं को उन क्षेत्रों के प्रति तनिक भी संकेत मिले और यह प्रबन्ध ज्ञान-मण्डार के विस्तार में जोड़ा-सा भी सह योग दे सके तो मैं अपने-आपको इतकृत्य समझूँगा।

महोदय गुल्शर डा. हुमारीप्रसादजी द्विवेदी के निर्देशन में प्रस्तुत प्रबन्ध तैयार किया गया है। आचार्यजी ने मुझे खोप प्रणामी से परिचित कराकर समय-समय पर जो समुचित निर्देश दिए थे उनकी परित्यागस्वरूप यह प्रबन्ध इस रूप में प्रस्तुत हो सका है। बन्धबाध देकर मैं आचार्यजी से उद्धृत नहीं हो सकूँगा।

कई पुस्तकालयों विविध विषयों के ग्रन्थालयों तथा अन्य पत्रिकाओं से मुझे बहुत सहायता मिली है। उन सबके प्रति बारीक कृतज्ञ हूँ। मद्रास विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा. संकर राजू नायडू ने जो महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं उनके लिए उनका आभारी हूँ। इतने सुन्दर आकार-प्रकार में इसे प्रकाश में लाने का श्रेय उत्कृष्ट हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशक रामपाल एण्ड सन्स दिल्ली को है।

ज्ञान-क्षेत्र के विस्तार में यह प्रबन्ध तनिक भी उपयोगी सिद्ध हो तो अपने प्रयत्न को सफल मानूँगा।

माहक हैं। इनमें चलते फिरते सभीष पात्रों को देख सकते हैं, उनके हृदय के स्पन्दनों का अनुभव कर सकते हैं। बासकृष्ण भट्ट के उपन्यासों के पात्रों से उनके कुछ निबन्धों में घासे हुए पात्र कहीं अधिक सभीष एवं नयाब हैं। 'एक ईगमिसाइड्स मये मित्र की मुसाफात' 'कट्टर धूम की एक नकस' आदि ध्वनि सबाहरण हैं। 'सुप्रह्वी' और 'हिन्दुस्तान के रईस' सामान्य रूप में सफल हैं। कोषामराम महमरी के 'अडि-सिडि' और बालमुकुन्द गुप्त के 'शिवसत्तु का चिट्ठा' आदि में भी शुम्भर चरित्र चित्रण है।

महा — कैसा विधानो ?

काद — क्या बात पड़े ? बात नहीं है कि एक दिन तुमने तुमने बाकी में हारका विधानो देने का इच्छा दिवा का ?

शिवसत्तु ने कहा—हां ठीक है इस बात की तो हम भी गवाही देंगे।

महमरी ने कहा—फिर का भी तो हमने कहा था कि जब हमारे पास बसे होंगे तब होंगे।

काद — जैसा ! जब वह बात मैं नहीं मानूँगी।

विस्मय ने कहा—भरी पपली ! क्या सच कह, तेरे लिए मैंने आपल से विधानो लेते माने हैं।

काद — हाँ, तब तुमने क्या क्यों रहे हैं ?

—बसता मत ४ ५ ७

१ बदलरब के लिए कहर धूम की कलत से एक बरत वहाँ उद्धृत किया जाता है।

टाइमने का बरतासी का ब्रह्मचरम धूम के घर आता है। दोनों में बातचीत होती है।

बरतासी—सहजी, तुम्हारे माम की बेरंग चिट्ठी है वो क्या पैसा वो और चिट्ठी को।

ब्रह्म—(चिट्ठी कई बार उलट-पुलट देखकर मोहर बचल सिखाया कोलने लगा)

काद — हाँ ! हाँ ! वह क्या करते हो ? बिना महसूस किये चिट्ठी मत कोलो।

ब्रह्म — हाँ हाँ ! सच करो महसूस होंगे।

काद — नहीं नहीं ! बिना महसूस किये चिट्ठी कोलने का हुकम सरदार से नहीं है।

— -- --

ब्रह्म—तुमने हमारी-तुम्हारी पत्नी बिनो की बात-बहाना ! क्यों फटासी बात के लिए है-मुझादिये होते हो। कोलने को हैं। इसमें क्या है। वो कोरे महसूस की होनी तो दो माने बने ही नहीं तो ऐसी बिकमत से बच कर देंगे कि कोरे का बाल सकेना।

काद — न कोर जाने मगधाम जो हमारे ईमान-बर्मे का साक्षी है वह तो जानता है।

— -- --

[कल में रोमफरन की बेटी बिनया महसूस देने को तैयार हो जाती है।]

बिनया—(बरतासी से) तुम हमारा बिस्वास करो। कल हम पैसा कहीं से कर रखेंगी। तुम आकर से जाना।

— -- --

ब्रह्म — मत्ता तुमसा कहीं से बरौनी जो बेनी महसूस। ऐसी महसूसकर्त्री मैं हमारा

इन सब पात्रों की तुलना एडिसन 'स्टीम सा जये और सेंट सा'मन के निबन्धों' के पात्रों से की जा सकती है। इस तरह हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों की कुछ निबन्धों से तुलना करते हुए कहना पड़ता है कि हमारे प्रारम्भिक उपन्यासकार उपन्यास को जीवन का अध्ययन न समझकर मनोरंजन का विषय-भाष समझने लगे।

४७ (घ) प्रेमकथान—प्रमचन्द-पूर्व सभी प्रकार के उपन्यासों में प्रेम और तत्सम्बन्धी क्रिया-कलाप मुख्य रूप में आये हैं। सामाजिक उपन्यासों में यही एकमात्र विषय है पर बान्सी उपन्यासों तक में प्रेम प्रायः मुख्य विषय है। प्रेम-धर्मगो में भी हृदय-विचारों का अध्ययन नहीं मिलता। रीतिवादी प्रेम-बीड़ा या उखू-फारसी की कहानियों की इसकबाजी के समान ऊपरी सतह के कुछ क्रिया-कलापों से ही काम लिया गया है। केवल 'नूतन ब्रह्मचारी' 'भारत हिन्दू' 'निस्महाय हिन्दू' आदि कुछ विज्ञा प्रेम उपन्यास इन सबसे मुक्त हैं।

४८ (ङ) उद्देश्य—प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यासों के प्रायः तीन उद्देश्य हैं (१) नैतिक शिक्षा (२) सामाजिक समस्याओं का प्रकटन तथा सुधार का मार्ग-निर्देशन (३) मनोरंजन। औद्योगिक मूल्य के उपन्यासों में उत्कृष्ट चरित्र-निर्माण मर्यादा-वादन और सामाजिक नीति के संरक्षण के उपदेश दिये गये हैं। 'परीक्षाभूष' 'नूतन ब्रह्मचारी' 'सौ भवान एक सुभान' आदि का ध्येय नैतिक सुधार है। 'नूतन चरित' में एक प्रेमकथा में यत्र-तत्र कुछ नीतिवाक्य बोधे गये हैं। सामाजिक समस्यामूलक उपन्यासों में अधिकांश स्त्री-समस्या से सम्बन्धित हैं। 'पूर्ण प्रकाश और जड़प्रमा' तथा 'ठेठ हिन्दी का ठाट' में धर्ममेल विवाह की समस्या का 'काजर की कोठरी' 'बन्नाबती' 'बारंगना-रहस्य' आदि में बेवस्था-समस्या का 'स्वर्गीय नुसुम' में देवदासी प्रथा का और 'प्रणयिनी-परिणय' 'अपला' 'तरण उपस्थिती' 'प्रेममयी' 'सौन्दर्योपासक' आदि में स्वच्छन्द प्रेम के मार्ग के विघ्नों और बाधाओं का निरूपण है। मार्हस्य जीवन की उत्तमताओं को स्पष्ट करके सुमझनेवाले उपन्यासों में 'भारत धर्मपति' 'साध-मनोह' 'बड़ा भाई' 'देवरानी-बिठानी' 'बो बहनें' 'तीन पत्नी' आदि मुख्य हैं। 'निवेष्टी' 'भारत हिन्दू' आदि में प्राचीन समाज मर्यादा का समर्थन किया गया है। ये सब समस्यामूलक होन पर भी बिस्तेषात्मक नहीं हैं। सामाजिक समस्याओं के विरलपण

निराद काहे को होगा ?

विनय—मैं किसीको कर बैसा है ईसी को जाना भन गयी बात है ? तुम प्राप्तिर रखो तुम्हें न बैसा पड़ेगा।

प्रेम —बैसी यह बात भन्नी नहीं है। जो बैसा तुम मेहनत कर कमाओ, वह हमें दे जाता करो; तुम अभी जानती नहीं हो कि बैसा कैसी मेहनत से मिलता है।

लेर, जब की बार तो कुछ हुआ सो हुआ। आनन्द मे श्रीमती रखो कि ऐसी किन्तुअर्किना न कर करो; बैसी मैं तुम्हारे ही पक्ष के लिए करता हूँ।

—मनु निरुप-यात्रा भाग १ पृ १४=११

१. देखिये अनुच्छेद २२।

के लिए जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण आवश्यक है, वह इन लेखकों में म्रुप्त-सा है। फिर भी सामाजिक समस्याओं और समाचारों के प्रति अपने घोर विरोध को प्रकट करने में और समाज में व्याप्त घनीतियों और गुरुवारों को बाढ़े रंग में चित्रित करने में इन्हें कुछ सफलता प्राप्त हुई। बिना समस्याओं की ओर इन लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुआ है निश्चित ही हमारे समाज की ओर दुर्दशा के कारण थीं और उनका निरूपण अत्यन्त आवश्यक था। किन्तु जिस ढंग से इनका चित्रण हुआ वह बिल्केल घोर विचार से बढ़कर कल्पना और आवेष्ट का ही परिचय देता है। 'अपना' के प्रारम्भ में किछोरी सात भोस्वामो ने अपना ध्येय स्पष्ट किया है—एक दीन-हीन परिवार की सोचनीय स्थिति के साथ वर्तमान समय का चित्रण उन्मुक्त और बन्ध-विहीन समाज का चित्र इस दृष्टि से यथावत् चित्रित किया गया है कि हमारे प्राता लोक इस विन्मुक्त समाज को सुम्भूतसाबद्ध करने के लिए मनसा बाधा कर्मका प्रयत्न करने में उत्तर हों।^१ किन्तु इस चित्रितता और उन्मुक्तता की 'यथावत् चित्रित करने के लिए घटनाचक्र का आशय दिया गया है उसे देखते हुए सहज विश्वास नहीं किया जाता कि इसमें चित्रित जीवन हमारे समाज का वास्तविक रूप ही है। न उनके पास साधारण न वातावरण। प्रत्येक पात्र किसी अन्धे या बुरे बर्न का प्रतिनिधि-भाव रख कर अपनी मनुष्यता को बैठे है, घबिकांस बटगाएँ सनसनीबार—किन्तु प्रसाधारण—होकर स्वाभाविकता को बैठे हैं। उपर्युक्त धर्म उपन्यास भी इस दृष्टि से बहुत भिन्न नहीं है। इन सबमें सुधारवादी दृष्टि से कुछ आदर्श पात्रों द्वारा समस्याओं का मुतझना दिखाया गया है।

मनोरंजन वस्तुतः सभी उपन्यासों का एक ध्येय होता है। पर प्रेमचन्द के पूर्व उपन्यासों में बड़ी मुख्य ध्येय जात होता है।

४

हिन्दी उपन्यास का विकास

(१) प्रीति की ओर : : प्रेमचन्द और उनके पुत्र

सामान्य परिस्थिति

४६ बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में भारतीय राजनीति तथा हिन्दी उपन्यास-साहित्य को एक नया मोड़ दिया। नेशनल काँग्रेस की स्थापना १८८१ में हो चुकी थी। भारत की राजनीति में जन-मुक्ति मन्त्रे लगी थी। बीसवीं सदी तक घाटे-घाटे भारत का राजनीतिक ध्येय काफी स्पष्ट हो गया था और जनता इस सम्बन्ध में कुछ निश्चित धारणाएँ बना चुकी थी। जब गाँधीजी ने राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश किया तब राष्ट्रीय चेतना पूरा वेग से उत्तेजित हो उठी और सामन्त-शासन

की नींव डोलने लगी। जमे हुए उसे संभालने का धरसक प्रयत्न किया गया हो।

इसी काम में प्रेमचन्द का योगदान हुआ। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द का योगदान एक धाकड़िक बटना था। उनके पूर्ववर्ती उपन्यास-साहित्य से उनकी रचनाओं की तुलना करें तो स्पष्ट होता कि उस समय तक परम्परा की जो श्रुतता चलती आयी उसकी एक कड़ी के रूप में वे नहीं माने। उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में ही कई अन्तिकारी विरोधवादी दृष्टियाँ हैं। उन्हें केवल युग-परिचातक के रूप में ही नहीं युग-स्रष्टा के रूप में भी मान्यता देनी पड़ेगी। उनके 'प्रेमा' और 'सेवासदन' से लेकर 'गोदान' तक के उपन्यासों में जो विकास दृष्टिगत होता है वह सचमुच आश्चर्यजनक है। इतने छोटे काम में किसी भी देशी अथवा विदेशी भाषा में ऐसा महान और तीव्र विकास नहीं हुआ होगा।

सन् १९११ से १९३६ तक के पैंतीस वर्षों में हमारे उपन्यास-साहित्य में जो अन्तिकारी परिवर्तन देखा उसके भूत कारण क्या हैं? कुछ सतर्कता से देखा जाय तो विकास का यह काम और भी सीमित किया जा सकता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी 'प्रेमा' 'वरदान' और 'सेवासदन' को छोड़कर सभी १९२० और १९३६ के बीच में निकले। १९२२ के पहले के अन्य लेखकों के उपन्यासों में विदेशी विकास की परिचायक कोई प्रवृत्ति नहीं मिलती। देवकीनन्दन खत्री किछोरीमात मोस्वामी गोपाल राम पहलूवा आदि का हिन्दी उपन्यास की पृष्ठभूमि सचाने में जो महत्त्व है, उसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती किन्तु उनके उपन्यास जीवन से बहुत दूर थे। उनके मुख्य आधार बुद्धि रहस्य और रहस्योद्घाटन पर्वण चरित्राणि का आभावमय अभिचार, धरमाचार आदि हैं। पर इन उपन्यासों के कुछ-कुछ पर्वणों हास-विभासों रंगरेसियों और आत्मनिरीक्षणों के बीच में इधर-उधर से झटके हुए जीवन के मर्मस्पर्शी स्पर्शों के चित्रण। यह उद्घोषित करते हैं कि साहित्य के इस उर्वर क्षेत्र में उपन्यास के बीज बोने का चुके थे पर कृपक के अज्ञान या असावधानी के कारण अथवा परिस्थिति की प्रति झुमता के कारण वे ठीक तरह से अंकुरित होकर विकसित नहीं हुए। प्रेमचन्द ने आकर विकास की पंक्ति की ओर तीव्र गति की। अब तक की परम्परा से बहुत कुछ भिन्न और उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करनेवाली एक नयी परम्परा स्थापित करने में सफल हुए।

इस महान युगस्रष्टा कलाकार की प्रेरणाएँ कौन-सी हैं?

प्रेमचन्द की प्रेरणाएँ

५० (क) राजनीतिक परिस्थिति—जमींदारी घटी के उत्तरार्द्ध में भारतीय जनता एवं साहित्य की राजनीति के क्षेत्र में बीज बोने का प्रयत्न किया और बीसवीं शती के आरम्भ में इन तीनों में अशुभ सम्बन्ध स्थापित हो गया। नेता जनता की महान शक्ति की घोषणा करके उनकी प्रेरणा देने के प्रयत्न में लगे थे

जनता अपनी प्रगतिनिहित शक्ति को समझकर सजीव होने लगी और साहित्यकार के कार्यों में जन-विप्लव की सुमुख ध्वनि गूँब उठने लगी। ऐसी परिस्थिति में किसी भी साहित्यकार को जनता के जीवन और बाणी का विरस्कार करना असंभव था। विरोध कर प्रेमचन्द जैसे जागरित कलाकार के लिए जो जनता की ही जनार्दन समझते थे और जीवन को ही साहित्य का सर्वोत्कृष्ट साधन समझते थे जन-जीवन की ओर धाकट होना एक और राजनीतिक विवशता भी डूंगरी घोर अपनी घातक प्रेरणा।

५१ (स) अनुभूति—किन्तु प्रेमचन्द को केवल राजनीति का भ्रम नहीं मान सकते। भले ही राजनीति ने उनके साहित्य पर प्रभाव डाला हो—और काफी बड़ा प्रभाव डाला हो—तो भी राजनीति और जनता को समझने और उनको साहित्य का विषय बनाने में उनकी अनुभूति ही सबसे अधिक सहायक हुई। जनता को समझनेवाले जनता के प्रति वास्तविक सहानुभूति रखनेवाले जन-जीवन को अपना जीवन समझनेवाले जन-हित के लिए आत्माहुति देनेवाले भारत के राजनीतिक क्षेत्र में एक एग्रीब्री हुए और हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक प्रमचन्द। इस दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दी साहित्य में प्रमचन्द आज तक चलेके लड़े हैं।

५२ (ग) अनुभव—जीवन के विषय विचार क्षेत्र का अनुभव प्रेमचन्द ने किया था उसीका रूप उनके उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है। अर्थात् बहिष्कार में जीता हुआ वास्तव और जीवन तरह-तरह की गीकरियों में इधर-उधर भटकते रहना जीवन की निरन्तर विवशता अस्थिरता और व्यथनवादा इन सबने मिलकर प्रेमचन्द को अनुभव का पाठ सिखाया जो एक उपन्यासकार के लिए महत्वपूर्ण विषय है। उनके अधिकांश पात्र ऐसे हैं जिन्हें प्रेमचन्द ने देखा है और जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया है। तात्स्थाय और गौर्की के प्रतिरिक्त और किसीने इस तरह अपने जीवन में भनायास धामे हुए पात्रों का अनुभवसिद्ध ज्ञान उपन्यास में प्रस्तुत नहीं किया है। पन्नादेवर, वास्ताएवस्की गाल्सवर्दी आदि के पात्र प्रत्यक्षसिद्ध हैं अनुभवसिद्ध नहीं।

५३ (घ) संघर्ष—प्रेमचन्द का जीवन का अनुभव केवल ठट्ठ होकर देखने का नहीं है। उन्होंने बाह्य सामाजिक जीवन का जो संघर्षमय रूप देखा उससे उनका व्यक्तिगत जीवन कम महत्व का नहीं रहा। व्यक्तिगत जीवन में उन्हें 'भरमानों' की आक में मिला देनेवाली असह्य बटनाओं से निरन्तर संघर्ष करना पड़ा था। इसी-लिए देश के घरमानों को मिटते देखकर, जनता की आकांक्षों और अनिसापाओं को एक-एक कर मिट्टी में मिसते देखकर उनका हृदय इतना द्रवित हो उठा। उठत प्रयत्न करते हुए भी जीवन को सुगम बनाने में असमर्थ वह अधिभोग घनाभितों का कसाकर अपनी कला के करपोरुर्ध्व में दमिष्ठ दमिष्ठ जीवन व्यतीत करने को विवश जनता से पूर्ण तादात्म्य प्राप्त कर सका। प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती—और परवर्ती—किसी उपन्यासकार का जीवन इतना संघर्षमय नहीं रहा जिससे वह अपने हृदय को बेतन बनाकर सार्धपूर्ण जीवन का शुद्ध विवेचन कर सके।

५४ (ङ) पश्चिमी उपन्यास—प्रेमचन्द ने 'अन्धकार' और 'तोता-पैना' जैसी कहानियाँ ही नहीं पढ़ी थीं पाश्चात्य उपन्यास-साहित्य का विरोधकर किसी

उपन्यास-साहित्य का भी अध्ययन किया था। १९३३ से १९३९ तक के 'हुँ' और 'आवरण' के प्रकाशनों से ज्ञात होता है कि वे कभी संस्कृति और साहित्य से कितने प्रभावित थे।^१ एक पक्ष यह उन्होंने प्ररन किया है किम सेलकों ने रूस को उस मार्ग पर लगाया जिसपर चलकर आज यह दुःखी संसार के लिए प्रादय हुआ है उनकी रचनाएं क्यों न प्रादर पाएं ?^२ उनके धर्म कई सख भी प्रमाणित करत हैं कि उन्होंने पाश्चात्य उपन्यासों का और उपन्यास-सम्बन्धी कृतियों का पर्याप्त अध्ययन किया था।^३ ज्ञात होता है कि उनपर बंसा साहित्य से अधिक पश्चिमी साहित्य का सीधा प्रभाव पड़ा था। उनके चरित्र की स्वच्छन्दता एवं सार्व की धर्तमात्रकता से ऊपर उठने का कारण यही ज्ञात होता है। किन्तु इस विवेची प्रभाव को प्रभाव के रूप में ही देलना चाहिए, मूस प्रेरणा के रूप में नहीं। उनकी रचनाओं के धीपन्यामिक धिस पर निस्सम्भेह पाश्चात्य प्रभाव पड़ा था। किन्तु उस धिस के द्वारा धर्मिज्यवित विषय उन सबमें प्रकट विषेय इष्टिकोण भाषोपान्त इष्टिगत होनेवाला मनोभाव धादि प्रमचन्द को प्रेमचन्द बनानेवासी जितनी वस्तुएं हैं व निरिचन ही भारत की भूमि म उत्पन्न हैं। हमारे आज तक व उपन्यासकारों में भारतीयता के पुण के सबसे बड़ा धर्तकारी प्रेमचन्द ही हैं। उन्हें भारतीय जीवन का सर्वमष्ट चित्रकार बनानेवासी बीज पाश्चात्य प्रभाव नहीं उनके धनुमध और धनुभुति ही हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यास

५५ प्रभा—यही प्रमचन्द का प्रथम उपन्यास था जो पहले 'हमनुर्मा व हमसबाब' (१९४) नाम से उरू में प्रकाशित हुआ और बाद में 'प्रेमा' नाम से हिन्दी में। बहुत काम के पश्चात् इसका धर्मिक परिवर्तित रूप 'प्रतिज्ञा' (१९२६ ?) नाम से प्रकाशित हुआ।

प्रमचन्द ने इसमें विषयार्थों की समस्या का विवेचन किया है और समाजान के रूप में विषय-विबाह का प्रस्ताव उपस्थित किया है। धीपन्यामिक गठन और समाजार्थों के चिरमपण की इष्टि से अधिक उल्लुष्ट न होने पर भी यह दो इष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। प्रेमचन्द के इस प्रारम्भिक उपन्यास ने ही स्पष्ट धोषित कर दिया कि इस सेलक की कला किस धीर उमुच है। दूसरी बात यह है कि इसमें पूर्ववर्ती सेलकों के उपन्यासों के समान उपन्यास-कथा को केवल मनोरञ्जन का विषय नहीं माना गया किन्तु जीवन तथा उसकी र्थधीर समस्याओं के विवेचण का माध्यम बनाया गया और इस तरह हिन्दी उपन्यास के इतिहास में ही एक नयी धारा का प्रारम्भ किया गया। 'प्रेमा' में जो सामाजिक चेतना (social consciousness) एवं

^१ देखें धनुम्देर ७९ और पाद लिपिधर्मा।

^२ 'कभी साहित्य और हिन्दी शीघ्र लेख, साहित्य का उद्देश्य' इ. १८७।

^३ देखें 'उपन्यास' रान्नी लेना की कथा धादि लेख, साहित्य का उद्देश्य ३० संकलित।

सामाजिक दायित्व (social responsibility) इष्टिगुण होता है वह किसी पूर्ववर्ती लेखक के किसी उपन्यास में नहीं मिलता। 'प्रेमा' में प्रेमचन्द भी जिन प्रवृत्तियों का बीजारोपण हुआ है, वे ही अधिक पुष्ट एवं परिमाणित रूप में उनके अन्य उपन्यासों में इष्टिगुण होती हैं।

५६. **बरदान**—'सेवासदन' के पश्चात् प्रकाशित यह छोटा-सा उपन्यास वस्तुतः 'सेवासदन' के पूर्व ही लिखा गया था। यह अपने पूर्वरूप में 'प्रेमाचन्द' (१११) नाम से हिन्दी में और 'बलवत् ईश्वर' नाम से उर्दू में प्रकाशित हुआ था। 'सेवासदन' की तुलना में यह अत्यन्त समीकृत रचना छिन्न होती है तो इसका कारण यही है। इसमें भी प्रेमचन्द हमारे समाज की कुछ समस्याओं की—विशेषकर स्त्री-जीवन से सम्बन्धित समस्याओं की—बर्चा करते हैं। 'प्रेमा' और 'बरदान' को देखते हुए हम समझ सकते हैं कि प्रेमचन्द भी प्रारम्भ में अपने पूर्ववर्तियों को प्राथमिक बीजनेवासी स्त्री-समस्याओं से ही आकृष्ट हुए। पर उनका दृष्टिकोण वितास्त भिन्न था। सीधे ही वे उस विद्याल दृष्टिकोण के अनुकूल जीवन के विस्तृत स्वरूप के अध्ययन एवं व्याख्या की ओर प्रवृत्त हुए।

५७. **सेवासदन**—प्रेमा में जिस प्रेमचन्द का अस्पष्ट रूप में आभास मिलता है उसीको अधिक स्पष्ट एवं निखरे हुए रूप में उपस्थित किया 'सेवासदन' ने। इसी उपन्यास ने प्रेमचन्द को एक उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। बाब के मापदण्ड से मापने पर 'सेवासदन' में अनेक ही कुछ कमियाँ इष्टिगुण हैं तो भी हमें यह मानना पड़ेगा कि जब वह लिखा गया तब उस समय तक के अन्य लेखकों के सभी उपन्यासों से वह भिन्न था और उनसे बहुत आगे बढ़ा हुआ था। इस दृष्टि से वह अपने समय का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास था और बाब में भी बहुत समय तक स्वयं प्रेमचन्द के अतिरिक्त और कोई लेखक उससे आगे नहीं बढ़ सका।

'सेवासदन' में भी प्रेमचन्द भारत की अधिश्रष्ट गरीब के अधिकारक बनकर सामने आये। उन्होंने बेरमा प्रथा की अव्यक्त समस्या का विशेषतः किया और हमारे रमणी समाज की कलाई खींच दिखायी।

रहेज देने के निमित्त बारीका अध्ययन को जो स्वभावतया एक धर्म पुण्य के घूस लेकर बेल बनाया पड़ा। फिर भी अहित रहेज का प्रबन्ध न होने से उन्हें अपनी तब युवती सुन्दरी सीतबती लड़की सुमन को एक अपाण के हाथ लीपकर गुप्त होना पड़ा। अशोभ्य पति ने सुमन को एक छोटे-से अपराध के सम्बन्ध के आधार पर बर से निकाल दिया। भारतीय समाज में पति की देवता समझने पर भी पति द्वारा परित्यक्त होने-वाली गरीब को कौसी धोर दुर्दशा में पड़ना पड़ता है और कौसी-कौसी यातनाओं को सहना पड़ता है इसे लेखक ने सुमन के जीवन में प्रकट किया है। सुमन को मात्र समाज द्वारा तिरस्कृत होकर बासमण्डी का आश्रय लेना पड़ा।

समस्या इसमें में ही सीमित नहीं रहती। उसका प्रभाव अधिक व्यापक है। सुमनबाई की बहन होने के कारण उसकी छोटी बहन का विवाह भी रद्द गया। इस तरह निर्दोष दशरोप माणिक्यों के जीवन को नरकमुख बनाकर भी जो समाज बर्न

की बाह देता है। पवित्रता का दम्भ करता है। उसके सोसलसेपन की प्रेमचन्द ने स्पष्ट दिखा दिया है। हिन्दू समाज ने बेरया प्रथा को बनाये रखने में अपना पूरा सहयोग प्रदान किया है। वह एक धीरे धीरे पति की सर्वोत्तम कृतियों का समर्पण करता है और बुढ़ापा पति द्वारा परित्यक्त नारी को सम्म समाज में सहामता न मिलने का विधान करके उसे पतन के मर्त में गिरने को विवश करता है। तो दूसरी ओर पारिवारिक पनों तथा सामिक उत्सवों में बेरयाओं का विशेष भावर-सम्मान करके अपनी कुत्सित मनोकृति का परिचय देता है। सुमन जब सती-साध्वी रहती है। तब एक बार उसे सेठ विमलनाथ के ठाकुरद्वारे में भूसा बैलने जाने पर रात-भर बाहर ही रहकर भीमना पड़ता है। पर अब वह ह्याजीवी के रूप में माने जाती है। सब उसका धूमधाम से भावर किया जाता है। और मानो उसके चरण-स्पर्श से वह मन्दिर पवित्र हो जाता है।

इस समस्या के समाधान के रूप में सुधारवादी प्रेमचन्द ने बेरयाओं के उद्धार एवं सम्मानपूर्वक पुनरुद्धार के लिए 'सेवासदन' की स्थापना का प्रस्ताव रखा है।

औपन्यासिक कला की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास के इतिहास में 'सेवासदन' का विशिष्ट स्थान है। पारिवारिक उपन्यासों की तुलना में उपन्यास नाम को सार्थक बनाने-वाली हिन्दी की प्रथम रचना यही है। लेखक के सामाजिक जीवन के अनुभूतिमय अनुभव मानवता के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि धारि के कारण 'सेवासदन' एक नम्य रचना बना है।

३८ प्रेमाश्रम—प्रेमचन्द को जन-साधारण के लेखक तथा हमारे समाज के बच्चे के रूप में प्रस्तुत करनेवाला प्रथम उपन्यास 'प्रेमाश्रम' है। जो लेखक अपने प्रारम्भिक उपन्यासों में स्त्री-जीवन की बटिम किन्तु अपेक्षाकृत संकीर्ण समस्याओं का विवेचन कर उपन्यास-कला में पर्याप्त हस्तमात्र प्राप्त कर चुका था वही 'प्रेमाश्रम' में—तथा परवर्ती उपन्यासों में—अधिक विस्तृत और अधिक मौलिक समस्याओं के विस्लेषण की ओर उन्मुख हुआ। बगीचों का भोग और भस्वाचार, सामन्तवादी शासन तथा उससे सम्बद्ध व्यक्तियों की पांडवी गौरववाही के हिमायतियों तथा उनके उप-ग्रहों का आत्मसम्मान-रहित अस्तित्व बिच की विवशताओं तथा घोषकों के विधानों के बीच में अपरिमित यातनाएं सहते हुए बहिष्काराचमलों की निपट विवशता इन सब का सामिक विषय 'प्रेमाश्रम' में किया गया है।

भारत की सामान्य जनता का आग्रह और अपने हक के लिए लड़ाई भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का एक प्रमुख पंग है। और इस आग्रह पर लिखित प्रथम गद्य उपन्यास के रूप में 'प्रेमाश्रम' महत्वपूर्ण रचना है। प्रेमचन्द ने रूपकों की उन दुर्बलताओं के प्रति संकेत ही नहीं किया जो उनकी मुक्ति एवं चरवान में बाधक प्रमाणित हो चुकी थीं। यद्यपि उन दुर्बलताओं के मूल कारण का भी ध्वनेपण किया है। घोषक शासन ने जनता को धार्मिक सामूहिक मानसिक तथा नैतिक दृष्टि से क्षिण पतित बना रखा है। उनकी समस्त सम्भावनाओं को लीसे बधित कर रखा है। स्वाभिमता एवं पारस्परिक बैर-विरोध में एक-दूसरे उन्हें लीसे प्रगति-मग में धक्का कर रखा है। इन्हे प्रेमचन्द स्पष्ट कर सके हैं। किसानों के जीवन तथा उनकी समस्याओं

के अध्ययन में प्रमत्त का दृष्टिकोण प्रगतिवादी रहा है किन्तु उन समस्याओं के जो समाधान प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें गान्धीवाद ही प्रभावित सुधारवादी की कल्पना का ही परिचय मिलता है। इनकी ही मुक्ति तथा सुधार के लिए उन्होंने जो उपाय प्रस्तुत किया है वह धर्मीयारी वर्ग के ही प्रेमसंकर द्वारा अपने स्वार्थों का स्वेच्छा पूर्वक परिहास है। पूँजीवादी घोषक वर्ग के इस मन-परिवर्तन की विह्वल भविष्य में भी संभाव्यता संदिग्ध ही है। वस्तुतः इस दमित एवं दलित वर्ग की घोर दुर्दशा से व्याकुल और उनके उद्धार के लिए आहुत प्रेमचन्द की धर्मावाहुता से उत्पन्न ये समाधान पर्याप्त छिन्न नौब पर लगे हैं। बटनाएँ तथा पात्र भी कुछ पूर्वायोजित परिघटितियों के अनुसार आगे बढ़कर इन पात्रों की स्थापना में सहयोग देते हैं। अतः पात्र बहुत कुछ टुकड़ाही हो गये हैं, पर व्यक्तित्व से रहित नहीं। इन परिघटितियों के होने पर भी कृपकों की समस्या से सम्बन्धित प्रथम उपन्यास के रूप में प्रेमात्मक का महत्त्व चुना नहीं जा सकता।

५६ निर्मला—अपने कठिण बृहत् उपन्यासों में देश की कई महत्त्वपूर्ण समस्याओं का विवेचन करने के पश्चात् प्रेमचन्द पुनः इस छोटे-से उपन्यास में भारतीय नारी की एक समस्या—अनमेल विवाह—की घोर धारें। दहेज देने में मसक्त होने के कारण फूल-सी सुकुमारी पोकछर्पीया कन्या निर्मला का विवाह तीन सड़कों वाले एक बकील साहब से होता है जो कामबिज्ञान के धर्मों को पढ़कर निर्मला को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं पर बयनीय रूप में पराजित होते हैं। इस विवाह के कारण दो-दो कुटुम्ब कैसे बरबाद हो जाते हैं। इसका सामिक विषय ही 'निर्मला' का विषय है।

मसपि 'विवाहवन' तथा 'प्रेमात्मक' की तुलना में इसका विषय बहुत सीमित है जो भी समस्या के महुरे अध्ययन और मनोभावों के सूक्ष्म विवेचन की दृष्टि से यह प्रेमचन्द का सबसे सुन्दर उपन्यास है। कई सामाजिक बटनाओं तथा धर्म असंगतियों के होने पर भी 'निर्मला' के पात्रों का क्रमिक विकास—विशेषकर उनके मनोभावों का विकास—पर्याप्त स्वाभाविक बना है। अनावश्यक विस्तृति के तथा विद्यालयावधारण के अभाव के कारण 'निर्मला' के मध्य में जो हड़ता धावी है वह प्रमत्त के किसी अन्य उपन्यास में नहीं है।

६० रंजमुनि—रंजमुनि में प्रेमचन्द अधिक विद्यालय क्षेत्र में धारें और अधिक विस्तृत समस्याओं के विवेचन की ओर प्रवृत्त हुए। १९२९ के लगभग गांधी जी राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने लगे और देश-भर में नयी चेतना व्याप्त होने लगी। परन्तु भारत का दमित अधिमान आगच्छ हो रहा। गौहरसाही तथा उनके हिमामयी स्वातंत्र्य-समर का समर्थन करने के लिए कटिबद्ध वे और इसके लिए अपनी समस्त पासविक सक्तियों का उपयोग करते थे। भारत की निरस्त जनता को पाँबीबी ने अहिंसा एवं अक्रम साहित्य के आध्यात्मिक चरण देकर बुद्ध-क्षेत्र में उतार दिया। भारत के इस राष्ट्रीय आन्दोलन के आतावरण में ही 'रंजमुनि' का कथानक आयोजित है। मातृभूमि के उद्धार के लिए अग्रजल सुरदास को आत्मबल के प्रतिनिधि के रूप

में ही रहा है और उसमें गांधीजी के सभी गुणों का आरोप किया है।

भारतीय समाज के क्षोभित एवं क्षोभक वर्गों के विभिन्न रूपों और दशाओं के तथा मित-मित सामाजिक स्तरों के व्यक्तियों के बिचल में प्रायः सम्पूर्ण भारत के समाज को ही दिखाया गया है। साथ-साथ हार्निक अनुभूतिपूर्ण वैयक्तिक या पारिवारिक सम्बन्धों के बिचल भी कम नहीं हैं। नायक सूरदास ने ही नहीं छोड़िया हनु जाह्नवी आदि पात्रों के चरित्र भी आदर्श की नींव पर सजे किये गये हैं। यद्यपि प्रेमचन्द ने इसमें समस्याओं के समाधान के रूप में कोई सस्ता गुस्सा प्रस्तुत नहीं किया है तो भी सम्पूर्ण उपन्यास में प्रकट आदर्श कहीं-कहीं प्रतिभाशुभ होकर अप्रायोगिकता की सीमा तक पहुँच गया है।

६१ **कायाकल्प**—अपने पूर्वनिश्चित उपन्यासों के सामाजिक यथार्थों तथा यथार्थ समस्याओं से उनिक बचकर एक नयी धरती पर पड़ापड़ करतेबाने प्रेमचन्द को हम 'कायाकल्प' में देखते हैं। प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों को तथा उनके यथार्थवादी स्वरूप को देखने के पश्चात् 'कायाकल्प' के रूप को देखकर हमें उनिक आश्चर्य होता है। बाबू-टोने बंब-बंब पुनर्जन्म पर विश्वास आदि कितने ही अन्धविश्वास पर आधारित विषयों के द्वारा इसकी कथा आगे बढ़ायी गयी है। यद्यपि भारत के हिन्दू समाज में कड़मूस अंधविश्वासों और मूढ़ परम्पराओं को दिखाना ही प्रेमचन्द का ध्येय रहा हो।

वस्तुतः 'कायाकल्प' की मुख्य समस्या हिन्दू-मुस्लिम बैमनस्य है जो उस समय भारत की सबसे बड़ी समस्या बनी हुई थी। जिस भयंकर बमनस्य ने समय-समय पर हिन्दू-मुसलमानों को एक-दूसरे के रक्त की नदियाँ बहाने की प्रेरणा दी उसीको प्रेमचन्द ने इस बार हाथ में लिया और एक विद्याल समूह के पात्रों की बाह्य एवं आन्तरिक क्रिया-प्रक्रियाओं के द्वारा सिद्ध कर दिया कि पारस्परिक प्रेम एवं सहानुभूति से ही इस समस्या की शाश्वत निवृत्ति हो सकती है। धीरे-धीरे को मिटाने तथा हिन्दू-मुसलमानों में भारतीयता का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सबसे बड़ी क्षोभित के रूप में प्रेमचन्द ने अहिंसा एवं सहनशीलता को ही प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द का गांधीवादी रूप इसमें भी प्रकट है।

६२ **यवन**—बीसवीं शती के प्रथम दशक में 'यूप्पा' नाम से प्रकाशित छोट-सा उपन्यास बाप में परिवर्तित एवं परिभाषित होकर एक सुन्दर उपन्यास 'यवन' के रूप में निकला।

विषय के मुकाबल विकास तथा मनुष्य की मानसिक वृत्तियों के सम्यक् निरूपण के कारण 'यवन' एक उत्कृष्ट उपन्यास बना है। विषय को परिवार की चहार-दीवारी के अन्दर सीमित रखकर भी प्रेमचन्द ने जिस रचना-कौशल का परिचय दिया है वह इस बात को स्पष्ट करता है कि वे जैसे हमारी सामाजिक समस्याओं से घबराते हैं वैसे मानव-हृदय की संकुल भावनाओं से भी परिचित हैं।

एक प्राणीय युवती जालपा के अमित आश्रुपल-श्रेम तथा उसके दुरन्त परिणामों की कथा है 'यवन'। पारिवारिक जीवन के सफल निर्वाह के लिए दायित्व एवं समायोज (Adjustment) कितना आवश्यक है और अचिन्तित एवं असम्बन्धित

अध्ययन में प्रेमचन्द का दृष्टिकोण प्रगतिवादी रहा है। किन्तु उन समस्याओं के जो समाधान प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें पान्थीवाद से प्रभावित सुधारवादी की कल्पना का ही परिचय मिलता है। कृषकों की मुक्ति तथा सुधार के लिए उन्होंने जो उपाय प्रस्तुत किया है वह पानीपती बर्ग के ही प्रेमचन्द द्वारा अपने स्वयं का स्वेच्छा पूर्वक परिचय है। पानीपती शोषक वर्ग के इस भग-परिवर्तन की विरुद्ध अभियान में भी संभाव्यता अधिक ही है। वस्तुतः इस विमिश्र एवं दृष्टि वर्ग की ओर दुर्बला से व्याकुल और उनके उद्धार के लिए व्याकुल प्रेमचन्द की प्रतिभाशुक्लता से उत्पन्न ये समाधान अत्यन्त अविश्वसनीय पर सहे हैं। बटनाएं तथा पात्र भी कुछ पूर्वनिर्धारित परिपाटियों के अनुसार घाते बढ़कर इन पात्रों की स्थापना में सहयोग देते हैं। अतः पात्र बहुत कुछ टुकड़ाती हो गये हैं, पर व्यक्तित्व से रहित नहीं। इन परिचितियों के होने पर भी कृषकों की समस्या से सम्बन्धित प्रथम उपन्यास के रूप में प्रेमचन्द का महत्त्व नूना नहीं जा सकता।

५६ निर्मला—अपने कतिपय बृहत् उपन्यासों में देश की कई महत्त्वपूर्ण समस्याओं का विश्लेषण करने के पश्चात् प्रेमचन्द पुनः इस छोटे-से उपन्यास में भारतीय नायि की एक समस्या—अनमोल विवाह—की ओर घाते। बड़े-बड़े में प्रचलित होने के कारण कूल-ही सुकुमारी पौडसर्पावा कन्या निर्मला का विवाह तीन लड़कों—बाने एक बकील साहब से होता है जो कामविज्ञान के धर्मों को पढ़कर निर्मला को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं पर दायीय रूप में पराजित होते हैं। इस विवाह के कारण दो-दो कुटुम्ब कैसे बरबाद हो जाते हैं, इसका मार्मिक चित्रण ही 'निर्मला' का विषय है।

यद्यपि 'सेवासदन' तथा 'प्रेमाश्रम' की तुलना में इसका विषय बहुत सीमित है, तो भी समस्या के गहरे अध्ययन और मनोमात्रों के सूक्ष्म विश्लेषण की दृष्टि से यह प्रेमचन्द का सबसे सुन्दर उपन्यास है। कई सामाजिक बटनाओं तथा अन्य असंततियों के होने पर भी 'निर्मला' के पात्रों का क्रमिक विकास—विशेषकर उनके मनोमात्रों का विकास—अत्यन्त स्वाभाविक बना है। अनावश्यक विस्तृति के तथा विश्वास बाधावरण के अभाव के कारण 'निर्मला' के गठन में जो बढ़ता भारी है वह प्रेमचन्द के किसी अन्य उपन्यास में नहीं है।

६० रंगभूमि—रंगभूमि में प्रेमचन्द शक्ति विद्यालय क्षेत्र में घाते और अधिक विस्तृत समस्याओं के विश्लेषण की ओर प्रवृत्त हुए। १९२२ के लगभग गांधी जी राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने लगे और देश-भर में नयी चेतना व्याप्त होने लगी। परन्तु भारत का विमिश्र अभिमान जागरित हो उठा। लीजराही तथा उनके हिमायती स्वातन्त्र्य-धर्म का हमन करने के लिए कटिबद्ध थे और इसके लिए अपनी समस्त पारिवारिक शक्तियों का उपयोग करते थे। भारत की निरस्त जनता को बांधीबा ने प्रेरित एवं प्रोत्साहित के आध्यात्मिक पक्ष लेकर मुड़-झन में उतार दिया। भारत के इस राष्ट्रीय आन्दोलन के मातावरण में ही 'रंगभूमि' का कथानक प्रासंगिक है। रंगभूमि के उद्धार के लिए कृतप्रण सुरदास को आत्मबल के प्रतिनिधि के रूप

में ही रचा है। और उसमें गांधीजी के सभी गुणों का आरोप किया है।

भारतीय समाज के लोपित एवं लोपन वर्गों के विभिन्न रूपों और इष्टानों के तथा भिन्न-भिन्न सामाजिक स्तरों के व्यक्तियों के चित्रण में प्रामाण्यपूर्ण भारत के समाज को ही दिखाया गया है। साब-साब हासिल अनुभूतिपूर्ण नैयतिक या पारिवारिक सम्बन्धों के चित्रण भी कम नहीं है। पापक दूरदार के ही नहीं लोभिया बन्तु जाह्नवी आदि पात्रों के चरित्र भी भारत की नींव पर पड़े किन्हीं पात्रों हैं। यद्यपि प्रेमचन्द ने इसमें समस्याओं के समाधान के रूप में कोई हस्ता मुक्ता प्रस्तुत नहीं किया है तो भी सम्पूर्ण उपन्यास में प्रकट आदर्श कहीं-कहीं प्रतिभास्य होकर समायोगिता की सीमा तक पहुँच गया है।

६१ **कायाकल्प**—मपने पूर्वनिश्चित उपन्यासों के सामाजिक यथार्थों तथा यथार्थ समस्याओं से निकल बचकर एक नयी धरती पर पड़ापण करनेवाले प्रेमचन्द को हम 'कायाकल्प' में देखते हैं। प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों को तथा उनके यथार्थवादी स्वस्व को देखने के पश्चात् 'कायाकल्प' के रूप को देखकर हमें तनिक आश्चर्य होता है। बाद-दोने जन्म-जन्म पुनर्जन्म पर विश्वास पाकि कितने ही धर्मविश्वास पर आधारित विषयों के द्वारा इसकी कथा बाने बढ़ायी गयी है। धावक भारत के हिन्दू समाज में स्वयंसेवक संघविश्वासों और मूढ परम्पराओं को दिखाना ही प्रेमचन्द का ध्येय रहा हो।

वस्तुतः 'कायाकल्प' की मुख्य समस्या हिन्दू-मुस्लिम बैंगनत्व है जो इस समय भारत की सबसे बड़ी समस्या बनी हुई थी। बिना भयंकर बैंगनत्व ने समय-समय पर हिन्दू-मुसलमानों को एक-दूसरे के रक्त की नदियाँ बहाने की प्रेरणा दी उसीको प्रेमचन्द ने इस बार हाथ में लिया और एक विद्यालय समूह के पात्रों की बाह्य एवं आन्तरिक क्रिया प्रक्रियाओं के द्वारा छिड़ कर दिया कि पारस्परिक प्रेम एवं सहानुभूति से ही इस समस्या की धारवत निवृत्ति हो सकती है। बैर-विरोध को मिटाने तथा हिन्दू-मुसलमानों में भास्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सबसे बड़ी धोपधि के रूप में प्रेमचन्द ने अहिंसा एवं सहनशीलता को ही प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द का गांधीवादी रूप हममें भी प्रकट है।

६२ **मनन**—बीसवीं शती के प्रथम दशक में 'वृत्तान्त' नाम से प्रकाशित छोटा-सा उपन्यास बाद में परिष्कृत एवं परिमाणित होकर एक सुन्दर उपन्यास 'मनन' के रूप में निकला।

विषय के सुचारु विकास तथा मनुष्य की मानसिक वृत्तियों के सम्पूर्ण निरूपण के कारण 'मनन' एक उत्कृष्ट उपन्यास बना है। विषय की परिवार की चहार दीवारों के अन्दर सीमित रखकर भी प्रेमचन्द ने जिस रचना-कौशल का परिचय दिया है वह इस बात को स्पष्ट करता है कि वे जैसे हमारी सामाजिक समस्याओं से दूर गत हैं वैसे मानव-हृदय की संकुल भावनाओं से भी परिचित हैं।

एक प्रामाणिक सुखी जामपा के समित प्राध्यापक प्रम तथा उसका दुरन्त परिणामों की कथा है 'मनन'। पारिवारिक जीवन के अष्टम निर्वाह के लिए दार्शनिक एक समायोग (Adjustment) कितना आवश्यक है और अनिश्चित एवं असन्तुष्ट

प्रवृत्तियों से जीवन कहां से कहां जा पड़ता है अपने अनियंत्रित भावों की पूर्ति में बिनाकुल उत्तरदायित्वरहित होकर प्रवृत्त होनेवाले व्यक्तियों को कंसी विपत्तियों को सहन करना पड़ता है, इसका भाषिक विज्ञान 'मन' में किया गया है। भासपा को एक साधारण प्राणीय मानिका है अपने विवाह के बाद पति रमानाम से बन्धनार सिमाने का हठ करती है। अपने ज्ञानभाग की धान-धीकत की डींग हांकनेवाला धीर अपनी वास्तविक भाषिक दशा को पत्नी तक से मुक्त रखनेवाला मिथ्यामिमांसी रमानाम पत्नी के इस धाग्रह की उपेक्षा नहीं कर सकता। वह उबार लेकर खेबर बनवाता है धीर कर्ष भुक्ताने के लिए बप्तर का कुस रूपमा से लेता है। रत्न के कुल जाने पर वह घर से माय जाता है धीर धन्य में पुसित के हाथ में पड़कर राजनीतिक प्रतियोगियों में मुकबिर बनने को तैयार हो जाता है।

भासपा पक्षपाती है उसकी आंतरिक शक्तियां जानरित हो उठती हैं। वह एक भावार्थ मारी के रूप में जाने बहती है धीर पति का उच्चार करती है।

इस भास्पर्क कथा-सूत्र को साधारणक विस्तृति एवं महत्ता प्रदान करके प्रमचान ने एक उत्कृष्ट उपन्यास का रूप दिया है।

६३ कर्मभूमि—प्रेमात्मन 'रंगभूमि' तथा 'आमाकल्प' के साथ-साथ जन्हीं के पुरक के रूप में 'कर्मभूमि' का नाम दिया जा सकता है—पुरक इस अर्थ में कि इन तीनों उपन्यासों में भारतीय समाज का जो विज्ञान बिज बीजा गया है उसे पूर्वोक्त प्रदान करने में 'कर्मभूमि' भी सहायक हुआ है।

सन् १९३३ में सत्याग्रह समर के पुनरारम्भ ने देश में जो परिस्थिति उत्पन्न कर दी उसीका वास्तविक रूप 'कर्मभूमि' में मिलता है। शासन-बंध के विभिन्न धर्मों का पठन सामान्य रूप में देश-भर में व्याप्त धर्मविकृता धीर अत्याचार भादि के विरुद्ध मेसक ने इसमें अपनी आवाज उठायी है। कथानक तथा पात्रों के जीवनवृत्तों के साथ-साथ इसमें बिजित बातावरण भी कम महत्त्व का नहीं है। अत्यन्त विज्ञान पटभूमि का उपबोध करने के कारण कथानक में तथा पात्रों के चरित्रों के क्रमिक विकास में थोड़ी-बहुत धिक्कता आयी है किन्तु इसी कारण से देश के तत्कालीन बातावरण को यथार्थ रूप में उपस्थित करने में मेसक को विशेष सफलता भी प्राप्त हुई है।

६४ गोदान—प्रेमचान की रचनात्मक प्रतिभा का चरमोत्कर्ष उनके अन्तिम उपन्यास 'गोदान' में द्रष्टव्य है। संप्रायोगिक धाग्रहों अपरीक्षित सिद्धान्तों तथा धर्म परीक्षित बाधों से अपने-आपको सम्बद्ध रखने के कारण उनके पूर्वनिश्चित उपन्यासों में जो विफलताएं या दुर्बलताएं प्रकट हुई थीं उन सबसे बहुत कुछ मुक्त होकर ये यहाँ जीवन-मान को स्पष्ट करनेवाली यथार्थवादी कला के राजपथ से प्रसरर होते चीखते हैं।

मारु के परस्पर बहुत कुछ असम्बद्ध धाम-जीवन तथा मगर-जीवन के विज्ञान बातावरण में एक से एक भास्पर्क पात्रों को बाकर प्रेमचान ने भारतीय जीवन के एक बहुत बड़े धरा को प्रत्यक्ष किया है।

जीवन के प्रमुख धरमार्गों की मिट्टी में मिलते देखकर भी निरन्तर जीवन का

भारत होने का प्रयत्न करते हुए और भारत में उस भार से ही सबकर सांघ छोड़ते हुए एक भारतीय रूपक होरी के जीवन पर आधारित यह कथा सचमुच एक महाकाव्य है। होरी तथा उनके परिवार के जीवन के साथ ग्राम तथा नगर के समाज के विविध स्तरों के बीसों व्यक्तियों को सजीव रूप में उपस्थित किया गया है। कथा-कथन की कुञ्जसत्ता चरित्र-चित्रण की सुचारुता समस्याओं के अध्ययन की सूक्ष्मता आदि प्रमत्त के जितने विविध गुण उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में प्रकट हो चुके थे वे इसमें अधिक बिखरे हुए रूप में प्रत्यक्ष हुए हैं। पटभूमि अधिक विस्तृत हो गयी है, मनोभावों का विश्लेषण अधिक गहरा हो गया है। जीवन की व्याख्या का दृष्टिकोण अधिक सन्तुलित हो गया है और इस तरह 'बोहान' यथार्थवाद की दृष्टि से उनके अन्य उपन्यासों में कोसों दूर आगे बढ़ गया है। प्रथम-प्रथम आदर्शों की हरियाँ मिले उपन्यास के नाम में पक्षार्थ करनेवाले प्रेमचन्द अपने जीवन के अन्तिम काल में लिखित इस उपन्यास में आदर्शों पर आसक्ति छोड़कर, जीवन को अधिक वैज्ञानिक दृष्टि से देखने लगे हैं। इसी-लिए वे 'बोहान' में जीवन का अधिक यथार्थ रूप कथा का अधिक सुष्ठु रूप तथा चिन्तन का अधिक प्रौढ़ रूप उपस्थित कर सके हैं।

उपन्यासकथा के पथ पर 'सेवासदन' से 'बोहान' तक की प्रेमचन्द की यात्रा सचमुच एक धानधार यात्रा है और इस यात्रा का कास हिन्दी उपन्यास के इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण काल है।

६५ यह सचमुच बड़े खेद की बात है कि हमारे इस उपन्यास-सम्राट के बीसवीं शती में ही रचित उपन्यासों के ठीक-ठीक रचनाकाल (अथवा प्रकाशन-काल) का निर्णय करना अब बहुत कठिन हो गया है। पृष्ठ १८-१९ पर की गई तालिका में सबभग आया दर्जन विद्वानों के सम्पी से प्रेमचन्द के उपन्यासों के प्रकाशन-काल दिये गये हैं। इनके आधार पर 'कर्मभूमि' एवं 'बोहान' के अतिरिक्त किसी उपन्यास के सम्बन्ध में किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचना अत्यन्त संभव नहीं है।

प्रेमचन्द की मुख्य प्रवृत्तियाँ

प्रेमचन्द विषय तथा अभिव्यञ्जन की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से बहुत आगे बढ़े थे। उपन्यास-क्षेत्र में प्रेमचन्द के पक्षार्थ करने तक का हमारा उपन्यास-साहित्य चिन्तनरहित काल्पनिक अवास्तविक रहस्यमय तथा विवैकहीन रहा है। पर प्रेमचन्द के काम में देश की सामाजिक जाति एवं राजनीतिक चेतना के कारण अबतक ऐसी हो गयी थी कि उस समय हमें अपने वास्तविक रूप से अलग करनेवाले अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का आभास देनेवाले जागरण के साहित्य की आवश्यकता हुई—ऐसे साहित्य की जो विचार में स्वतन्त्र हो चिन्तन में संतुलित हो जीवन की अन्तर्मुख शक्तियों के प्रति खल हो जीवन-वर्षा जनता की हीन दशा से निश्चित हो और सर्वोपरि भारत की भूक जनता के जीवन को ही प्रबलित करके उसकी आशाओं और अभिसाधनों को वाणी देनेवाला हो। और इन्हीं अपेक्षाओं को पूर्ति करते हुए उपन्यासकार प्रेमचन्द प्रत्यक्ष हुए, और उनकी महान जीन-यात्रा का आरम्भ हुआ।

प्रेमचन्द के उपन्यासों का प्रकाशन-काम—विभिन्न ग्रन्थों से

उपन्यास	विद्यमान उपन्यास की बातों की हिन्दी उपन्यास	Madan Gopal Premchand	हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य	जगन्नाथप्रसाद हिन्दी-गद्य साहित्य का विकास	सुधीरामजी गुप्त प्रेमचन्द की गोर्की	इस उप खंड प्रेमचन्द की कृतियों	प्रकाशन विधि की विधि
प्रेमा	उर्दू 'हम कुर्बान' १९५५ के पूर्व हिस्से— १९०५	१९४४ बाद में प्रकाशित	—	उर्दू—१९०४	—	बा. प्रकाश १९१९	—
वरदान	विशेष 'सेवासदन' के पूर्व प्रकाशित सेवासदन के बाद	पूर्व रूप 'प्रतापचन्द्र' १९१९ करवाने—	—	उर्दू 'जसबल' 'सिंह' १९१२ हिन्दी—	—	१९४५-६	—
सेवासदन	१९१५	—	—	१९१५	१९७७	—	१९१५
प्रेमाग्रम	१९२१	१९२२	१९२२	१९२१	१९२२	लिखित १९१५-१९ प्र १९२२	—

निर्माणा	कायाकल्प के बाद	—	१९२८	कायाकल्प के बाद	१९२३	१९२२ २३	१९२२
रजःश्रुति	१९२४ २३	१९२३	१९२४	प्रेमायाम के बाद	१९२४	१९२७-२८	१९२८
कायाकल्प	१९२४	१९२८	१९२३	रजःश्रुति के बाद	१९२८	—	१९२४
प्रतिज्ञा	प्रेमा का परिवर्तित रूप कायाकल्प के बाद	—	—	कायाकल्प के बाद	—	या प्रेमा १९ ६	१९२९
यवन	प्रतिज्ञा के बाद	पूर्वक कृपा १९ ४ के समय	—	प्रतिज्ञा के बाद	१९३	—	१९३१
कर्मश्रुति	१९३७ के बाद — मुद्रापास । समय १९२७ के बाद	१९३२	१९३२	गर्भ के बाद	१९३२	१९३२	१९३२
गोपन	—	१९३३	१९३३	कर्मश्रुति के बाद	१९३३	—	१९३३
मंगल-पूजा	—	—	—	—	—	—	—

उन्होंने चरित्र वातावरण दोनों उद्देश्य धारि के क्षेत्रों में मौलिक प्रवृत्तियों का परिचय दिया है इन्हींके उपन्यासों तक सीमित न थी परन्तु उपन्यास-साहित्य के लिए भी निर्धारक प्रेरणा सिद्ध हुई। उनकी ये मौलिक प्रवृत्तियाँ क्या हैं ?

६६ विषय : कल्पना से बचार्न की ओर—प्रेमचन्द की प्रथम प्रवृत्ति उपन्यास की स्वच्छन्द कल्पना के विभिन्न संसार से निकालकर बचार्न जीवन की ओर से जान की है। उनके लिए जीवन कोई खेल-समाधा न था अपितु गंभीर विषय था। उनके पूर्ववर्ती लेखकों ने जीवन को बिस्लेषणात्मक दृष्टि से नहीं देखा था। यद्यपि उससे जिनबाह्र कर सकते थे। पर प्रेमचन्द के लिए जीवन का प्रत्येक निमित्त जीवन का सण मर के लिए भी थे उसके प्रति निश्चिन्त नहीं रह पाये थे। ऐसा कसाकार स्वाभाविक रूप में ही वास्तविक जीवन की भार आहुति हो तो उसमें आश्चर्य की बात नहीं है।

६७ रोमांच से प्रश्नों की ओर—प्रेमचन्द के पहले समाज की समस्याओं की चर्चा करनेवाले उपन्यासों में भी रोमांचिक कल्पना का आश्रय था। रोमांच को उपन्यास का मुख्य विषय बनाना एक सिद्धांत-सा हो गया था। प्रेमचन्द के आगमन से इस सिद्धांत को बह्ना सपा। 'प्रेमा' से 'मंगलसूत्र' तक के उपन्यासों में प्रेमचन्द ने भारतीय सामाजिक जीवन की एक-एक समस्या को लेकर उसका विश्लेषण किया। 'प्रेमा' में विवाह-विवाह का 'सिवा-सदन' में बह्वेव और धनमेन विवाह के दुष्परिणामों का 'प्रेमाश्रम' में किसान-कमीनारों के पारस्परिक सवर्ष का 'रससुमि' में भारत के स्वातंत्र्य-समर और जन-जाहति का 'कामाक्ष्य' में हिन्दू-मुस्लिम समस्या का तथा 'निर्मला' 'प्रतिभा' और 'भवन' में भारतीय नारी की दिकट समस्याओं का प्रतिपादन करते हुए प्रेमचन्द ने अपने अंतिम पूर्ण उपन्यास 'मोहन' में भारतीय किसान की कष्ट कथा प्रस्तुत की। भारतीय जीवन का शायद ही कोई अंग उनकी दृष्टि से छूटा है। यद्यपि उनके उपन्यास भारतीय समाज के अध्ययन के लिए प्रायः पूर्ण और विशिष्ट माध्यम हैं।

६८ मानव जीवन का अध्ययन—प्रेमचन्द के पात्र भारतीय जनता की सांस्कृतिक विशेषताओं को रखते हुए अपने भारतीय हैं तो बुरी ओर साधारण मानवीय भावनाओं से परिपूर्ण मानव भी हैं। पारस्परिक सहानुभूति ईर्ष्या द्वेष प्रेम आदि मानव-मान के विरन्तन बुरों से युक्त उनके पात्र कभी-कभी विश्व-उपन्यासकारों के उत्कृष्ट पात्रों के समान सार्वभौमिक बन जाते हैं। 'मोहन' के पात्र सचमुच सजीव मनुष्य हैं।

६९ मनोविश्लेषण—प्रेमचन्द पात्रों के बाह्य क्रिया-कलापों के वर्तन-मात्र से संतुष्ट नहीं बीजते उनके आंतरिक भावों का भी अध्ययन करते हैं। यन्ने ही उनका मनोविश्लेषण प्रवृत्तिवाधियों के बिस्लेषण के समान सूक्ष्मातिशूक्ष्म भावों का विश्लेषण करनेवाला न हो और मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के बिस्लेषण के समान मानस की अटिल धारियों को सुलझानेवाला न हो तो भी उन सबसे अधिक पात्रों को मूल रूप लेकर पाठक के हृदय से मिला देनेवाला है। उनका मनोविज्ञान एक बिस्लेषण का नहीं जो अपने मौखिक सिद्धांतों से मनुष्य को नापता है बल्कि उस माता का स

हैं जो फायद और एडगर का अध्ययन किये बिना ही अपने बच्चे के प्रत्येक भाव-परि-
वर्तन का अर्थ धन्यी तरह समझ लेती हैं। प्रेमचन्द पाषों के मनोभावों को बुझि से ही
नहीं हृदय से भी समझते हैं। और इसीलिए उनके पात्र हृदय को प्रभावित करते हैं।

७० यथार्थवाद का प्रतिष्ठापन—माय प्रेमचन्द के आदर्शोंमुख यथार्थवाद
की खर्चा की जाती है और वे स्वयं आदर्शोंमुख यथार्थवाद का महत्त्व मानते भी हैं।^१
इसका अर्थ यही है कि वे जीवन के यथार्थ रूप को देखते हैं और उसे सुधारने का
प्रयत्न करते हैं। लेकिन सच्ची बात तो यह है कि उनका विकास निरन्तर यथार्थोंमुख
रहा और 'गोदान' तक आते-आते वे आदर्शवाद से बहुत कुछ मुक्त हो गये। आदर्शवाद
उनका बन्धन था जो उन्हें साहित्यिक पैतृक संपत्ति के रूप में प्राप्त हुआ था। पार-
स्परिक आदर्शवाद से वे एकदम मुक्त नहीं थे। पर निस्संदेह उन्होंने अपने बन्धनों को
एक-एक कर तोड़ फेंकने का प्रयत्न किया और इसमें वे बहुत कुछ सफल भी हुए।
प्रेमचन्द अपनी कला के चरमोत्कर्ष में यथार्थवादी पक्षिक हैं आदर्शवादी कम। कहा
जा सकता है कि 'प्रेमा' 'खेबासदान' आदि के परम्परा-विभू प्रेमचन्द सुधारवादी हैं
प्रेमात्मक 'रंभभूमि' 'कायाकल्प' और 'कर्मभूमि' के गांधीय प्रेमचन्द आदर्शोंमुख
यथार्थवादी हैं। बस्तुतः प्रेमचन्द्रीय प्रेमचन्द 'गोदान' में हैं और बहुत कुछ (पूर्वतया
नहीं^२) यथार्थवादी हैं। बिदेसी कलाकारों की तुलना में उनके यथार्थवाद को अपूर्ण
कहा जा सकता है पर उनकी परिस्थितियों में उनका महत्त्व अनन्यसाधारण है और
हिन्दी में यथार्थवाद के प्रतिष्ठापन का अर्थ उन्हींका है। परन्तु यथार्थवादी उपन्यास
कारों की भित्तियाँ प्रेमचन्द की नींव पर उठनी नहीं हैं।

७१ प्रगति और क्षमति—प्रेमचन्द के अधिकार उपन्यासों पर गांधीवाद
का प्रभाव है। इन्द्रात्मक मौलिकवाद और मार्क्स के धन्य सिद्धान्तों का प्रत्यक्ष प्रभाव
उनमें नमन्य है। इन कारकों से प्रेमचन्द को प्रगतिवादी या क्षमतिकारी कलाकार
मानने में आपत्ति हो सकती है। लेकिन 'प्रगतिवाद' के विद्यालय अर्थ को सें तो वे प्रगति
वादी ही हैं। जिस लेखक की कृतियों में भारतीय समाज की प्रत्येक अड़ी के
सोपों का विश्लेषण उनकी प्रतिदिन की समस्याओं का प्रतिपादन उनकी बलहीनताओं
और सम्भावनाओं का प्रदर्शन भारतीय संस्कृति का सही-सही मूल्यांकन और समाज
को उनकी असंगतियों से बचाकर स्वस्थ और गतिशील बनाने का सन्देश उरनम्य है
उसे प्रगतिशील मानने में क्या आपत्ति हो सकती है? अथवा समाज की विकासामुक्त
प्रवृत्तियों का विमर्शन ही प्रगतिशीलता का लक्षण है तो प्रेमचन्द का गांधीवाद प्रगति-
शीलता है क्योंकि प्रेमचन्द के उपन्यासों के समय में हमारे राष्ट्र में उबने लगे प्रग-
तिवादी भावों की भी। उसकी उपेक्षा करते तो प्रेमचन्द भारतीय समाज के विमर्श
विचारक न होते।

लेकिन अपने अन्तिम वर्षों में वे गांधीवाद और सुधारवाद पर विचार को रूँते

१ लेख 'उपन्यास 'साहित्य का दर्शन' में पृ २०।

२ देखें अनुच्छेद ७४ १९४४-४५।

श्रीर माक्सबाब और सार्वजनिक क्रांति पर उनकी भावना बढ़ने लगी। १९३३ से १९३६ तक के 'हंस' और 'जागरण' के चर्क इसके साक्षी हैं। उन्होंने निस्संकोच बोधना कर दी कि "वैयक्तिक सत्याग्रह का कार्यक्रम राष्ट्र को स्वीकार नहीं है।" गांधीजी की सशस्त्र सतों तथा साम्यवादी नीति का प्रतिपेक्ष करते हुए उन्होंने लिखा 'सत्याग्रही नीति से हमें अपने उद्देश्य-प्राप्ति की बाधा नहीं।' उन्होंने साम्यवाद का सबसे समर्थन किया।^१ मजदूरों और किसानों की समस्या के सम्बन्ध में उनके खम्ब हैं 'जब तक साम्यवाद पर व्यक्तिगत अधिकार खड़ा तब तक मानव-समाज का उद्धार नहीं हो सकता। मजदूरों का काम बढ़ाइये, जमींदारों और पूँजीवादियों के अधिकार बढ़ाइये, किसानों को गुबारा दीजिये, मजदूरों और किसानों के स्वार्थों को बढ़ाइये, शिक्षा का मूल्य बढ़ाइये इस तरह के बाहे जिसने सुधार धाप करें लेकिन यह भी नहीं शीवार इस दीपदाप से नहीं रह सकती। इसे तबे सिरे से गिराकर उठाना होगा।'^२ प्रेमचन्द के उपन्यासों के ही सत्याग्रह समझौते और अनपरिवर्तन के सिद्धान्तों के विरोधी ये खम्ब उनके मानसिक अनुसन्धान का नहीं मानसिक विकास का परिचय देते हैं। अपने इस मानसिक परिवर्तन के बाद प्रेमचन्द ने अपने एक ही उपन्यास 'मोक्षान' लिखा।^३ उपसृष्ट सृष्टों के प्रकाश में देखा जाय तो 'मोक्षान' में सुधारवाद का जो प्रभाव है वह निमज्जित स्पष्ट होगा। पहले के उपन्यासों में उन्होंने गांधीवादी सुधारवाद का भाव्य लेकर यकायकाव और अन्तिम-भाव को किरकिरा कर दिया। हंसराज राखर ने इसे प्रेमचन्द की कमबोरी माना है।^४ पर वस्तुतः इसका कारण प्रेमचन्द का गांधीवाद से प्रभावित राजनीतिक दृष्टिकोण का यकायक चित्र उठारने का प्रयत्न है। लेकिन जब १९३२-३३ की राजनीतिक घटनाओं ने गांधीवाद से उनकी भावना हटा दी तो उनके साहित्य का स्वस्व भी बलव गया। उनका धार्य कुछ भी रहा हो पर वह निश्चित है कि हिन्दी साहित्य में प्रथम प्रथम देश के वर्ग-संघर्ष का चित्रलेख करनेवाले प्रेमचन्द ही थे और यह चित्रलेख उत्तरोत्तर कलात्मक होना पड़ा। इस दृष्टि से प्रेमचन्द हमारे प्रथम प्रगतिशील उपन्यासकार हैं और धायव अन्तिम भी क्योंकि उस परम्परा में इतना सबल कोई परवर्ती लेखक नहीं हुआ है।

७२ जनक सूर्य की साम्यवाद—मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखनेवाले हिन्दी के प्रथम कलाकार प्रेमचन्द हैं। उनके पहले किसी उपन्यासकार ने वैज्ञानिक दृष्टि से

१ जागरण ७ जनवरी १९३३ सम्पादकीय।

२ वही सम्पादकीय।

३ देखें जागरण २८ जनवरी १९३४ का सम्पादकीय।

४ जागरण २७ फरवरी १९३३ सम्पादकीय।

५ हमें बलवान समझ है कि मजदूर-संघ 'मोक्षान' के पूर्व ही लिखा गया। किन्तु विचार शैली एवं गठन की दृष्टि से हमें अभी अनुमान करना है कि 'संभव' उन्होंने बहुत पहले ही मजदूर-संघ की रचना की हो पर किसी कारण से वह अधूरा पड़ा रह गया हो।

६ राखर : प्रेमचन्द जीवन और कविता पृ. १६९-१७३।

जीवन का मुख्य निर्धारित नहीं किया। जीवन की कुत्सित वृत्तियों की घासोपना और भ्रष्टाचार एवं घातघर्मजनक सम्मनों के वर्तुन से भाग्य बहाकर जीवन को समग्र रूप में देखने का प्रयत्न नहीं किया। पर प्रेमचन्द ने मानव को मानव के रूप में देखा उसके कोमल रूप के अन्दर के पशु को पहचाना उसके हाड़-मांस के अन्दर स्थित हृदय नामक कोमल वस्तु का परिचय पाया उसकी भीमस्तुता से बूझा करते हुए भी उसकी बलहीनता पर सहायसूचि विधायी और उसकी दिम्पता की उपासना की। इस तरह मनुष्य को समझने में उनके परवर्ती भेषक भी उत्तम सफल नहीं हुए।

७३ शिष्य-विधान—श्रेयसचरण के उपन्यासों की धीर एक मौलिक विशेषता उनका शिष्य-विधान या टेक्नीक है। भावों की धीर समीक्षजन पर ध्यान बिदे बिना विवरणात्मक रीति से कथा कहने की पुरानी परम्परा को छोड़कर, उन्होंने विश्लेषणात्मक धीर वैज्ञानिक ढंग को अपनाया। विषय-विकास की रीति भावों का प्रत्यक्षीकरण भावों की सफल व्यञ्जना भाषा की स्वाभाविकता आदि पर ध्यान रखते हुए उन्होंने बिलकुल एक नयी टेक्नीक को अपनाया। इससे सम्बन्धित विभिन्न चीजों की अन्य अभ्यासों में वहाँ की जायकी अतः यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होया ।

घटना-वाहुत्व है जिसके कारण मनोभूमि अधिक स्पष्ट नहीं होती। पार्श्वों के मानसिक प्रवाह के पर्याप्त प्रवर्धन के लिए तथा उनके वैचारिक दृष्टियों के समुचित प्रकटन के लिए ही नहीं पार्श्वों को पाठकों के निकट लाकर दोनों में वैचारिक साधर्म्य स्थापित करने के लिए भी घटनाघर्षों का निर्बन्धन अत्यन्त आवश्यक होता है। अतः, ग्राम्य जीवन आदि के उत्कृष्ट उपन्यासों में घटनाघर्षों की परिमिति ही पार्श्वों की मनोभूमि के अगाध अध्ययन में सहायक हुई है। जेम्स बायस के 'यूसीसेस' में यद्यपि घटनाघर्षों की बहुमता है तो भी समस्त घटनाएं एक ही व्यक्ति को केन्द्र बनाकर घटित होती हैं। ये घटनाएं अपने-आपमें उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं, बितने कि पार्श्वों पर पड़ने वाले उनके प्रभाव। अतः घटना से यह स्पष्ट होता है कि किसी विशेष परिस्थिति में व्यक्ति की मानसिक प्रतिक्रिया कैसी होती है। प्रेमचन्द के उपन्यास में घटना-वाहुत्व है पर वह 'यूसीसेस' का सा नहीं। 'रंजुमि' 'कायाकल्प' 'कर्मभूमि' और 'गबन' (केवल अंतिम भाग में) में यह दोष कुछ अधिक है। जब प्रेमचन्द घटना पर घटना का विवरण करते करते हैं, तब उन्हें व्यक्ति के अंतर्गतत्वं के अज्ञात स्वर्णों का आविष्कार करने का प्रयत्न नहीं मिलता। पर वहाँ घटनाघर्षों की अपेक्षाकृत कमी है जैसे 'निर्मा' में वहाँ पार्श्वों के अंतर्गतत्वं अधिक व्यक्त हुए हैं। वहाँ इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि अगर सम्भव-बहुमता के कारण प्रेमचन्द का व्यक्ति का अध्ययन केवल उपरिचलीन रह गया है, तो उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि अधिक व्यक्त भी हुई है। और वस्तुतः प्रेमचन्द का व्यय भी हमारे समाज का अध्ययन या व्यक्तियों की सक्रम मानसिक प्रक्रियाओं एवं अन्तर्द्वन्द्वों का विश्लेषण नहीं।

७६. स्वानुभूत वर्णन का अभाव—आचार्य मन्त्रमुहारे बाबुदेवी के मत में प्रेमचन्द का कोई स्वतंत्र स्वानुभूत वर्णन नहीं है। "कल्पना के अभाव के साथ प्रेमचन्दजी में तीव्र बौद्धिक दृष्टि और उसके फलस्वरूप निर्माणा होनेवाले व्यवस्थित जीवन-वर्णन का भी अभाव है।" यद्यपि प्रेमचन्द ने जीवन का बहुत ही निस्वस्त रूप उपस्थित किया तो भी वे उसकी गम्भीर व्याख्या नहीं कर सके। उन्होंने जीवन के कर्मभूमि सत्यों और विविध नैसर्गिक प्रवृत्तियों की मौलिक प्रेरणाओं की खोज नहीं की। उनके आदर्श भी ग्राम्य बौद्धिक चिंतन से रहित और धर्मशास्त्रिक होने से अप्रायोगिक हैं। जिन-जिन उपन्यासों में उन्होंने आदर्शों की स्थापना की है उनके आदर्श उस आदर्श के आदर्श के समान हैं जो बर्म-पहेली (crossword puzzle) का प्रथम पुरस्कार जीतने और उस बात से अपने घर की आर्थिक समस्याओं को सुलझाने का गिरतार प्रयत्न करता हो।

७७. बौद्धिकता की कमी—समस्याओं से जलभरे समय मेघदूत का बौद्धिकता से ही अधिक काम लेना पड़ता है। भावुकता से नहीं। लेकिन प्रेमचन्द कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक भावुक हो गये हैं। उनके अध्यात्मिक आदर्शों का कारण नहीं ज्ञात होता है। शायद उनकी अपार सहृदयता और मानव के प्रति असीम सहानुभूति ही इसके कारण हों। सामाजिक रुढ़ियों और अत्याचारों से संतप्त पात्रों का परिभाषण

करने की प्राप्ति में वे जो बने-बनाये धारार्थ उपस्थित करते हैं वे धारमय धर्म्यावहारिक हैं। समाज द्वारा परित्यक्त सुमन को पतित बच्चा में छोड़ देता उनके कोमल हृदय को भ्रष्ट हो जाता। अतः उन्होंने सेवा-सदन की स्थापना की। नित्य की इच्छिता तथा बर्षों धारों के भ्रष्ट व्यवहारों को सहन करनेवाले कृपकों की ओर दुर्बला से उनका हृदय विभक्त पड़ा। अतः उनका प्रेमचकर (जो जमींदारी बर्ष का है) अमेरिका से (1) साम्यवाद की भावना लिये लौटता है और अपना जमींदारी का हक छोड़ देता है। विधवाओं के लिए प्रेमचन्द के हृदय में सदा एक कोमल भाग था अतः उन्होंने 'प्रतिष्ठा' में विधवाश्रम की स्थापना का प्रस्ताव उपस्थित किया। अन्तमें विवाह से असन्तुष्ट होकर प्रेमचन्द ने एक और निर्मला की कल्पना कलापी उपस्थित की जो दूसरी ओर इस समस्या को मुक्त करने के लिए दृष्टि लिये बिना विवाह करनेवाले एक सहृदय युवक का भी प्रतिष्ठापन किया। 'गोदान' के पूर्व के उपन्यासों में प्रेमचन्द के ऐसे-ऐसे जो धारार्थ हैं वे उनकी सहृदय भावना का तो परिचय देते हैं, पर उनके बौद्धिक चिंतन का नहीं। हमारे समाज की संकटों बर्षों से कड़मूस से समस्याएं कुछ सेवा-सदनों और विधवा-आश्रमों की स्थापना से या ऐसे धर्म्य सत्ते मुक्तों से सुलझनेवासी नहीं हैं। हमारी संस्कृति (उसकी मनारों और कुटुम्बों-सहित) की भीम जितनी बड़ है उतनी ही बड़ इन सामाजिक अनाचारों और धर्माचारों की भी है। इस बात को प्रेमचन्द 'गोदान' लिखने के पूर्व नहीं समझ सके। इन सबके सुधारवादी धारार्थ प्रेमचन्द की बौद्धिक धारमयता के परिचय देते हैं।

७८ अभिव्यक्ति की सीमा—प्रेमचन्द का अभिव्यक्ति सीमा-सा है। उन्होंने व्यक्तता की चरम शक्तियों का उपयोग नहीं किया है। जब आचार्य बन्धुनारे बाजपेयी ने छत्र भोली के साहित्य में बाणी के भीम रहने की धारमयता का प्रेमचन्द ने निवेदन किया 'जहां बाणी भीम रहती है वह साहित्य है? वह साहित्य नहीं गुणपन है।' इन शब्दों में प्रेमचन्द की बहिरीनता स्पष्ट होती है। उक्त अभिव्यक्ति में शब्दों से अधिक भाव होता है और भाव का सुझाव नहीं मिलता। व्यक्तित्व किताबों में प्रेमचन्द का अभिव्यक्ति इस सीमा तक नहीं बढ़ता है। उन हमें यह मानना पड़ेगा कि इस परिमिति के कारण वे अपने ही मुक्त चिंतन का विवेचन न कर सके हों किन्तु अपार सरमय का बीड़ा धरने पर विवश होकर कर सके हैं और पाठकों को मुग्ध कर सके हैं।

हिन्दी साहित्य की उत्तमगीत परित्यक्तों को देकर हमें यह मानना पड़ेगा बाणी इन कमियों को प्रेमचन्द के शब्दों के अर्थ में नहीं समझेंगे बल्कि हमें यह चाहिए। वे कमियां न होतीं तो वे अधिक दृष्टि देनेवाले हुए होते। वे हमें यह के होते हैं प्रेमचन्द हमारे सर्वोत्तम लेखकों में हैं।

प्रेमचन्द-कामीन अन्य उपन्यासकारों का अनुमान

प्रेमचन्द-कामीन के अन्य उपन्यासकारों में अनुमान की अनुमान है कि

मिलती है। विदेशी उपन्यासों के प्रभाव एवं अपने सुजनपात्र के कारण प्रेमचन्द कक्षा में जो सीमन्त ला पाये वे बहु धन्य किसी लेखक की प्रतिभा से प्राप्य नहीं जा। अधिकतर लेखक विषय या शैली में किसी तरह की सुतन्त्रता की स्थापना नहीं कर सके। कौशिक प्रसाद चतुरसेन जैसे महारथी भी न अपनी किसी स्वस्थ परम्परा को नीब डाल सके न प्रेमचन्द की प्रवृत्तियों को अपनाकर उनमें प्रगति कर सके। प्रेमचन्द के उपन्यासों की तुलना में देखे जायें तो उस काम के अन्य उपन्यासकारों के उपन्यास विशेष महत्त्व के नहीं हैं। फिर भी उनकी प्रमुख प्रवृत्तियों का संक्षिप्त अध्ययन यहाँ प्रयुक्त न होगा।

७२ बासुकी तिलिस्सी और देवारी—‘चन्द्रकाणा’ एवं ‘मृतनाथ’ की परम्परा प्रेमचन्द-काल में भी चलती रही। गोपालचम महमरी के अनेक बासुकी उपन्यास प्रकाशित हुए, जिनकी संख्या को देखते हुए समता है कि महमरीजी ने कई उपन्यास धन्यों से लिखाकर अपने नाम से प्रकाशित किये होंगे। इन उपन्यासों में रोमान्टिक उपन्यासों की भाँति घटना-वक्र की जटिलता है। और एक उल्लेखनीय बात यह है कि इन बासुकी उपन्यासों में भी कथानक प्रायः एक या अधिक प्रवृत्तियों के चारों ओर चहुँप काटते रहते हैं। चोरी डाका हत्या आदि के होने पर भी इनमें बासुस का विशेष महत्त्व नहीं रहता क्योंकि इनमें धर्मिक होम्स अपना सेक्स्टन ब्लेक के समान बुद्धि के बल पर काम करनेवाले बासुस नहीं मिलते। प्रायः छिपकर कुछ बातचीत सुनने से^१ या रहस्यमय षिष्टी डामरी आदि के प्राप्य होने से रहस्य खुल जाते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि चोर या हत्यारे बासुस के लिए प्रासङ्गिक सभी सूचनाएँ लिखकर संवार रखते हैं।^२

७० रोमान्टिक कल्पना—इस युग के उपन्यासों में सबसे अधिक प्रवृत्ति रोमान्टिक कल्पना की है। १८९ ई. में किशोरीसाह गोस्वामी ने उपन्यास के सम्बन्ध में लिखा था इसकी रचना उत्तरोत्तर आश्चर्यजनक एवं कुछ खिरी हुई बनना क्रमशः समाप्ति में स्फुटित हो।^३ प्रेमचन्द-कालीन धन्य लेखकों के सामान्य उपन्यासों में भी ‘रहस्य’ और आश्चर्यपूर्ण सम्भव काफी हैं। चतुरसेन के ‘हृदय की परछाई’ (१९१८) ‘अभिचार’ (१९२४) ‘हृदय की व्यास’ (१९३३) और अमर अभिभाषा’ (१९३३) उषा का ‘चन्द हसीनों के लघुव’ (१९२७) निराला के ‘असक्त’ (१९३३) ‘मिलन’ (१९३६) मगनजीप्रसाद नाजपेयी के ‘भीठी घुटकी’ (१९२८) ‘अनाथ पत्नी’ (१९२८) ‘मुरकान’ (१९२९—यही १९३२ में ‘आयसवी’ नाम से प्रकाशित हुआ) और ‘अविद्या की साजना’ (१९३६) प्रसाद के ‘अकाल’ (१९२९) और ‘तिलिस्सी’ (१९३४) आदि में समाज की यथार्थ समस्याओं के साथ स्पर्धिततावादी कल्पनापूर्ण कल्पनाओं का सम्बन्ध है। समस्याएँ प्रायः विषया बात-विबाह सतीत्य-भय

१. देखें महमरी का ‘मछो-पछो’ पृ. २४-२५।

२. जयन्ता में कल ठिठोर के मन्त्र से उसके सभी कर्मों का लेख मिल जाता है।

३. प्रवृत्ति की परिचय उपोद्घात पृ. २।

प्रेम में बाधा धारि से सम्बन्धित हैं। उपादेयी के 'पिया' (१९१७) और कृत्यावनमात
बर्मा के 'तपन' (१९२९) 'प्रेम की गैट' (१९३१) और 'कुण्डलीचक्र' (१९३२) धारि
में रोमाञ्च कुछ नये ढंग में धारा है।

८१ सामाजिक आलोचना—उपर्युक्त सभी उपन्यासों में समाज की धारि
बना बोझो-बहुत मिमटी है। 'उग्र' के 'बुधुषा की बेटी' (१९२८) और 'धरणी' में
धारि समाज की दुर्गुणों की आलोचना है। प्रसादजी ने बर्म धारि धारि के नाम
पर धर्मनैतिक आलोचकों की निन्दा करके समाज के लोचने धारि की निरर्थकता
दिखायी। बहुरसेन ने भी उग्र के समान तीव्रता के साथ धारि की निन्दा की।
धर्म उपन्यासकारों की आलोचना में धारि तीव्रता नहीं है। इनमें किसी भी
उपन्यास में धर्मधारी की निरर्थकता और कर्मकर्मता से सामाजिक समस्याओं का
विश्लेषण नहीं किया गया है। आलोचना को कर्म के स्वाभाविक विकास में धारि
करने और पाठक के धारि को ब्यापक धारि-धारि धारि के धारि तक पहुँचाने
के लक्ष्य लक्ष्य आलोचनात्मक धारि से उत्पन्न की गयी है।

८२ धारिधारी, धारिधारी धारिधारी—ये सब उपन्यास धारि धारि धारि
धर्म में धारिधारी का धारि धारि है। धारिधारी भी धारि धारिधारी धारि धारिधारी
की धारि तक पहुँच जाता है। सभीमें कुछ कुछ धारि के साथ एक या धारि
धारि को धारि धारिधारी का धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
के 'धारि-धारि' (१९३३) 'धारिधारी धारि' (१९३४) 'धारिधारी धारि' (१९३५)
धारि धारिधारी धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
में धारिधारी धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि

धारिधारी की धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
धारिधारी के धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
धारिधारी धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
धारिधारी धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
धारिधारी धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
धारिधारी धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि

१ को धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
में धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
धारिधारी धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
धारिधारी धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
धारिधारी धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि
धारिधारी धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि धारि

ईश्वर के समान 'निरंकुश स्वच्छन्द' सुख करना चाहते हैं।^१ लेखक की यह निरंकुशता तत्कालीन सभी लेखकों की कल्पना आसोचना और धार्य में मिलती है।

८३ फार्मुला—लेखकों के धार्यों के कारण सभी उपन्यास एक निश्चित फार्मुला के अनुसार चलते हैं। सुखान्त उपन्यासों में फार्मुला का रूप प्रायः यह होता है।

$$\text{सत्यान} + \left\{ \begin{array}{l} \text{कष्ट} \\ \text{विघ्न} \end{array} \right\} \rightarrow \text{विवाह} + \text{सुख}$$

$$\text{दुःखान्त} + \left\{ \begin{array}{l} \text{सुख} \\ \text{विवाह} \end{array} \right\} \rightarrow \text{दुःख} + \text{मरण या कायवास}$$

दुःखान्त उपन्यासों में नायक या नायिका परिस्थितियों की विचलता से नहीं अपने ही धार्य त्राण और उत्सर्ग से शोकात्मक अन्त का बरख करते हैं। 'मुस्कान' की ललितता अपनी जान देकर प्रियतम की प्रेमिका को बचाती है। मिथारिणी की यथोक्त प्रेमी का अन्य स्त्री से विवाह हो जाने पर अपनी करीबों की सम्पत्ति दान में देकर मिथारिणी बन जाती है। पिदा की पपीहण का आत्मोत्सर्ग और नीलिमा की आत्महत्या भी ऐसे ही उदाहरण हैं।

८४ वस्तु विन्यास—इन सब उपन्यासों में वस्तु-विन्यास साधारण है। प्रायः सभीमें वैचित्र्यपूर्ण कथाएँ कही गयी हैं। कथानक के वैचित्र्य के कारण और बटना बाहुल्य के कारण भाव-विकास का अवसर ही नहीं आया है। 'कंकाल' इसका प्रष्ट उदाहरण है। इस काल में 'विमलेखा' (१९१४) ही एक ऐसा उपन्यास है जिसमें वस्तु विन्यास का सौष्ठव और भाव-विकास का सुचारु रूप मिलते हैं। अपनी आर्थनिकता और प्रभावपूर्ण शैली सिने यह तत्कालीन उपन्यासों में अकेला खड़ा है।

८५ चरित्र और वातावरण का अभाव—कथानक के प्रति अनुचित मोड़ के कारण और अपने धार्यों के प्रतिपादन के साधन के कारण प्रेमचन्द के अतिरिक्त अन्य समकालीन उपन्यासकार न कोई किसी वास्तविक पात्र की सृष्टि कर सके न अपने वातावरण की। विशेषकर सामाजिक उपन्यासों के पात्र पुछ-खोपों के नैसर्गिक सम्मिश्रण से युक्त न होकर, किसी सिद्धान्त के अनुसार निर्मित होने के कारण अपनी अनुभूतियों को पाठकों के हृदय तक नहीं पहुँचा सकते। पात्रों के अन्तः स्त्रों के निस्तेपण की ओर लेखकों का ध्यान गया ही नहीं बीकता। उनकी दृष्टि बटनाचक्र को घाने बढ़ाने में ही केन्द्रित रही। इसका एक फल यह हुआ कि कथानक में जुत्नी भा गयी। पर साथ यह हानि भी हुई कि पात्रों और वातावरण के यथार्थ रूप के अभाव में प्रभाव कम हो गया।^२

८६ विचार से अधिक बिकार—काव्य में बिकार को विचार से अधिक महत्व दिया जा सकता है। पर उपन्यास में दोनों का समुल्लेख अनिवार्य है। यद्यपि

१ पटिया की साजना अपनी मात ५ २।

२. चरित्र-विशेष की विस्तृत चर्चा अन्यत्र की जाती है।

की ओर भाते हैं, पर न जाने क्यों क्षीय ही उसे भुसकर बटनाघों की गारा में बह जाते हैं। विद्यारामसरण गुप्त के 'गोब' के सोमाराम में सेलक के मार्ग के साथ साथ हृदय की कोमल भावनाएँ भी दिखायी पड़ती हैं।

८८ यथार्थवाद—यथार्थवाद और उससे सम्बन्धित विषयों के विस्तृत विवेचन के लिए धन्य एक अध्याय ही रखा गया है। यद्यपि यहाँ केवल दो-एक बातों का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। इसमें उन्हेह महीं कि प्रेमचन्द-काल में हिन्दी उपन्यास में यथार्थवाद की स्थापना हुई और उसका काफी विकास हुआ लेकिन इस काल में पूर्णतया यथार्थवादी उपन्यास एक भी नहीं लिखा गया। अस्वाभाविक बटनाएँ, कहीं कहीं रोमांस सेलक के छिछावों और उपदेशों का निरन्तर प्रदर्शन आदि के कारण यथार्थवाद पूर्ण विकास नहीं प्राप्त कर सका।

इस तरह हम देखते हैं कि प्रेमचन्द-काल में हिन्दी उपन्यास को कई उपलब्धियाँ हुईं, तो कई प्रवृत्तियाँ अधिकृत भी रह गयीं। निश्चित ही वह तीव्र विकास का युग था पर इसके पश्चात् का विकास अधिक धीमा रहा है।

५

हिन्दी उपन्यास का विकास

(१) प्रेमचन्द के पश्चात् अनुप्रास का विकास

सन् १९१६ से आज तक का काल हिन्दी उपन्यास के सर्वांगीण विकास का युग है। यद्यपि हमारा उपन्यास-साहित्य इस युग में अत्यधिक प्रवृत्ति के प्रीकृत स्वल्प की प्राप्ति नहीं कर सका तो भी उसकी वैविध्यपूर्ण उपलब्धियों का निवेध नहीं किया जा सकता है। हो सकता है सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन के विभिन्न अंगों का विस्तार करते हुए और विषयानुसार नयी-नयी शैलियों को अपनाते हुए नये-नये क्षेत्रों का आविष्कार करनेवाले हमारे सेलक जीवन के अज्ञात वनाम्बरों के निरूपण रूपायों का सम्मान करते हुए कई बार झूले-मटके हों और नये-नये पथों से प्रयाण करते हुए ठोकर खाकर निरपेक्ष हों तो भी उनके साहसपूर्ण प्रयत्न और विभिन्न बड़े महत्त्व के विषय हैं।

सन् १९१५ से १९४ तक की प्रवृत्तियाँ

८९ १९१६ में हिन्दी का प्रीकृत सामाजिक उपन्यास 'बोधान' प्रकाशित हुआ। इसके पहले ही १९१५ में बीनेन्द्र का प्रसिद्ध उपन्यास 'सुनीता' एक नयी प्रवृत्ति का उद्घाटन कर हुआ था। प्रेमचन्द ने बाह्य जनत् को अधिक महत्त्व देकर मनुष्य के सामाजिक संबंधों का कम दिखाया- 'सुनीता' से लेकर मनुष्य के अन्तर्गत के विस्तार को उपन्यास में स्थान मिला।

प्रेमचन्द के तुरन्त पश्चात् उनकी प्रवृत्ति परम्परा में विविधता आयी। मोक्ष परवर्ती उपन्यासकारों का मार्गदर्शक नहीं बन सका। प्रेमचन्द ने अपने जीवन के वास्तविक अंगों के निरन्तर अध्ययन और अनुभव के कारण जन-जीवन का वास्तविक

रूप समझने की जो क्षमता प्राप्त की थी वह परवर्ती उपन्यासकारों में नहीं थी। इसीलिए हम देखते हैं कि यद्यपि १९३१ से १९४० तक के पाँच वर्षों के प्रायः सभी उपन्यास सामाजिक धर्मवा राजनीतिक विषयों पर लिखे गये हैं तो भी वे प्रेमचन्द की परम्परा के विकास का परिचय नहीं देते। लेकिन उनमें अन्तर्निरीक्षण की प्रवृत्ति बढ़ती गयी। सामाजिक कुरीतियों और उच्चन्य विषयताओं के पीछे मनुष्य की जो बुद्धिमत्ता काम कर रही है उसकी ओर लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। भगवतीचरण वर्मा का 'तीन वर्ष' भगवतीप्रसाद वाजपेयी के 'पतितों की साधना' (१९३६) 'विपासा' (१९३७) और 'दो बहनें' (१९४०) जेनेन्द्र का 'अस्थायी' (१९३९) सिधार्थमहाराज गुप्त का 'आरी' उपाधेयी मिश्रा का 'वचन का मोल' (१९३६) आदि में स्त्री-मुद्र-संबंध के विविध पहलुओं का सामाजिक तथा मानसिक वातावरण में बिस्लेषण किया गया है। लेकिन इनमें लेखकों को विशेष सफलता नहीं मिली है, शायद इस तरह का प्रथम प्रयास होने के कारण। इनमें न कुहल-जीवन की विविध समस्याओं का निरूपण है और न गरीब-जीवन का गहरा अध्ययन। केवल कुछ समस्याओं की ऊपरी सतहों का स्पर्श किया गया है।

इन पाँच-छः वर्षों में और कोई विशेष सम्मेलनीय प्रवृत्ति नहीं हुई। कांग्रेस के शासन ग्रहण और त्याग के पश्चात् से द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ तक की भारत की राष्ट्रीय उत्थान-मुक्त कर्म महत्त्व की नहीं है। लेकिन इस समय राष्ट्रीय समस्याओं पर केवल दो-तीन साधारण खेती के उपन्यास ही लिखे गये। राजिकारमणप्रसाद सिंह के 'राम-खीम' (१९३६) में हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर और 'बांसी टोपी' (१९३८) में अहिंसात्मक प्रति पर प्रकाश डाला गया है।

सन् १९४० के पश्चात् की प्रवृत्तियाँ

सन् १९४० से लेकर हिन्दी में उपन्यासों की जो बाढ़-सी आयी वह विषय और अधिष्ठातृत्व में नयी-नयी आरंभ लगी। पुराने लेखकों ने अधिक प्रीति प्राप्त की और कई नये लेखक अपनी प्रतिभा लिये सामने आये। स्पष्ट विवेकताएँ और निश्चित आराधनाएँ लिये कई आरंभ निकल पड़ीं।

६० अन्तिमार्थी उपन्यास—एक नवीन आराधनावादी उपन्यासों की है जिसका सूत्रपात मरुपास ने किया। मरुपास का जीवन ही प्रतिपूरण या और जिस समय उनके अधिकार उपन्यास लिखे गये वह समय भी भारतीय इतिहास में महान आन्दोलन का था। मरुपास के 'बाबा कॉमरेड' (१९४१) 'देखरोही' (१९४३) और 'पाटी कॉमरेड' (१९४६) आतिशारी व्यक्तियों के व्यक्तित्व और जीवन से संबंधित हैं। लेकिन इनमें भारत के विकास राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास बुझना व्यर्थ है। कथानक कहीं-कहीं यमार्थ के ठोस घरातल को छोड़कर रोमान्स के बायबिक वातावरण में बसा जाता है। धर्म का 'बढ़ती बुद्धि' भी इसी खेती का उपन्यास है, जिसमें मोहन नामक एक युवक के प्रति भाव और सहज रूप में उत्पन्न प्रेम-भाव का संबंध दिखाया गया है। इलाहाबाद के 'निर्वासित' में और जेनेन्द्र के 'सुतीठा' में आतिशारी व्यक्तित्व का

उत्सेह-भाव है। वस्तुतः उनमें किसी तरह की छांति भावना का विकास नहीं किया गया है। भारत की राजनीतिक दशाओं का स्वल्प विज्ञानेवासे उपन्यासों में भगवतीचरण वर्मा का 'टेडे-मेडे रास्ते' (१९४६) प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'व्यासिध' (१९४८) मन्नन का 'इनसान' (१९६१) मुख्तार का 'स्वाधीनता के पक्ष पर' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

६१ सामाजिक समस्यायुक्त उपन्यास—समाज के विविध पहलुओं से सम्बन्धित उपन्यासों की दो श्रेणियाँ हैं। प्रथम श्रेणी के उपन्यासों में लेखकों का दृष्टिकोण समस्या-विश्लेषण का है। दूसरी श्रेणी में अधिक यथार्थवादी दृष्टि से समाज के वास्तविक रूप को देखने का प्रयास किया गया है। इनमें भी समस्याओं का विश्लेषण हुआ है पर ये प्रथम श्रेणी के उपन्यासों की भाँति किसी एक समस्या के ही आधार पर नहीं लिखे गये हैं।

समस्या-आधारित उपन्यासों में पहले के समान भारी ही सबसे बड़ा धीर मुख्तार हैं। भगवतीप्रसाद माजपैयी ने 'निर्मल' (१९४१) में वास्तव्य धिमा के कारण युवक-युवतियों में भावनेवासे यौन आकर्षण की विषमताओं को दिखाया। किन्तु ये इस जटिल समस्या का मनोवैज्ञानिक आधार पर विश्लेषण नहीं कर सके। 'अचल मेरा कोई' (१९४८) 'नये मोड़' (१९५३) आदि में स्त्री की वैयक्तिक स्वतन्त्रता के परिणामों और उसके प्रति पुरुष के दृष्टिकोण को दिखाया गया है। 'बुलाहों का देवता' और 'छट के बंजन' (१९५३) में ये ही पुरानी वैवाहिक समस्याएँ हैं। 'छट के बंजन' को भावे दर्जन सड़कियों के वैवाहिक जीवन की सीमांकाओं तथा कई सनसनीधर घटनाओं से बोधित बनाया गया है। चतुरसेन का 'अपरजिता' सामाजिक बचन और पति के अत्याचारों के विरुद्ध सत्याग्रह करनेवाली एक युवती की कथा है जिसमें यथार्थ से बड़ कल्पना अधिक है। बीनेत्र के अन्तिम तीन उपन्यास 'सुखसा' (१९५२) 'विक्टर' (१९५२) और 'अपरीत' (१९५३) में भी प्रेम की समस्याओं की व्याख्या है पर उनका दृष्टिकोण सामाजिक से अधिक मनोवैज्ञानिक है। 'आहिरी बाब' (१९५३) में अरुण पुष्ट और सट्टेबाबी में विनष्ट होनेवासे एक व्यक्ति का क्रमिक पतन दिखाया गया है। उपर्युक्त सभी उपन्यासों में स्वच्छन्दता की प्रकृति बोझी-बहुल मिलती है। अस्वस्थ और भ्रष्ट-धारण घटनाओं के कारण ये सब रोचक हो गये हैं पर उनमें जीवन के कठोर पक्षों का विवक्षित रूप मिलेगा यह संदिग्ध है।

६२ सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास—सामाजिक उपन्यासों की दूसरी श्रेणी में ऐसे उपन्यास आते हैं, जो समाज के एक या अनेक पक्षों का यथार्थवादी दृष्टि से मूर्खांकन करते हैं। इनमें लेखक किसी विशेष समस्या की ओर संकेत नहीं करते उनको सुझावों का प्रयत्न करना आवश्यक नहीं समझते। निरपेक्ष भाव से समाज का निरीक्षण करना और उसे समझना ही उनका ध्येय है। प्रतिपाद्य विषय और कथा की दृष्टि से ये उपन्यास सबसे महत्त्वपूर्ण हैं और इनकी संभावनाएँ अधिक हैं। १९४ के पश्चात् के पर्यवसान में निकसे हुए ऐसे उपन्यास हिन्दी उपन्यास-साहित्य की संभावनाओं के प्रति निर्देश करते हैं। अचल का 'उत्का' (१९४७) नरनाम का 'मनुष्य के

रूप' (१९४९) नागार्जुन के 'रतिनाभ की बाबी' (१९४७) 'नई पोष' (१९४९) और 'बलबलमा' उदयशंकर भट्ट का 'सागर, सहरे और मनुष्य' भगवतीप्रसाद बाबू पेयी के 'बसते-बसते' (१९३१) और 'मयार्थ से घाने' (१९३२) उपारैवी मित्रा का 'नटनीड़' (१९४२) धनक के 'मिरली दीवारें' (१९४६) और 'मरम राज' (१९४२), शैलेन्द्र सत्यार्षी का 'कछुलसी' (१९४४) फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैसा भांचन' (१९४४) और 'परती परिक्रमा' (१९४७) आदि रचना का मया विषय की दृष्टि से छोटी-बड़ी सीमाओं के अन्दर समाज के मयार्थ और आत्मीय धर्मधर्म प्रस्तुत करते हैं। इनमें प्रत्येक की अपनी-अपनी सीमाएं हैं। 'उत्का' में परम्परागत आचार-विचारों में पले हुए मध्यवर्गीय कुटुम्ब में सामाजिक विकास के साथ अपना विकास प्राप्त करनेवाली नारी के संघर्षमय जीवन का चित्रण है। नागार्जुन के सभी उपन्यास ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित हैं, और उनसे मोक्षी-भाभी ग्रामीण जनता के मनोभावों का परिचय मिलता है। बात हीता है कि नागार्जुन य प्रेमचन्द से बढ़कर धर्मधर्म की पहचान है लेकिन उतनी सहाय्यमूर्ति नहीं है जिसकी प्रेमचन्द में है। 'बसते-बसते' 'मिरली दीवारें' 'मरम राज' 'नटनीड़' और 'कछुलसी' मध्यवर्गीय जीवन के विभिन्न पहलुओं पर आधारित हैं। 'बसते-बसते' में जाहुकटा कुछ धार्मिक है कथानक भी कुछ धर्म होने से जीवन से दूर मयाता है। रणिय राजन का 'विपाद-मठ' (१९४६) बंगाल के अकाल का सजीव इतिहास है। वैद्यकासीन परिस्थितियों का धर्मधर्म करनेवाले उपन्यासों में इसकी गणना हो सकती है। उनका 'बरीश' (१९४६) मध्यवर्गीय जीवन पर सामान्य दृष्टि डालता है। इसमें विद्यार्थी-जीवन के कुछ अंशों की धर्मधर्म अलक भी मिलती है। विद्यार्थी-जीवन पर लिखित कोई उत्कृष्ट उपन्यास हिन्दी में है ही नहीं।

यहां रणिय राजन का 'विपाद मठ' भट्ट का 'सागर, सहरे और मनुष्य' रेणु के 'मैसा भांचन' और 'परती परिक्रमा' के चारों विषय वर्णों के योग्य हैं। इनमें कथा मक माध्यम-भाव है मनोविज्ञान साधन-भाव है। इनके आधार पर वे जिस लोक का निर्माण करते हैं उसमें वास्तविक जीवन है। आधुनिक स्त्री उपन्यासों का सा मिर पेसा धर्मधर्म इनमें उपलब्ध है। नागार्जुन ने कथा प्रवाह पर ध्यान रखा है अतः उन का आकाशरस भी कुछ सीमित है। पर धर्म उपन्यासों में कथानक मिलित है। फिर भी किसी विशेष दृष्टि से जीवन के कुछ अंशों के समग्र रूप इनमें मिलते हैं। 'विपाद मठ' में अकाल-पीड़ित बंगाल की जनता का वयसीय जीवन सजीव हो उठा है। 'सागर, सहरे और मनुष्य' बरहोबा के मधुघों के समग्र जीवन का परिचय देता है। 'मैसा भांचन' और 'परती परिक्रमा' बिहार के ग्रामीण जीवन को हमारे सम्मुख साकर खड़ा कर देते हैं।

अपन्युक्त सभी उपन्यास रोमान्टिक प्रभाव से बहुत कुछ मुक्त हैं। इनके सम्बन्ध में एक बात यह धर्मधर्म है कि इनमें धर्मधर्म हमारी स्वतंत्रता-प्राप्ति के परवाना लिख गये हैं। हो सकता है यह बात बिलकुल संशय की हो पर वह धर्म है कि हमारे स्वातन्त्र्योपराप्त लिखित उपन्यास हमारे सैलकों की धर्मधर्म स्वतंत्रता-प्राप्ति का भी परिचय देते हैं।

२३ स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित उपन्यास—यथार्थवाद का इतना विकास और प्रचार होने पर भी रोमांस का प्रभाव एकदम समाप्त नहीं हुआ। इस बीच की छठी के उत्तरार्ध में भी उसकी जाय बल रही है। भले ही श्रीरूप में हो। उसके का प्रथम उपन्यास 'सितारों का खेल' (१९४) और हास का मिलित उपन्यास 'बड़ी-बड़ी धाँसे' (१९४४) वृन्दावननाम बर्मा का 'कभी न कभी' जेनेत्र का 'व्यतीत' (१९४७) धारि में रोमांस का प्रभाव काफी है। इनकी कथाएँ किसी रोमांटिक कथा से घाये नहीं बढ़ पायी हैं। सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर लिखित होने पर भी इनके कथानक और पात्रों में सामाजिक यथार्थ का प्रभाव है। 'व्यतीत' में ब्रम्ह का अपने परिचय में घानेबाजी सभी स्त्रियों से प्रेम करना सुमित्रा का किताबों में करेसी मोटर खरकर मेहनत कुमार का विनाशित करते समय अपनी कबिन को संयोज से रास्ते में घानेबासे ब्रम्ह को खीपना धारि किताबी ही घसंभव बढापाएँ हैं जिनको जेनेत्र के मनो-विज्ञान के बहाने भी मान्यता नहीं दी जा सकती है। बीच की छठी के इस उत्तरार्ध में मनोविज्ञान के नाम पर भी यथार्थ का गला बौटना उपन्यास में उचित नहीं है। वस्तुतः 'व्यतीत' का मनोविज्ञान एक दार्शनिक मेकक की व्यष्टिगत भावुकता की मार्गश्रुत रूपना ही है, जो स्वच्छन्दतावाद के निकट तक पहुँच जाती है।

वृन्दावननाम बर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास—विधिपकर प्रायमिक उपन्यास और उनमें भी हासकर 'विराटा की पद्मिनी'—रोमांस से प्रभावित है। 'विराटा की पद्मिनी' में ऐतिहासिकता केवल आधार-मात्र है उसपर उपन्यास का जो रूप निर्मित किया गया है, वह पुरुषतया स्वच्छन्दतावादी है।

२४ मनोवैज्ञानिक उपन्यास—प्रेमचन्द के परभाव के उपन्यासों की सबसे प्रबल मौलिक प्रवृत्ति मनोविज्ञान है। जेनेत्र ने बिल प्रवृत्ति को धुर करके फिर कुछ काल के लिए छोड़ दिया उसे हलाकर बोली ने एकदम दिया और अपने भावा दर्शन उपन्यासों में मनुष्य की मानसिक क्रियाओं के अध्ययन का प्रयत्न किया। 'पुर्व की रात्री' (१९४१) में मेकक के जाने या अगवाने मेंल के वैज्ञानिकी (डिप्टिडी) सम्बाजी छिन्नाओं का विश्लेषण हुआ है। 'संघासी' (१९४१) 'प्रेत और बाबा' (४२) 'निर्वासित' (४६) 'मुक्तिपथ' (२) धारि में कुछछ वैयिक दार्शनिक हैं उत्तम मुक्कों के असाधारण जीवन का विश्लेषण है। मनुष्य की अदृष्टिहीन सामाजिक सम्मता के बावजूद उसके अन्तर्मोक में बाब भी अवस्थित धारिकासीन मनोवृत्तियों और दुर्बलताओं का प्रकटन ही इनका मुख्य विषय है। बोलीजी बबबेन की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए 'अन्तरतर और अन्तरतम जीवन' की व्याख्या करने का दावा करते हैं।^१ मानव-जीवन में समाज का जो स्थान है, उसकी उपेक्षा करने के कारण उनके पात्र असाधारण बन गये हैं।^२ इन पात्रों से मानसिक तात्पर्य पाना असम्भव

१. प्रेत और बाबा प्रमिष १६।

२. बोली स्वयं अपने पात्रों को असाधारण मानते हैं। देखें प्रेत और बाबा प्रमिष

है। परन्तु मनुष्य के मानसिक तत्त्वों के परिष्कार के लिए ये उपयोगी हो सकते हैं। 'गुह्य के भूते' और 'बहादुर का पंछी' (१९५२) में वैयक्तिक मनोभावों का सामाजिक पृष्ठभूमि में विश्लेषण किया गया है। 'बहादुर का पंछी' में एक व्यक्ति के जीवन में आनेवाली विभिन्न घटनाओं के धाबिधायक से एक आत्मचरित्र का निर्माण हुआ है। मार्क्सवादियों के समान अन्तर्दृष्टियों को परिस्थितियों से परिष्कृत न मानकर अन्तर्चेतना का बाह्य संसार से अलग स्वतंत्र अस्तित्व माननेवाले^१ बोसीजी ने इस उपन्यास में रेडर ब्लेड के उपयोग के धार्मिक परिणामों से लेकर आन्तरिक तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं की समाज विरोधी प्रवृत्तियों तक के प्रभावों को एक ही व्यक्ति के अन्तर्चेतन में बुनाकर एक अन्तर्-से आत्मचरित्र में अन्तर्-से मनुष्य की सृष्टि की है। यद्यपि बोसीजी अपने उपन्यासों के वैयक्तिक एवं पारिवारिक विषयों को बिगुट वैसीय क्रान्तियों की मूल प्रेरणा के रूप में देखने की अभ्यर्थना करते हैं,^२ तथापि उनके पात्रों को उनकी अपार वैयक्तिकता एवं असाधारणता के कारण समष्टि के प्रतीक मानना कठिन पड़ता है।

अन्तर्-से का 'खेद' एक जीवनी' (प्रथम भाग १९८८ द्वितीय भाग १९४४) वैयक्तिक मनोविज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र में सर्वप्रसिद्ध वेन है। 'रोम्मा रोम्मा' के 'आ क्रिस्ताफे' के अनुकरण में लिखित न हो तो सबसे बहुत प्रभावित इस उपन्यास में मनुष्य की अन्तर्चेतना में जीवन के प्रारम्भ में ही उदित होकर विकसित होनेवाले भय-दीन-वासना से आकाश का क्रमबद्ध विकास दिखाया गया है। विषय और शैली की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट उपन्यास है। अन्तर्-से के 'मरी के डीप' (१९५१) में ऐसी एक स्त्री के अमित प्रेम के परिणामों का विश्लेषण है, जो एक पति को छोड़कर दूसरे को स्वीकार करती है परन्तु हृदय से इनमें से किसीकी न बनकर एक तीसरे पुरुष की बनी रहती है।

बैनेजर ने सपनाग्र पञ्चम वर्ष के विषय के पश्चात् 'मुसदा' (१९५२) 'विषय' (१९५२) और 'अन्तर्-से' (१९५५) में फिर मनोविज्ञान से काम लिया है। किन्तु इन उपन्यासों से बात होता है कि वे अब इतने अधिक आधुनिक हो गये हैं कि उनमें मनो-विज्ञान का वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रहा।

एक विषादात्मक वर्णन की प्रेरणा से लिखित हमारे मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनुष्य की सामान्य बुद्धि की प्रामाणिकता का निषेध कर, उसके अतीत अन्तर्-से एवं अस्पष्ट अन्तर्चेतना के निगूढ़ रहस्यों का धाबिधायक करने का आग्रह दिखायी पड़ता है। उनमें एक सीमित परिधि के अन्दर रहकर मौखिकता के द्वारा अप्राप्य एक संसार को कुछ निकालने का प्रयास है जिसकी उपसम्पत्तियाँ अभी शैशवावस्था में ही हैं।

८५ ऐतिहासिक उपन्यास—प्रेमचन्द के काम में और उसके पहले लिखित कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों का उल्लेख किया जा चुका है जो नाममात्र के लिए ऐतिहासिक हैं और जिनमें कल्पना का ही अधिक स्थान है। प्रेमचन्द के पश्चात् काफी

१. मेघ और आकाश भूमि ५ १।

२. मेघ और आकाश भूमि ५ १।

अध्ययन से लिखित कई प्रौढ़ उपन्यास निकले हैं जिनमें प्रायः ऐतिहासिक काल से लेकर बीसवीं शती तक के विभिन्न ऐतिहासिक सम्मनों को विषय बनाया गया है।

महापण्डित राहुल साँकरनाथन ने अपने विद्वान् अध्ययन एवं अपार पाण्डित्य से जो उपन्यास लिखे हैं उनमें बड़ी ईमानदारी से ऐतिहासिक तथ्यों को कसा का कप दिया गया है। कई सिद्धों विद्वानों संस्कृत पाणि अपभ्रंश प्राकृत लिम्बती प्रादि प्रापाओं के प्राचीन ग्रन्थों तथा अन्य ऐतिहासिक प्रमाणाँ से संचित तथ्यों के आधार पर लिखित उनके उपन्यासों में कल्पना अधिक नहीं रहती जिससे वे प्रायः ऐतिहासिक उपन्यास न होकर औपन्यासिक इतिहास हो गये हैं।^१ उनके विषय ईसा के पूर्व पंचम शती से लेकर सन् बीसवीं शती तक के हैं। 'विह सनापति' (१९४२) में ई. पू. पाँचवीं शती के लिच्छवि गण का 'जय योजेय' (१९३६) में सन् चतुर्थ शती के उत्तराखण्ड के योजेय गण का और 'महुर स्वप्न' (१९३५) में सन् पष्ठ शती के मध्य एशिया के सासानाई बंस का इतिहास है। बीजे के लिए (१९३४) और 'राजस्थानी रजिवास' बीसवीं शती के विषयों पर आधारित हैं, और बहुत कुछ सामाजिक भी हैं।

बुद्धावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास बीसवीं शती से उन्नीसवीं शती तक के विभिन्न विषयों के आधार पर लिखित हैं। यह कुम्हार (१९२९) को पहले ही प्रकाशित हो चुका था बीसवीं शती के बुन्देलों और जंगलों के पारस्परिक संबंध का वातावरण प्रस्तुत करता है। पर उसका मुख्य धार्यक पूर्वतया कल्पना में रचित तीन प्रेम-कथाएँ हैं। 'बिराटा की पश्मिनी' (१९३६) 'भुसाहिब' (१९४६) और 'कच मार' (१९४७) में भी कथी कल्पना है जो जनमुक्तियों पर आधारित है। 'झंडी की रानी' (१९४६) 'मृगजयी' (१९३५) 'टूटे काँटे' (१९३४) और 'महिम्नाबाई' में वर्माजी के इतिहासकार और उपन्यासकार में होड़-सी लगी है। वर्माजी वहाँ बुन्देलखण्ड और बासपास के जीवन और संस्कृति तक सीमित रहते हैं, वहाँ उनकी कसा सर्वोत्कृष्ट बनी है। वहाँ वे बाहर जाते हैं वहाँ ऐतिहासिक तथ्यों से ठिक किंच कर रोमांस का हाथ पकड़ लेते हैं। इन सभी उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाओं के साथ तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का भी संक्षिप्त किया गया है।

आचार्य बहुरसेन शास्त्री ने 'बैरागी की लपरबद्ध' (१९४५) तथा 'जय रसाम' (१९४३) में कई धार्मिक दार्शनिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों की सूचनाओं से स्पष्ट होन वाली छोटी-मोटी बातों के धामय से नाम का आधारण हटाकर शरीर के प्रत्येक मय रमरंभ में हजर-उजर टार्न लगाकर देखने का प्रयत्न किया है। प्रथम में बीस कालीन भारत की राजनीतिक परिस्थिति का तथा दूसरे में बेब-पूर्वकालीन भारत के गर, नाव बेब बेय शानव धार्य धनार्थ प्रादि धूर्तों का अध्ययन है और उस समय प्रचलित धार्मिक आधार-विचारों की व्याख्या है। विषय की प्राचीनता एवं विरचनीय सामग्री के अभाव के कारण इनमें तथ्य और कल्पना की विभ्र करना

१ स्वर्ण राहुलजी ने यह बात मानी है। ७ जनवरी १९५६ को भारतीय साहित्य संघ अली हिन्दू विश्वविद्यालय की बैठक में उन्होंने इस बात की कपी की।

कठिन है। जयपुरसेन का 'सोमनाथ' (१९३४) सोमनाथ के मंदिर पर महमूद गजनवी के आक्रमण का इतिहास प्रस्तुत करता है। 'वर्मपुत्र' (१९३४) में भारत के हिंदू मुस्लिम दोनों का बाटाबरण स्पष्ट किया गया है। 'गोपी' (१९३६) जो 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में प्रकाशित हुआ किन्तु छूट से सम्बन्धित है पर जटणाधों की विविधता पात्रों की अस्वामाधिकता दोनों के बीच पारस्परिक सहयोग का अभाव आदि के कारण पूर्ण पचन्य है।

प्राचीन भारत से संबंधित उपन्यासों में रविश रायच के उपन्यास भी उल्लेख्य हैं। उनके मोहनबोदड़ो-संस्कृति का विशद अध्ययन करनेवाले 'मुर्खों का टीला' (१९४६) में आर्य-यूज भारत के कुल-धर्मों के नाथ राजसत्ता के उदय और विभिन्न जातियों के संघर्षों का विवरण है। 'जीवर' में राज्यधी के काल के हासोग्राम सामंत नाथ का और 'अधरे का पुत्र' (१९३६) में महामाण्ड के पश्चात् के समाज का विवेचन है। उनके 'प्रतिदान' 'देवकी का बेटा' 'सबोबरा जीत लयी' 'छला की बात' 'लौई का टाला' आदि औपन्यासिक जीवनीयों में उत्कामीन समाज के बाटाबरण को ही महत्व दिया गया है।

इतिहास के विशेष अध्ययन के बिना प्रसिद्ध ऐतिहासिक विषयों पर लिखित उपन्यासों में प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव रहता है पर औपन्यासिक कला स्वतंत्र विकास का अवसर पाती है। मोविम्वल्लम पंत के 'अमिताभ' (१९४६) 'एक-सूत्र' (१९४६) 'नूरजहाँ' (१९४६) आदि ऐसे सफल उपन्यास हैं।

२६ कुछ विशेष प्रकारों के उपन्यास—उपयुक्त विभिन्न जाटियों के चलते समय कुछ उच्च श्रेणी के लेखकों ने विषय और शैली में नये प्रयोग किये। डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की मालकन' (१९४६) रविश रायच का 'अधरे की भूष' (१९३८) और वर्मवीर माखी का 'सूरज का सातवां बोज़ा' ऐसी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। 'बाणभट्ट' कुछ साहित्यिक उपन्यास है। द्विवेदीजी के मानोचनारमक प्रश्नों से उनके अपार माण्डल्य का जो परिचय मिलता है, वही इससे भी मिलता है। बाणभट्ट के काल की सामाजिक परिस्थितियों के विवरण तथा कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए लेखक ने 'आवन्तरी' 'हर्षचरित' आदि का अवलम्बन किया है। यह हिन्दी उपन्यास-साहित्य की एक उल्लेख्य देन है। पर इसके पक्ष पर चलनेवाले उपन्यासकार भावे भी होंगे यह बात समिष्ट है। 'सूरज का सातवां बोज़ा' में नवीन एवं प्राचीन शैलियों का समन्वय है। विलकुल अवलम्ब कुछ कथाओं को कुछ पात्रों द्वारा निर्याया गया है। यह शैली अति प्राचीन है और 'सहस्र रानी चरित' (Thousand and One Nights), हेतामेराण केतामेराण आदि में प्रयुक्त हुई है। लेकिन माखी का विषय नवीन है और समाज की समस्याओं से सम्बन्धित है। 'अधरे की भूष' भी विभिन्न व्यक्तियों द्वारा कही गयी कथाओं का संग्रह है। विविष्ट शैली के उपन्यासों में राजस साहित्यायन के 'विष्णुधृति के गर्भ में' (१९३७) का नाम भी लिया जा सकता है। इसकी कथा मिस शेष से सम्बन्धित है। विषय में तथ्यों और कल्पना का मिश्रण है इतिहास संस्कृति रोमान्स यात्रा-वर्णन और उपन्यास सबने मिलकर इसे एक विविध रूप दिया है।

4

यूरोपीय उपन्यास-साहित्यः

प्रहारणी सती

यूरोपीय उपन्यास-साहित्य के विकास में यठारहवीं शती का अपना विशेष स्थान है। निम्नलिखित ही सत्रहवीं शती में उपन्यास के प्रथम के स्पष्ट समूह फ्रांस और इंग्लैण्ड में लिखायी गइने लगे। किन्तु एक सुनिश्चित परिपाटी के अनुसार उपन्यास रचना का सम यठारहवीं शती में ही शुरू हुआ। इंग्लैण्ड में रिचर्डसन से और फ्रांस में स. साज (Le Sage) से ही सत्रमुच उपन्यास-साहित्य को आरम्भ हुआ। यठारहवीं शती के बहुमुखी प्रयत्नों के फलस्वरूप फ्रांस और इंग्लैण्ड में उपन्यास की नींव दृढ़ हो गयी और उन्नीसवीं शती में तीव्र और स्वस्थ विकास का प्रसरण प्राप्य हुआ।

समर्थनवाद का प्रतिष्ठापन और उपन्यास का उदय

१७. **डॉब ने**—मायुकता और स्वच्छता का विरिष्कार कर अठारवीं शती के उपन्यासकारों ने जीवन का यथार्थ जीवन के कुछ धर्मों का यथार्थ रूप चित्रित करने का प्रयास किया। डॉब के प्रसिद्ध उपन्यासकार न साब का 'निस ब्ला' (The Blas) एक भाष्यवादी उपन्यास (Roman de mœurs—Novel of Manners) है जिसमें तात्कालिक सामाजिक जीवन के सभी धर्मों और विविध बसाधों का विवेचन किया गया है। विषय की विस्तृति के कारण उसके स्वल्प में विचित्रता प्राप्ति है। कितनी ही बटनाएं और पात्र अनावश्यक लगते हैं। किन्तु ये सब मिलकर सामाजिक जीवन की पूर्णतया प्रकट करते हैं। न साब के चित्रण में वैयक्तिक होने पर भी यह उनकी विश्वास दृष्टि और अभाव अव्ययता का साक्षी है। भाष्यवादी होने पर भी उनके पास सामवेक्षिक स्तर पर निर्मित है अथः मानव-मानव के प्रतिनिधि भी है।

संसार के पश्चात् के मनुष्यावासी लेखकों ने समाज की कुछ त्रियों और नैतिक व्यवस्थाओं की आलोचना की। मारियो (Pierre Chamblain de Maurivaux) के 'मरियन' (Marianne, 1731-41) में प्रेम और सत्यमन्वी निकाहों के सूक्ष्म विश्लेषण के साथ ही कूर्तुप्रा वर्ग के जीवन का चारों ओर घूमना किया गया है। मनोविकारों के सूक्ष्म निरीक्षण के कारण कुछ आलोचक इसे डॉक्टर का प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यास मानते हैं।^{१९} 'ल पयसान पारवेनु' (Le Paysan Parvenu) में उच्च वर्ग के नैतिक ढोंग की पोख दिखायी गयी है। इसमें एक युवक

२. वस्तुतः परिच्छेद ६, ७ और ८ प्रत्येक के विवरण में व्यवधान के रूप में आते हैं किन्तु इसके बिना आगे का व्यवधान सुगम न होगा। सहायक परिच्छेदों (Reference Chapters) के रूप में ही वे प्रस्तुत किये जाते हैं।

2 Kastner and Atkins: A Short History of French Literature,
P. 189

उपन्यास जो ऐसी में यथार्थवादी है विषय की दृष्टि से धार्मिकवादी है। 'पामेला' की नायिका लीज़रानी पामेला अपने भाविक की कामनिष्ठा की पूर्ति के लिए नहीं झुकती किन्तु बंध विवाह से उसकी धर्म-पत्नी बनने को तैयार है। दूसरे उपन्यास की नायिका क्लेरिदा अनिवार्य परिस्थितियों में लजस्र छाय पतिष्ठ होकर भी अपने धर्मको नैतिक रूप से पतिष्ठ नहीं मानती और धर्म-सुद्धि का दावा करती है। इनसे लेखक का नैतिक धार्ष संस्पष्ट है। इस नैतिक धार्ष की स्थापना के लिए निर्मित पात्र प्रायः असाधारण हो गये हैं। सत्यार्थों का कष्ट सहन और दुष्पार्थों की झुलता रिचर्डसन के उपन्यासों का एक रोमान्टिक संस्पष्ट होती है। बीसों पात्रों से सम्बन्धित संकटों बटनाएँ उत्काशीन धाचरण पात्रों के उन्मुख व्यवहार और भावविक्रम इन्हें इन सबका बड़ी भारीकी में जो बर्णन किया गया है वह कुछ विचित्र बटनायों के साथ मिलकर इन उपन्यासों को यथार्थ धार्ष और रोमांच का समिश्रित रूप बनाता है।

एडमंड फील्डिंग के उपन्यास धीपन्यासिक कथा की दृष्टि से मध्यमी उपन्यास के विकास की धनकी सीढ़ी है। 'पामेला' के प्रति धर्म के रूप में विहित उनके 'बोसक एण्ड ब' (१७४२) में कथा-विकास और चरित्र-चित्रण अधिक क्लृप्तारमक और स्वाभाविक है। रिचर्डसन के उपन्यासों से यह इस बात में धार्य बढ़ा है कि लेखक ने इसमें लम्बे-लम्बे बर्णनों द्वारा पात्रों का चरित्र-चित्रण नहीं किया है। पात्र अधिक नाटकीय हैं और अपनी ही प्रवृत्तियों और धर्मों द्वारा स्वतः अपना परिचय देते हैं। 'टॉम बोनस' (१७४६ '४६) में भी पात्र इसी प्रकार प्रस्तुत किये गये हैं। फील्डिंग ने इसके पात्रों में कुछों और दोषों का समन्वय कर उनको अधिक बर्णन बनाया है। लेखक इस बृहत् काम उपन्यास में जीवन के विविध धर्मों का विवेचन करते हुए, इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जीवन को सफल बनाने का एकमात्र उपाय हृदय को पवित्र रखना है। टॉम बोनस बार-बार धनसिद्धां करता है फिर पछताता है। मजुर और तिष्ठ अनुभवों से ही निष्कर्षकर वह 'जीवन की कला' को समझता है। इस महान जीवन-दर्शन के कारण और विषय-विकास की सम्बद्धता के कारण 'टॉम बोनस' एक उत्कृष्ट उपन्यास बना है। फील्डिंग का 'अमेसिया' (१७५१) इससे मिथ है। वह जीवन की निष्कृष्ट वृत्तियों के प्रति असा-हीन असन्तोष प्रकट करता है। इसमें लेखक मानव-भाग पर अहानुभूति रखते हुए भी उसकी कुराहियों पर सीधा धावाज करता है। स्त्री की पराधीनता न्यायालय के अध्याय पुलिस के अत्याचार, समाज में व्याप्त धर्मविक्रम धार्मिक का कुला विरोध 'अमेसिया' में किया गया है।

विन सामाजिक वृत्तियों के प्रति रिचर्डसन ने संकेत किया और विनका फील्डिंग ने निराकृत कर दिखाया उनको जोडियास स्मॉलिट ने जीवन के विकास में प्रयत्नर बाधा के रूप में प्रस्तुत किया और जारेन्स स्टेन ने उनपर एक दार्शनिक भी भावि धर्मन्यायक हरी हरी। स्मॉलिट के 'राष्ट्रिक ईथर' का नायक एक धनाढ्य धानक है जो अपनी निष्कर्मकता एक अहङ्कारता के तथा दूसरों के स्वार्थ धर्म और धर्मों के कारण निरन्तर धनका छाटा चमता है। स्टेन के 'ट्रिस्ट्रम शैंडली' में दार्शनिक दृष्टि से अति

जीवन को सिद्धांतों की शृङ्खलाओं में बांधने का प्रयत्न करके प्रायोगिक रूप में विफल होनेवाले व्यक्तियों की श्रृंखला उड़ायी गयी है।

उपर्युक्त चार उपन्यासकारों ने यथार्थवाद का प्राथम्य लेकर उन्नीसवीं शती के अंग्रेजी उपन्यास को काफी पुष्ट किया। इनहीके प्रयत्न से समाज और व्यक्ति के अध्ययन के रूप में उपन्यास का विकास होने लगा।

१६. क्वी में—अठारहवीं शती के क्वी साहित्य में अस्वेच्छनीय कोई उपन्यास नहीं रचा गया। केवल क्रियोडोर एमिन का उपन्यास 'गुल्दरी एरोइन या एक पतित नारी के बीर-कर्म' (१७७) कुछ प्रसिद्ध है। मॉन पैन्थैर्स के समान ही इसकी नायिका एक चरित्रहीन नारी है जो अपने शरीर और धात्मा को पतित करनेवाले समाज से बचना सेती हुई कुर्छ से कुर्छ की घोर जाती है। इसकी सभी यथार्थवादी है समस्याएँ भी बहुत कुछ सामाजिक हैं किन्तु विषय में रोमांस कम नहीं है। अमह अगह पर नतिक आशयों के उपवेश भी मिलते हैं।

अठारहवीं शती का स्वच्छन्दतावाद

१००. अठारहवीं शती के फ्रेंच और अंग्रेजी के उपन्यास-साहित्य में प्रचलित दूसरी प्रवृत्ति भावुक स्वच्छन्दतावाद की थी। यद्यपि यथार्थवादी प्रवृत्ति की तुलना में इसका अधिक महत्त्व नहीं है तथापि यह बात निश्चित है कि स्वच्छन्दतावाद ने भी कुछ उत्कृष्ट कृतियों को जन्म दिया।

फ्रेंच में एड बेर्नोस्ट का 'मैनन सेस्काट' (१७६१) बेर्नार्डिन-द-सेंट पिये (Bernardin de Saint Pierre) का 'पाव और बर्बिनी' (१७८७) (Paul et Virginie) अंग्रेजी में हेनरी मैकग्री का 'भावुक मनुष्य' (The Man of Feeling) फैंनी बर्नी के 'एवेनिंग' (१७७८) और 'सेसीलिया' (१७८२) मिस्त्रि राह्लिन्स के 'उदाल्फो के आश्चर्य' (The Mysteries of Udolpho) और 'इटालियन' (The Italian, 1497) आदि कुछ मुख्य स्वच्छन्दतावादी उपन्यास हैं। इनमें न जीवन का वास्तविक रूप मिलता है, न मनुष्य का स्वाभाविक चरित्र। अक्सर कल्पनाएँ, अन्तर्दृष्टि का प्रभाव असाधारणता आदि इन उपन्यासों की विशेषताएँ हैं। उत्तम प्रेम का "दृष्ट पात्रों के जीवन को संचालित करता है। इन सब उपन्यासों का एक ही विषय है—और वह है प्रेम जिसकी विविध रूपाओं का मार्मिक चित्रण में और सब कुछ भुजा दिया जाता है। उदाहरण के लिए 'मैनन सेस्काट' में केवल दो मुख्य पात्र हैं। कुछ तान्त्रिक जीवन की सभी सुविधाओं के होने पर भी उन सबका चरित्रम्भार कर एक मुन्ढी सुन्नी के पीछे पड़ा रहता है जिसे आश्चर्यों में अपार जन-आय करने की शक्ति है। शानों का उच्छादित जीवन की गति ही उपन्यास का विषय है। 'पाव और बर्बिनी' में पाव और बर्बिनी का पवित्र प्रेम की करुणान्त कथा है। बहुत-से कष्टों का भ्रम करके भी दोनों एकसाथ रहते हैं, पर अन्त में उनके अशांत के दुःख स बर्बिनी अन्त त्रिप क जानने ही मरती है। 'भावुक मनुष्य' में इतिया रिता का अनुपम स शनी इच्छा के विरुद्ध एक अमीर से विवाह कर जाती है, जो उसे उसके दूसरे स प्रेम करने का अन्त में विप

बेकर मार डालता है। इस तरह की कथाओं में अधिक यथार्थ न होने पर भी उनका प्रभाव तीव्र होता है। बिकारों का अधिक विकास करने में इनके सेवक सिद्ध हूँ।

७

यूरोपीय उपन्यास साहित्य

(१) उन्नीसवीं शती

उन्नीसवीं शती के आरम्भ तक अंग्रेजी और फ्रेंच के उपन्यास-साहित्य काफी प्रौढ़ हो चुके थे। उनमें कई प्रकार के प्रयोग हो चुके थे और कम टेक्नीक और श्रेय के सम्बन्ध में कुछ निश्चित बारम्बार निर्धारित हो चुकी थी। किन्तु प्रयोग के लिए और भी कई मार्ग खुले पड़े थे जिनका आविष्कार करते हुए उन्नीसवीं शती के उपन्यासकारों ने कई ऐसे उपन्यास लिखे जो विश्व-साहित्य में धाँवर की दृष्टि से देखे जाते हैं। नवी उपन्यास-साहित्य के सम्बन्ध में कहें तो इसी शती को उसका स्वर्ण युग मानना पड़ता क्योंकि उसका विकास इसी युग में हुआ और उसकी सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियाँ इसीकी हैं। इन तीनों भाषाओं के उपन्यास-साहित्यों ने इसी शती में जिन जिन प्रवृत्तियों को अपनाया उनकी विवेचना यहाँ की जायगी। सामान्य रूप में कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शती के पूर्वार्ध में इन तीनों भाषाओं के उपन्यास साहित्यों में स्वच्छन्दतावाद की प्रमुखता रही पर उत्तरार्ध में यथार्थवाद की जड़ें बस गयीं।

स्वच्छन्दता-विरोधी उपन्यासकार (अंग्रेजी में)

१०१ यद्यपि उन्नीसवीं शती का पूर्वार्ध स्वच्छन्दतावाद का युग है तो भी उसके आरम्भिक वर्षों में अंग्रेजी में कुछ स्वच्छन्दता-विरोधी लेखक भी हुए हैं जिनमें जेन आस्टिन और सरिया एड्जवर्थ के नाम उल्लेखनीय हैं। इन दोनों लेखिकाओं के उपन्यास यथार्थ के ठोस आधार पर लिखे गये हैं। वे लेखिकाएँ अपने उपन्यासों में पारिवारिक वातावरण का बाहर नहीं निकलती हैं और न जीवन की विषम परिस्थितियों के विस्फोट के लिए उठावशील होती हैं। उनके सामाजिक आस्थाकारों और विफट समस्याओं से अलग होने के कारण या उनसे अभिर्भाव न रखने के कारण वा इन भ्रमेतों में न पड़ने के अनी-गह्वर घाघर के कारण दोनों के विषय बहुत सीमित ही रहे। पर जिस सीमित क्षेत्र को अपनाया उनके अन्दर के जीवन का चित्रण करने में उन्होंने अतृप्त नामधेय दिखायी। एड्जवर्थ ने 'बेलिडा' (Bellinda) और 'आस्मंड' (Osmond) में तथा जेन आस्टिन ने 'संज्ञ और संज्ञान' (Sense and Sensibility 1811) महानाथ और पूर्वग्रह (Pride and Prejudice, 1813) 'मैसप्रैजिस पार्क' (१८१४) 'एम्मा' (Emma 1816) 'नार्थंगर एबी' (Northanger Abbey 1818) 'प्रवण' (Persuasion, 1818) आदि उपन्यासों में नित्य-जीवन की साधारण घटनाओं अपने परिचित सब तरह के व्यक्तियों और उनको एक-दूसरे से बांधनवासे

है, पर टीली में स्वच्छता है। अतिरंजन भी अधिक है, पर पात्र विक्षेपकर स्त्री-पात्र सहायुभूति-मय्य है।

इसी समय एतोब्रिमाँ (Viscomte de Chateaubriand) के पुस्तकें (१८) 'वेने' (१८११) 'मार्टीर' (Martyrs 1809) आदि उपन्यास भी निकले। सभीमें स्वच्छन्द कल्पना अतिरंजन और भावुकता का आनिबन्ध है।

इस समय के फ्रेंच स्वच्छन्दतावादियों में सबसे प्रसिद्ध विक्टर ह्यूगो हैं। ह्यूगो के उपन्यासों में 'नामदास-व-पेरिस' (१८३१) और 'ल मिडराय्न' (१८६२) विश्व साहित्य में उन्नत स्थान प्राप्त कर चुके हैं। 'नामदास-व-पेरिस' बड़े ऐतिहासिक महत्त्व की रचना है। सम्राट लुई (ग्यारहवाँ) के समय की राजधानी पेरिस के विविध निवासी पुरोहित-उच्चवर्ग-नागरिक साधारण जनता सबको लेकर हमारे सामने लाते हैं। पात्रों की विविधता और बस्तावरण की अलौकिकता के कारण उपन्यास में एक स्वप्नित संसार का निर्माण हुआ है। वस्तुतः यह व्यक्तिगत जीवन का अध्ययन नहीं है सम्पूर्ण नगर और परिवार का चित्रण है जो मानवीकृत होकर मध्ययुग की सम्पूर्ण संस्कृति का प्रतिनिधान करते दिखायी पड़ते हैं। 'ल मिडराय्न' में ह्यूगो ने तत्कालीन जीवन के विविध वर्गों के साथ अपनी अपार कल्पना से रचित जीवन को भी मिला दिया है। जी-जल-जी की कल्पनावाचक कला अत्यन्त प्रभावशाली है। वह एक ऐसा व्यक्ति है जो कारावास का दण्ड भोगकर निकलता है दूसरे नाम से रहकर सुबर जाता है और जीवन के सबलतम क्षण तक पटुण जाता है। एक घमास बालिका को आश्रम में लेकर वह अपना समस्त जीवन उसीके संतोष के लिए अर्पित कर बैठा है और उसे एक पवित्र के हाथ सौंपकर संसार से हट जाता है। वहाँ ह्यूगो ने कुपट्यों से निरन्तर संघर्ष करते हुए पवित्रता की ओर जानेवाली मानवात्मा का चित्र खींचा है। जीवन के तीव्र कठिने कीड़ा में आत्मा के कोमल कुसुम का विकास बोर गिराया में मधुमय धासा का उदय नम्रता में उवासा का सन्देश यही 'ल मिडराय्न' है।

अन्य स्वच्छन्दतावादियों में जार्ज सैंड और अलेक्सीयर ड्यूमा के नाम लिने जा सकते हैं। सैंड के उपन्यास तीन श्रेणियों के हैं। उनके 'हर्षिमाता' (१८३१) 'मासे प्तीन' (१८३२) 'लीनिया' (१८३३) आदि प्रारम्भिक उपन्यासों में साधारण रोमान्टिक उपन्यासों के समान उसी पवित्र प्रेम का स्वरूप दिखाना गया है जो निरन्तर कष्ट सहते-सहते अधिक उन्नति प्राप्त करता है। इसके बाद के 'स्पिरिटिज्म' (१८३३) 'काम्युएनो' (१८४२) ४३ आदि में सैंड का दृष्टिकोण अधिक वास्तविक रहा है। इनमें

१. आखिर आदि बालोवक सेवा के स्वच्छन्दतावादी मानते हैं। पर सैप्टेम्बरी इन्तेर सम्मत गरी है। उनके मन में सैंड के उपन्यासों में सैंड और मित्र की समता का रोमान्टिक कान नहीं।

See, Kastner and Atkins A Short History of French Literature, P 274-275

Saintsbury The History of French Novel, Vol II P 139

कुछ सामाजिक समस्याओं का—विशेषकर वर्ग-सम्बन्धी समस्याओं का भी निरूपण है। अन्तिम धारा के 'ल-मार-दु-शायबिस' (La Maro au Diable, 1846), 'ला-पेटिट-फादेट' (La Patitte Fadette, 1849), 'जॉन-ला-रोच' (Jean de La Roche, 1860) आदि में आकर रोड का विषय साधारण बन जाता है, और ऐसी यथार्थकारी। स्वच्छन्दतावाद से यह वैमुख्यवाद के समर्थनवाद के विकास की ओर सकेत करता है।

इसका के उपन्यासों में ल-कॉम्टे-दु-मोंटे-क्रिस्तो (Le Comte de Monte Christo, 1844-45) और 'ल-ट्रयो-मोस्क्वेटायर्स' (Les Trois Mousquetaires, 1844) विशेष साहित्यिक महत्त्व के हैं। विस्मय-विशाल की दृष्टि से विभिन्न इन उपन्यासों में इसका की अपार कल्पना नये-नये प्रसंगों के आविष्कार की प्रतिभा अनन्य-साधारण आकर्षक विवरण की शक्ति तथा निरन्तर धीरे-धीरे बनावे रखने की सामर्थ्य प्रकट है। 'ल-ट्रयो-मोस्क्वेटायर्स' के ऐतिहासिक होने पर भी उसमें इतिहास के तथ्यों से बढ़कर जीवन के सत्यों को महत्त्व दिया गया है।

१०४ अटोमो में—जेन फ्रास्टिन के देहान्त (१८१७) के पश्चात् के बीच सान में फ्रांसीसी में सर वास्टर स्काट के प्रतिष्ठित और कोई उल्लेखनीय उपन्यास कार नहीं हुआ। फ्रांस में जब स्वच्छन्दतावाद उत्कर्ष पर था तब इसीष्ट में स्काट ने भी स्वच्छन्दतावाद को प्रपनाया। उनके अधिकांश उपन्यास ऐतिहासिक हैं। स्काट ने रोमान्टिक कल्पना से इतिहास के विषयों को अत्यन्त रोचक बनाया। सुदम विवरण तथा आचार-विचारों सामाजिक दशाओं वैयक्तिक अनुभूतियों और अनुभवों के विस्तृत अध्ययन द्वारा उन्होंने खोज बातावरण में जीते-जागते पात्रों का निर्माण किया। स्वच्छन्दतावादी होने पर भी उनके उपन्यासों में सामाजिक बातावरण का यथार्थ रूप मिलता है। 'गॉल्ड्-वॉरिंग' (१८११) 'हार्ट्-फाफ मिडल्लोपियम' (१८१८) 'वेवर्ली' 'आइवनहो' (१८१६) 'केनिलवर्थ' 'क्वेनटीन डब्लि' (१८२३) आदि में स्काट ने यथार्थ सामाजिक बातावरण में वैयक्तिक और विभिन्नतापूर्ण कल्पित कथानकों का विकास किया है। उनका व्यक्तियों का अध्ययन रोचक होने पर भी भगाव नहीं है।

स्काट के पश्चात् के ऐतिहासिक स्वच्छन्दतावादी उपन्यास विशेष महत्त्व के नहीं हैं। फिर भी इस प्रसंग में जेम्स क्रिस्टीनियम मोस्विर का 'हज्जी बाबा क बीर कल्प' (Adventures of Hajji Baba, 1874), गुस्तर मिटम के 'पाम्पी का अन्तिम दिन' (The Last Day of Pompeii 1835) रीन्झी (Reinzi, 1835) आदि के नाम लिए जा सकते हैं। ये सब स्काट के उपन्यासों के समान ही इतिहास से रोमाञ्च का सम्भव कर लिये गये हैं।

१०५ अटोमो में—समय इसी समय इस में भी कुछ स्वच्छन्दतावादी उपन्यास लिखे गये जिनमें सबसे प्रसिद्ध पुस्किन के उपन्यास हैं। अलेक्साण्डर पुस्किन के 'दूब्रोवस्की' (१८२२-२३) और 'कप्तान की बेटी' में स्वच्छन्द-कल्पित विषयों का यथार्थकारी ढंग में प्रतिपादन है। आश्चर्यमय घटनाओं के होने पर भी 'दूब्रोवस्की'

के इस प्राकृतिक और सामाजिक दशाओं का विवरण यथार्थ है। कप्तान की बेनी में ऐतिहासिक मातावरण अधिक महत्वपूर्ण है। इसका ऐतिहासिक विषय एक भयङ्क किसान पुनर्वास के नेतृत्व में कच्चाक लोगों का विप्लव है। पुस्कन ने ऐतिहासिक तथ्यों को सुरक्षित रखने के साथ-साथ देशीय आचार-विचारों का और पात्रों की मनोवृत्तियों का भी अध्ययन प्रस्तुत किया है।

पुस्कन के उपन्यास अपनी सरलता स्वभाविकता और चरित्रों की वास्तविकता में पूर्ववर्ती लेखकों के उपन्यासों से बहुत धाये बड़े हुए हैं। पुस्कन ने सीधे सादे प्रत्यक्ष प्रतिपादन और वस्तुनिष्ठता के सहारे जिन अविस्मरणीय पात्रों की सृष्टि की वे परवर्ती उपन्यासों के लिए चरित्र-चित्रण में दिव्यदर्शन करनेवाले थे।

इस तरह हम देखते हैं कि अग्रेजी कॅब और स्वी में उत्पीड़नी शक्तों के पूर्वाङ्ग में स्वच्छन्दतावादी उपन्यासों का प्रामुख्य रहा। लेकिन बीम ही स्वच्छन्दतावादी बनहीन हो गया और उपन्यास-साहित्य यथार्थवाद की ओर अग्रसर हुआ।^१

फ्रेंच उपन्यास यथार्थ की ओर

१०६ स्वच्छन्दतावाद की पूर्ण समाप्ति के पूर्व ही फ्रेंच में यथार्थ श्रुतता के लक्षण दिखायी पड़े। १८३१ से १८४१ के बीच वर्षों में मात्र एक अभिव्यक्तता को यथार्थ बनाने के लिए सबसे प्रयत्न किया गया। इस तरह के प्रयोग करनेवालों में सबसे पहले थियोफिल गॉटिए (Theophile Gautier) और प्रोस्पेर मेरिमे (Prosper Merimee) के नाम आते हैं। गॉटिए ने मानसिक विकारों को उनके यथार्थ रूप में दिखाने के उद्देश्य से परम्परागत चित्रण-आत्मक और वर्णनात्मक शैलियों को छोड़कर भाव-सेवी का प्रयोग किया। 'मदमोइसेल द-मोपिन' (Mademoiselle de Maupin 1835) इसका अच्छा उदाहरण है। इसमें सबक ने पात्रों में प्रस्तुतित तीव्र विकारों को हृदय की बाणी में स्पष्ट किया। इसकी कथा में जो बहुत कुछ रोमांटिक है पेरिस की सैण्ट सुन्दरी द-मोपिन जो समझता चाहती है कि पुष्प अक्सर में क्या है पुष्प बेध कारण करके पुरपों के बीच में जाती है और वैकारिक क्षेत्रों में साव-कार्य करती है। उनके विकारों और भाव-इन्तों को मूर्त रूप देने के लिए गॉटिए ने कई पात्र जिन बनाये हैं जो कथानक को सजीवता प्रदान करते हैं। वायस गॉटिए की यही सैली बाद में यथार्थवादियों के हाथ में आकर अधिक प्रौढ़ और प्राणत हुई और उनके मनोवृत्तियों के अध्ययन ने ही बाद के मनोविश्लेषण की नींव बारी।

गॉटिए के बाद जर्हीकरी शैली को अपनाकर मेरिमे ने अपने 'कोमोन्डा' (१८४१) और 'कार्मेन' (१८४५) में पात्रों के अनाधिकारों को व्यञ्जित किया।

गॉटिए और मेरिमे की सीली यथार्थवाद की ओर झुकी हुई है परन्तु उनके

१ केवल अग्रेजी में उत्पीड़नी शक्ति के उत्तराव में कुछ स्वच्छन्दतावादी हुए, जैसे चमिली ग्रावटी चार्लटी ग्रावटी आदि।

विषय बहुत कुछ रोमान्टिक ही है। पर उन्हींके समय स्टीव्हन्स (मिरी हेनरी ब्रूम) और बास्त्राक ने भी उपन्यास के क्षेत्र में पदार्पण किया और उस समय तक के पश्चात् क्षेत्रों का प्राविष्टार किया। दोनों पूर्णतया यथार्थवादी थे।

स्टीव्हन्स के 'लाल और काला' (Le Rouge et le Noir 1831) और 'पार्मे का सन्यासी' (La Chartreuse de Parme 1831) दोनों में सामाजिक वातावरण का विस्तृत वर्णन है। प्रथम का नायक जूवियन खोरस फेंच विप्लव के पश्चात् के यार्बी के वातावरण में रहनवाला एक युवक है जो बड़ी महत्वाकांक्षा से उन्नत स्थान प्राप्त कर अपना पथ प्रवृत्त करने के निरन्तर प्रयत्न में बिप्लव होकर फाँसी पाता है। पर इस व्यक्तिगत जीवन से बढ़कर सामाजिक जीवन ही उपन्यास का धारक है। दूसरा उपन्यास इटालियन जीवन का विस्तृत चित्रण प्रस्तुत करता है।

बास्त्राक फेंच के प्रथम सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासकार मान जाते हैं। उन्हीं जीवन का अत्यन्त कटु अनुभव हुआ था 'यत' उनमें जीवन का समझने की शक्ति थी। 'सा कामेडी ह्यूमेन' (La Comedie Humaine) उनकी उपन्यास-मांसा है, जिसमें मुई ख्रिस्तिय के समय के पठनोन्मुख कुर्मपा समाज को निराकृत कर दिखाया गया है। बँकरों पैस के पुजारियों कुनीमता के ठेकदारों और समाज-नीति निर्णायकों के जीवन का जोरसापन उनका विषय है। उन्होंने देखा कि पैस की मजदूर मजमूनाहट कैसे लोगों को मुक्त करती है पैसा पैस को कैसे धाकूट करता है इसीसे कैसे दुष्टी से ईर्ष्या करती है और संसार के सारे बर्म साध सौन्दर्य एवं समुची नीति कैसे पैस के मुकाम बनकर गायती हैं।

सेडिन बास्त्राक का समाज-चित्रण एकांशी है। उसमें केवल उन्नतों का जीवन प्राप्य है। पतिव्रतों पापियों अपराधियों और अत्याचारियों के चित्रण में ही बास्त्राक सफल हुए हैं। उन्हीं सामान्य जीवन में कोई धारक नहीं दीखता। कुछ धात्वाचकों के मन में उनकी इस एकांगिता का कारण उनके यथार्थवाद के पीछे छिपा हुआ स्वच्छन्दतावाद है।^१ यमर बास्त्राक में स्वच्छन्दतावाद हो तो भी उनकी पति यथार्थोन्मुख ही थी। 'सा कामेडी ह्यूमेन' के 'ल पेरे गोरियो' (Le Pere Goriot) 'इयुजिने ग्रान्दे' (Eugene Grandet) आदि भागों में समाज का जो रूप प्राया है उससे यह स्पष्ट होता है।

अंग्रेजी उपन्यास में यथार्थवाद की उत्पत्ति

१०७ रिचर्डसन और फील्डिंग से लेकर अंग्रेजी उपन्यास यथार्थवाद के सहारे ही प्राये बढ़ा। डिफेंस और बकर में धाकर उसका रूप अधिक निखर प्राया।

१ See Thomas and Thomas Living Biographies of Famous Novelists, P 111 112.

२ "Although he showed marked preference for the baser side of nature the fact must not be lost sight that he is in part a

जिन समाज में एक धीरे-धीरे सम्पन्नता का दावा किया जा रहा था और दूसरी ओर सर्वत्र मिश्रणी भटकते रहते थे जबकि देश के प्रतिष्ठित नेता देश की स्थिति बदलने की चिन्ता न करके अपनी शान की रक्षा की ही चिन्ता कर रहे थे ऐसे समाज में डिक्केन्स और बैकरे का जन्म हुआ। वास्तविकता में ही डिक्केन्स को समाज की कुरता का अनुभव करना पड़ा। अतः वे गुराबारों और धनीतियों के प्रति अत्यन्त आग्रह्यक थे। 'पिकनिक पेपर्स' 'ग्रोनिंगर ट्रिब्यून' (१८३८) 'निकोलास निकोलेबी' (१८३९) 'वेडिङ्ग कापरफील्ड' (१८४०) 'डमीक हाउस' (१८४१) 'बो मर्से की कहानी' (ए टेल ऑफ़ टू सिटीज १८४९) आदि उपन्यासों में डिक्केन्स ने इस समाज की कड़ी आलोचना की। समाज के जितने विषाक्त रूप को डिक्केन्स ने अपने उपन्यासों में स्वान दिया उनके पहले किसीने नहीं दिया था। पर उनका दृष्टिकोण पूर्णतया यथार्थवादी नहीं है। उनके समाज-चित्रण में तटस्थ निरीक्षण से बढ़कर आलोचना अधिक मिलती है। अत्यधिक आक्रुष्टा और तीव्र शोकात्मकता के कारण उनके पात्र कभी-कभी अतिरिक्तनीय और वास्तविक हो जाते हैं। डिक्केन्स की सबसे बड़ी दुर्बलता उनका पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण है जिसके कारण वे पात्रों को प्रायः टाढ़ बना देते हैं उनके व्यक्तित्व का समन करके उनपर अपनी छवि छाब देते हैं। यही नहीं उस समय तक कि अन्य उपन्यासकारों के समान डिक्केन्स भी मानव के अन्तर प्रविष्ट नहीं हो सके। मानवता उनके लिए एक बूझने से भिन्न अगणित व्यक्तियों का समूह है। उनकी आह्व मित्रताओं को दिखाने में उत्तुङ्ग कलाकार, न व्यक्ति के भावों और इन्हों पर अधिक ध्यान दे सका और न उन मित्रताओं के बीच में देश-काल की सीमा भाँच जानेवाली विराट् एकता को ही समझ सका।

वैकरी डिक्केन्स से बढ़कर यथार्थवादी है और उनमें तटस्थता अधिक है। उनकी समाज की आलोचना में वैयक्तिक मान्यताओं का छतना स्थान नहीं जितना डिक्केन्स की आलोचना में है। उनके 'बीटी जिन्डन की स्मरणार्ण' (१८४४) 'ब्रम्-मेसा' (बैनिटी फेयर १८४८) 'पेनडेन्स' (१८४९ २) आदि में उत्कालीन समाज की औरतड़ कर उसकी निरर्थक नीतियों और शोकात्मक आदतों पर व्यंग्य कसा गया है।

डिक्केन्स और बैकरे को पूर्णतया यथार्थवादी नहीं कह सकते। उनके उपन्यासों में कहीं-कहीं स्वच्छन्द अस्पष्टता धनीकिक वातावरण उत्पन्न करती है। भाये इनकी परम्परा को बनाये रखनेवाले विलियम डिस्की काकिन्स 'बास्टर्ड टैब' आदि कुछ उपन्यासकार हुए हैं, पर उनमें कोई अधिक प्रसिद्ध नहीं हुआ और फिर स्वच्छन्दतावाद की पुनर्जीवन का अवसर मिला।

रूसी उपन्यास आलोचनात्मक यथार्थ की ओर

१०८ पुरिकन के बाव यथार्थवाद ही विभिन्न रूपों में रही उपन्यास का

घामय बन गया और उसने कसी साहित्य को कुछ घालुट्टट रचनाएं प्रदान की। समेटोब से लेकर प्रत्येक लेखक ने सामाजिक परिस्थितियों को पहचाना उसकी विषटक क्षितियों और बिनाशकारी प्रवृत्तियों पर बार-बार आघात किया। समेटोब के 'हमारे समय का एक नायक' (A Hero of Our Time, 1840) में उस सामाजिक दशा का चित्रण है जिसमें पेपारिन नामक एक पुष्क को निरन्तर सपने करते हुए पब्लिकनिक निरुपस्थितियों का सामना करना पड़ता था। बिना कारण ही भोग उसके चेहरे पर झुगुलों के लक्षण देखते थे। सीम्ब एहने पर उसे सामाजिक मानते थे। परिणाम यह हुआ कि वह जो संसार भर से प्रेम करने को तयार था सबसे बुरा करना सीखने लगा।

निकोलाइ वासिल्येविच गोगोल ने भी अपने उपन्यासों में कसी समाज की कुछ निरुपस्थित प्रवृत्तियों को प्रकट किया है। उनके 'इवान इवानोविच और इवान निकिफोरोविच का भ्रम' में बिभकुल निरुपस्थित और निरुपस्थिती जीवन व्यतीत करनेवाले दो मित्र एक दुसरे विषय से विभङ्गकर एक-दूसरे के दुश्मन हो जाते हैं। गोगोल का 'मृत घातमा' (१८४२) पूँजीवादी सम्प्रदाय के प्रतिनिधि चिबिकोव की बन कमाने के लिए प्रमुख बूढ़ीयियों पर प्रकाश डालता है। मोपोस के उपन्यासों के विषय लक्ष्मीन समाज के यथार्थ हैं, पर उनकी बीसी बहुत आश्चर्यपूर्ण होने से यथार्थवाद के अनुबोध नहीं है।

इस तरह हम देखते हैं कि उसीसवीं शती के पूर्वार्द्ध के अन्तिम दो दशकों के यूरोपीय उपन्यास-साहित्य में ही यथार्थवाद के स्वरूप होने के संकेत मिलते हैं। उत्तरार्द्ध में इस यथार्थवाद की सर्वांगीण उत्पत्ति हुई। लेकिन यहाँ उसकी चर्चा करने के पहले अग्रणी में स्वच्छन्दतावाद का जो पुनर्जीवन हुआ उसकी चर्चा करना उचित होगा।

अग्रणी में रोमान्स का पुनर्जीवन

१०६ जेन आस्टिन से लेकर डिकेन्स और बकरे तक के यथार्थवादियों का निरीक्षण वस्तुनिष्ठ था। सावक उनकी वस्तुनिष्ठता की प्रतिक्रिया के रूप में ही तुरन्त कुछ उपन्यासकार अन्तर्निरीक्षण को अपनाकर उपन्यास लिखने लगे। शायदी-बहर्न मित्रिक वास्केस जार्ज इलियट, जार्ज मेरिडिय आदि ने वास्तव जीवन से बढ़कर मानसिक प्रवृत्तियों को महत्व दिया। मनुष्य की अन्तर्प्रवृत्तियों का निवेदन करनेवाली भीतिकवादी बौद्धिकता से मुक्ति स्वनिरीक्षण प्रयाद चिन्तन आदि इनकी विशेषताएँ हैं। शायदास हट्टि और यस्तिज्ज से अनपुष्ट एक नाव-सत्ता के प्रवेपण और जीवन के नव भूस्माकन की ओर प्रवृत्त हुए इनमें जो-जो बौद्धिक हट्टि से रहित थे उनके उपन्यास अपार कल्पना से स्वच्छन्दतावादी हो गये। शायदी-बहर्न और स्टीवेनसन के उपन्यास ऐसे ही हैं। जार्जटी शायदी के 'मोकेसर' (१८४७) 'जेन ग्रै' (१८४७) 'वेनी' (१८४६) आदि में और एमिली शायदी के 'बुपिया हादस' (१८४७) में आत्मा के कुछ क्षणों को बूझ निकालने का प्रयत्न है। इन सबके कथानक अस्मय हैं, पात्र अत्यन्त विकारमय होने से नायक हैं। फिर भी एमिली और जार्जटी की

अनुभूति-मसूत खैसी के कारण सबसे यथार्थ का आभास होने लगता है। बांटी-बहनों के पश्चात् रायट् हर्बर्ट स्टीवेनसन ने स्वच्छन्दतावादी परम्परा को बनाये रखा। उनके 'ट्रेज़र आइलैंड' (Treasure Island) और 'किडनैप्ड' (Kidnapped) पर यथार्थवाद का प्रभाव होने पर भी वे वस्तुतः विषय और खैसी में स्वच्छन्दतावादी हैं।

अंग्रेजी साहित्य में स्वच्छन्दतावाद का पुनर्जागरण तो हुआ परन्तु उसका अधिक विकास नहीं हो सका। बड़ती हुई बौद्धिकता ने यथार्थवाद को ही मात्थठा ही भ्रष्ट यथार्थवाद ही विभिन्न रूपों में उपन्यास-साहित्य का मुख्य प्राथम्य बन गया।

यथार्थवाद और उसके दो रूप

११० इस वैज्ञानिक युग की विस्तेष्यतात्मकता के कारण उपन्यास-साहित्य में दो तरह के दृष्टिकोणों का आविर्भाव हुआ। दोनों में दो प्रकार के यथार्थवादों को भी जन्म दिया। इनमें प्रथम दृष्टिकोण रहिर्मुखी या भीर बाह्य यथार्थों को अधिक महत्व देता था। दूसरा अन्तर्मुखी या भीर बाह्य यथार्थों की अपूर्णता प्रमाणित करके अनुभूति के आचार पर इन्द्रियातीत सत्तों का ध्वनेपण करता था। इन सबकी विलुप्त नहीं यथार्थवाद से सम्बन्धित अध्याय में की जाएगी। यहां केवल इन आचारों के अन्तर्गत आनेवाले मुख्य उपन्यासों का विह्वानलोकन पर्याप्त होता।

अंग्रेजी उपन्यास मानव-प्रकृति की अज्ञातता की ओर

१११ जैसे ऊपर कहा जा चुका है लगभग १८१ तक के सामाजिक उपन्यासों में समाज की आलोचनापूर्ण विवेचना है। ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास की मुख्य घटनाओं के बाह्य रूप मात्र का विवरण है। रोमान्टिक उपन्यासों में भावों की उच्चतम दशा का चित्रण है, किन्तु सर्वत्र बौद्धिक व्याख्या की कमी है। मानव हृदय की सकुन वृत्तियों के वैज्ञानिक विस्लेषण एवं अध्ययन का प्रभाव है। चौदहवीं शती के उत्तरार्ध में यूरोपीय उपन्यास की इस कमी की भी पूर्ति की। फ्रेंच अंग्रेजी और क्सी में इस समय ऐसे उपन्यासकार हुए, जिनमें अनेक पारस्परिक विभिन्नताएँ हैं। होते हुए भी एक बात साधारण रूप में मिलती है। यह उनकी बौद्धिकता है जिसका सहारा लेकर वे सामाजिक दशाओं का निरीक्षण करते हैं या व्यक्ति के अन्तर प्रविष्ट होकर उस समझने का प्रयत्न करते हैं। सामाजिक क्षेत्र में यह बौद्धिकता व्यक्ति और समाज के द्वन्द्वों और संघर्षों के अध्ययन की ओर मुड़ी तो वैयक्तिक क्षेत्र में घुसने विचार मनो विस्लेषण को प्ररस्ता दी।

अंग्रेजी में जार्ज इलियट से इस बौद्धिक युग का आरंभ माना जाता है।^१ इलियट के लिए उपन्यास न मनोरंजन की वस्तु रहा न सामाजिक क्रूरिचलन की आलोचना

१ "The period of Henry James and Meredith and Galsworthy and Wells and which is hardly over today—begins with George Eliot.

का माध्यम। हमने बहुत बड़े बड़े पंजीर, बिरोधपूर्ण और वैज्ञानिक अध्ययन बन गया।
 न्यायिक चारों ओर धनु-मात्र भी धायात पहचान बिना इतिहास में उपन्यास में नैतिक
 शिक्षा की स्थापना की है। उनके बिरोध और विचारपूर्ण अध्ययन मानव के प्रति धन्य
 महानुक्ति और विचारक के दृष्टिकोण ने पाठों को पूर्ण बनाकर स्मृत एक हृदय मीर
 पर रखा कर दिया। फिर भा उनके पास धार्मिक धर्ममूर्ती होते गये और
 'जानिएम डोरायो' (१८७६) जैसे अन्तिम उपन्यास के पास कुछ बिचित्र-मे हा 'य'
 है। किन्तु धन्य की वह धाराधिका की और वही उनके लिए धन वा।^१ 'साइम
 बीड' (१८९९) 'मिल घॉन व फ्रान्स' (१८९९) 'साइमस मारनर' (१८९९)
 'रमोला' (१८९९) 'मिडिल मार्च' (१८७९) '७२' 'जानिएम हाउस' (१८७६) इन
 सबमें पाठों के धार्मिक यथार्थ पर धार्मिक ध्यान दिया गया है। 'साइमस मारनर'
 और उनके बाद के उपन्यासों में इतिहास का साहित्यिक पक्ष भी धार्मिक प्रकृति हो उठा
 है। सभी में उन कुछ छवियों का परीक्षण है जो नैतिक रूप से अनियमित और
 प्रभावित होकर मनुष्य में—बिरोधकर स्त्री में—रहती हैं और समय-समय पर जागरित
 होती हैं। 'साइमस मारनर' में साइमस जो भयंकर कष्टम है जो जीवन में धन बना
 कर रखने के धार्मिक और कोई लक्ष्य नहीं देखना एक छोटी-सी धनायक बानिका को
 पाकर धन्य समस्त स्नह और मधुर जीवन उसीके मुगार्थ धिमाजिन कर देता है। यह
 साइमस नहीं है पर मानव की बिरोधन उपस्थिति की परिस्थिति के अनुसार बिचित्र
 रूप धारण करने का यथार्थ बिच है। नैतिक धातु और अनुभूति का धन्य प्रणि
 बसहीनताएँ, बिकार और विचार का धन्य धादि मनुष्य की स्थायी भावनाएँ ही इतिहास
 के उपन्यासों के धन्यकों का धाधार है और इतिहास इन सबों को धन्य मृदम एवं
 धायवीय रूप में न रखकर उन्हें स्मृत और धन्य धाधार देता है, उन धावों के धन्य
 धन-मात्र को न दिखाकर उनके नैतिक सामाजिक एतिहासिक धार्मिक धारणों और
 धरणाओं की मनुह कुछ धनुधने का धन्य करनी है।^२ फिर भी कभी-कभी न बना
 धारण मनुधता तक धनुध जाती है, जैसे 'मिल घॉन व फ्रान्स' में धा जीवन धन्य
 धन्य करते हुए एक धनीक धार्मिक लोक में बिचरत करने धन्य है।^३ जैसे 'मिडिल
 मार्च' में। इनके बिरोध 'साइमस बीड' में धन्य के धायीय जीवन का धार्मिक बिच
 भी है।^४ सामाजिक धाधारण और नैतिक धनुधियों का धिमाधन करन इन

१ "In George Eliot truth was a doctrine and a conviction to which she held with religious devotion." Baker The History of the English Novel, Vol VIII, P 223

२ "She shows us not only the flower but its root and the soil and weather which have gone to give its peculiar colour and shape" --Cecil Early Victorian Novelists P 224

३ "As a rich and crowded canvas a veracious picture of English rural life in times already now gone by, it is one of the —

जार्ज इलियट ने हार्डी और मेरिडिथ के लिए स्पष्ट मार्ग बना छोड़ा।^१

मेरिडिथ के उपन्यासों में भी व्यक्तिपरक विस्लेषण की प्रमुखता है। उन्होंने मानव की विचार-धारा में जो प्रभाव पड़े हैं, उनका स्वच्छन्दतावादियों के परम्परागत नैतिक सिद्धांतों से भिन्नकर अध्ययन किया है। उनके कुछ सामाजिक सिद्धान्त हैं पर वे कोरे सिद्धान्त-मात्र नहीं हैं। जीवन को विकास देनेवासी नैसर्गिक प्रवृत्तियों से उनका संबंध है।^२ यद्यपि नैसर्गिक जीवन का स्वाभाविक प्रवाह ही उनका आधार है तो भी उससे ऊपर उठकर मेरिडिथ एक आदर्श जीवन की ओर उन्मुख होते दिखायी पड़ते हैं। 'रिचर्ड फेवरन' (१८५६) 'थ्योनाम्स कैरियर' (?) 'ब ईगोइस्ट' (१८७६) आदि में जीवन की परोक्ष आलोचना एक सतृप्ततर जीवन की ओर संकेत करती हैं। मेरिडिथ और इलियट इस बात में भिन्नते हैं कि दोनों में विस्लेषणात्मक पदार्थवाद के साथ-साथ एक उदात्त जीवन-दर्शन है जो कहीं-कहीं उपदेशवाद का सहाय लेकर प्राये बढ़ता है।

फॉब उपन्यास व्यक्ति-विस्लेषण की ओर

११२ इस समय फॉब उपन्यासकारों में मस्ताब फ्लावेयर और फ्लैमिन्स वाले व्यक्ति के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए। वास्तविकता में ही फ्लावेयर को व्यक्तियों के प्रति—विशेषकर पायस मूर्ख आदि असह्यारस व्यक्तियों के प्रति—विशेष आकर्षण था।^३ मनुष्य शरीर की बीर-शक्ति करनेवाले पिता के (उनके पिता डाक्टर थे) इस पुत्र ने मानवता की बीर-शक्ति करने का प्रयत्न किया। बिना निरीसल के उन्होंने कुछ नहीं लिखा। उनके सामाजिक एवं व्यक्ति-संबन्धी अपार अध्ययन का फल है 'मदाम बोवारी' (Madame Bovary 1857) जिसकी नायिका पाप के मार्ग है अपने आपको रोकने का सतत प्रयत्न करते हुए ही निरन्तर उच्च होने का प्रयत्न करते हुए ही प्रकृत्या पतन की ओर जाती है—पतन से पतन की ओर और अन्त में मरण की ओर। इसमें एक व्यक्ति की कण्ठ मनोवृत्तियों का अध्ययन है, और साथ-साथ सहस्रों वर्षों से एक आदर्श जीवन प्राप्त करने का प्रयत्न करते हुए भी पाशविकता में मुक्त होने में असमर्थ मानव-जाति का संकुल इतिहास निहित है। इसी तरह

possessions of our mental gallery —Baker The History of the English Novel, Vol. VIII, P 241

^१ See, Church The Growth of English Novel, P 164

^२ "From nature's parental dealings with man and from the success of those who devoutly serve, Meredith deduces the laws of man's life"—Baker The History of the English Novel Vol. VIII, P 297

^३ Thomas & Thomas Living Biographies of Famous Novelists P 154

‘आधुनिक शिक्षा’ (L Education Sentimentale 1861) और सन्त अन्तोनी का प्रसोभन’ (La Tentation de Saint Antoine) में भी मानवता की वैयक्तिकी नीचता पतन, अंधता, बलहीनता और पराजय का विस्तृत इतिहास और व्यक्ति का अन्तर्जीवन (प्रथम में जेरेमिक मोरो का और दूसरे में सन्त अन्तोनी का) है। दावे का ‘मानन लेस्का’ (Manon Lescaut) की नायिका भी मर्याद बोधार्थ की तरह पतित होती जाती है और एक पुरुष के जीवन को भी बरबाद कर डालती है। उसका संश्लेषण जीवन का विषम दावे के मानसिक विक्षोभ का प्रकाश उदाहरण है।

किसी उपन्यास व्यक्ति की ओर

११३ सगम इसी समय इस में तुर्गेनिय और हास्ताएवस्की ने सामाजिक विषयों से आकृष्ट होकर भी व्यक्ति-विश्लेषण में बड़ी सफलता पायी। तुर्गेनिय के ‘अज्ञात भूमि’ (Virgin Soil, 1876) का नेत्रमोह एक उत्कामीन सब-नम्य बर्मीन युवक का प्रतिनिधान करता है जो जनता की ओर जाने के प्रयत्न में पराजित होता है। यह एक सामाजिक प्रकृति का वैयक्तिक उदाहरण है। उत्कामीन जीवन के साधारण उपरिष्कण (Superfuous) मनुष्य का विरसेपण तुर्गेनिय के और एक उपन्यास ‘वर्गिन’ (१८८५) में भी मिलता है। ये पात्र सामयिक समाज के ही विरूप रंग हैं। अतः उनका जीवन सामाजिक जीवन के एक पहलु का रूप है। इसके विरुद्ध हास्ताएवस्की और हास्ताएव के पात्रों में जो सबल व्यक्तित्व है, उसका आधार मानव की चिरकामीन भावनाएँ हैं। रस्कोलनिकोव (‘अपराध और दण्ड’ में) प्रिन्स मिशकिन (‘महामूर्ख’ में) मत्वाळा (‘युद्ध और शान्ति’ में) और अन्ना करेनिना आदि अपना अणुिक अस्तित्व रखकर मिट नहीं जाते। बेस-काल की सीमार्थें पार कर वे मनुष्य के मनोमोक के प्राप्ति बन जाते हैं। अतः सभी कालों में सभी समाजों में उनकी बड़ समुल एवं सुदृढ़ रूढ़ी। किन्तु उनका अस्तित्व सामाजिक-भाव नहीं है। इससे बढ़कर अधिक वैयक्तिक है। मन के अनियमित स्वतंत्र प्रवाह को रोक रखने का निरन्तर प्रयत्न करते हुए पराजित होनेवाली अन्ना करेनिना की नियंत्रण और स्वतंत्रता के बीच के अचपकानित अशान्ति सभी मिटती है जब वह मानवार्थी के नीचे अपने जीवन का अन्त कर देती है। उसका मानसिक अन्त वैयक्तिक होन पर भी सामाजिक है। हास्ताएवस्की भी अपने पात्रों के अन्तर्मोक के अशांत स्वभाव का आधिष्ठाण करते हुए मानव की क्षिति ही अनुभूतियों विचारों विकारों और अन्तों को प्रकाश में लाते हैं, जो उनके बाह्य अस्तित्व से अधिक महत्वपूर्ण हैं। इसीलिए वे ही पात्रिय उनमें अन्तर्माय अन्तर्भाव (Real Realism) देखते हैं^१।

व्यक्ति और समाज का संघर्ष

सामाजिक परिस्थितियों में विकसित होनेवाले व्यक्ति का अध्ययन उन्नीसवीं

धर्ती के उत्तरदाई की एक अन्य प्रवृत्ति है जो सामान्य रूप में धर्मोपेक्षी फेंच धीरे स्त्री उपन्यासों में मिलती है। इसकी प्रेरणा यथार्थवाद की बहुमुखी वृत्ति है।

११४ धर्मोपेक्षी में—सामाजिक बन्धनों के कारण व्यक्तिगत जीवन में कड़ी बाधाएं और यातनाएं धाती हैं और सामाजिक नियम नीति और मान्यताएं व्यक्ति की अलगहीनताओं से साम उठकर उसका गला कंसे पोंटती हैं। इसका कल्याणनक इस नाम से हार्डी ने 'टेस' और 'बूड' (१८६५) में दिखाया है। सामाजिक धनीतियों के विरुद्ध विरोध में भी धाबाज उठाया भी पर वे व्यक्ति के बाह्य जीवन तक ही सीमित रहे। हार्डी ने इन सामाजिक अत्याचारों को व्यक्ति के आन्तरिक जीवन पर भी झुठारा घात करते देखा। हृदय की कोमल उल्लुओं को धीरे से नीचकर लोड़ते समय जो विस्फोट स्वर होता है वही 'टेस' और 'बूड' में देखते हैं। अनुभूति के आधिपत्य के कारण उनके पास अत्यन्त कमालमक अस्तित्व रहते हैं। विरोधकर हार्डी के स्त्री-पात्र की कोमलता का पुंज है। इस कोमलता और सहनशीलता पर बार-बार पड़नेवासे आघात ही हार्डी की टूटवही के आधार हैं। हार्डी के पात्रों की शोकात्मकता केवल समाज के अत्याचार के कारण नहीं है बल्कि व्यक्ति की कमबोरी के कारण भी है। टेस पतित होती है तो उसमें उसका भी उत्तरदायित्व है जो स्वाभाविक है। केवल समाज पर अपराध लगाकर उसका विमर्शन करने से इतनी स्वाभाविकता नहीं आ सकती है और न टूटवही ही इतनी मार्मिक हो सकती है। हेनरी जेम्स के उपन्यास प्रायः सामाजिक बाधावरस प्रस्तुत करते हैं तो भी उनके ग्रीक उपन्यासों में समाज और व्यक्ति का संघर्ष कम महत्व का नहीं है। 'द स्पॉइल्स ऑफ प्वाइन्टन' (The Spoils of Pointon 1897) में एक धनी भूषक जीवन एक बदनाम घर की लड़की मोना से प्रेम करता है पर सम्पत्ति-लाभ के नम से उसकी माता उसे रोकती है और दूसरी लड़की पनेडा से उस फंसाकर संपत्ति उसको दे देती है। लेकिन मोना से विवाह करके अपना सर्वनाश करता है। इस उपन्यास में जन और प्रेम से सजाव मानसिक इन्द्र मुक्त आकर्षण है। 'क्यूटर के पंख' (The Wings of the Dove, 1902) में भी जन और दो लड़कियां नामक के मानसिक इन्द्र के कारण हैं। 'सोने की बाली' (The Golden Bowl) में हेनरी जेम्स ने सन्नेह के कारण सामान्य जीवन में घाले वाली उलझनों को दिखाया है। समस्याओं के सम्बन्धों में हृदय के विकारों और दुष्टों को विविध करने में हेनरी जेम्स ने अपूर्व सामर्थ्य दिखाया है।

११५ फेंच में—फेंच उपन्यासों में व्यक्ति और समाज का संघर्ष-पूर्ण संबंध सामान्य है। फेंच यथार्थवादी और प्राकृतिकतावादी उपन्यासकारों न समाज और व्यक्ति की धर्मनिरपेक्षता का जो विमर्श किया है उसमें पारस्परिक संघर्ष नहीं है। पात्रों का व्यक्तित्व समाज के आचार-विचारों नियमों या बन्धनों से विद्रोह नहीं करता। हमके विरुद्ध व्यक्ति और समाज की सह-अन्य वृत्तियां समबाय होकर बिना किसी संघर्ष या विषमता के स्वाभाविक रूप में घाये बढ़ती हैं। पत्रावेयर के 'मराम बागारी' और 'माबुक दिना' दावे का 'साफो' (Sapho, 1884) ओला के 'रोमन मन्थार' परम्परा के उपन्यास जिनमें 'न अलम्बार' (१८७७) 'म धोमर' (१८७६) 'नाना'

(१८८८) 'जेमिन्स' (१८८५) आदि मुख्य हैं। मोपासाँ के 'कामुक' (Bel Ami, 1885), 'एक बीवनी' (Une Vie 1887) आदि के सभी पात्र समाज जिस सांस्कृतिक वाता में बहता जाता है उसीके साथ बहते जाते हैं। प्लात्रेयर को छोड़कर और किसीका कोई पात्र प्रतिरोध तक नहीं करता।

११६ बनी में— उनके विरुद्ध इसी उपन्यास में संघर्ष का रूप परमार्थ प्रकट है। समाज और परम्परा के विरुद्ध संघर्ष करनेवाला व्यक्ति व्यक्तिगत सांस्कृतिक बन्धनों के कारण किनारा बिचल है वह कैसे धत-धत मानसिक शूलताओं में बँधा रहता है यही दिखाना हास्टायनस्की और तुर्गेनेव का ध्येय है। रस्कोमनिकोव ('अपराध और दण्ड' में) सामाजिक मर्यादाओं और नीतियों की अमान्यता मानकर अपना व्यक्तिगत धार्मिक विज्ञान के लिए एक बनी लकी की हत्या करता है। पर उसके बाद परम्परागत मनुष्य में पसी हुई उसकी आत्मा ही उसकी प्रवाराणा करने लगती है। तुर्गेनेव के 'दिवन' ('दिवन' में) और मज्जिनोव ('अज्ञात भूमि' में) अपनी परम्परा-वस्तु प्रकृति के विरुद्ध और कुछ बनना चाहते हैं पर ये उपरिष्कृत (Superfluous) मनुष्य जीवन में नईकर पराजय का अनुभव करते हैं। तुर्गेनेव का 'बाप-बेटे' (Fathers and Sons, 1861) व्यक्ति और समाज के निरन्तर संघर्ष का और पीढ़ी-दर-पीढ़ी समाज के क्रमिक विकास का इतिहास है। उन्नीसवीं शती के शुरुआत तक के सांस्कृतिक बन्धनों में पड़े पिता और पण्डितद्वय के क्रियाशील जीवन युद्ध दोनों का संघर्ष उस के विकास का इतिहास का एक अध्याय है। पनचारोफ़ के तीनों उपन्यासों का आधार भी यही संघर्ष है। 'एक साधारण कथा' (A Common Story 1847) का नायक अपना 'कुलीनों का बौंसला' छोड़कर नवीन नगर-जीवन में प्रविष्ट होता है उसके शान्ति न पाकर ग्राम को लौटता है पर अब वहाँ भी असंतुष्ट होकर फिर नगर जाता है और नगर-जीवन के अनुकूल व्यवस्थापन बनकर आगे बढ़ता है। 'ओब्लोमोव' (Oblokov 1859) का नायक परिस्थितियों से संघर्ष करके पराजित होनेवाला एक युवक है। 'कपराय' (Preclploe 1869) की माफिका और बेच में दो बीड़ियों की संस्थितियाँ उचित हैं। इस प्रकार ये सब इसी उपन्यास न्यूनाधिक मात्रा में व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व को प्रकट करते हैं।

कस्तावाद और प्रकृतिवाद

११७ क्षेत्र में— उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में फ्रेंच साहित्य में बढ़ती हुई बीडिकता ने प्रकृतिवाद का रूप धारण किया। यमार्थ के क्षेत्र में यह एक नया प्रयोग था जो मज्जिनोव आदि धर्मिक खोसा मोपासाँ और हाइडरगैन से किया गया। इनके पूर्व प्लात्रेयर ने ही यमार्थ को कसा के बरम यमार्थ के रूप में मायता दी थी। यमार्थों ने पात्रों एवं परिस्थितियों के सुक्यातिगुणक व्यक्तियों पर ध्यान देकर, प्रत्येक पात्र के विशद वर्णन में अपनी कसा का प्रयोग किया। भावुकता से वे दूर रहे। उनकी कल्पना मनी वस्तु के व्यापिकार में नहीं है बल्कि विषय के धारणक व्यक्तियों के चुनाव में और उनकी प्रतिपादित करने के ढंग में है। जो वस्तु जिसकी अधिक स्वाभाविक है

विकासको व्यञ्जित करने में श्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती वह उतनी अधिक यथार्थ होती है। बोला ने इन्हीं सिद्धान्तों को अपनाया और साथ ही वैज्ञानिक अध्ययन की प्रणाली ओढ़कर उसे अधिक यथार्थ बनाया। उनके बीस के लगभग उपन्यासों में मनोविज्ञान शरीरशास्त्र और विकासवाद के सिद्धान्तों के आधार पर कई चीज़ों का अध्ययन है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास की मायिका माना परम्पराओं और परिस्थितियों से उत्पन्न है। प्रकृतिवाद पर प्रायः धृति यथार्थ का जो आरोप किया जाता है उसके विरिद्ध यह वैज्ञानिक अध्ययन भी उसका मुख्य श्रेण है जिसमें बोला और मोपासा के विरिद्ध डेव या अन्य भाषा का और कोई प्रकृतिवादी सफल नहीं हुआ है। संक्षेप में प्रकृतिवाद की विशेषताएँ हैं (१) भौतिक यथार्थ को महत्त्व देकर रचना को विपणन बनाना (२) वर्णन में निश्चलत्व (३) भस्त्रे-बुरे के प्रति धनासक्त रहकर उनकी जीवन की स्वाभाविक वृत्तियों के रूप में देखना (४) कलापन की ओर विशेष सहर्षता और भाव से बढ़कर रूप के प्रति सचेत रहना (५) मानव-स्वभाव का परम्परा एवं परिस्थिति के बातावरण में वैज्ञानिक अध्ययन।^१

११८ — संघेरी में—उसीसवीं सदी के अन्त में संघेरी में भी कुछ प्रकृतिवादी प्रयोग हुए। लेकिन न उसका विकास हुआ न कोई उत्कृष्ट प्रकृतिवादी रचना की सृष्टि हुई। मार्क रबर्ट्स जार्ज गिस्सिंग जार्ज मूर और वास्टर के पैर उपन्यास केवल नम्र विषय में प्रकृतिवादी उपन्यासों की तुलना में भाते हैं। डेव के प्रकृतिवादियों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण और व्यक्ति एवं समाज की संकुल वृत्तियों का विश्लेषण उनमें न रहा। उच्च कुलोत्पन्न गिस्सिंग को निम्न वर्ग का अध्ययन कष्ट-साध्य था और फिर निम्न वर्ग के प्रति उनका भाव रसा का था जो प्रकृतिवादी दृष्टिकोण में वाञ्छक है। जार्ज मूर का 'एस्बेर वाटर्स' (१८८४) संघेरी की सबसे सफल प्रकृतिवादी रचना है जिसमें जीवन के विभिन्न धर्मों का सूक्ष्म निरीक्षण है। वास्टर पैर में प्रकृतिवादियों की रचनात्मक कला है पर वे जीवन के नम्र यथार्थों के प्रति उतने आकर्षित नहीं दीखते। वास्टर बाइबल भी कलावादी थे। दोनों के लिए कला कला के लिए थी। बाइबल यद्यपि जीवन की नुस्तिष्ठता को पूर्ण नम्र रूप में प्रस्तुत नहीं करते तथापि समाज की नीरसाई करके उसकी गंभीरी को दिखाते हैं और उसके लिए कलात्मक अभिव्यञ्जन का सहारा लेते हैं। उनका मत में नैतिक दृष्टिकोण और सद्भावमूर्ति कला में हीनी का एक अद्यत्म स्वभाव-विरोध है।^२ कलाकार को अपने नैतिक दृष्टिकोण के कारण किसी घटना पर धाँसु बहाने और किसीपर झुझा उठने का अधिकार नहीं है।

११९ — कसी में—यद्यपि कसी साहित्य ने कभी प्रकृतिवाद को नहीं अपनाया तो भी सबसे पूर्णतया धर्मभावित न रहा। डेव उपन्यासों में जीवन के निम्न स्तरों

१. प्रकृतिवाद का विशेष अध्ययन यथावत से सम्बन्धित अध्याय में किया जाएगा।
इसके अध्याय ७ पर ९।

२. "An ethical sympathy in an artist is an unpardonable mannerisms of Style"—Wilde—Dorian Gray—Preface.

के जो स्वप्न मिटा रही लगभग उसी काम में इस के घालोचनात्मक मध्यावधारी उपन्यासों में भी मिला। पिसेन्स्की का 'हजार पात्माएँ' (Thousand Souls 1858) और गोलीव्योव कुटुम्ब' (Goloviyov Family) इस तरह के उपन्यास हैं। पहले में स्वार्थसिद्धि के लिए सब कुछ करने की सीमा रेंगनात्मक है और दूसरे में स्वार्थ कृपणता अत्याग्रह और अधिकार से प्रभुता एरीना वेदोना नायिका है। दोनों उपन्यासों में प्रकृतिवाद की सी मारीकी है पर उसकी निराला नहीं है। इनका दृष्टिकोण ही निम्न है। जीवन की निम्न कृतियों के प्रति इनमें तो घालोचना का भाव है वह प्रकृतिवाद के विमोक्त चिन्तक है। दूसरी बात यह है कि जब प्रकृतिवादी भौतिक कृतियों की ही विशेष महत्त्व देते हैं वे घालोचनावादी जीवन की सब तरह की निरुद्ध प्रकृतियों की ओर संकेत करते हैं। उन ने मनुष्य को कृतज्ञा पतित बना रखा है इसे वे कमाकार कठिन व्यय से दिखाते हैं। अगर प्रकृतिवाहियों की निरपेक्षता किसी कसी कमाकार में भी तो वह बेवजह में। उनके 'वाक नवर' 'स्टेपी' आदि में पूरी निर्ममता से जीवन की निरुद्ध कृतियों की चर्चा की गयी है। इनमें बुराइयों और भलाइयों के संघर्ष हैं, पर प्रायः बुराई की ही विजय होती है। प्रकृतिवाहियों की ही निराशावादी विपाशात्मकता बेवजह में भी है। लेकिन वे प्रकृतिवाहियों से इस विषय में भिन्न हैं कि उनके विषय अधिक विस्तृत हैं और समाज की भौतिक समस्याओं में सम्मिलित हैं।

८

यूरोपीय उपन्यास-साहित्य

(१) बीसवीं शती

बीसवीं शती के यूरोपीय उपन्यास-साहित्य की मुख्य प्रेरणाएँ

१२० बीसवीं शती के आरंभ ने यूरोपीय उपन्यास-साहित्य में भावना कल्पना और स्वच्छन्दता का घन्ट कर दिया। इनके पहले देसी कुछ प्रकृतियाँ उत्पन्न हुई, जिनका आधार पूर्णतया बौद्धिकता थी। संक्यों बंधों के साहित्यिक प्रयोगों ने व्यक्ति और समाज का एक-दूसरे की तुलना में जो भ्रमोन्मत्त किया था उसमें परस्परगत रुढ़ियों के विरुद्ध कई स्रांतिकारी परिवर्तन आए गये। भौतिक विज्ञान प्रकृति-विज्ञान और मनोविज्ञान के क्षेत्र में जो विकास उन्नीसवीं शती में तुल्य उनका परिणाम साहित्य पर—और उपन्यास पर पड़ना अचम्भ्यभावी था। बीसवीं शती के आरंभ की उपन्यास पर एडवर्ड कार्पेटर, बर्ट्रान्ड रसेल आदि दार्शनिकों का प्रभाव जैसे मनोविज्ञानिकों एवं क्रोने जैसे कला-तत्त्वज्ञों का प्रभाव पड़ा है।^१ कार्पेटर के यथ में सम्मता है जहाँ मनुष्य को बहुत

कुछ दिया है वहाँ उसकी बड़ी हाथि भी की है। मनुष्य ने अपने मस्तिष्क की शक्ति को प्रति महत्त्व देकर अपनी नैसर्गिक प्रकृति की एकता को बिछिस करके जीवन के सभी क्षेत्रों में सर्प उल्लभ किया है। रसल ने बताया कि हमें सम्मता एक बंजन में बन्द लेती है लेकिन वही सम्मता हमें मुक्ति दे सकती है। इन दोनों के उपर्युक्त मतों का संघर्षी उपन्यास पर विशेष प्रभाव पड़ा है। सामाजिक जीवन और सम्मता से टकरा जाते हुए व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्तियों की संशयों का अध्ययन इस घटना की उपन्यासकारों का प्रिय विषय है। रोस के सम्मता में व्यक्ति कायद की मान्यताओं का रंग आदि के द्वारा खंडन हो चुका है, तथापि उनके मूल सिद्धांतों का प्रभाव भी पार है। नेत्रिका बेस्ट मई सिकेस, वी एच कार्ल आदि के उपन्यास कायद से प्रभावित हैं। बीसवीं शती के ठेक उपन्यासों में कायद के मनोविश्लेषण-संघर्षी सिद्धांतों का विशेष स्थान है। फंड और मरबी के मनीन उपन्यासों में जो अन्तर्निरीक्षण है जो प्रभावदा है उनका मूल श्रोत कायदीय विचारधारा ही है। इस समय के विश्व साहित्य को एक नया मोड़ देनेवाले शार्सनिक कार्ल मार्क्स भी हैं। सोवियत उपन्यास साहित्य मार्क्सिय दर्शन से प्रेरणा पाकर एक नयी दिशा में उन्मुख हुआ। मार्क्स का शार्सनिक सिद्धांत इन्ड्राल्मिक शक्तिवाद है जिसको आधार बनाकर साहित्य ने समाज शारी मरार्थवाद को जन्म दिया। पोलैण्ड ककोस्लोवेक्या आदि देशों के अकृतातम उपन्यास-साहित्य भी इस साहित्यिक सिद्धांत को अपनाए हुए हैं।

बीसवीं शती ने अंग्रेजी उपन्यास

बीसवीं शती के अंग्रेजी उपन्यास-साहित्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है (१) समाज-विश्लेषक और (२) व्यक्ति-विश्लेषक।

१२१ समाज-विश्लेषक उपन्यास—जैसे कहा जा चुका है अंग्रेजी के समाज शास्त्रीय उपन्यासों में समाज और सम्मता से व्यक्ति का सर्प ही मुख्य विषय है। ऐसे उपन्यासों में प्रमुख एक बी बेस्ट हैनरी बेस्ट बीसक कानराड सामुएल बटलर, मरार्थ बेनेट जॉन गाल्मशी हैं एम कार्टर, एरुमस हक्सले आदि के हैं।

बेस्ट का इष्टिकोश आलोचक का है। उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ—जो सभी सभी शती की हैं—उन वैज्ञानिक रोमांस हैं। आधुनिक विज्ञान के तत्त्वों का आधार पर वे जीवन के जिन पहलुओं पर विचार करते हैं और प्रायः एक नये संसार की रूप रेखा देते हैं। 'जन्म पर पहला मनुष्य' (The First Man on the Moon) 'समय-यन्त्र' (Time Machine) 'विभिन्न सन्दर्भ' आदि ऐसे उपन्यास हैं। 'समय यन्त्र' उस भविष्य की ओर संकेत करता है जब संसार काम करनेवालों का रहेगा। 'विभिन्न सन्दर्भ' में स्वर्न का एक देश इस संसार में आता है। युद्ध व्याप्त बकाबट आदि को तो वह संभाल लेता है लेकिन मानव-समाज को समझ नहीं पाता। यहाँ के पिछाकार, बहन कड़ियाँ बर्न जेव जमीन के चारों ओर लगाए कटिदार तार आदि को समझने में वह बिसकुल असमर्थ होता है। रोमांस की चरम सीमा में भी बेस्ट शरती को नहीं छोड़ते। 'प्रेम और मि लुशम' (Love and Mr Lulsham)

'किन्वा 'मि पोत्री' आदि कुमरी तरह के उपन्यास । जिसमें बेल्स ने मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी के रूप में देखा है । व्यक्ति से वैयक्तिकता की अपेक्षा रहनेवाला समाज वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिए समर्पण करनेवाले व्यक्ति । यही इनके विषय हैं । मुरशम किन्वा और पोत्री से समाज बनावश्यक अपेक्षाएं रखता है और के स्वतंत्रता के लिए मड़ते हैं । बेल्स का आदर्श व्यक्ति को अधिक स्वतंत्रता देकर कर्तव्य के प्रति उत्प्रेरित करना है । यह आदर्शवाद कहीं-कहीं उपदेशवाद की सीमा तक पहुँच जाता है । उप देशवाद ही तक से विधिवत होकर बल्स के तर्क उपन्यासों में (Discussion Novels) में जाता है । 'एन केरोनिका' विवाह 'अमिट साय' आदि सैद्धांतिक विवेचन के कारण बाधित है और कला की दृष्टि से निम्न स्तर के हैं ।

बेनेट और मास्बर्दी ने अपने काल के अग्रणी समाज का प्रायः पूर्ण चित्रण और सर्वांगीण विश्लेषण किया है, जो अपनी वास्तविकता के कारण सामाजिक इतिहास के समान मूल्यवान् है । वे हिक्मस के समान आलोचक न थे बेल्स और रॉ के समान प्रचारक न थे । उन्हें न समाज के कलंक-मात्र का लेखा तैयार करना था न कोई सामाजिक आदर्श उपस्थापित करना था । एक निरीक्षक की दृष्टि से उन्होंने सम्पूर्ण समाज को देखा और जो कुछ देखा उसका काय-कारण खूँटकर वैज्ञानिक अध्ययन किया । बेनेट में जीवन को समझने की जो प्रवृत्ति आकांक्षा सही-सही निरीक्षण की जो शक्ति और जीवन को तथ्य में व्यक्त करने की जो प्रतिभा थी उससे उन्होंने तत्कालीन समाज-मात्र का प्रबलोजन और विश्लेषण किया । मास्बर्दी में विस्मयण साधारणीकरण और आलोचना की प्रवृत्ति बेनेट से अधिक है । उनके लिए जीवन ताल्कालिक नहीं है उसकी एक धारा बहती धायी है और बलती रहेगी । इतिहास के इस घन्टरे के कारण बेनेट एक ही समय के समाज को देखते हैं जबकि मास्बर्दी पीढ़ियों से बलते आनेवाले और विविध प्रभावों से अपना रूप निश्चित करनेवाले मलिन्य समाज को । बेनेट के 'उत्तर का एक मनुष्य' (A Man from the North 1898) 'पाँच सहरों की अन्ना' (Anna of the Five Towns, 1902) 'लीओनारा' (Leonara, 1903) 'वृद्धियों की कहानी' (Old Wives Tale, 1908) आदि में इंग्लैंड का ताल्कालिक आभावरण प्रकट किया गया है । 'क्ले हंगर' उपन्यास-जयी में (Clay Hanger 1910 Hilda Lessways, 1911 These Twain 1916) दो पीढ़ियों के बीच का विचार-संघर्ष भी दिखाया गया है । मास्बर्दी के तीन उपन्यास जयियों में हैं, १ 'अद्विष्ट साय' जिसके भाग हैं, 'अमीर धारमी' (The Man of Property 1906) 'चंसेरी में' (In the Chancery 1920) 'किराये के लिए' (To Let—1921) २ 'ए माइने कामेडी' जिसके भाग हैं, 'सुंदर बन्दर' (The White Monky 1924) 'चाँदी का चम्मच' (The Silver Spoon, 1926) और 'ह्वन-गीत' (Swan Song, 1928) ३ 'परिच्छेद की परिचयाप्ति' (End of the Chapter) जिसके भाग हैं, 'सेविका' (Maid in Waiting 1931) 'बनम फुल फे' (Flowering of Wilderness, 1932) और 'दूसरी नदी' (Other River 1933) । अद्विष्ट मुद्रम की कई पीढ़ियों का सामाजिक आभावरण में

अर्थिक विकास होता है। धनवश का इनपर काफी प्रभाव है। जीवन में परम्परा (पैतृकता) और परिस्थितियों के बीच में भी संघर्ष चलता है, जिसके कारण जीवन क्रमशः विचलित होता है। उसका मास्टरवर्क ने सामाजिक एवं मानसिक क्षेत्र में निरीक्षण किया है। परिस्थितियाँ और पात्र बीरे-बीरे निराकृत होते जाते हैं। वे कभी पूर्णतया स्पष्ट नहीं होते। जैसे हम अपने बहुत निकट के व्यक्तियों को 'अच्छी तरह' जानने पर भी पूर्णतया नहीं जान पाते उसी तरह मास्टरवर्क के पात्रों से निकट सम्बन्ध स्थापित करके भी उनसे कुछ दूर ही रह जाते हैं। पात्रों की यह अस्पष्टता उनको अधिक मर्मांतर्क बनाती है। धनवश इसीलिए कहा जाता है कि उनके उपन्यास जीवन के समान नहीं जीवन ही हैं।^१

एल्डुपस हवसन का सामाजिक विस्लेषण एक व्यंग्यकार का है। उन्हें जीवन में जो विचित्रताएँ दिखाई पड़ती हैं उनको कथा करने का बड़ा सीक है और बना करने के बाद इनपर वे विल कोलकर हँसते हैं। 'ओम देनो' (१९२१) 'एथिक हि' (१९२३) 'वोड बैरन सीम्स' (१९२५) 'प्लाइट काउन्टर प्लाइट' (१९२६) 'मास्टर मेनी ए सम्मर डाइज बि स्नन' (१९४४) आदि में वर्तमान बौद्धिक संस्कृति और सामाजिक जीवन पर तीव्र व्यंग्य है। उदाहरण के लिए अन्तिम उपन्यास को लें। इसमें एक लक्षपति की कथा है जो गरम से डरता है और जीवन की मधुर अनुसूतियों के अनुभव के लिए डरना होना चाहता है। उसका डाक्टर जीवन की बिनाधो-न्युन गति को रोकने में सफल होता है किन्तु उसके मानवीय गुण भी नष्ट हो जाते हैं। ह्रास होते-होते उसमें बन्दों के लक्षण दिखने लगते हैं। अपनी वैज्ञानिक विद्वियों से प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले मनुष्य की मर्मांतर्क पराजय को प्रकट करनेवाली यह कथा वस्तुतः निराशावादी नहीं है बल्कि मनुष्य के लिए एक चेतावनी है।

ई एम फास्टर के उपन्यास भी जीवन के सामाजिक पहलुओं का विस्लेषण करते हैं। प्रेम वासना और दाम्पत्य जीवन के मूल सिद्धान्तों की विवेचना 'बर्हा देवता भी नहीं जाते' (ब्लेयर एन्वल्स फ्रीडर टु टु १९३१) 'लम्बी यात्रा' (वि लयिस्ट वर्नी १९३७) आदि में है। 'लम्बी यात्रा' में एक बनी युवक को सभी प्रकार के सुख पाता है गलत स्त्री से विवाह करके सभी आशाएँ खो बैठता है। 'सिड़कीवाला कमरा' (A Room with a View) की नायिका का एक कुलीन युवक है विवाह निश्चित हुआ है। लेकिन उसे युवक के नये-नूने छिप्टाचार से बँधे हुए प्रेम में तृप्ति नहीं मिलती। इसके विरुद्ध स्वयं ग चाहने पर भी वह दूसरे एक युवक के पक्ष में जा जाती है जिसका प्रेम आशेष का पर्याय है। सामाजिक जीवन और मनोविकारों की घसनुनित दृष्टि ही फास्टर का मुख्य विषय है।

धन्य समाज-विश्लेषकों में सामरसेट मॉम के भी प्रीस्टली चार्ल्स मोर्गन प्रिग कोम्प्टन बेनेट आदि के नाम लिय जा सकते हैं। माथ ने अपने प्रथम उपन्यास 'सैवैच

की लिखा (Liza of Lambeth 1897) में प्रेम को विषय बनाया था पर भाव में वे समाज के धार्मिक विस्फुट क्षेत्रों और धार्मिक गहन समस्याओं की धोर धाये। वस्तुओं के मूल्यांकन में संसार को भ्रम भरता है, उसे दिखाना और सही मूल्य निर्धारण करता उनके उपन्यासों का ध्येय है। 'मून और छ. पेन्स' (Moon and Six Pence, 1919) का नायक चित्रकला के प्रेम से अपना कारोबार, घर, पत्नी सबको छोड़ देता है। किन्तु उसे नाम नहीं मिलता। जब निराशा से वह अपने बगाने बित्तों को बनाकर दैनिकीय मृत्यु मरता है। तब संसार उसकी कला की भेद्यता जान पाता है। 'पेंटिड वेल्' (Painted Veil, 1925) में यह मूल्यांकन स्वस्थ की समस्या से संबंधित है। इसकी विवाहिता नायिका छिंदी परंपुरण से प्रेम करती है इस सम्बन्ध से उसका पति उसे हूँसे से पीड़ित एक नगर में ले जाता है। जहाँ वह मर जाता है। छिंदी को प्रेम और वासना का अन्तर ज्ञात होता है। 'केक और अले' (Cakes and Ale, 1930) दूसरों के गुणों और बलाहीनताओं से लाभ उठाकर स्वयं प्रसिद्ध होने का प्रयत्न करनेवालों पर तीव्र व्यंग्य है। उनके 'मानवीय बन्धन' (Of Human Bondage) 'तंग कोना' (Narrow Corner) आदि हैं। 'मिम बैनट प्राय' पारिवारिक सम्बन्धों अपराधों तथा मनमुटावों से उलझती है। 'पुस्सों से अधिक स्त्रियाँ' (More Women than Men, 1933) 'भाई-बहनें' (Brothers and Sisters, 1929) 'पुस्स और स्त्रियाँ' (Men and Women, 1931) 'बेटियाँ और बेटे' (Daughters and Sons, 1937) 'माँ-बाप और बच्चे' (1941) आदि इनके ऐसे उपन्यास हैं। जार्ज ऑरवेल और हगोर गुसाका इस समय के दो साम्यवादी-विरोधी उपन्यासकार हैं। ऑरवेल के 'पशुमोक' (Animal Farm 1945) और 1946 में तथा गुसाका के 'एक सीम का पतन' (The Fall of a Titan) आदि में साम्यवादी शासन की हानि कारक एवं मानवता का हान करनवाली प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया गया है।

उपरोक्त समाज विरोधक उपन्यासों के सम्बन्ध में यह नहीं समझना चाहिए कि इनमें वैयक्तिक माकलाओं और विकारों का विश्लेषण नहीं किया गया है। इनकी समाज विरोधक कहने का तात्पर्य केवल यही है कि वे व्यक्ति-परक उपन्यासों से घाने बढ़कर विस्फुट सामाजिक पृष्ठभूमि का भी परिचय देते हैं। इनकी समस्याएं प्रायः सत्कामीन समाज की हैं।

१२२ व्यक्ति-विरोधक उपन्यास—दूसरी श्रेणी के विरोधकों में एक नया मनोविज्ञान है जो व्यक्ति की आन्तरिक सत्ता को प्रत्यक्ष निकास कर उसके पुनरुत्थ तात्त्वों का अध्ययन करता है। ऐकस वैजापेक्षिकी { Heredity } समित वासना-निमित्त असामान्य प्रवृत्तियों व्यक्तियों के पारस्परिक आकर्षण विकर्षण की मूल प्रेरणाएं, मन बचन एवं कर्म का अध्ययन आदि इसके मुख्य विषय हैं। ये मनोवृत्तियाँ जीवन के मकार्ब हैं, प्रत्य इनका विश्लेषण करनेवाले उपन्यासों को एक प्रकार से मकार्बकारी कहा जा सकता है।

इस श्रेणी के कुछ प्रसिद्ध लेखकों की एच. जारेम्स, मिस जर्डी एक्लेमर, मिस रेवेका वेस्ट मिस डोरोथी रिचर्डसन जर्जीनिया ह्यूड जैम्स जॉयस आदि हैं। जारेम्स के

उपन्यास 'बेटे और प्रेमी' (Sons and Lovers 1913) प्रेमिका स्त्रियाँ (Women in Love 1920) 'खोयी लड़की' (The Lost Girl 1920) 'आरन की छड़ी' (Aaron's Rod 1922) 'कैगाक' (Kangaroo 1923) 'पल्लवाला साँप' (The Plumed Serpent, 1926) 'लेडी चटर्ली का प्रेमी' (Lady Chatterley's Lover 1928) आदि मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में—विशेषकर यौन जीवन के क्षेत्र में—नये सिद्धान्तों का आविष्कार करते हैं। अपने ही मूढ़ी धर्मों के भी मानसिक सत्य ही सारेन्स के लिए सत्य हैं। स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध में उनका मत है कि उनमें पारस्परिक आकर्षण होना अनिवार्य नहीं है। 'बेटे और प्रेमी' 'प्रेमिका स्त्रियाँ' आदि जैंगिक प्रेम करने में असमर्थ व्यक्तियों की कथाएँ हैं। इतिवृत्त धन्वि सल्लेपिक प्रेम यौन-विविधित्व आदि उनके सभी उपन्यासों में हैं। यौन-नैतिकता के सम्बन्ध में सारेन्स सभी धार्मिक सिद्धान्तों का विरोध करके नयी मान्यताएँ प्रस्तुत करते हैं। 'बेटे और प्रेमी' में पाक मोरस अपनी माता से अत्यधिक आसक्त्य पाकर (यह आसक्त्य माता के अपने प्रति ॥ प्रेम न पाने के कारण उसकी समित बासना की दिशा बदलने से हुआ है) इस मानसिक बन्धन में पड़ जाता है। इस कारण वह साधारण युवकों के समान किसी युवती से प्रेम नहीं कर पाता। स्त्रियों में वह अपनी माता का ही रूप देखना चाहता है। पाक की अपनी माता के प्रति इस स्खल आसक्ति के कारण सारेन्स पर अनतिक्रिया का आरोप किया जाता है। लेकिन उपन्यास में माता एवं पुत्र का सम्बन्ध अनतिक्रिया तक नहीं पहुँचता और सारेन्स का स्पष्ट संकेत पाक के अन्य स्त्रियों से आकृष्ट न होने की ओर है। वस्तुतः उनमें सतनी अनतिक्रिया नहीं है जितनी की कल्पना की जाती है।^१

डोरोथी रिचर्डसन मई सिस्नेयर और रेबेका बेस्ट के सभी उपन्यास सेक्स-सम्बन्धी प्रसाधारणताओं का निस्तेषण करनेवाले हैं। उदाहरण के लिए मई सिस्नेयर के 'तीन बहनें' (Three Sisters 1914) को लें। इसमें तीन बहनों का पिता एक पुरोहित अपनी पहली पत्नी को मार डालता है और दूसरी को भगा देता है। उसकी समितबासना मनवान में प्रतिब्रियाधीन होती है। मनवान में ही वह पुत्रियों का विवाह नहीं चाहता। किन्तु पिता की अतियौन-आसक्ति पुत्रियों को पैतृक रूप में प्राप्त है और वह उनमें विविध भाषाओं में उपस्थित है। इस प्रकार दो विरोधी शक्तियों का संघर्ष ही उपन्यास का विषय है। सबसे छोटी लड़की अपनी बासना का दमन न करके एक युवक के साथ संघर्ष में मार जाती है और उससे विवाह न कर

१ In a letter D. H. Lawrence writes—"If the truth of my spirit is all that matters to me, in the last issue then on behalf of my neighbour all I care for is the truth of his spirit."

—Selected Letters, P 106.

२. "He was by no means the voluptuary that he is sometimes depicted,"—Baker The History of the English Novel, Vol. X., P 359

उन्हे के कारण एक कृषक से विवाह कर साधारण जीवन बिताती है। मैग्नी लड़की अपनी माता को जानकर उसे दबाती है। उसका प्रती उसकी बड़ी बहन के पास में था जाता है, जो अपनी माता का निपट करती है। पर उस प्रजात शक्ति के प्रयोग से भ्रष्ट होती है। स्पष्ट है कि इस कथानक में प्रापुनिक मनोविज्ञान का किन्ना प्रभाव है।^१ मई सिक्सेमर का दूसरा उपन्यास 'मेरी मासिकर' (१९२६) इतिहास और इतिहास प्रसिद्धों के प्रभावों का विश्लेषण करता है। इसमें एक माता अपने पुत्रों को चाहती है। पुत्रियों से ईर्ष्या करती है। और चाहती है कि पुत्रियों की प्रतिमा पुत्रों में था जाये। पिता पुत्रों से ईर्ष्या करता है। क्योंकि माता उन्हें चाहती है। इसके परिणाम स्वरूप पति-पत्नी का जीवन असान्ति में बीतता है। रेबेका वेस्ट के उपन्यास 'जब' में रिचर्ड मासिकर को अपनी माता पर आसक्ति भी इतिहास प्रसिद्ध का उदाहरण है।

जर्नीनया बुल्क का 'व्यक्तिवाद' अधिक स्वस्थ और दोम सामाजिक आधार से युक्त है। उनके 'जब का कमरा' (Jacob's Room 1922) में युद्ध के पूर्व के एक पल्लव अनुभूतिशील व्यक्ति की एक दिन की अनुभूतियाँ हैं, जो समाज के निरीक्षण से मिलती हैं। 'तरंग' (Waves 1931) में छ बानकों का जीवन है जो इस बाधमय संसार की विभिन्न परिस्थितियों में अपने व्यक्तित्वों का निर्माण करते हैं। 'दिन और रात' (Day and Night, 1919) विभिन्न रत्तावे (१९२२) 'वर्ष' (Year 1937) आदि भी सामाजिक कथाकरण में व्यक्ति का अध्ययन प्रस्तुत करते हैं।

१२३. केतनाप्रवाह उपन्यास—व्यक्तिवादी उपन्यासों की टेक्नीक-सम्बन्धी सबसे बड़ी देन है केतनाप्रवाह-यैनी। जीवन की सर्वव्यवस्था का व्योम का त्यों उतारने का प्रयत्न इसकी मूल प्रेरणा है। जीवन में जो घटनाएँ होती हैं उनमें सर्वव्यवस्था रहती है। हमारे विचारों में भी विविधता रहती है। केतनाप्रवाह उपन्यास में हम सर्वव्यवस्थाओं और विचारों को पूरी ईमानदारी से चित्रित किया जाता है। मई सिक्सेमर पर के सभी उपन्यास कोरोली रिचर्डसन का 'नोकदार छत' (Pointed Roof 1915) बुल्क के 'तरंग' (Waves), 'जैकब का कमरा' आदि इसके उदाहरण हैं। केतनाप्रवाह उपन्यास का सबसे अच्छा उदाहरण जम्स जॉन्स का 'युनीसेस' (१९२२) है जिसमें एक व्यक्ति के एक दिन के जीवन को लगभग घाट छी पृष्ठों में चित्रित किया गया है। इन सब उपन्यासों में कथानक विविध है। कई घटनाएँ कथा-विकास के लिए आवश्यक नहीं हैं। 'युनीसेस' में माया भी कुछ विविध है। चित्राएँ व्याकरण के नियमों से बंधी नहीं होतीं भव इसकी माया भी व्याकरण-नियमों से मुक्त है। अन्तिम भाग वाली पृष्ठों तक लंबा है। मई सिक्सेमर के केतनाप्रवाह उपन्यासों में माया कुछ छुट-छुटकर आती है।

ऊपर के विश्लेषण से स्पष्ट है कि बीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी उपन्यास की मुख्य प्रवृत्ति विवेचन है। विभिन्न उपन्यासों में व्यक्तियों का व्यवसाय समाज का या दोनों का विवेचन हुआ है।

बीसवीं सदी का फ्रेंच उपन्यास

बीसवीं सदी के फ्रेंच उपन्यास की मुख्य प्रवृत्ति विस्लेषण की है और यह विस्लेषण वैयक्तिक एवं सामाजिक रूप में हुआ है। फ्रेंच के समाज-विस्लेषक उपन्यासों में संश्लेषी से व्यक्ति व्यक्ति को महत्व दिया गया है और मानसिक भावों के विस्लेषण पर अधिक ध्यान दिया गया है। व्यक्ति को अधिक महत्व देनेवाले बहुत कम उपन्यास हुए हैं। बीसवीं सदी के फ्रेंच उपन्यासों को तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं (१) समाज-विस्लेषक (२) व्यक्ति-समाज-विस्लेषक (३) व्यक्ति विस्लेषक।

१२४ समाज-विस्लेषक उपन्यास—सामाजिक जीवन की प्रमुखता देनेवाले उपन्यासों में हेनरी बरबुसे का 'फाय' (Le Feu by Henri Barbusse), रोसमंड डोर जेले का 'सफ़री के क्रॉस' (Les Croix de bois by Roland Dorgelès) लुई फेरे गण्ड सेसीन का 'निष्ठांत तक की यात्रा' (Voyage au bout de la nuit by Louis Ferdinand Celine) आदि उल्लेखनीय हैं। प्रथम दोनों प्रथम महायुद्ध से सम्बन्धित हैं, पर अधिक उत्कृष्ट नहीं हैं। एड्रनबर्ग के कसी उपन्यास 'घोषी' (Storm) और रिमार्क के जर्मन उपन्यास 'पश्चिम के मोर्चे पर सब कुछ शांत है' (All Quiet on the Western Front) आदि विश्वविख्यात युद्ध-उपन्यासों की तुलना में इनका विशेष महत्व नहीं रहता। सेसीन का उपन्यास महायुद्ध के बाद के काल के एक झुंझुंपा वर्ग के पतन का चित्रण करता है।

१२५ व्यक्ति और समाज के विस्लेषक उपन्यास—प्रति विद्याल पट्रुमि पर व्यक्ति और समाज के सर्वांगीण विश्व व्यक्ति करनेवाले कई उपन्यास फ्रेंच में लिखे गये हैं। इनमें सर्वाधिक एक विशेष प्रकार के विस्लेषक उपन्यास के हैं और फ्रेंच में 'सरि रोपोम उपन्यास' (Roman fleuve) कहे जाते हैं।^१ यद्यपि बल्लाक का 'हमन कामेडी' और बाला के 'रोगन मक्कार' उपन्यास सरिरोपोम माने जा सकते हैं तथापि इस नाम का प्रचार प्रथम प्रथम रॉम रोली के 'जॉ क्रिस्ताफ़े' के सम्बन्ध में हुआ। 'जॉ क्रिस्ताफ़े' (१९४-१२) इस भागों में लिखित एक विद्याल उपन्यास है जो जीवनी का औपन्यासिक रूप कहा जा सकता है। इसमें 'जॉ क्रिस्ताफ़े' के जीवन के वैयक्तिक घटनाओं के साथ जर्मनी और फ्रांस के समाजों के प्रति उसका भाव भी स्पष्ट किये गए हैं। निरपेक्षता से समाज को प्रतिबिम्बित करने के बहने उसके प्रति वैयक्तिक दृष्टि कारण को प्रकट करने के कारण समाजशास्त्र के रूप में इसका बहुत महत्व नहीं है जितना कि अन्य सरिरोपोम उपन्यासों का।

मार्से प्रुस का सरिरोपोम उपन्यास 'अतीत का पर्यवेक्षण' (A la recherche du temps perdu, 1913-27) जो पाँच भागों में है समाज और पात्रों के चित्रण में सूक्ष्म निरीक्षण और अपार क्षमता का परिचामक है। १८८८ से १९२२ तक के पतनोन्मुख उच्च वर्ग तथा उसके उपग्रहों के मिथ्याईवर्णुर्ण जीवन का पूरा चित्र

१ सरिरोपोम उपन्यास की विशेषताओं की जर्नी अगले अध्याय में की गयी।

इसमें मिलता है। व्यक्तियों के मनोविकारों का सूक्ष्म वैज्ञानिक अध्ययन भी प्रुस्त की विशेषता है। समय के बीतते अनुप्य में धीमे-धीमे दारौरिक एवं मानसिक परिवर्तनों का इतना सुन्दर अध्ययन और किसीने नहीं किया है।

बार्ने बुहमस का चार भागों में लिखित 'समाधि' (*Vis et adventures de Salavin*, 1920-'32) ग्रन्थिक वैयक्तिक है। समाधि तीव्र विकारों से युक्त एक व्यक्ति है जो निरन्तर आत्मोन्नति का प्रयत्न करता रहता है। कुछ दिन बेकार रहने के बाद वह आत्मिकारी मध्य में सम्मिलित होता है। उसमें भी आत्मोन्नति की प्राप्ति न होने से पत्नी पर सब छोड़कर घड़ीका जाकर बीमारों की सेवा करता है। बहूँ जमीन पाता हुआ नौकर उसे गोली से मार डालता है। विकारविक्रय के दुष्परिणामों को दिखाना ही बुहमस का ध्येय है। उनका दूसरा उपन्यास 'पास्के का इति इम' (*Chronique de Pasquier Ten Volumes*, 1933-45) १०६ से १२० तक की छेक बुराईयों के धारण-संघर्षों का चित्रण करता है।

यूस रोमे के सहाईय भागों में प्रकाशित 'महानुपन्य' (*Les Hommes de l'œuvre colonie* 1932-47) में १६ व से १६३३ तक की राजनीतिक घटनाओं के बारस विविध अनुप्यों में उत्तम मनोभावों का बड़ी सहानुभूति से अध्ययन किया गया है।

और एक सख्तीयम उपन्यास रोमे मार्टिन डु गार् (*Roger Martin du Gard*) का प्यार भागों में लिखित 'थिबास' (*Les Thibaults*, 1922-40) है। इसमें भी १८६० से १९०० तक का छेक बुराईयों समाज प्रतिबिम्बित किया गया है। समाज के वातावरण में थिबास-वंश की कथा का विकास किया गया है।

उपर्युक्त सभी सख्तीयम उपन्यास देश की सामाजिक परिस्थितियों और ऐतिहासिक घटनाओं को कसामक रूप में चित्रित करते हैं। समाजशास्त्र अथवा इतिहास के ज्ञान उध्यों का लेखा-मात्र न होने पर भी ये ग्रन्थिक विश्वसनीय रूप में जीवन की प्रतिबिम्बित करते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी चलनेवाले विचारों और जीवन-मूल्यों को इन उपन्यासों में देस सकते हैं।

१२६ व्यक्ति-विश्लेषक उपन्यास—सख्तीयम उपन्यास विज्ञान पटमूमि पर समाज का सम्पूर्ण चित्र चित्रित करता है तो व्यक्ति-विश्लेषक उपन्यास अत्यन्त सीमित विषय का अभाव अध्ययन करता है। इस शरी के कई छेक उपन्यासकारों ने ऐसे व्यक्तिवारी उपन्यास भी लिखे हैं जिनमें जीवन का चित्रण-मात्र न करके विभिन्न प्रवृत्तियों की प्रेरणाओं का भी अध्ययन किया गया है। ऐसे उपन्यास लिखने वालों में जीव मारिया मन्तरली मसरो सार्ने आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आन्ड्रे जीव एक नैतिकवादी है अतः उनके सभी उपन्यास नैतिक दृष्टिकोण से लिखे जात होते हैं। 'अरिज्डीन' (*Le Immoraliste*, 1902) 'उग बरबाबा' (*La Porte étroite*, 1909) 'बोले की टकसानी' (*Les Faux manna-jours*, 1925) 'जेनीविण' (*Genievre*, 1937) आदि में नैतिकता की समस्या विविध रूपों में आयी है। उनके ग्रन्थिका उपन्यासों में ऐसीकिक

प्रेम की चर्चा होने के कारण बीच पर प्रायः धर्मेतिकता का बोध लगाया जाता है। 'वरिचङ्गी' में सार्सेनिक प्रेम के साथ-साथ मनुष्य की अपराध-वासना (Crime-instinct) की विस्तृत विवेचना भी है। 'तंग बरबादा' की नायिका जो आत्मा को पवित्र बनाता चाहती है अपने से छोटे एक मुन्क से प्रेम करके भी निवाह के लिए तैयार नहीं होती। अपने प्रेम को असीम की धोर लगाने के लिए वह कठिन मानसिक झूझ का सामना करती है और अखण्ड होकर मर जाती है। 'जिमीबिएन' की नायिका अपनी एक उल्टापठिनी से सार्सेनिक प्रेम रखती है। जब उसकी माता यह जानकर उस मित्रता में बाधा डालती है तब वह अपने स्वातंत्र्य की चोपड़ा करने के लिए डाक्टर से आकर प्रार्थना करती है कि वह उसे गर्मिणी बना दे। इस तरह की धर्मेतिक प्रवृत्तियों के सुखम मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में बीच ने अपूर्व कुशलता दिखायी है।

फ्रैंको मारिया (Francis Mauriac) के उपन्यास भी वासना और पाप का विवेचन करनेवाले हैं। मारिया का व्यक्तित्व-अध्ययन अपने डंग का है। 'जो खो गया' (Ce qui était perdu 1930) 'अँबेरे के देवता' (Les Anges Noir) आदि में कथानक से बढ़कर व्यक्तित्वों का अध्ययन मुख्य है। इनमें और अधिकतर अन्य उपन्यासों में मारिया ने वैवाहिक जीवन की तकल्लों को मानिक रूप में दिखाया है।

हेनरी-द-मन्तरला के उपन्यासों का विषय सीकस विकार है। 'बड़बारी' (Les Bestiaires, 1926) 'छरीफ लड़कियाँ' (Les Jeunes Filles 1936-37) 'स्त्रियों पर दया' (Pitié pour femmes) आदि में मन्तरला ने दिखाया है कि अधिवाहित छरीफ दिव्यामी पड़नेवाली लड़कियाँ सीबी जिनिवी नहीं हैं बल्कि उनमें पाखणिक विकार और मूर्खत्व निवास करते हैं परन्तु स्त्रियों के सामने सीबी और छरीफ बनने की अपार सामर्थ्य भी उनमें है।

आन्टो मलरो के उपन्यास व्यक्तित्वाधी हास पर भी इन सबसे भिन्न हैं। उनके प्रायः सभी उपन्यास अनुभवों के आधार पर लिखे गए हैं। 'विजेता' (Les conquérants) 'उपपक्ष' (La Voix Royale) आदि में ललक ने १९२९ के बीनी विप्लव के समय के अपने अनुभवों का वर्णन किया है। मलरो ने 'हृण के समय' (Les Temps du mepris, 1935) में नारदी कर्मनी में एक साम्यवादी अनुभवों का और 'आशा' (L'Espoir 1937) में स्पेसिड युद्ध के समय के अपने अनुभवों को उपन्यास का रूप दिया है। मलरो की विशेषता इस बात में है कि वे उच्चतम-गुणन के वातावरण में मानव-हृदय पर पड़नेवाले आघातों को और आकाशा-भरे हृदय के सूक्ष्म सन्दर्भों को पहचानकर सजीव रूप में व्यक्त करते हैं।

उपयुक्त सभी व्यक्तित्वाधी उपन्यास कसारमक दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। फ्रेंच उपन्यास में सर्वत्र दिखायी पड़नेवाला सुन्दर भाव-विकास और कथा-युक्त इन व्यक्तित्वाधी उपन्यासों में सबसे अधिक दृष्ट्य है।

बीसवीं शती का रूसी उपन्यास

१२७ बीसवीं शती के रूसी उपन्यास की प्रकृति पर फ्रेंच और अंग्रेजी उपन्यास साहित्यों की प्रकृतियों से बिभक्त निम्न है। राजनीतिक ज्ञान की अभूतपूर्व अन्ति और उच्चम्य सामाजिक परिवर्तनों से उपन्यास साहित्य को नयी दिशा दी। १९१७ के विप्लव की भूमिका १९२५ के पहले की नैपार हो चुकी थी। १९२५ का पराजित विप्लव इसे प्रमाणित करता है। यह राजनीतिक परिवर्तन तत्कालीन सोवियत विचार बाध और साहित्य में भी प्रतिबिम्बित हुआ है। वस्तुतः बीसवीं शती का रूसी उपन्यास साहित्य सोवियत का राजनीतिक एवं सामाजिक इतिहास है।

अन्तीसवीं शती और बीसवीं शती के बीच में और सोवियत विचारबाध के परिवर्तन के दुस में जीवित कथाकारों में सबसेष्ट मस्तिष्म गार्की हैं। निरन्तर दारिद्र्य की कुर वस्तुनाओं का मुक्तमाली यह कलाकार, निम्नवर्गीय जनता के जीवन की समस्त सका और उनकी कोमल भावनाओं दमनीय बसहीनताओं तथा तीव्र धाकागाओं को प्रतिबिम्बित कर सका। गार्की स्वयं-कथाकारों के रूप में लिखन मये अनेक कोरे लेखों में स्पष्ट है। जीम ही 'कोमा गोर्बिच' (१८९९) और 'घार्टमनोव' में वे बिभ कुल वपार्यवादी के रूप में प्रकट हुए। इन दोनों में तथा 'वीन पीड़िया' 'स्मिथ सीगिन' उपन्यास-अपी (१९०७) धादि में मोर्की ने पीएल-जर्जरित कुरुषा समाज का तथा उसके बीच में उठनेवासी विशामोन्मुख जन-शांति का परिचय दिया है। उनका वपार्य विमल चेन्न के समान निरपन्न दनक का नहीं है। समाज की प्रपतिधीन धक्तियों के प्रति उनकी अपार महानुमृति है। यही महानुमृति और अनीतियों के प्रति विश्रोह की भावना अपने जलम रूप में 'मा' (१९२५) में प्रकट हुई है। कला की दृष्टि से 'मा' उनके उन धम्य उपन्यासों से उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता है, जो अधिक वपार्यवादी हैं, और अधिक अनुमृति से संजात जात हात हैं। किन्तु सोवियत जनता के जीवन बाधरण और विप्लव की प्रतिबिम्बित करनेवाले महाकाव्य के रूप में यह महत्त्वपूर्ण है। 'मर वपार्य' (१९११) 'मनार में' (१९१७) 'मेर विस्त्रिधालय' (१९२१) धादि भारत कालिक उपन्यासों में उनकी कला अधिक निम्नर आपी है।

विप्लव के पूर के धम्य उपन्यासों में धम्य-अन्तर कपूतिन के 'अन्तमुष्ट' (१९०५) और 'महदा' (१९२९) इवान बुनिन का 'ग्राम' (१९२९) धादि कुछ उन्तधनीय रच गये हैं। कपूतिन पर प्रकृतिबाध का प्रभाव है।

१९१७ के विप्लव के परभाव साम्यवादी सिद्धान्तों के समर्थन में विकारोन्मुख पीपी में कुछ उपन्यास लिखे गये। टाविन के 'योग्यतमावधय' के सिद्धान्त के आधार

१. हम धाध में मोर्की धाधने पूर्व के उपन्यासों को धम्य-अन्तर एवं निजिज मानते थे वे धाध नयी शक्ति एवं चेन्नना निध उपन्यास-धम्य में धाधे। १९२५ में धाधन वृधधर्मियों के धाधित के उन्तध में अन्तधे निध है—“All our literature persistently teaches a passive attitude toward life it is an apologia for passivity”—Gorky (Quoted by Karm Slavonic Review XVII 50. P 434)

पर सर्वहारावर्ग एवं साम्यवादी हल के नीमित रहने के अधिकार का तथा पूर्वीपटियों के विनाश का समर्पण करनेवासे इन उपन्यासों का प्रचार-मूल्य अधिक है साहित्य-मूल्य कम। इनमें पिबोरिस पिलनिनाक का 'भग्न वर्ष' (१९२२) सबसे प्रख्यात उपन्यास है। लेखक इसमें क्षाति का समर्पण उसके भावार्थों के कारण नहीं करता बल्कि उसमें प्रयुक्त अपार मानव-शक्ति के कारण ही करता है।

पुनर्निर्माणकाल के उपन्यास—१९२२ से १९३२ तक का समय सोवियत के पुनर्निर्माण और तीव्र विकास का काल माना जाता है। इस समय के उपन्यासों को दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं (१) क्षाति-सम्बन्धी उपन्यास और (२) पुनर्निर्माण-सम्बन्धी उपन्यास।

१२८ क्षाति-सम्बन्धी उपन्यासों में बी बी बप्टेयेव के 'वतिरोष' (१९२२) और 'बहने' (१९२३) सीमोनोव सीमोनोव का 'एक छोटे आदमी का मृत्यु' (१९२४) काम्स्टडीन कैबिन के 'नगर और वर्ष' (१९२४) तथा 'भाई' (१९२८) प्रोफेसर्बर कावमेव का 'विप्लव' (१९२६) मिसेल प्रोफेसर्ब्रावेविच लोबोवोव के 'वोन नदी बीरे बहती है' (१९२६) और 'दोन समुद्र को बह जाती है' (१९३१) प्रावि प्रसिद्ध हैं। इनमें 'वतिरोष' में बुद्धिजीवियों (Intelligentsia) की दृष्टि से 'बहने' में किसान मित्र विचारों की दो बहनों की दृष्टियों से और 'भाई' में दो आदमियों की दृष्टियों से कृषी विप्लव तथा साम्यन्तर-युद्ध का अवलोकन किया गया है। सीमोनोव का उपन्यास संस्कृति और विप्लव के पारस्परिक सम्बन्ध का प्रच्छन्न अध्ययन है। इनमें सर्वश्रेष्ठ उपन्यास सोलोवोव के हैं। वस्तुतः उनके दोनों उपन्यास मिलकर एक ही उपन्यास हैं जिसमें क्षातिपूर्व-काल युद्धकाल क्षातिकाल और साम्यन्तर विप्लव काल की अति विद्याल पटभूमि पर पस्तलेहमन कुटुम्ब की कथा का विकास किया गया है। तालस्ताय के 'युद्ध और शांति' के समान ही यह एक महाकाव्यात्मक पनोरमिक उपन्यास है जिसमें राजनीतिक समझ तथा सामाजिक जीवन अपने यथार्थ रूप में प्रकट हुए हैं।

१२९ पुनर्निर्माण-सम्बन्धी उपन्यासों की रचना विश्व-उपन्यास-साहित्य में ही एक नवी शिष्टा का संकेत करती है। घामब इसी प्रकार के उपन्यासों की रचना होने के बाद उपन्यास आत्मवृद्धि का माध्यम भी बन गया। १९२५ में बी ग्लाबकोव के 'सिमेट' के प्रकाशन ने पाठकों और आलोचकों को अक्षित कर दिया। उपन्यास के रूप में ही नहीं सोवियत की निर्माण-योजनाओं के विवरण के रूप में भी इसका महत्त्व है। इसके औपन्यासिक मूल्य को बनाये रखनेवाली तीव्र योजनाओं में अपनी जान लगा देनेवाली जनता के आदेश और उत्साहमय जीवन का प्रतिबिम्ब है। सिमोनोव के 'पियङ्गू' और 'स्नूटचनस्की' भी पुनर्निर्माण-सम्बन्धी प्रच्छन्न उपन्यास हैं।

१९२६ और १९३२ के बीच के पंचवर्षीय योजनाकाल में 'कृषी प्रमोदनी लेखक-संघ' के निर्देशों के आधार पर कई उपन्यास लिखे गये जिनमें पंचवर्षीय योजना

साम्यवादी दृष्टि के कारण मानवता की अपार शक्ति एवं सिद्धियों का प्रकटन किया गया है।

१३१ मुद्रकालीन और मुद्रानन्तर उपन्यास—द्वितीय महायुद्ध के काल में तथा उसके पश्चात् आज तक के सभी उपन्यासों की भी दिव्यसंक मुख्य प्रेरणा सामान्य मर्यादा की ही रही है। फिर भी युद्धोत्तर और युद्धपूर्व उपन्यासों में कुछ भिन्नता है। मुद्रकालीन तथा मुद्रानन्तर उपन्यास की दो मौलिक प्रवृत्तियाँ मनोवैज्ञानिक समीपन तथा एक नये प्रकार का मानवतावाद है। मर्सेनी और फेंच के उपन्यासों पर मनोविज्ञान ने जितना प्रभाव डाला है, उतना किसी उपन्यासों पर नहीं। सक्षम मानसिक शक्तियों का विशेषण किसी उपन्यासों में नहीं के बराबर है। फिर भी कहा जा सकता है कि युद्धोत्तरकाल के उपन्यासों में कुछ समस्याओं के मनोवैज्ञानिक आधार दृढ़ हो गये हैं।

सहाहरण के लिए बोरिस वॉवोवोव के 'अपराधित' अथवा 'तारस परिवार' (१९४४) में मुद्रकालीन वातावरण में वास्तव के जीवन का विकास किया गया है। परिस्थिति के कारण उसके दोष भ्रम तथा पारिवारिक सम्बन्ध के बीच में संघर्ष घाटा है। वास्तव के मानसिक संघर्ष का भासिक चित्रण किया गया है। माइकेल जार्वेन्की का 'बब सूरज निकसता है' (१९४३) आरम्भकारणक है और लेखक के आरम्भिक तीस वर्ष के जीवन का चित्रण करता है। बच के बहुत उसमें आनेवासे मानसिक परिवर्तन प्रकट किये गये हैं। एष्टोमिना कोष्टेव्वा के 'इवान इवानोविच' (१९४६) में एक प्रसिद्ध डॉक्टर के दाम्पत्य जीवन की पराजय की व्याख्या की गयी है। डॉक्टर की स्त्री और सब प्रकार से प्रसन्न होने पर भी घर के अन्दर ही अपनी समस्त शक्तियों और भावनाओं को समाप्त होते देख चुकती रहती है और अन्त में एक अन्य युवक की सहायता पाकर बाह्य जीवन में प्रविष्ट होती है। लेखिका इसमें सोवियत स्त्री की स्वातंत्र्याभिप्राय और उसके अपना व्यक्तित्व बनाने के आग्रह को प्रकट करती है। गलीना निकोलेवना के 'ऊखल' (१९४५) में नायिका का संघर्ष बिखराव से उत्पन्न है। वह युद्ध में अपने पति की मृत्यु का समाचार पाकर दुःख विवाह कर लेती है पर कुछ दिन बाद पति मीट पाता है। लेखिका ने इस बिफट परिस्थिति में दोनों के विज्ञान मन की भावनाओं का बड़ी बारीकी से चित्रण किया है। साव-साव दोष है कृपि-विकास की विस्तृत चर्चा भी इसमें आयी है।

इस प्रकार के कुछ उपन्यासों को छोड़कर अन्य उपन्यासों में पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। अधिकांश में सामाजिक जीवन का मानवतावादी दृष्टिकोण से अध्ययन उपलब्ध है। समाज-निर्मिण-सम्बन्धी उपन्यासों का मानवतावाद इस बात में है कि वह मनुष्य को सर्वोपेक्ष शक्ति के रूप में देखता है जो क्रम से प्रकृति की शक्तियों को विजित कर अधवर्तिनी बनाती है। स्टेपी प्रदेस के कृपि-विकास के सम्बन्ध में बिल्ली चक्रवर्तिन का 'असोर्टिब स्तानित्वा' धारि ऐसे उपन्यास है। मुद्रानन्तर उपन्यास-साहित्य का और एक विषय युद्ध है। युद्ध के विनाशकारी रूप का तथा धान्ति और विकास का आग्रह करनेवाली साधारण जनता की

यातनाओं का बिजसु बोरिस पायेबाय का 'एक सच्चे मनुष्य का जीवन' (१९४६) मिसेल म्यूबेनोव का 'सफेद बिर्च का पेड़' (१९४७) ई कज़ानेविच का 'सिंग घान रि घाडर' (१९४६) आदि में मिलता है। यही मानवतावाद मनुष्य की शक्ति को मानव में नहीं उसकी महामावना और मरिण्डा को मानने से है।

धार्मिक कभी उपन्यासों के सम्बन्ध में सबसे बड़ी शिकायत यह है कि उनमें जीवन का कोई तात्त्विक दर्शन नहीं है। गोसोसोव एहरनबर्ग आदि उष्णधोली के कुछ लेखकों के प्रतिरिक्त ज़िरी भी उपन्यासकार के किसी उपन्यास में जीवन की बमीर व्याख्या नहीं की गयी है। व्याख्या चाहे अन्तर्मुखी हो चाहे बहिर्मुखी उन सबका यथार्थ बिजसु पाथो की प्रकृतियों तक ही सीमित है। ठेक या घसड़ी उपन्यासकारों के समान कभी लेखक प्रकृतियों को प्रेरणा देनेवाली मूल वृत्तियों की खोज नहीं करते। इसी कारण उनमें जीवन-मूल्य के सम्बन्ध में एक तात्त्विक दृष्टन का अभाव है। इन उपन्यासों के शैक्षणिक मूल्य में कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि समाजशास्त्र बिज्ञान इतिहास आदि के सत्य और तथ्य ही इनके आधार हैं। लेकिन उनकी कलात्मकता पर सन्देह हो सकता है। मार्क्सवाद तथा समाजवादी यथार्थवाद को अन्तर्ध्वेय मानकर लिखनेवाले लेखकों की अभिकांश रचनाएँ कुछ परिपानी-बिहित विषयों और टकसाली पाथों तक सीमित हो गयी हैं। अगर इनमें साहित्यिक मूल्य रखनेवाली कोई चीज है तो वह वे अग्रणीत वृत्त्य हैं, जो जीवन के ऐसे अनुभूतिपूर्ण सन्धों को स्पष्ट करते हैं जिनका क्षेत्र कभी बनता तक ही सीमित नहीं है। सामान्य मानवता का सामान्य रूप इनमें प्राप्य है।

तीसरा अध्याय वस्तु विधान

पिछले अध्याय में हम हिन्दी एवं पश्चिमी उपन्यास-साहित्य के विकास का इतिहास प्रस्तुत करने के साथ-साथ अधिकांश उपन्यासों के विषयों का—विशेषकर प्रत्येक चार के उपन्यासों के विषय के सामान्य स्वरूप का—उल्लेख भी कर चुके हैं। इस अध्याय में हमें विषय-विकास यथवा वस्तु-विधान की पद्धतियों का और वस्तु विधान से सम्बन्धित कुछ अन्य विषयों का विवेचन करना है। लेकिन उसके पहले उपन्यास-साहित्य के विषय के स्वरूप में अब तक हुए परिवर्तनों पर सामान्य दृष्टि डालना उचित होया क्योंकि उपन्यास के विषय-विधान का विषय से बड़ा सम्बन्ध रहा है। विषय विधान का परिवर्तन प्रायः विषय के स्वरूप के परिवर्तन से सम्बन्धित रहा है और विषय के स्वरूप पर सामाजिक जीवन तथा विचारवाचकों के परिवर्तनों का प्रभाव पड़ा है। यहाँ हम विषय के स्वरूप में पाये गये मुख्य परिवर्तनों की चर्चा करके आगे बढ़ेंगे।

१

उपन्यास-साहित्य के इतिहास में कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ

औपन्यासिक विषय-कल्पना से यथार्थ की ओर

१३२ कथा-साहित्य की प्रथम कला में उसमें कल्पना का प्राबल्य रहा। यह कल्पना ही कल्पों में मिलती है। प्रथम दार्शनिक चिन्तन से प्रेरित है और दूसरी मनुष्य की स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति से उत्पन्न। तपनियत धारि में और यूरोप के 'पैन्थ पुएलीन प्रोवास्टिनेशन' 'मोर्टे-डि-आर्बरे' धारि में जीवन के परम तत्त्वों और धारकों की खोज की गयी है और उनकी व्याख्या के लिए कल्पना का आचार सिद्धा मया है। दूसरी तरह की कल्पना भारत की कथारमक धार्यामिकाओं में और यूरोपीय साहित्य की रोमांटिक कथाओं में मिलती है। मनुष्य के लिए जीवन एक रहस्य था। उसे अपनी ही शक्तियों का पूरा ज्ञान नहीं था उसकी भाषाओं और महत्वाकांक्षाओं की सीमा नहीं थी। उसकी भाकांक्षा मरी कल्पना से स्वर्गीय जीवन के सपने देख यथवा इस धूमि के ही एक नैतकपूर्ण जीवन का अनोखका निर्मित किया। यथार्थवादी उपन्यास के आरम्भ तक और आरम्भ से बहुत दिन बाद तक स्वच्छन्द कल्पना का यह प्रभाव चलता रहा। स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद का सचय उपन्यासकार के ज्ञान और अनुभूति के इतिहास में महान् क्रान्ति का परिचायक है। रिचर्डसन और फील्डिंग से स्थापित पुष्प और प्रचारित यथार्थवाद की एमिली जॉन्स और स्कॉट के

स्वच्छन्दतावाद का सामना करना पड़ा। फ्रांस में अठारहवीं शती के अन्त में सतोंबियां, ह्यूगो जार्ज सैंड और वूड्या के उपन्यासों में स्वच्छन्दतावाद पुनर्जीवित हुआ। एक विशेषता यही थी कि फ्रांस के स्वच्छन्दतावाद का यह संघर्ष मर्यादावाद या प्रगतिवाद से न था अठारहवीं शती के प्रारंभ में उठा बिना तक पहुँचे हुए व्यवस्थावाद (Classicism) से था। हिन्दी उपन्यास के आरम्भ काल में भी मर्यादा और कल्पना की ये धाराएँ प्रवाहित रहीं। माता श्रीनिवासबास बालकृष्ण भट्ट और राजाहृदयदास के उपन्यासों में जीवन के मर्यादा अधिक थे। तो देवकीनन्दन खत्री में कल्पना का रंग झलकता था और किशोरीलाल पोस्वामी के 'अपना' कुसुमकुमारी' जैसे उपन्यासों में झटकर मर्यादा और कल्पना दोनों हाथ दिखाकर बड़े सीममस्य से घाये बढ़ते बीकते हैं। बाद के मर्यादावादी उपन्यासों में घटनाचक्र की जो विविध रति और जो अतिरंजन मिलते हैं, वे सब स्वच्छन्दतावाद से प्राप्त हैं। मनोविज्ञान की मर्यादा भूमि पर घाये हुए इलाचन्द्र बोस के उपन्यासों तक में स्वच्छन्द कल्पना का यह प्रवाह प्राप्य है। उनके नवीन उपन्यास 'अज्ञान का पंख' का घटनाचक्र 'अज्ञानान्ता' से कम रोचक नहीं है। इसके नायक के जीवन में जो घटनाएँ घटी हैं, उनकी विविधता आवश्यकता है। अधिक है। किसीने हस्तेरेखा देखने पर नायक का बीच-बीच लीज-लीज के मोट फेंक देना अस्पताल में डाक्टर के सामने सख्त-बुलप्रभात रोनी का एक अज्ञात-आवाज सेवक ही झाड़ना उसके परिवर्तन में घानेबानी हरएक स्त्री का उसपर सट्टा हो जाना ऐसी घटनाएँ ही नहीं, सम्पूर्ण जीवन ही रोमांचक है।

किन्तु मर्यादाभूषण ही उपन्यास की सामान्य प्रवृत्ति रही है। जीवन को अधिक से अधिक स्पष्ट रूप में समझने का प्रयत्न बढ़ता चला है। फ्रांस में वैयक्तिक विचारों का निस्लेखन करते हुए, समाज के स्वल्प का अध्ययन हुआ है। माटिए, प्ला वेयर बोला मोपासाँ रोजा मारिया प्रूस्त—सबने व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के साथ-साथ समाज का भी अध्ययन किया है। ईंग्लैंड में एक बार जेन आस्टिन डिफेंस पैकरे प्रादि ने समाज के छोटे-बड़े वर्गों को अपने उपन्यासों का विषय बनाया तो मास्टरसी ने मनोविज्ञान और समाजशास्त्र के आधार पर अरसाइट कुटुम्ब का ही नहीं, इंग्लैंड के क्रमशः परिवर्तित होनेवाले सम्पूर्ण सम्बन्धमयवर्गीय जीवन का निस्लेखन कर दिखाया। बर्मीनिया ब्रुम्फ, मिश गर्ड सिम्लेषर और मिश बोरोबी रिचर्डसन ने व्यक्ति की मानसिक द्रवियों में समाज की भिन्न भिन्न प्रवृत्तियों तथा विवृत्तियों के कारण ढूँढ़े। रूसी उपन्यास पुष्कल के स्वच्छन्दतावाद के बाद नोगोल से लेकर प्राज तक जीवन के सामाजिक एवं वैयक्तिक पहलुओं के मर्यादों के प्रति आपसक रहता आया है। तुर्कैव वास्तववादी और वास्तविक के उपन्यासों में व्यक्ति के मानसिक बल को भी महत्व दिया गया था किन्तु रूसी उपन्यास में कमरा व्यक्ति के मानसिक मर्यादों का विरुद्ध होने लगा और सामाजिक जीवन तथा उसकी समस्याओं का महत्व बढ़ने लगा। महत्व चाहे व्यक्ति का रहा हो चाहे समाज का यूरोपीय उपन्यास-आहित्य जीवन के प्रति उत्पन्न रहा है, और जीवन के अधिकारिक निष्पत्ति होता आया है।

हिन्दी उपन्यास का इतिहास भी इससे भिन्न नहीं है। केवल प्रेमचन्द के उपन्यासों को ही सँ और कामकर्म से उनका अध्ययन करते तो स्पष्ट होगा कि लेखक का दृष्टिकोण जीवन के अध्ययन के प्रति कैसे अधिकारिक सञ्चत होता था। इसके बाद मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार व्यक्ति को समझने और उसकी मानसिक प्रक्रियाओं को सुलझाने लगे तो सामाजिक यथार्थवादी समाज की सामान्य प्रवृत्तियों और उसने ह्रास विकासों को दिखाने में सतत प्रयत्नशील रहे। प्रतापनारायण भीषास्तव भगवतीचरण वर्मा रविम रायच प्रादि में से होकर विकसित होती आयी यह प्रवृत्ति अब नागार्जुन मन्मीनारायण काज रेणु प्रादि में आकर बहुत पुष्ट हुई है। जो हिन्दी में यथार्थवाद की उज्ज्वल सम्भावनाओं के प्रति संकेत करती है।

प्राभिजात्य से सामान्य के प्रति

१३३ विस्म-उपन्यास-साहित्य की दूसरी एक प्रवृत्ति प्राभिजात्य से सामान्य के प्रति उसका आगमन है। जीवन से विदूर, किन्तु जीवन से उन्नत मानी जानेवाली वस्तुओं का तिरस्कार उपन्यास में बढ़ता आ रहा है। उन्नत प्राभिजात नायक प्राभिजात वर्म की उदार एवं कोमल प्रवृत्तियाँ इनसे साहित्य ही उपेक्षा करता आ रहा है। नाटक और महाकाव्य की तुलना में उपन्यास में प्राभिजात वर्म का प्राधिपत्य सदा कम रहा। उपन्यास के प्रारम्भ काल में ही महान एवं सतम व्यक्ति को नायक बनाने की प्रावश्यकता नहीं समझी गयी अतः उपन्यास सदा सामान्य जीवन के अधिक निकट रहा है।

किन्तु जहाँ तक हिन्दी उपन्यास का प्रश्न है हम कह सकते हैं कि उसमें बहुत समय तक प्राभिजात्य का घातक व्याप्त रहा। बरिजों और बेस्वार्थों के उच्चार के लिए प्रसौक्य त्याग करनेवाले और पैसा जुटानेवाले प्राभिजात पात्र हमारे उपन्यासों में व्यवस्थित हैं। प्रेमचन्द के नुसारवादी पात्रों को ही हम देख सकते हैं। उनमें सामाजिक क्रान्ति का जो भाव है वह बीन-बरिजों और प्रबला नारियों पर अपार दबा के रूप में ही प्रकट हुआ है। किन्तु 'गोदान' के होरी ने सिद्ध कर दिया है कि उपन्यास के लिए प्राभिजात्य इतना आवश्यक नहीं है जितना कि जीवन। इसके बाद सीधे ही प्राभिजात्य की उपेक्षा हान लगी। भगवतीचरण वर्मा के 'तीन वर्षों का रमेश प्राभिजात-वर्म के त्याग और उच्चारण से प्रेरित है पर वर्माजी ही 'प्राचिरी राँव' और 'देढ़े-भेढ़े रास्ते' में किसी प्राभिजात पात्र की प्रतिष्ठा नहीं कर सके। सामाजिक जीवन की समस्याओं में आकर अन्य लेखकों ने भी सामान्य से प्रेरणा ली। अरक रविम रायच विष्णु प्रभाकर, नागार्जुन रेणु इनके उपन्यासों में क्रमशः प्राभिजात्य के बीज होने का आभास मिलता है।

व्यक्तिवादी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में जो प्रबल और प्रभावशाली पात्र हैं उनमें थोड़ा-बहुत प्राभिजात्य का भाव अब भी प्राप्य है। इलाचन्द्र बोधी स्वयं मानते हैं कि प्राभिजात्य ही चिरमत्त मूल्य के साहित्य की रचना में उपयोगी हो सकता है और जनकीयता जीवन में जितनी उपयोगी है उतनी साहित्य में नहीं है।^१ किन्तु साथ

होता है कि बोसोजी का तत्त्व यही समाज के धर्मशास्त्रों से नहीं है। भावों की तीव्रता और महत्ता के कारण धार्मिक प्रभावशाली पात्र भी कला की दृष्टि से उदात्त और अभिजात माने जायेंगे। कला की दृष्टि से भावों की उदात्तता उनके धर्म और लोक-कल्याणकारी होने में नहीं है, उनके तीव्र और प्रभावशाली होने में है। इसी दृष्टि से वास्तव्यवस्की के पात्र और फेंच के अधिकांश उपन्यासों के पात्र अभिजात और उदात्त माने जा सकते हैं। प्रायः सभी व्यक्तिवादी उपन्यासों में यह उदात्तता एक धर्मवर्त्म युक्त है और यह फेंच और धर्मोद्देशी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मिलता है। किन्तु ऐसे पात्रों में भी प्रथम श्रेणी का वर्गीय धार्मिकता नष्टप्राय है। कभी उपन्यास धार्मिक सामाजिक और समाजवादी होने के कारण धार्मिकता की उपासना से बहुत कुछ मुक्त हो चुका है। समाजवादी स्वार्थवादी उपन्यासों के पात्रों में भी जो 'वैद्यमार्ग' योजना का सफलकीरसु धारि दे विजय प्राप्त करते हैं धार्मिक उदात्तता नहीं मिलती। इसका मुख्य कारण यही है कि इन उपन्यासों में वैधीय प्रगति का जो रूप देखते हैं उसमें उन विविध पात्रों का नहीं संपूर्ण वर्णन का स्थान है। विद्यपक उस योजना का ही महत्त्व है उसे संवर्धित करनेवाले व्यक्तियों का नहीं। नयी बुनी जमीन' के नायकनोव को का 'फ्लोटिंग स्टानिस्ला' के नायक को उदाहरण के रूप में लीजिए। उनका समस्त कार्य साम्यवादी योजनाओं द्वारा चलाया जाता है। यत के स्वतन्त्र व्यक्ति का विकास नहीं कर पाते। आधुनिक साहित्य उपन्यासों की प्रवाह-हीनता का यह एक कारण है।

नायक का पतन और अस्त

१३४ यूरोपीय और हिन्दी उपन्यासों में विषय के धार्मिक सामाजिक होने और धार्मिकता का अस्त होने के साथ नायक का भी पतन होता आया है। और साथ उसका अस्त ही हो चुका है। किसी समय बिना नायक के उपन्यास की कल्पना ही नहीं हो सकती थी। नायक या नायिका के नाम ही उपन्यास को भी दिये जाते थे इससे नायक का महत्त्व स्पष्ट होता है। कथानक की सारी घटनाएँ एक ही व्यक्ति को केन्द्र बनाकर घुमती रहती थीं। अन्य पात्र सब उससे बंधे हुए थे और विविध पात्रों में और घटनाओं में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित कर उनके धर्मिकता को नायक बनाने वाला नायक ही था। एडमंड डिकेंस का *ट्रिस्ट्रम शैंग्वी बेन* (Pride & Prejudice), एम्मा गोल्डनर *ट्रिस्ट्रम*, डेविड कॉपरफील्ड साइमस मार्कर रिमोन्डर (Captains Daughter), जॉन-बल-जॉन आदि हैं लेकर सैकड़ों नायक उपन्यास के केन्द्र रह चुके हैं। हिन्दी में प्रेमचन्द तक के सभी उपन्यासों में और बाद के भी धार्मिक उपन्यासों में नायक के चारों ओर ही कथानक चट्टक काटता है। हिन्दी में सभी नायक का पूर्णतया अस्त नहीं हुआ है, अस्त ही उनका महत्त्व बन गया है।

उपन्यास में जब व्यक्ति और समाज के वास्तवीय अध्ययन का प्रारम्भ हुआ उसी समय नायक का महत्त्व भी कम होने लगा। समाजवादीय अध्ययन ने व्यक्ति की प्रमुखता को ही नष्ट कर दिया। वास्तवीय वास्तव्यवस्की सुपनेव समावेय, बोधा

मोपासों धारि के उपन्यासों में नायक हैं लेकिन कथा-संचालन का सुत्र इन नायकों के हाथ में नहीं है। परम्परागत कवि के पावन-मात्र के लिए ये नायक अपना अस्तित्व रखते हैं। वे अपने किसी व्यक्तिगत वैशिष्ट्य या चमत्कार से इन्हें आकर्षित नहीं करते। इसके विपक्ष हमारा ध्यान उन उपन्यासों में विद्यमान सामाजिक जीवन की गतिविधियों के प्रति और नायकों की प्रवृत्तियों को भी संघासित करनेवाली सामाजिक शक्तियों के प्रति अधिक जाता है। ये शक्तियाँ तो प्रकार की हैं। व्यक्ति के बाहर की सामाजिक शक्तियाँ और समाज से प्रभावित व्यक्ति की मानसिक शक्तियाँ। उपर्युक्त सभी यूरोपीय लेखकों ने विभिन्न अनुपातों में इन दोनों शक्तियों को अपने पात्रों की प्रेरणा बनाया है।

हिन्दी में 'गोदान' का होरी 'तीन बरों' का रमेशचन्द्र 'आखिरी रात' का रामेश्वर 'बाबा कर्पूरेड' का दादा 'पिछली सीढ़ों' का चेतन 'निधिकांत' का निधि कान्त 'रतिनाथ की बाबी' का रतिनाथ धारि पात्रों को लीजिए। ये नायक हैं पर कथा-संचालन में उनका क्या स्थान है? 'सेवा-सदन' के सुपन या प्रमाणम' के प्रेम-रांकर के समान ये धारण उपस्थित करके समाज से एक कदम ऊपर उठकर नहीं बैठते समाज को रास्ता दिखाने का दावा नहीं करते। इनके व्यक्तित्व पूर्णतया सामाजिक हैं। समाज की जो अवस्थाय और अवस्थानीय धारा बहाती रहनी है उसमें वे भी बहते रहते हैं। इनका जीवन समाज का जीवन है पूर्णतया न हो तो आंशिक रूप में।

यूरोपीय उपन्यास में बीस-होठे हुए नायक को कभी सामाजिक यथार्थवादी और समाजवादी कथार्थवादी उपन्यास ने एकदम समाप्त कर दिया है। १९२५ के बन्साए राष्ट्रीय विकास-योजनाओं के सम्बन्ध में जो रचनाएं हुईं उनमें नायकों का स्थान समाज ने ग्रहण कर लिया है। नवस्थापित साम्यवादी धारणों ने बीरपुत्रा और व्यक्ति-माहात्म्य की मान्यता का अन्त कर दिया है। कम से कम सैद्धांतिक रूप में। राजनीति के क्षेत्र में यह सिद्धान्त कहाँ तक प्रायोगिक हुआ उसकी चर्चा नहीं परंपर है। किन्तु उपन्यास-साहित्य में इसका बहुत प्रभाव पड़ा है। बोमोबोम के 'नमी कुटी बमीन' में किसी एक पात्र को नायक कहना कठिन है। व्यक्तित्वपूर्ण पात्र उसमें एक भी नहीं मिलता। इससे भी सुन्दर उदाहरण इसका एहरनबर्ग के उपन्यास 'धीरी' और 'नवम तरंग' हैं। इनमें बिस्म-महायुद्ध के समय के और उनके बाद के यूरोप का विस्तृत समाजशास्त्रीय इतिहास प्रस्तुत है। संपूर्ण मानवता रणमंच पर आती है। एक-एक राज्य की जनता एक-एक पात्र का रूप धारण कर लेती है। बर्मेन में बनी जनताएं अपने-अपने अँह से बोलती हैं। हजारों माताओं का धार्त क्रन्दन युवक-युवतियों का आरमोत्सर्ग बालक-बालिकाओं के करण बिनाप इन सबके बीच में हम किसी नायक की खोज में जायें तो सम्पूर्ण अनुपमता ही हमारे हाथ आयेगी। इसके बाद भी कभी उपन्यासों में नायक का महत्त्व कम रहा। 'फ्लोटिव स्टानित्वा' 'हाऊ द स्टील बाउ टेम्पई' 'ओ बॉइंगरी समर' 'दिएय धॉन द धाईर' 'किथरमैनस लन' 'लिबिन बाटर' धारि में नायक केवल नाम के लिए ही उपस्थित हैं। इसका एहरनबर्ग के समान नायक की पूर्ण उपेक्षा अन्य लेखक नहीं कर सके क्योंकि नायक

का घालंजन छोड़कर कबानक को घाले बड़ाना कलाकार हैं। लिए सहज कर्म नहीं। पर इन सबको मायक का धामय लेकर ही सामाजिक विकास का अभ्यसन प्रस्तुत करना पड़ा है। हिन्दी में मगवतीवरण बर्मा के 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' रमिय राजब के 'विपादमठ' और 'सीमा-साधा रास्ता' आदि के मायकों की दृष्टि भी ऐसी ही है। 'विपादमठ' में बंगाल की भूकों मरती जनता ही एक पात्र के रूप में साकार होकर घायी है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' और 'सीमा-साधा रास्ता' में भारत के राष्ट्रीय वातावरण की उमल-धुलनों का दो दृष्टियों से बीछण किया गया है। इनमें समाविष्ट बटनाओं में किसी व्यक्ति का महत्त्व नहीं है। इस प्रकार के सबसे सफल उपन्यास हैं रेखु के 'मैसा मोक्ष' और 'परती परिकषा'। सब कहा जाए तो ये उपन्यास नहीं हैं जीवन ही हैं। एक बार इनमें—विशेषकर 'परती परिकषा' में—प्रविष्ट हो जायें तो हम उपन्यास को घुल जाते हैं। उपन्यासकार को घुल जाते हैं, यहाँ तक कि इनमें प्रयुक्त विशेष शैली को भी घुल जाते हैं। और जीवन को—केवल जीवन को—प्रत्यक्ष देखते हैं।

सामाजिक वातावरण प्रचाल उपन्यासों को छोड़कर साधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को सँ तो भी मायक का पतन दूसरे प्रकार से स्पष्ट होगा। ये उपन्यास हृद के व्यक्तित्वारी हैं। व्यक्ति की मानसिक घट्टियों को मुनभ्रम के प्रयत्न में ये उपन्यास मनुष्य की सामाजिक सत्ता के प्रति अत्यन्त अवासीन रहते हैं। पात्रों की संख्या सीमित रहती है और प्रायः एक-दो पात्रों का मनोविस्लेषण महपाई से किया जाता है। किन्तु इन एक-दो पात्रों के भी व्यक्तित्व का स्वरूप क्या है? वस्तुतः उनका व्यक्तित्व उनका अपना नहीं है। वे किसी सर्वमान्य या अर्बमान्य—मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त को विचार करने के निमित्त ही अपना अस्तित्व रक्षते हैं। वे समाज के ही कुछ विशेष प्रकार के या कुछ 'टाइप' के प्रतीक होते हैं। उनका मनोविस्लेषण समाज का सामूहिक मनोविस्लेषण नहीं है। किन्तु ऐसे कुछ व्यक्तियों का मनोविस्लेषण है जो समाज के ही अंग हैं और समाज की कुछ विविष्ट मनोवृत्तियों से ग्रस्त हैं। दुर्भाग्यवश ऐसे उपन्यासों के लिए जो पात्र चुने गये हैं वे साधारण नहीं असाधारण हैं। हिन्दी में भी और पाश्चात्य उपन्यासों में भी। जेम्स जॉयस का 'मुनीसठ' कई सिक्लेमर का 'तीन बहनें' रेबेका वेन्ट का 'जब' आदि के पात्र इसके अन्तर्ग अवाहरण हैं। इनमें और अधिकारिध अथ व्यक्तित्वारी उपन्यासों में केवल बिहृत चित्तवृत्तियों का ही विस्लेषण किया गया है। अन्तर्ग और जोशी के सभी पन्थ बिहृतचित्त या असाधारण हैं, फिर भी यह चित्तवृत्ति और असाधारणता हमलिए लायी गयी है कि मेखक समाज में ऐसी प्रवृत्तियाँ देखते हैं और उनकी स्पष्ट करना चाहते हैं। इससे घाले उन व्यक्तियों के प्रति मेखक की भी भावना नहीं है। पर ये पात्र मायक के स्वान पर प्रतिष्ठित होने पर भी प्राचीन उपन्यासों के मायकों के समान कबानक के संवासरु नहीं हैं। वे किसी महान् काय के प्रकर्तक न होकर कुछ प्राकृतिक घट्टियों से संवाभित हुए हैं। इसीलिए साधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में उदात्त पात्रों का अभाव है। यह परिवर्तन कहाँ तक सचित है यह दूसरी बात है। पर यह निश्चित है कि मायक का

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार भी अपने नायक को किसी ऊँचे स्थान पर प्रतिष्ठित करके उसे सबके आदर का पात्र बनाने को तैयार नहीं है।

उपमूलक तीनों प्रवृत्तियाँ हिन्दी के तथा यूरोपीय भाषाओं के उपन्यास-साहित्य में उपलब्ध हैं। इनको समयानुसार समाज और मेलकों की विचारधाराओं में धानेवाले परिवर्तनों पर आधारित भागना पड़ेगा। इस तरह औपन्यासिक विषय में समय-समय पर जो परिवर्तन हुए हैं उनके अनुकूल धिस्व-विधान में भी परिवर्तन हुए हैं।

२

वस्तु विधान की पद्धतियाँ

उपन्यास-कला के इतिहास में जब तक बितने प्रयोग होते आये हैं उनमें ध्वनि का सक्षम विषय और वस्तु-विधान की पद्धतियों पर केन्द्रित रहा है। मेलकों का व्यक्तित्व देश और काल-सम्बन्धी परिस्थितियाँ आदि के अनुकूल समय-समय पर देखी विविधी उपन्यास-साहित्य में विषय का परिवर्तन होता आया है। साव-साव विषय के विकास की प्रणामियों में जो परिवर्तन आये वे अधिक महत्त्व के हैं। वस्तुतः मेलकों का ध्यान विषय से बढ़कर भाव पर अधिक केन्द्रित होता आया है। विस्तृत रोचक रोमांचकारी विषयों के ज्ञान में किसी निश्चित भाव पर आधारित विषयों का प्रतिष्ठापन क्रमशः होम लगा। भाव मरता को सुरक्षित रखने का सबसे सफल उपकरण रूप मरता बना। विश्व-उपन्यास-साहित्य का इतिहास इस भाव-मरता और रूप-मरता के परमोत्कर्ष तक पहुँचने के प्रचल का इतिहास है।

पाठक के सामने कथानक की घटनाओं को सूचना या समाचार के रूप में रख देना मेलकों की अपनी आदरणाओं को अनावृत रूप में उपस्थित करने के प्रतिरिक्त कुछ नहीं है। ऐसा कथानक वह कितना ही रोचक क्यों न हो न पाठक के सामने जीवन का या उसके धर्मों का समवेत रूप रख सकता है न पाठक की सहानुभूति को आपरित करने में सफल हो सकता है। प्रेमचन्द जैसे प्रपञ्चोत्तरण वर्मा मन्नेन मधुपान नाबार्बुन रेणु आदि हिन्दी के प्रतिष्ठित उपन्यासकारों के अलावा यूरोप के फ्लाबेयर, मोपसाँ रोमै रोसाँ वास्तायवस्की तुर्निय सामस्ताय बैल्लर गोर्की जेन हास्टिन डिकेन्स स्काट मार्गबर्गी ब्रुकल आदि मेलकों के उत्कृष्टतम उपन्यासों की कबल घटनाओं को ध्वनि कर रहा वेन स कोई उपन्यास नहीं बनेगा। क्योंकि वेता कि पर्वी सम्बन्ध में कहा है, 'उपन्यास घटनाओं की शृंखला-भाज नहीं है। वह एक सम्पूर्ण विषय या धानेक्य है जिसमें रूप प्ररचन एवं समानुविधान भी आवश्यक होता है। उपन्यासकार को जीवन के छोटे या बड़े घंटा का एक ऐसा चित्र ध्वनित करना पड़ता है जो अपने में समाहित घटनाओं पात्रों भगोमात्रों और वातावरणों में विभक्ता के होते हुए भी एकता का आभास है सके ऐसा चित्र जो निर्जीव न होकर आननात्मा के

जीव-जीवन को सर्वोपरि ध्यक्षित कर सके जिससे वह समाचारपत्र की सम्पूर्ण रिपोर्ट से भिन्न हो।

इस तरह जीवन को समीप रूप में ध्यक्षित करने के प्रयत्न में जो विभिन्न परिपाटियाँ और प्रणालियाँ प्रचलित हुई हैं उनका विश्लेषण करने का प्रयत्न यहाँ किया जा रहा है।

१ विवरण शैली

१३५ हिन्दी में विवरण शैली—उपन्यास और कथा साहित्य के सौंदर्य काम में विवरण शैली ही विषय विकास की एकमात्र प्रणाली थी। एक सुगठित—या कम से कम अनुबद्ध—व्यक्त का साधारण विवरण ही प्रारम्भिकालीन कथा-साहित्य में दिखायी देता है। हिन्दी में प्रेमचन्द के पुत्र के उपन्यास-साहित्य ने विवरण शैली के प्रतिरिक्त और किसी शैली का उपयोग नहीं किया। स्वयं प्रेमचन्द के उपन्यासों में यद्यपि वस्तु-विज्ञान की दृष्टि से कई महत्त्वपूर्ण उपकरणों का उपयोग किया गया तथापि उनमें विवरण शैली का महत्त्व भी कम न रहा। प्रेमचन्द ने इरम-विज्ञान को अपनाया परोरमिक उपन्यास का सा वातावरण प्रस्तुत किया चरित्र-चित्रण में कहीं कहीं मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की विशेषण-शैली को अपनाया फिर भी मूल रूप में उनके सभी उपन्यासों में वस्तु-विज्ञान विवरण शैली में ही हुआ है। जामा बीनिवास बाबू बाबूदण्ड बट्ट राबादण्डवास किछोटीबाबू गोस्वामी मन्नाखान मेहता आदि के उपन्यासों में विवरण द्वारा किसी समस्यामूलक कथा को घाने बढ़ाने की को चेष्टा मिसती है, उससे प्रेमचन्द भी अधिक मुक्त नहीं हुए न। विशेषकर उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति कथा धर्म का मुख्य धर्म है। कथा को घाने बढ़ाने की चिन्ता उन्हें सदा बनी रहती है। फिर भी प्रेमचन्द घाने पूर्ववर्ती लेखकों से इस बात में घाने बढ़ हैं कि वे कहीं-कहीं विवरण द्वारा प्रस्तुत कथा को विराम देकर अपने पात्रों और उनकी परिस्थितियों को स्पष्ट रूप देने का प्रयत्न करते हैं जिससे जीवन की सम्पूर्णता का अधिक आवास मिसता है। प्रेमचन्द के पश्चात् विषय और विषय-विकास के संबन्ध में उपन्यास की साम्यता बढ़नी। वस्तु-विज्ञान के कई नूतन शैलों की स्थापना हुई किन्तु आज तक हिन्दी उपन्यास में विवरण शैली सबसे प्रमुख एवं सर्वाधिक प्रचलित बनी रहती है।

अथवाकर प्रसाद 'कौशिक' प्रतापनारायण श्रीवास्तव राजकारणप्रसाद सिंह 'निराला' जगन्नाथ गोविन्दबल्लभ पन्त रामेश्वर शुक्ल 'अज्ञान' 'उषा' मन्मथ नाथ कुल आदि के प्रायः सभी उपन्यास विवरण पद्धति में हैं। कौशिक के 'म' और 'अज्ञान' में कथात्मक विवरण के द्वारा ही घाने बढ़ते हैं। विवरण में भी घना वस्तु वातावरण और चरित्रों का आधिक्य होने से प्रभाव कम हो गया है। इनमें ऐसे विवरणमूलक संभावना और चरित्रों का आधिक्य से अधिक हैं जो न कथा-विकास में काम देती हैं न चरित्र-चित्रण में सहायक होती हैं, और न सामाजिक परिस्थितियों को ही स्पष्ट करती हैं। 'अज्ञान' में राजनाथ और ब्रजकिशोर का बसो के बारे में सम्भाषण विशेष सार्थक नहीं सीखता। राजनाथ के यहाँ से उल्लेख

मेम करनेवासी बस्ती के अपने पिता के साथ अपने घर नये जाने का जो विवरण पचास से अधिक पृष्ठों में किया गया है वह न परिस्थिति को व्यक्त कर सका है और न इन विपुलते हुए्यों की व्याप्ति को व्यक्त कर सका है। साधारण बातचीत करने इधर से उधर उधर से इधर, कभी से बाहर, बाहर से अन्दर जाने-जाने के नीरस विवरण में इतने पृष्ठों को व्यय करके मेन्डक ने विवरण को बुर्बल ही बनाया है। इसके विरुद्ध उग्र और सम्मन्ताव मुक्त ने विवरण की केवल विषय के अस्तिर्जन तक ही सीमित रखकर भाषों की लक्ष्म-भाष का रूप दिया है। गिराजा और जयसंकर प्रसाद का विवरण यमोभाषों की पुस्तुतया जेला नहीं करता। दोनों कुछ मार्मिक या विषम प्रसंगों में कथानक का विवरण छोड़कर परिस्थितियों की व्याख्या करते हैं। उपादेवी मित्रा जैनेन्द्रकुमार भगवतीप्रसाद बाजपेयी हलाचन्द्र जोशी राधेय रावण आदि ऐसे मेन्डक हैं जिन्होंने अपने आर्थम्यक उपन्यासों में विवरण को अधिक महत्व दिया पर बीदे-बीदे विपद-विकास की धर्म्य पद्धतियों को भी अपना लिया। उपादेवी के 'पिया' और 'पनचाटी' विवरणालम्बक हैं। पर 'जीवन की मुक्तान' तक पाठे-पाठे उनकी कला वर्तन व्याख्या और हृदय-विभाग से सजीव हो उठी है। जैनेन्द्र ने 'परक' और 'रामायण' के बाह्य विवरण दोनों को विलुप्त छोड़ दिया है। बाह्य के उनके सभी उपन्यास हृदयात्मक या व्याख्यात्मक दोनों में हैं। भगवतीप्रसाद बाजपेयी के 'भनाव पत्नी' 'पिया' 'रामायण' (मुक्तान) 'पठिता की साधना' 'दो बहनें' आदि विवरणालम्बक हैं। हाल ही में उनका एक बहसा है जिसका आधा 'जलते-जलते' (१९२१) और उसके बाद के उपन्यासों में मिलता है। 'मनुष्य और देवता' और 'मार्ग से पावे' उनकी कला के विकास की दो सीढ़ियाँ हैं, जहाँ कला-विकास में विवरण का महत्व कटकर कला की धर्म्य प्रणालियों को अधिक स्थान मिलता है। हलाचन्द्र जोशी के 'हृदयानी' वृन्दावनलाल वर्मा के 'पड़ कुच्छर' 'नयन' 'कुंठनी चक' आदि निदिष्ट ही विवरण-सीमा में हैं। लेकिन बाद के इनके उपन्यास प्रायः हृदयों पर अधिक ध्यान देने से अधिक नाटकीय बने हैं। राधेय रावण जोशी वृन्दावन लाल वर्मा विपुल प्रयाकर, यज्ञवत और नायार्जुन मार्मिक प्रसंगों को नाटक के हृदय के समान प्रस्तुत करने के साथ-साथ विवरण को ऐसे प्रसंगों को परस्पर सम्मिल करने का सूत्र बनाकर तद्वाचा कथानक को गृहणावस्थ रखने में भी सफल हुए हैं। राहुनजी की विकास-सीमा भूल रूप में सदा विवरणालम्बक ही रही है। यद्यपि उसके अन्तर्गत उन्होंने पक्षीय चक हृदय-विभाग आदि पर भी प्रयोग किये हैं। हलाचन्द्र जोशी यद्यपि हृदय-विभाग और व्याख्या के प्रति अधिक मोह दिखाते हैं तो भी उनमें प्रायः ठोकर आकर गिर जाते हैं। 'संन्यासी' 'निर्वासित' 'अठ घोर छाया' 'जहाज का पंछी' आदि में जब वे परिस्थितियों और मनोरथाओं की व्याख्या करने लगते हैं—यदि ही वह व्याख्या मनोवैज्ञानिक हो—तब वे पाशों और बाधावरण

१. सम्मन्ताव मुक्त के लेख 'हृदयविभाग' के मुन्नासिंह और निरवारी के एक आत्म के रस से संरक्षित भाषों के हृदय में विवरण-सीमा उत्कृष्ट और मार्मिक बुरे हैं।

से दूर होकर एक तर्क-संचार में बिबरण करने लगते हैं। पात्रों के मुँह से सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में (जैसे 'संन्यासी' में) या मनोवैज्ञानिक तर्कों के आधार पर (जैसे 'प्रत धीर जाया' में) दार्ष्टिक भाषा में जो लक्ष्यवादी बरानी मयी है उसके कारण हम पात्रों की अनुभूतियों से तात्पर्य नहीं पाते। इसके विपक्ष यह लेखक वादी हमें पात्रों से दूर करती है और उनके वास्तविक अस्तित्व को सम्बन्ध बना देती है। लेकिन हमें पात्रों के मुँह-मुँह के संसार से दूर होकर एक दार्ष्टिक संसार में ले जाता है, जहाँ हमें मते ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं दार्ष्टिक चिन्तन का साक्षात्कार हो पर जीवन की अनुभूतियों का नहीं। आचार्य चतुरसेन वास्वी ही ऐसे एक लेखक हैं जो धारि से धन्य तक बिबरण-शैली के प्रति विरक्त रहे हैं और उस शैली के उत्कृष्ट रूप द्वारा चरित्र और वातावरण को मूर्त करने में बहुत सफल हुए हैं। पात्रों के बाह्य रूपों, चेष्टाओं और क्रियाकलापों का सूक्ष्म बिबरण मूर्तिकरण के लिए प्राथमिक है।^१ इसके लिए बिबरण अत्यन्त उपयोगी है। कथानक की गति को बनाये रखते हुए चतुरसेन बिबरण द्वारा वातावरण को स्पष्ट करते हैं और पात्रों को कम देते हैं। उनके कथोपकथन तक बिबरण शैली से प्रभावित हैं क्योंकि उनमें भी कथा नक सघन गतिशील रहता है। उनके कथोपकथन प्रायः कथानक को धारि बढ़ाने के लिए ही हैं। चार्ल्स ड्रिफ्ट के 'आरम बीड' 'मिडिल मार्च' में हैनरी जेम्स के 'एम्बेसडर' में हार्डी के 'टेस' में तथा वास्वी के 'हि मेन थॉफ़ प्रोपर्टी' में बिबरण शैली से जो समीक्षा प्राप्ति है वह चतुरसेन के नवीनतम उपन्यासों में है। 'वैद्यानी की गगरबद्ध' 'सोपनाय' 'कर्मपुत्र' 'बय रत्नाय' धारि में इसके अन्धे उदाहरण मिलते हैं। लेकिन चतुरसेन उपर्युक्त पाठ्यात्म्य उपन्यासों के समान निरक्षर हस्तों के विधान में सफल नहीं हुए हैं कथन गतिशील हस्तों को और घटनाओं को चित्रित करने में सफल हुए हैं।

यूरोपीय उपन्यास में बिबरण शैली

१३६ यूरोपीय भाषाओं के प्रारम्भिक उपन्यास—उपन्यास के पृष्ठ की कथारमक रचनाएँ—बिबरण शैली में हैं। बुकाचियो का 'डे कायेरान' श्याँ रैबले का 'पेन्टागुएन' मार्सेट नबेट का 'हेटामरान' सेरवान्ते का 'दान किक्कोट' धारि पूर्णतया बिबरण-शैली में ही हैं। श्याँ रैबले में काशी लंबे धारि तक हम शैली का प्रचलन रखा। श्याँ रैबले में शीको के 'राबिन्सन क्रूसो' और 'मोल फ्लान्देर' स्टेन का 'ट्रिस्ट्रम शैली' रिचर्डसन का 'प्यामेसा' (जो पत्रात्मक होने पर भी बिबरण शैली में ही है) धारि में ही नहीं डिक्सेन्स थैकरे और स्कॉट तक क उपन्यासों में भी इसी शैली की प्रचलता रही। फेंच में न ताज बाइरात एबी ग्रीबोस्त मथाम-व-स्ताएन

1 "By nature imaginal it (narration) tends to remain imaginal in reader's recollection of character and thus to furnish the symbol of personality of identity itself"—Myers Later Realism, P 106-107

भावि से लेकर ह्यूगो जार्ज सैण्ड और द्यूमा तक के उपन्यास विवरणात्मक हैं। कहा जा सकता है कि धंधवी में जार्ज इमियट से और सैण्ड में स्टैडहाम से ही विवरण टीनी का महत्व कम होने लगा। जार्ज इमियट और स्टैडहाम ने वैयक्तिक विशेषताओं के धम्मम और परिस्थितियों के विस्मरण का जो मार्ग अपनाया उसके लिए विवरण मात्र पर्याप्त नहीं था। अतः उनको व्याख्यात्मक और नाटकीय पद्धतियों को स्वीकृत करना पड़ा। जिनका बाद में लेखकों ने भी स्वागत किया। किन्तु सैण्ड साहित्य के पलायन, मोपासां भावि उत्कृष्ट कलाकारों ने विवरण की पूर्णतया उपेक्षा नहीं की। मोपासां के 'ब्लैक ऐमी' 'ऊन बी' भावि मूल में विवरणात्मक ही हैं। इन्हीं साहित्य में विवरण-पद्धति का अधिक विकास नहीं हुआ। पुष्किन के 'अष्टान की बेटों' और 'बुखारेन्की' के पश्चात् ही इस चीज़ी का स्थाय होने लगा। मोपोस ने कथानक को महत्व न देकर हस्तों को महत्व दिया अतः उन्होंने नाटकीय व्याख्यात्मक चीज़ी को अपनाया। इसके बाद वास्तववादी तुर्गेनैव वास्तव्य लेखक भावि ने भी विवरण को अनावश्यक महत्व नहीं दिया।

जेम्स, प्रुस्त और जीद के विवरण

१६७ सांकेतिक दृष्टि से विवरण का ध्येय बढ़ाकर उपन्यास-साहित्य में अतिरिक्त परिवर्तन आनेवाले थे ये तीनों लेखक। हेनरी जेम्स का प्रभाव अग्रणी पर ही नहीं सम्पूर्ण यूरोपीय उपन्यास-साहित्य पर पड़ा। जेम्स के पहलू के धंधवी और सैण्ड उपन्यासों में जो जाग बेल सकते हैं, (१) लेखक के विचार, चिन्तन और विवेक को प्रकट करनेवाला विवरणात्मक भाग और (२) पात्रों के कथोपकथन से युक्त और उनके व्यक्तित्व को प्रकट करनेवाला नाटकीय भाग। प्रायः प्रथम भाग में लेखक पात्रों को उचित रूप में परिचित कर कहा करता है और दूसरे में पात्रों के विकास का बहिर्गमन करता है। जेम्स ने इस रीति को एकदम उलट दिया। उन्होंने नाटकीय समापण से युक्त द्वितीय भाग का पात्रों को परिचित कर रखने के लिए और विवरण प्रथम प्रथम भाग का पात्रों के विकास के विकास को व्यक्त करने के लिए उपयोग किया। फलस्वरूप द्वितीय भाग कथा-भाग के स्वयं वादनी या लेखक के रूप में परिणत हुआ। कभी-कभी कथा को सर्वज्ञ लेखक ने स्वयं न कहकर किसी पात्र के द्वारा कहाया है। जैटैक 'एम्पासडर्म' में। इससे अनावश्यक बाह्य घटनाओं को तिरस्कृत कर, पात्र की अनुभव-सीमा के अन्दर की वस्तु-भाव को स्पष्ट करने और नाटकीयता आने में सहायता मिली। विवरण भाग में पात्रों के विकास के विकास की व्याख्या नहीं होती पर परोक्ष रूप में व्यञ्जन होता है। प्रुस्त ने भी इसी रीति को अपनाया। वे 'मृतकाल-परिक्षण' (A la Recherche du Temps Perdu) में पात्रों के मूल से मूलम चमन और मनोभावों को विवरण द्वारा प्रस्तुत करके मन की घनावस्था तक पहुँच जाते हैं। मूल्य और अलमुर विकास को पूर्ण रूप देने के लिए विवरण-सीमा का उपयोग और किसीने इतनी सफलता से नहीं किया है। प्रतिपात सोने के पहलू अपनी माता से जुम्बन पानेवाले एक बालक का हृदय एक दिन माता का जुम्बन न पाकर फँसे

स्पष्टता है इसे दिखाने के लिए प्रुस्त ने इस पृष्ठ भिन्ने हैं, लेकिन इन दस पृष्ठों में कहीं भी विचारों और विचारों का सीधा बिजल नहीं हुआ है। प्रत्येक विचार को बाह्य क्रियाओं का रूप दिया है जिन्हें व्यक्त करने के लिए विवरण-संकीर्ण ही उपयुक्त है। विवरण को पात्रों की बापरी या लेख के भाव का रूप देने में धान्य और श्रम-बल नीय है। अंग्रेजी में मिथिज रीतिभिक बिस्व में निम्नोपर बादि के 'बोध-प्रवाह उप न्यास' में भी विवरण की इस व्यंजना-शक्ति का उपयोग किया गया है। संभव में कहा जा सकता है वर्तमान अंग्रेजी और फ्रेंच उपन्यास में विवरण केवल किन्ती बटना घमवा रूप को चित्रित करने के लिए नहीं होता बल्कि पात्रों के विचारों को साकार बनाने के लिए होता है।

पोली अनेन्द्र और अज्ञेय के विवरण

१३८ उपर्युक्त पुरीषोब लेखकों के सघाम मनोवैज्ञानिक लक्ष्यों का बिस्लेषण करनेवाले इन उपन्यासकारों ने विवरण का इस तरह का उपयोग नहीं किया है। जैसे हिन्दी के किसी भी उपन्यासकार ने बाह्य क्रियाओं के विवरण द्वारा पात्रों की धान्य रिक सत्ता को प्रकट करने का प्रयत्न नहीं किया है। अनेन्द्र के 'मुनीता' के परभाव के उपन्यासों में प्रायः विवरण कम हुए हैं। वहाँ हुए हैं वहाँ कथानक को घाने बढ़ाने के लिए ही हुए हैं। मनोविकारों का स्पष्टीकरण संभाषण में ही होता है। इत्यादि बोधी विचारों के विवरण के लिए या तो स्वयं उनकी व्याख्या करने लपते हैं या पात्रों के एक-दूसरे के वा अपने ही मनोवाची का बिस्लेषण करने लगते हैं। जब पात्र स्वयं अपने चेतन और अवचेतन की व्याख्या करने लपते हैं जैसे 'मेरा और छाया' में तो अस्वाभाविक-सा हो जाता है। अज्ञेय ने 'देखर' में विवरण की मनोभाव-व्यंजक शक्ति को नहीं-कहीं पहचाना है। देखर की जिन प्रवृत्तियों का विवरण मिलता है उनके पीछे कुछ मनोप्रवियां भी निहित हैं। फिर भी पात्रों के मुख्य चलन का विवरण उसमें भी नहीं मिलता। 'नदी के द्वीप' में इस बात में अज्ञेय कुछ भागि बड़े हैं, और उनका ध्यान पात्रों की उन सूक्ष्म क्रियाओं की ओर भी गया है जो उनके मानसिक धरातल पर रूप धारण करती हैं।

हिन्दी के अन्य मधार्थवाहियों और अन्य मधार्थवाहियों का विवरण

१३९ विवरण की इस मनोविकार-व्यंजक शक्ति का प्रयोग साधुनिक कसी उपन्यासों में बिलकुल नहीं मिलता। बास्ताबवस्की और सुर्वेन ने अपने पात्रों के संकुल विचारों और विषम मनोभावों को साकार बनाने के लिए प्रायः विवरण को घमनाया वा। 'अपरण और दंड' का रस्कोतनिकाव 'महाभूत' का प्रिस मिथकि 'रदिन' का रदिन 'अछत भूमि' का नैजगोव बादि पात्रों का चरित-विवास इस प्रकार

हुमा है। लेकिन इसके पश्चात् विवरण का ध्येय ही बदल गया। विशेषकर बेखन और गोर्गी के उपन्यासों में और उसके पश्चात् समाजवादी यथार्थवाद के घुलनगत उपन्यासों में विवरण को पात्रों की बाह्य क्रियाओं तक ही सीमित रखा गया। विवरण की सार्वकता की चरम सीमा किसी पात्र को मनोदृष्टि के सामने यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने में दबबा किसी हृदय को सामने घट्टा हुआ-सा दिखाने में समझ गया। विवरण का यही रूप हिन्दी के प्राच्यनिक यथार्थवादियों में भी मिसता है। उपेन्द्रनाथ राय^१, विष्णु प्रमाकर^२, देवेन्द्र सत्यार्थी^३, यशवन्त^४, यथवतीप्रसाद बाजपेयी^५, यथवतीचरण वर्मा^६, नापाजुन^७, उषयचक्र भट्ट^८, लक्ष्मीनारायण भास^९, धारि सेलक पात्रों और दृश्यों के यथार्थ से भासित होने के लिए उनका आवश्यक सूक्ष्म निरीक्षण के साथ विवरण करते हैं, जिससे सहज रूप में हम पात्रों और परिस्थितियों को समझ पाते हैं। पात्रों के विकारों का सहज सरल रूप हमारी समझ में आता है। किन्तु इन लेखकों के उपन्यासों में जीवन के सरल से सरल पर मार्मिक से मार्मिक प्रश्नों की कमी रहती है जो बेस-काम की सीमा लांघकर मानव-भाव के हृदयों को उद्देसित कर सकते हैं, और बोधोद्दिग कोसो कोष एहरनवर्ग कोशेनविशेष धारि क्सी उपन्यासकारों की कृतियों को—को संस्था में कम हैं—विश्वसाहित्य में स्थान देते हैं। उपर्युक्त हिन्दी और क्सी यथार्थवादियों के विवरण हेमन्त बेम्स और प्रुस्त के विवरणों से इस बात में विद्य है कि इनके विवरण सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा हृदय उपस्थित करते हैं। बाह्य यथार्थ का बोध कराते हैं, किन्तु पात्रों के विकारों के आत्मिक विकास को उसकी पूर्ण सीखता में व्यञ्जित नहीं करते। बल्कि प्रुस्त बेम्स और उनके अनुयायी पात्रों पर ही ध्यान केन्द्रित करके उनकी बाह्य क्रियाओं के प्रत्येक अंग से घनत्वा का सम्मिश्रण ओझकर विकारों को ही मूर्त रूप दे देते हैं। पाठक भले ही किसी यथार्थ बाह्य दृश्य का अनुभव न करे, पर पात्रों के विकार

१. गरम रात में संस्कृति-समाज के कार्यक्रम का (१९०६-०९) गिरती दीवारों में बेखन के विचार के बाद लड़कियों के विज्ञान का विवरण (१९१२) देखिए।

२. हेरों निरिच्छन्त (अनेक प्रसंग हैं)

३. हेरों 'अनुत्पत्ति' (अनेक प्रसंग हैं)

४. हेरों 'अनिष्टा की छाती' (आप्त सम्पूर्ण उपन्यास में)

इन्सार्क में स्नायु के कटिवा को खोलने का विवरण १९२२।

५. बाजपेयी में यह प्रवृत्ति हाल में आयी है। उनके अतीततम उपन्यासों में विशेषकर 'यथार्थ से भागे' में ऐसे चित्रने ही विवरण हैं। अन्त-अन्त दुमरा अन्तरेण है।

६. श्रीक इन्सार्क का प्रथम अध्याय हेरों।

७. 'रतिनाथ की आत्मा' और 'रत्ना बरमेरनाथ' में कुछ ऐसे विवरण हैं। लक्ष्मीनारायण और नयी दीव के विवरण कथात्मक को भागे पाने के लिए ही हैं।

८. देखें सागर शहरों और मनुष्य के विवरण। नये मोह के विवरण अन्त-विद्युत यात्र के लिए हैं।

९. 'वना का बोसना और छाँद' के विवरण देखें।

उसके ही हृदय में चलने लगते हैं। हिन्दी उपन्यास ने धातु तक इस तरह का प्रवीण पूर्ण सक्षमता के साथ नहीं किया है। 'सेखर' 'नदी के द्वीप' 'भुविमल' एवं 'सुबह के भूते' में बातावरण को जीवता बनाकर पात्रों के घटनमय को प्रकाश में लाने का किंचित प्रयास किया गया है। इन उपन्यासों में भी यथ-सम लेखक सामाजिक जीवन के किसी पहलू का निरूपण करने लगते हैं। यार ऐसे स्थानों पर पात्रों के मनोवृत्त का चित्रण चित्रित हो जाता है।

२. दृश्य विधान शैली (Scene-Style)

हस्तात्मक उपन्यास

१४० कई कारणों से उपन्यास कथानक की उर्वरा कला या रूढ़ि है। और यह धातु तक विकास के परिणाम में इस रूढ़ि को पहुँच गया है कि उसमें अब एक संकुल धातुबाहिक रोचक कथाकथन की आवश्यकता ही नहीं रही। जो पाठक के मन को बाँध रहे। एक ओर यथार्थवादी और प्रकृतिवादी सिद्धान्तों ने यथार्थ जीवन के घन-मयों से भिन्न विषय-कथित कथानक का विरोध किया है। और दूसरी ओर चरित्र के विश्लेषणात्मक अध्ययन की वैज्ञानिक प्रवृत्ति ने घटनाओं को धीरे-धीरे बनाकर उपन्यास को एक नवी विधा की ओर प्रवृत्त किया है। इस विधा-परिवर्तन ने विवरण-पद्धति का भी महत्व कम कर दिया है। जहाँ विवरण का प्रयोग हो वहाँ भी उसका प्रयोग अब कथानक का विकास न होकर परिस्थितियों का विश्लेषण यथार्थ व्यक्ति की मानसिक शक्तियों का अध्ययन हो गया है। साथ-साथ कई अन्य प्रवृत्तियों का भी प्रयोग हुआ है, जिनमें हस्त-विधान पद्धति ऐक्य की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

हस्तात्मक उपन्यास का स्वरूप

१४१ हस्तात्मक उपन्यास में कथा की घट्ट भूखला पर ध्यान न देकर, कथानक के मानसिक प्रसंगों को पूर्ण हस्तों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। हस्तों के पारस्परिक सम्बन्ध को निम्नान्तर कथाकार की सर्वशक्ति पर निर्भर रहता है। इस पद्धति में भाव और रूप के संतुलन पर अधिक ध्यान रखा जाता है। हस्तात्मक उपन्यास का एक मुख्य सिद्धान्त यह है कि अन्तर्गत उपन्यास यही है जिसमें साधु अभिव्यक्ति भाव अभिव्यक्ति के लिए ही हो और सारा भाव अभिव्यक्ति किया जाये। न भाव से अधिक अभिव्यक्ति रहेगी न अभिव्यक्ति से अधिक भाव।

हस्त क्या है ?

१४२ उपन्यास के 'हस्त' का तात्पर्य पात्रों के वार्तालाप के प्रसंगों से नहीं है। इस लेखक द्वारा पृथीय रूप से ही भी उपस्थित किया जा सकता है। लेकिन यह आवश्यक है कि पात्र सामने प्रत्यक्ष-से आते हों और मन पर ऐसा प्रभाव उत्पन्न कर दें जैसा किसी माटक के पात्र दर्शक के मन पर। केवल बाह्य दिखाएँ नहीं पात्रों के

विकार स्वयं पार्श्वों का स्थान लेकर अभिनय करते हुए-से दिखाई पड़ें यह हस्य की चरम सफलता का लक्षण है।

केवल पार्श्वों के कथोपकथन से हस्य का निर्माण नहीं हो सकता। वहाँ संज्ञा पक्ष तार्किक और किसी मिथ्यात्व की विवेचना करनेवाला होता है। वहाँ उससे हस्य निर्माण में सहयोग मिलने के वरत्त बाधा ही पहुँचती है। इसके विरुद्ध संभावण के प्रभाव में विवरण द्वारा हस्य उपस्थित करने के उदाहरण भी दुर्लभ नहीं हैं। चतुरसेन शास्त्री के 'बैराली की नगरवधू' और 'सोमनाथ' में कथोपकथन के प्रसंगों में प्रायः कला-विकास के लिए अनुपेक्षणीय कड़ियों पर ही केवलक का ध्यान केन्द्रित रहा है। हस्य-उपस्थिति पर नहीं। इसके विरुद्ध वहाँ विवरण का प्रयोग हुआ है। वहाँ सुन्दर प्रभावशाली हस्यों का निर्माण हुआ है। डॉ. कलाकार मूस्त के 'मूतकाल-व्यवस्थापण' में विवरण द्वारा निर्मित हस्यों के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं।^१ सामाजिक उपन्यासों में वहाँ स्वाभाविकता का बलिदान करके भी तार्किक सैद्धान्तिक और विवेचनात्मक सम्भावणों का उपयोग किया जाता है। वहाँ यह (सम्भावण) हस्य-निर्माण में सहायक नहीं होता। बल्कि संक-विज्ञान (Statistiks) के निर्बीज संकों के समान कुछ तथ्य-मात्र को सामने रखकर प्रसंग को प्रभूत बना देता है।

गतिशील और गतिहीन हस्य

१४३. सामान्य जीवन में किसी व्यक्ति के निरन्तर सान्निध्य और साहचर्य से ही हमें उसके व्यक्तित्व का परिचान हो सकता है। मानसिक सन्निकटता के प्रभाव में केवल स्वाभाविक सान्निध्य से प्रकट नित्य सम्पर्क के बिना केवल सामयिक साहचर्य से व्यक्ति का ज्ञान जैसे असम्भव है उसी तरह उपन्यास में भी पात्र केवल समय-समय पर ही प्रकट हों या निरन्तर हमारे सम्मुख उपस्थित रहने पर भी मानसिक दृष्टि से हमारे निकट नहीं आवे तो उन्हें समझना और उनके प्रति सहानुभूति का अनुभव करना असम्भव हो जाता है। यही परिणाम हस्यों द्वारा सम्भव होता है। जैसे कथानक की तीव्र गति से घाने बढ़ाने के लिए विवरण खैरी का उपयोग करना पड़ता है, वैसे ही व्यक्ति के प्रकटन के लिए घटनाओं को रोककर कथानक को लयान लेकर, निरन्तर या गतिशील हस्यों का विधान करना पड़ता है। यही 'निरन्तर हस्य' का तात्पर्य निष्क्रिय हस्य से नहीं है बल्कि ऐस हस्य से है जो सक्रिय होने पर भी कथानक की गति को प्रवृद्ध करके व्यक्तित्व प्रकटन या परिस्थिति-विस्तारण में सहायक हो। गुपिन के उपन्यासों में ऐसे हस्यों के कई उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। हिन्दी में 'बोदान' में होरी की 'साठे पर पाठे' होने की जर्जा से लेकर कई प्रसंग 'निर्मला' में मन्दाराम और निर्मला के पवित्र सम्बन्ध की दिशानेवाले कई प्रसंग और 'गहन' में भासपा के दूध-बीजन के घनेक प्रसंग इस दृष्टि से गतीय सुन्दर बने हैं। गतिशील हस्य वे हैं जो कथानक की गति में विध्य उपस्थित किये बिना ही निर्मित किये जाते हैं। निरन्तर और

गतिशील हस्वों के बीच की दशाओं में कथा-प्रवाह को विविध माथामों में मन्द करके हस्त-विधान करना भी सम्भव है ।

हिन्दी के दृश्यकार

१४४ बीसे हिन्दी में पूर्णतया हस्तारमक उपन्यास (Scenic Novel) एक भी नहीं है । यद्यपि कई लेखकों ने अपने उपन्यासों में वन-वन घटक प्रभावशाली हस्वों का निर्माण किया है, तो भी वास्तव के 'धन्ना करेनिना' हेनरी जेम्स के 'अनूतन के पक्ष' आदि के समान संपूर्ण कथानक को हस्वों का रूप देने का प्रयत्न किसीने नहीं किया है ।

'परीक्षा पुत्र' में टेक्नीक की दृष्टि से यद्यपि कई कमियाँ मिलती तथापि यह उपन्यास बहुत कुछ हस्तारमक ही कहा जा सकता है । लेखक ने पात्रों के घटित सन अन्य बातों पर ध्यान नहीं दिया है जो हस्त की वास्तविकता के लिए आवश्यक है पर वातावरण के विमल और परिस्थिति के विरोध के ध्यान में भी इसके पात्र नाटक के से मरते हैं । जैसे ही उनके धर्मों में हस्तिक माथामों की अभिव्यक्ति से बढ़कर एक प्रार्थना-मैतिकता-मैतिकता का विवेचन हो । लासा श्रीनिवास दास के पश्चात् प्रेमचन्द के पूर्व तक के लेखकों ने हस्त-विधान की अधिक महत्त्व नहीं दिया । उनके उपन्यासों में हस्त-जगत् विचार हुए दो-चार हस्वों को छोड़ द तो प्रत्येक पूर्णतया विवरण ही है ।

प्रेमचन्द वस्तु-विधान की अपनी सामान्य गतिशीलता के बीच में भी ऐसे हस्वों का निर्माण करते हैं जो पूर्णतया निरवत न हो तो प्रायः मन्द गति के होते हैं । उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में हस्वों को उतना स्थान नहीं दिया गया है, जितना विवरण को । 'देवाचरण' 'वरदान' 'प्रमाण' इनमें जो हस्त हैं वे भी विवरणात्मक ही हैं । 'रंजुमि' में प्रेमचन्द कुछ भागे बढ़े हुए-से बीखते हैं, पर 'कायाकल्प' में फिर एक कथन पीछे हट पाते हैं । टेक्नीक की दृष्टि से कई कृतियों के होने पर भी 'निमेष' में पहले-पहल प्रेमचन्द हस्त विधान-क्षेत्र के उन्नत स्तरों का स्पर्श कर सके हैं । इसके बाद 'जगत्' और 'मोक्षार्ण' में भी प्रेमचन्द ने प्रायः हस्वों द्वारा ही कथानक को भागे बढ़ाया है । चरित्र-विकास किया है और सामाजिक वातावरण का चित्र खींचा है । इन उपन्यासों के कितने ही गतिशील हस्त वास्तविकता की तुल्य ही हैं । एच० सारेन्स आदि लेखकों के हस्वों की देखी तक पहुँचते हैं । तुल्य और वास्तविकता के समान गत-माथों को पूर्ण विराम देकर उपन्यास को भागे बढ़ाने की क्षिति हिन्दी के किसी लेखक में है तो वह प्रेमचन्द में ही । फिर भी हमें यह कहना पड़ेगा कि प्रेमचन्द अधिक देर तक कथानकों को लगाम से रोक नहीं पाते । तुल्य और वास्तविकता का ही समय तक कथानक को रोक रखने में समर्थ दिखायी देता है । विभिन्न लेखकों प्रिय मिश्रिन्स एस्कोलनिकोव आदि पात्रों का चरित्र-विकास प्रायः यन्मा प्रवाह को रोककर कुछ हस्त विधान द्वारा ही किया गया है ।

प्रेमचन्द के पश्चात् के हस्तारमक उपन्यासों में 'विचार' 'मंसी की रानी

‘मृगनयनी’ ‘जये मोड़’ ‘टेंगे मेड़े रास्ते’ ‘यबार्च से घाये’ ‘मैला बाँचल’ आदि रमणीय हैं। प्रथम में ‘घोखर’ के प्रथम भाग में पूर्णतया हृदय-पद्धति का उपयोग किया है पर दूसरे भाग में कथानक प्रायः विवरण के बस ही घाये बढ़ता है; इसी कारण दूसरे भाग में पात्रों का चरित्र उतना स्पष्ट नहीं होता जितना कि प्रथम भाग में भले ही उसमें रोचकता की मात्रा अधिक हो। मृगनयनीमान बर्मा के उपन्यासों में भी यह शोष है। ‘झंसी की रानी’ के आरम्भिक अध्याय मूल चित्रों द्वारा चरित्र के अध्ययन का उत्तम उदाहरण है पर उपन्यास का उत्तरार्ध कोरे विवरण से भोजित हो गया है यहाँ तक कि कुछ भागों में उसका उपन्यासत्व पर भी संशय होने लगता है। इस दृष्टि से ‘मृगनयनी’ अधिक सफल रचना है क्योंकि आदि से अन्त तक उसकी एकता इस तरह नष्ट नहीं होती। पर उसके अधिकोद्य हृदय ‘झंसी की रानी’ के चित्रों के समान सजीव भावबोधक एवं मार्मिक नहीं हो पाये हैं। केवल कथानक को घाये बढ़ाने में वे सहन्यक हुए हैं। उदाहरणार्थ मद्रास का ‘जया मोड़’ भगवतीचरण वर्मा का ‘टेंगे मेड़े रास्ते’ भगवतीप्रसाद भाजपेयी का ‘यबार्च से घाये’ आदि हृदय-विषय के सफल प्रयास हैं। देखु के ‘मैला बाँचल’ और ‘परती परिकषा’ पूर्णतया हृदयात्मक हैं, लेकिन इनमें एक भी हृदय ऐसा नहीं है जो मानवी विकारों के अन्तर्गत विकास का रूप दिखा सके। इसके अतिरिक्त जहाँ हृदय उत्काशीन समाज के उपरिष्ठ का सामान्य ज्ञान कटते हैं, व्यक्ति के अन्तर्गत का नहीं।^१

दूसरी तरह के हृदयात्मक उपन्यास व जिनमें हृदयों और विवरणों का अनुचित संयोग रहता है। हिन्दी में ऐसे ही उपन्यासों की अधिकता है। प्रेमचन्द का अनेक हो चुका है। यद्यपि के ‘बारा कापरेड’ ‘मनुष्य के रूप’ और ‘दिव्या’ भगवतीचरण वर्मा का ‘विमलेश’ उवादेवी मिश्रा के ‘नट लीड’ और ‘जीवन की मुस्कान’ जैनेन्द्र के ‘मुबारक’ ‘अन्धारी’ ‘अतीत’ ‘विचल’ आदि धरक का सितारों का बेल’ वैवेन्द्र सराणी का ‘अठुतनी’ बमेश्वर भारती का ‘बुनाहों का देवता’ विष्णु प्रभाकर के ‘निष्कान्त’ और लट के बचन’ आदि में अनुजन के साथ हृदयों और विवरणों का उपयोग किया गया है।

पाश्चात्य उपन्यासों की तुलना में हिन्दी उपन्यासों के दुसरे

१४५ पाश्चात्य उपन्यास-साहित्य बहुत पहले ही हृदय का महत्व स्वीकार कर चुका है। आधुनिक उपन्यासों में प्रायः हृदय ही लेखक का सर्वप्रधान माध्यम रहता है। कृती के सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासों में तथा प्रेमोदी के वैयक्तिक विस्तेषणवादी उपन्यासों में विवरण हो तो भी वह हृदयों के पारस्परिक सम्बन्ध को बनाये रखने मात्र के लिए है। अंग्रेजी में हेनरी जेम्स के पश्चात् के प्रायः सभी उपन्यासकारों में व्यक्ति की आन्तरिक सत्ता को हृदयों द्वारा प्रकट किया है और बाह्य सत्ता को संक्षिप्त विवरण द्वारा। एन्ड्रयुस हर्सेले बी एच० कारेस मर्द निक्लेमर,

मिस रेबेका बस्ट कोय्पटम मैकेन्सी बर्मीनिया जूलू धावि के उपन्यास इसके उदाहरण हैं। जो एच सारेन्स हस्य-विधान में इतने सफल हुए हैं कि उनके पात्रों के बिकार स्वयं मूर्त रूप धारण कर पात्र बन जाते हैं। मनोभावों को नाटकीय रूप देने की यह प्रवृत्ति प्राधुनिक धरोखी उपन्यासों की प्रमुख विशेषता है। फ्रॉब के मारिया ममरो जीव और प्रुस्त भी मनोविकारों को मूर्त रूप देनेवाले हस्य निर्मित करते हैं पर वे धरोखी उपन्यासकारों के समान पात्रों को सामने उपस्थित कर उनसे पाठक का सीधा संबंध स्थापित करने के बरमे विवरण द्वारा ऐसे हस्य प्रस्तुत करते हैं।^१ इस तरह व्यक्त की अन्त-सत्ता का विस्मरण करनेवाले हस्य हिन्दी में बहुत कम मिलते हैं।

दूसरी एक बात जो सामान्य रूप में पारस्परिक उपन्यासों में मिलती है, यह है प्राबन्धक घस-भाग की स्वीकृति और ऐसे भागों का तिरस्कार जिनके स्पष्टीकरण के बिना भी काम चल सकता है। इससे हस्य अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं और अधिक नाटकीय बन जाते हैं। जैसे किसी चित्र पर ध्यान केन्द्रित करने में गाढ़े रंग का कम सहायक होता है उसी तरह हस्य के बाहर के विषयों को हस्य से घसम करके या उनका तिरस्कार करके हस्य को अधिक प्रभावशाली बनाया जाता है। पर ऐसी रचना में हस्यों के बीच में पारस्परिक संबंध बनाये रखने के लिए प्रायः संपूर्ण विषय को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में हस्यों के द्वारा ही व्यंजित करना पड़ेगा। इस सीमा-निर्धारण का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण दास्तावजस्की के उपन्यासों में मिलता है। उपर्युक्त स्वीकार-तिरस्कार से भटक पाठक का ध्यान कुछ रेखाओं की ओर, उनके विशेष चयन की ओर, और उनके बीच के रंगों की ओर केन्द्रित रख सकता है। हिन्दी के लेखकों में केवल जैनेन्द्र के अन्तिम उपन्यासों में यह गुण मिलता है। यद्यपि वे पूर्णतया हस्यात्मक नहीं हैं तो भी उनमें सभी बातें प्रत्यक्ष रूप में न कही गई हैं प्रत्युत परोक्ष व्यंजन प्रणाली का उपयोग किया गया है और बहुत कुछ पाठक की विस्मरण शक्ति के धरोरे छोड़ दिया गया है। ऐसा लगता है कि बटनार्ण मुख्य कथा से बिलकुल पतली डोरियों से बँधी रहती है। 'कस्याणी' में मि मटनागर, देवसीता धावि पात्र और मंदिर-निर्माण भारतीय-उपोवन का स्थापन धावि घसम स्कूच जैसे लगते हैं। 'बिबर्त' में लेखक ने भुवनमोहिनी और बितेन्द्र के व्यवहारों की कड़ी भिमना पाठक के लिए छोड़ दिया है। 'व्यतीथ' के हस्य भी प्रायः ऐसे ही हैं।

हिन्दी उपन्यासों में हस्य-विधान-कला की जो अपूर्णता है उसके मुख्य कारण

१ Percy Lubbock says about the character Strether " the novelist dealing with a situation like Strether's represents it by means of the movement that flickers over the surface of his mind. The impulses and reaction of his mood are the players upon the new scene."—The Craft of Fiction P 157

को मात होते हैं। प्रथम है, कथा-संग्रह पर अधिक ध्यान। लेखक चरित्र को प्रकाश में लाने से और परिस्थिति को विस्मिष्ट करने से अधिक कथा-सुत्र पर ध्यान रखता है किसी भी कथा में उसे टूटने देना नहीं चाहता। हृदय-माध्यम से यह असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। विवरण से यह कार्य सहज-साध्य हो जाता है। दूसरा कारण व्याख्या की प्रवृत्ति है। जब लेखक सामाजिक परिस्थिति समझना चाहि की सीधी व्याख्या करने लगता है^१ अथवा व्यक्ति की प्रवृत्तियों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रत्यक्ष रूप में करने लगता है^२ तब हृदय-निर्माण की नींव हिल जाती है।

३. पनोरमिक उपन्यास (Panoramic Novels)

१४६ समाज के विविध पहलुओं का विवरण एवं सर्वांगीण चित्रण करते हुए प्रत्यक्ष विस्तृत पटभूमि पर निहित कुछ उपन्यास उपलब्ध हैं जो पात्रों की संख्या बातावरण की विस्तृति कथानक के बल आदि बातों में किसी तरह की सीमा के अन्तर नहीं समारते। इनको पनोरमिक उपन्यास कहा जा सकता है।

कथासहित पनोरमिक उपन्यास

१४७ पनोरमिक उपन्यास जब कथासहित होता है तब आदि से अन्त तक एक कथा का प्रवाह होता है किन्तु विस्तृत रूप में चित्रित विचार सामाजिक बातावरण ही उसमें मुख्य रहता है। कथानक उस बातावरण के विभिन्न प्रपों को एक सूत्र में बाँधकर उनमें पारस्परिक संबंध स्थापित करता है। बातावरण की मुख्यता के कारण कई ऐसे हृदय भी उसमें समाहित हो जाते हैं, जिनका कथानक से हृदय संबंध नहीं रहता और जिनके समाज में भी कथा बड़े मजे में चल सकती है।

यूरोपीय साहित्यों में केवल इसी में उल्लेखोक्ति के पनोरमिक उपन्यास प्रस्तुत किये हैं। डिरेन्स के उपन्यासों से यद्यपि इंग्लैंड के सामाजिक बातावरण का ज्ञान होता है, तो भी वे पनोरमिक शैली के अन्तर्गत नहीं आते क्योंकि उनका दृष्टिकोण आलोचनात्मक होने के कारण एकांगी हो गया है। उनमें यथार्थ और विश्वस्त गिरी धर नहीं है। लेखक की वैयक्तिक भावनाओं को उत्तेजना देनेवाले एक ही रूप का विद्योकरण है। वैयक्तिक रुचि के रंगीन चरित्रों से समाज का यथार्थ रूप दिखायी नहीं पड़ता। अंग्रेजी के अन्य सामाजिक उपन्यासकारों में भी यह आलोचनात्मक प्रवृत्ति मिलती है जो समाज का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करने में बाधक होता है।

१४८ कथासहित इसी पनोरमिक उपन्यास—सिमो तास्त्राय का पुत्र

१. प्रायः हिन्दी के सभी सामाजिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति है। मेधावताउत्पन्न श्रीभारत के 'विश्वनाथ' कथालिख 'दिलजन' आदि में यह प्रवृत्ति ज़रूर मीमा पर है।

२. एनाथर बोरी के उपन्यास अत्यन्त हैं।

घोर शान्ति' दोसोदोष के 'होन नहीं भीरे बहती है' 'होन मझे में समुद्र को बह जाती है' धनेश्वरी तास्त्याय का 'भम-परीक्षा (Ordeal)' या 'कस्बरी का मार्ग' विरह-विस्फाट पनोरमिक उपन्यास है। मुझ 'घोर शान्ति' में निकोलास धान्ने सोफिया गताशा घादि की कथा एक सार्वभौमिक कथा है जो देश-काल का धन्तर नहीं जानती पर समस्त काम घोर समुद्र के देशों के मानव-मात्र का रूप दिखाती है, उनके पारस्परिक संबंधों का प्रकट करती है, उनके धन्तरांतर्गत् की विवेचना करती है। इसके साथ बेसीम बाता बरण को प्रकट करती हुई दूसरी कथा चलती है जिसके मुख्य पात्र हैं पार धनेश्वरीश्वर, बुद्धशिव नेपोमिदन स्मूरेट घादि। दोनों कथायें मिलकर मानव-जीवन का जो रूप प्रस्तुत करती है उसकी विस्तृति संसार के घोर किसी उपन्यास में मात्र एक नहीं पायी है। 'होन' उपन्यासों में शेरार की कथा रूस के कौटुम्बिक जीवन को व्याप्त करने के साथ-साथ नमुन्य हृदय के विविध बिकारों को साकार बनाकर उपस्थित करती है साथ ही १९१ से १९२ तक के विप्लवकाल का इतिहास भी इसमें निहित है। 'कस्बरी का मार्ग' में विप्लवकाल के विस्तृत बातावरण में बाधा कात्या निकोलास घादि की कथा का विकास हुआ है।

१४६ हिन्दी में कथामुक्त पनोरमिक उपन्यास—हिन्दी में ऐसे उपन्यासों का प्रायः पूर्ण अभाव है। केवल प्रेमचन्द का 'बोहान' इस खेती के धन्तरगत माना जा सकता है। होरी की पारिवारिक कथा के साथ जो विस्तृत सामाजिक बातावरण चित्रित किया गया है वह पनोरमिक ही है। 'बोहान' पर प्रायः जिस कथा-संक्षिप्त के रूप का आरोप किया जाता है उसका कारण उपन्यास का यह पनोरमिक रूप ही है। जो पाठक उसे कथा-प्रधान समझे, या होरी की जीवनी समझे वह उसमें ऐसे कई प्रायः देखेया जिन्हें कथा प्रवाह को बाधा दिये बिना काटकर निकाला जा सकता है। किन्तु जो लोग 'बोहान' को देश का संपूर्ण बातावरण प्रस्तुत करनेवाले पनोरमिक उपन्यास के रूप में देखेये वे उसकी अमणित असंबद्ध बटनाओं के बीच में भी एक सार्वभौमिक देखेंगे जो बिज को अधिक यथार्थ बनाती है जैसे किसी बिज में बातावरण को यथार्थ बनाने के लिए बिज की मुख्य वस्तु से कठिण असंबद्ध वस्तुओं का समावेश करना पड़ता है उसी तरह उपन्यास के बातावरण के बिज में भी करना पड़ता है, विधेयकर बाता बरण प्रधान पनोरमिक उपन्यास में। प्रेमचन्द को भारतीय समाज का जो संपूर्ण बातावरण उपस्थित करना था उसमें ग्रामीण घोर नागरिक जीवन का समावेश अनिवार्य था। जब भारतीय समाज में ग्राम घोर नगर के सामाजिक जीवन में पारस्परिक सम्बन्ध घोर प्रभाव बहुत कम है—१९१२ में दोनों का सम्बन्ध मात्र से भी अधिक घिबित था—तब प्रेमचन्द दोनों की बृद्ध बन्धन में बाँधकर यथार्थ की रक्षा कैसे कर सकते थे ?

एक प्रश्न यह सठ सकता है कि क्या नगर-जीवन के बिज को छोड़कर घोर ग्रामीण जीवन के ही होरी के जीवन से असंबद्ध घंटों को तनकर होरी का इससे अधिक प्रभावशाली व्यतिरिक्त नहीं बनाया जा सकता ? वस्तुतः इन सब दृष्टियों से पाठक का ध्यान विकेंद्रित हो जाता है। होरी को प्रकाश-केन्द्र (फोकस) बनाकर—सामाजिक

विपमताओं के बीच में विकसित होनेवाले उसकी वैयक्तिक जीवन की विपमता और अर्थव्यवस्था को ध्यान-केन्द्र बनाकर लोकोपेक्षक प्रमाण निरूपण ही बढ़ावा दे सकता है और उस दशा में होरी अपनी वैयक्तिक सत्ता के कारण सत्ता के पात्रों के समान अधिक प्रभावशाली हो सकता है। किन्तु जब वह इतना ही समर्थ रहेगा यह सम्भव है। उपो-वन के वातावरण के बिना सन्तुष्टता सन्तुष्टता नहीं रहती। सामाजिक वातावरण की संपूर्णता के लिए ही नहीं होरी के चरित्र को पूर्ण बनाने के लिए भी ग्राम-जीवन का चित्रण आवश्यक है और ग्राम के चित्र के वातावरण के रूप में नगर-चित्रण प्रेमचन्द को अनुपेक्षणीय आठ हुआ। जैसे प्रेमचन्द की प्रवृत्ति अन्त में 'सामाजिक वातावरण में व्यक्ति के चित्रण' के प्रति उन्मुख होती गयी और वातावरण का महत्त्व बढ़ता गया और अन्त में उसने 'गोदान' में एक पनोरमिक रूप चारण कर दिया।

१५० प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों में पनोरमिक वातावरण—अर्थात् 'प्रमादम' 'रमसूँ' 'कमसूँ' और 'आयास' पनोरमिक उपन्यास नहीं हैं, तो भी उनके वातावरण पनोरमिक जैसे हैं। इनमें प्रेमचन्द का ध्येय संपूर्ण वातावरण का प्रदर्शन नहीं है और न वे कथानक से अधिक वातावरण को महत्त्व देते हैं। अतः अटलास सब कथानक से निपटकर ही चलता है। दूसरी बात यह है कि ये उपन्यास नयी-नुमी कुछ समस्याओं के आधार पर लिखे गये हैं जो उपन्यास की विषय-सीमा को निर्धारित करती हैं। यह उपन्यास के पनोरमिक रूप में अत्यन्त बाधक सिद्ध हुआ है। और तीसरी बात है इनमें प्रेमचन्द सभ्यता को छोड़कर एक कल्पित सुधारवादी आदर्श का चित्रण करते हैं जो वास्तविक सामाजिक जीवन से दूर है अतः पनोरमिक उपन्यास के अनुकूल नहीं है।

कथारहित पनोरमिक उपन्यास

१५१ इत्या एहरनबर्ग के 'आधी' और 'नवम लहर'—दोनों अपने-आपमें पूर्ण हैं, पर परस्पर-संबंध भी हैं, प्रथम का लेखांक है दूसरा।—एसे पनोरमिक उपन्यास हैं जिनमें कथा नहीं के बराबर है। प्रत्येक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह की अपनी कथा है। जो अनेक कथाएँ चलती हैं, उनमें एक भी ऐसी नहीं है जो एक निरन्तर प्रवाह के रूप में पाठक को बाधुष्ट और प्रभावित कर सके पर सब मिलकर वातावरण की पूर्ण बनाती हैं यह वातावरण अपने-आपमें सार्वक है और यही उपन्यास का मुख्य अंग है। एलिओट के 'नयी कुटी जमीन' में भी कथा अत्यन्त विविध है। इन सब उपन्यासों के नामक के रूप में ऐसे व्यक्ति नहीं मिलते जो ग्रन्थ पात्रों की तुलना में अधिक महत्त्व के हों। विभिन्न समाजों का अथवा समाज के विभिन्न वर्गों का समष्टिगत व्यक्तित्व इनकी विशेषता है। 'नयी कुटी जमीन' में संपूर्ण सोवियत जनता ही एक व्यक्ति का रूप चारण कर लेती है। एहरनबर्ग के उपन्यासों में कभी जर्मन डॉक्टर अमेरिकन बैंक आदि जातिवादी ही अपना-अपना समष्टिगत व्यक्तित्व लेकर सामने आती हैं और मानो एक-एक पात्र बन जाती हैं। पोलिश उपन्यासकार ब्राम्स्की का उपन्यास 'टाश' (Ashes, 1904) स्वेन से इटली तक के वातावरण में कई वर्गों के व्यक्तियों के

वैयक्तिक और सामाजिक जीवन का चित्रण करते हुए पनोरमिक रूप चारण कर लेता है। ग्रामीण और नागरिक भूमिपति और कृषक-भूमिक जनता और सेना प्रभू और विद्वान आदि सबकी वर्णगत विशेषताएँ स्पष्ट की जाती हैं। व्यक्ति के रूप में कई पात्र समान महत्त्व के योग्य हैं। पर किसी एक को नायक का रूप देना कठिन लगता है।

१५२ हिन्दी में कथारहित पनोरमिक उपन्यास—हिन्दी में इस तरह के पनोरमिक उपन्यासों का भी अभाव है। लेकिन हाल में हम और कुछ प्रयत्न हुआ है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मेसा माँचल' और 'परती परिकषा'^१ मन्मीनाराम साह का 'श्या का बोंछला और साँध' पूर्णतया पनोरमिक नहीं हैं पर कुछ सीमाओं के अन्दर पनोरमिक ही हैं। इनमें बातावरण मुख्य होना पर भी सीमित है। 'मेसा माँचल' में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के तुरन्त पूर्व और तुरन्त बाद के बिहार के जीवन का तथा 'परती परिकषा' में पुनर्निर्माण काल के जीवन का चित्रण है। स्थान-सीमा ही नहीं विषय-सीमा भी इनमें निर्धारित है। जीवन के विविध अर्थों का चित्रण वास्तविक उपन्यासों के समान इनमें नहीं मिलता। केवल राजनीतिक चेतना का विकास स्पष्ट हुआ है। इस तरह की सीमाओं के कारण इनकी 'केनबस' या पटसूमि बहुत छोटी रह गयी है। फिर भी उस सीमित बातावरण को जो पूर्णता दी गयी है वह पनोरमिक शैली के द्वारा है और विषय उन्मेषणीय है।

१५३ आँचलिक उपन्यास—इस सीमा के कारण इन उपन्यासों को पनोरमिक कहने से 'आँचलिक' कहना अधिक उपयुक्त होगा। 'गाँवान' से इनकी उत्पत्ति करने पर यह बात स्पष्ट होगी। 'गाँवान' का बातावरण अधिक भारतीय है उसमें प्रमचन्द की दृष्टि आँचलिक विद्यालय क्षेत्र में जाती है। अथवा उसके बातावरण में कोई कमी है तो वह हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के चित्रण का अभाव है। रेणु के उपन्यासों के पास अपनी कुछ विशेषताओं के कारण बिलकुल स्थानीय रह गये हैं। स्थानीय रूप देने के उद्देश्य से रेणु ने उनकी भाषा को भी स्थानीय बनाया है।

'विपारमठ' का रूप भी कुछ-कुछ आँचलिक है पर उसकी काल-सीमा अधिक निर्धारित है। उसमें एक निश्चित समय के जीवन का एक ही पहलू का चित्रण है। पनोरमिक स्वप्न केवल गठन-शैली में है। किसी एक कथानक को महत्त्व न देकर कई सौकारमक जीवनो का चित्रण किया गया है।

पनोरमिक उपन्यास का दौख्य

१५४ उपर्युक्त सभी पनोरमिक उपन्यासों का विशेषकर कथारहित उपन्यासों का सबसे बड़ा दोषपूर्ण अभाव व्यप्ययन की कमी है चाहे वह मन्मात्र का हो चाहे व्यक्ति का। विद्यासता अभावता में बाधक हो जाती है। सीमित विषय के

१. डा. प्रमदरा और विद्वान की कथाओं के आधार पर इनको कथारहित कहना कठिन है क्योंकि वे कथाओं अत्यन्त शिथिल—कम से कम विद्यय-कथन—और गौण हैं कि उपन्यास पढ़ने के बाद हमसे कथानक कहने में लोकोप होता है।

किसी उपन्यास में भावभाषा का जो क्रमिक विकास प्राप्य है वह पनोरमिक उपन्यास में कभी नहीं मिलता। विषय-सौचित्य के कारण पाठक पर पड़नेवाले प्रभाव में भी सौचित्य प्रा जाता है। कथानुक्त पनोरमिक उपन्यासों में भी यह सौचित्य होता है पर कुछ कम। 'बोन' उपन्यासों में शयर की कथा 'मोशन' में होरी की कथा धार्मिक ध्यान को बाह्य कर देनेवाली है किन्तु जगह-जगह पर बातावरण के सम्य इस उमर के मुख्य कथानक से ध्यान को हटाते ही हैं जिससे पाठक की अनुभूति क्रमिक रूप में चरम सीमा तक निर्बाध पहुँच नहीं पाती।

पनोरमिक उपन्यास की काल-सीमा

१५५ पनोरमिक उपन्यास और हृदयात्मक उपन्यास की विलुप्ति में भिन्नता है। 'मैसा घोचन' विहार के उत्काशीन बातावरण को अतिविस्तृत रूप में व्यक्त करता है। पर उस काल-सीमा के बाहर उसका क्या मुख्य रहस्य? मानव की चिरन्तन अनुभूतियों को उसमें कहाँ तक व्यञ्जित किया गया है? निश्चित ही डा प्रकाश का प्रेक्ष साधारण जनता की पारस्परिक ईर्ष्या वैयक्तिक स्वार्थ धार्मिक की एक झलक मिलती है। पर पूरे 'मैसा घोचन' में एक भी ऐसा हृदय नहीं है जो मानव-हृदय के स्वामी उत्तमों को समुचित रूप से प्रकट करके मन पर बारंबार प्रभाव डाल सके। वैयक्तिक बातावरण की विलुप्ति में जो बाधा है और व्यक्ति के निरीक्षण का पर्याप्त अवसर नहीं पाता अतः वैयक्तिक विकास और अनुभूति की प्रगाथता तक पहुँच नहीं पाता। 'मैसा घोचन' में मानव को सामाजिक श्रेणी के रूप में जितना समझ सकत है उतना मानव के रूप में नहीं समझ सकत। कोई भी पात्र उन्नत वैयक्तिक अस्तित्व नहीं रखता अतः उनके प्रति हार्दिकता का विकास असंभव हो जाता है। 'मैसा घोचन' के ये सभी शेष एहरण वर्ग के उपन्यासों में भी हैं, भले ही उनमें अधिक मार्मिक हृदय भी है, जिनका अधिक स्थायी प्रभाव हो सकता है।

इसके विरुद्ध कथारमक या हृदयात्मक उपन्यासों में सीमित विषय का विशेष खारमक अध्ययन होने से अधिक प्रगाथता संभव है। उसमें पाठक के हृदय में किसी विशेष वृत्ति का विकास क्रमिक रूप में करके चरम सीमा तक पहुँचाना सुगम हो जाता है। तात्स्थाय के उपन्यासों में 'बुद्ध और शान्ति' भले ही अधिक बाह्य हो तो भी वह 'अध्या करेनिमा' की तरह मार्मिक नहीं है। और 'बुद्ध और शान्ति' में—जहाँ तरह 'बोन' उपन्यासों में भी—जो मार्मिकता है वह भी पनोरमा के कारण नहीं है बल्कि उनकी कथाओं में विकसित क्रमबद्ध भावभाषा के कारण और बीच-बीच के हसों के कारण है। पनोरमा-मात्र से धार्मिक सीमा विलुप्त होती है पर नावसीमा और प्रभाव सीमा संकुचित हो जाती है।

पनोरमिक उपन्यास में चिरन्तन मुख्य का पुट,

१५६ पनोरमिक उपन्यासों को स्थायी महत्त्व देने के लिए प्रेमचन्द, तात्स्थाय सीमोक्रोब और एहरणवर्ग बाध स्वीकृत मार्ग—धार्मिक बातावरण के तात्-

साथ मानव-हृदय की कोमल सत्ता हैं संबन्धित अनेक हृदय उपस्थित करता है। इनके उपस्थाओं में सामाजिक और राजनीतिक बातावरण में मानव-हृदय के स्थायी तरल विद्युत् नहीं हुए हैं—यस ही ने अधिक प्रभावित न बने हों। इनमें कई ऐसे हृदय हैं जिनमें शेषक का उद्देश्य सामाजिक बातावरण को विधाय करना नहीं होता बल्कि मनुष्य के धर्म को हृदय है—जो मनुष्य की अपनी प्रमुख संपत्ति है—उसकी सम्मान वृत्तियों को दिखाना होता है। इन उपस्थाओं का कोई स्थायी महत्त्व है तो इन्हीं हृदयों के कारण है। कथावहित पनोरमिक उपस्थाओं में कथा भी विराम मूल्य का कारण बन सकती है। 'पुत्र और धर्म' में लताया और सोफिया की तथा 'दोन' उपस्थाओं में लताया और धर्म की कथाएँ, जो हृदय की कोमल भावनाओं का विकास करती हैं, धारण मूल्य की हैं। हृदय के तरल विकारों को धारित करनेवाले ऐसे भाव 'नवी बुती जमीन' में पुष्ट नहीं होते। विकारों के विकसित होकर फूलने-फूलने के लिए 'नवी बुती जमीन' में धार ही नहीं मिलती। 'धर्म' का प्रत्यक्षमय प्रत्यक्ष बातावरण भी विकार विकास के लिए अनुपयुक्त है।

कथावहित पनोरमिक उपस्थाओं में धर्म-तत्त्व बिखरे पड़े धार्मिक हृदय धारण मूल्य के कारण बनते हैं। 'पुत्र और धर्म' 'दोन' 'धर्म' 'लताया' धर्म में ऐसे कितने ही हृदय हैं, जो मानव-भाव के सहज भावों को स्पष्ट करते हैं। 'पुत्र और धर्म' में धर्म और कोमल लताया को धारण करनेवाला प्रत्येक हृदय धर्मस्वर सीधे है। प्रथम प्रथम लताया का परिणय देनेवाले हृदय-भाव को पढ़ने से ही लताया पुत्रवती वह लताया हमारे हृदय में स्थायी रूप में विकास करने लगती है। 'दोन' उपस्थाओं में से दो-एक प्रसंग यहाँ उद्धृत करना पर्याप्त न होगा।

धर्म जो कथाक सेना के सेनापति के रूप में एक धर्म में जाता है, एक कथाक के पूरे धर्म के साथ धर्म की एक बुद्धि से कोमलता है। लेकिन बुद्धि जो बिन्दु की बहुत-बहुत देव बुद्धि है क्यों मरने लगी? वह लताया देती है 'तुम कुछ कथाक लतायाओं के कथाक होये लेकिन तुम्हारे लताया कोई एक नहीं है समझे?—तुम बुद्धि पर जो तुम्हारी माँ की लता की है। मैंने अपने तीन बेटों को धर्म 'उनको' तुम्हारी लता के लिए भेज दिया है। तुम मेरे बेटों को धर्म देते हो लता पर मैंने उनको धर्म दिया है पास-पड़ोसकर इतना बड़ा किया है। तुमसे हो तुम? वह लता धारण काम नहीं का। 'ऊँ क्यों तुमसे बुरे हो लता लता कथाक लता होयी? जब वह धर्म कहता है कि लता सेना की पराजित करते ही धर्म स्थापित होगी तब वह लता लता है 'तम लता क्यों इस तरह लता फिरते हो। लता-लता लता लिए, लता पर धार होकर लता लताओं को धारते फिरने में लता लता लता है। पर हम लताएँ? हमारे ही बेटों को तुम लता धारते हो न? ' यह संसार धर्म की लताओं की धर्म से लता-लताओं के प्रति किया जानेवाला धर्म है।

'नवी बुती जमीन' से एक प्रसंग भी लताएँ। धर्मवादी धर्म के स्थापित

होन के बाद स्तूकर नामक एक कच्चाक तत्काशीन नियम के विरुद्ध एक बछड़े को मार डालता है। जब इस संघर्ष में सरकार से लड़ाई होती है तब वह अफसर नामुसतोज से पिछिड़ता है। 'मैं पाप में बसीटा गया। मेरी बुद्धि ने मुझे परेशान कर दिया था—'मुझपर दया करो। और जब दया बिचायी जाती है और अफसर जमा जाता है तब अफसर के धाने के कारण के सम्बन्ध में पूछताछ करनेवालों हैं वह कहता है 'मेरी लबीयत जरा ठीक नहीं थी इसीलिए वह बचने भागा था। मेरे बिना उनका कोई काम ठीक नहीं चलता। छोटी-छोटी बातों के लिए मुझे गुना मेबते हैं। मैं क्याही बोलता नहीं सही पर जो कहता हूँ मार्के की होती है।'"

स्पष्ट है कि यह स्तूकर कबल जसी नहीं है। प्रत्येक बेस और प्रान्त में ऐसे स्तूकर मिलते हैं। मनुष्य की कोमल भावनाओं और बसहीनताओं को प्रकट करनेवाले ऐसे हृदय ही पनोरमिक उपन्यास के सादरत मुख्य के कारण हैं।

रेबु के उपन्यासों के हृदय मर्माह्व होन पर भी इस तरह विरुद्ध मानवता के स्थायी सत्यों को प्रकट नहीं करत। 'मैला धौचल' और 'पछी परिकबा' के अति काय हृदय वस और कास की सीमा के अन्दर ही आस्वास्नीय है। यहाँ तक कि कई प्रसंगों की आकर्षकता का कारण पात्रों का व्यक्तित्व या स्वभाव नहीं है केवल उनकी बोनी है।

४ सरितोपम उपन्यास (Roman fleuve)

१५७ विद्यालता की दृष्टि से पनोरमिक उपन्यास का जो स्थान है वही अगाधता की दृष्टि से सरितोपम उपन्यास का है। एक व्यक्ति के अथवा रक्त-संघर्ष से या विचार-साहस्य से ऐक्य प्राप्त कुछ व्यक्तियों के जीवन को सम्बद्ध रूप में प्रकट करनेवाली एक उपन्यास-परम्परा को फ्रेच में रोमान फ्लो (Roman fleuve) या सरितोपम उपन्यास कहा जाता है। एक व्यक्ति का जीवन ही साधारणतया इतना विद्याल होता है कि उसका पूरा और सर्वांगीण अध्ययन एक उपन्यास में असंभव हो जाता है। जब एक बंध की कई पीढ़ियों के व्यक्तियों के जीवन को ही विद्याल पढ़ता है जो अपनी परम्परागत वैतुक विचार-अपत्ति का संरक्षण करते हुए जो अमर परिचयनशील रहते हैं तब यह कार्य अधिक कठिन हो जाता है। ऐसा अध्ययन मानवता को समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है, क्योंकि मनुष्य के अन्वेषण मन में परम्परा और परिस्थिति के संघर्ष से जो परिवर्तनशील और विकासोन्मुख जिया प्रक्रियाएँ होती हैं वही व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र के जीवन को रूप देती हैं। सरितोपम उपन्यास के सिद्ध-विभाग की सबसे प्रधान विशेषता यह है कि उनका कोई पूर्वनिश्चित रूप या कथानक नहीं होता। जैसे नदी की कोई निश्चित धारा नहीं होती उसी तरह जीवन का भी कोई निश्चित रूप नहीं होता। भूमि के निम्नोन्नत तल के अनुसार नदी अपनी दिशा बदलकर बहती है। इसी तरह परिस्थितियों के अनुसार जीवन की

भी दिया बलती है। ऐसे जीवन को क्यों का क्यों प्रतिबिम्बित करने का प्रयास ही सख्तोपम उपन्यास में मिलता है। अन्य उपन्यासों के समान वह किसी पूर्वनिश्चित कथानक के आधार पर नहीं लिखा जाता बल्कि उसमें अनिश्चित गति से बहनेवाला जीवन का सखा तैयार किया जाता है।

यूरोपीय सख्तोपम उपन्यास

१५८ रोमै रोमै का 'जी क्रिस्ताऊ' प्रथम सख्तोपम उपन्यास है। चार भागों में प्रकाशित इस उपन्यास के संक्षेप में रोमै ने कहा है "मैं एक उपन्यास लिखने नहीं जाता मैं एक मनुष्य की ही सृष्टि कर रहा हूँ केवल एक मनुष्य के जीवन का साहित्यिक रूप में प्रतिपादन कर रहा हूँ। उसका जीवन प्रकृति की एक सृष्टि-मात्र है। मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि 'जी क्रिस्ताऊ' एक नदी के समान है।"^१ प्रत्येक भाग अलग-अलग उपन्यास के समान है पर चारों में से होकर 'जी क्रिस्ताऊ' का जीवन एक नदी के समान बहता है। बहने का कोई निश्चित नियम नहीं है कोई निश्चित पथ नहीं है बिना नहीं है।^२ परिस्थितियों की विषमता से प्रभावित होकर, विन्तु अपनी ही प्रवाह-शक्ति से बहनेवाला जीवन का जो प्रवाह है उसीका आविष्कार किया गया है। जी क्रिस्ताऊ के जीवन के साथ-साथ यूरोप के उस सामाजिक जीवन का भी चित्रण है, जो उन्नीसवीं शती की सामाजिक मान्यताओं और विचारधाराओं से बीसवीं शती की मान्यताओं और विचारधाराओं को रूप देता है। पूरा उपन्यास क्रिस्ताऊ द्वारा ज्ञात पूर्ण सत्य (समके अपने विचार में) और सामाजिक नियमों के मध्य संसार द्वारा स्वीकृत धर्म सत्य व पारस्परिक संबंध का चित्रण है। उसके जीवन में धार्मिक व्यक्तियों के जीवन की भी विस्तृत चर्चा की गयी है यद्यपि क्रिस्ताऊ की कथा को धारण बढ़ाने के लिए इतनी विस्तृति आवश्यक नहीं है। इससे पटभूमि इतनी बड़ नहीं है कि उन्नीसवीं शती के अन्तिम दशक और बीसवीं शती के प्रथम दशक का संपूर्ण जीवन उसकी अपनी विषयताओं और बंदधों के साथ उसमें समाविष्ट हो गया है। फ्रेंच का दूसरा प्रसिद्ध सख्तोपम उपन्यास जार्ज जुहमेस का 'समाविन' है जो चार भागों में लिखा गया है। संन्यासी होने का निश्चय करके त होनेवाले एक मुनक का इतिहास इसमें प्रस्तुत है। अत्यन्त हीरक विकार से युक्त एक व्यक्ति जो उस विकार का प्रायोगिक जीवन में उपयोग न करके एक मानसिक स्थिति दशा में रहने

१. केंब्रिज संस्करण की भूमिका। एक अंग्रेजी संस्करण जो लिखा उसमें रोमै की भूमिका नहीं है। अनुवादक गिरफ ब्रैन्ड ने इन शब्दों के प्रति संकेत करते हुए कहा है: "His creator has said that he has always conceived and thought of the life of his hero and of the book as a river..... It has no literary artifice no 'plot'" —John Christopher Gilbert Cannon's Preface, P V

२. "The river is explored as though it were absolutely uncharted" —Gilbert Cannon's Preface, P VI.

सामा^१ बेंनेट के 'वसे हूगर'^२ जोला के 'ल रौगन मक्वार'^३ आदि उपन्यास-परम्पराओं में भी मिलती है जो कई पीढ़ियों के इतिहास हैं और सामाजिक परिस्थिति में व्यक्ति के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं।

५. चेतनाप्रवाह उपन्यास (Stream of Consciousness Novel)

१६३. उपन्यास के क्षेत्र में मनोविज्ञान और यथार्थवाद के संयुक्त प्रयोग का परिणाम है चेतनाप्रवाह उपन्यास (Stream of Consciousness Novel) जिसे 'आन्तरिक-सम्भाषण-उपन्यास' (Novel of Internal Monologue) या 'निःशब्द सम्भाषण-उपन्यास' (Novel of Silent Monologue) भी कहा जाता है। बस हिन्दी में इस प्रकार का कोई उपन्यास नहीं लिखा गया है। यद्यपि उसकी संक्षिप्त कथा ही पर्याप्त और सभर है।

मन में उत्पन्न होनेवाले याद कभी व्यवस्थित नहीं होते। असम्बद्ध भावनाओं का एक निरन्तर प्रवाह सदा मन में बहता रहता है और वह पात्र के व्यक्तित्व तथा बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित रहता है। इन असम्बद्ध भावनाओं को किसी परिबर्तन के व्योम का लोकोपचारना ही चेतनाप्रवाह उपन्यास का ध्येय है। लेकिन पात्र के मन में अविराम निरन्तर से उठनेवाले विचारों, विकारों और भावनाओं का आविष्कार करता जाता है और उनका अनिवार्यतया लेखा प्रस्तुत करता जाता है। वह कहीं भी अपनी ओर से कुछ कहने व्याख्या करने या आलोचना करने का प्रयत्न नहीं करता। यद्यपि चेतनाप्रवाह उपन्यास के आरम्भ से अन्त तक अव्यवस्थित विचारों और प्रभावों के आधिक्य (Unsorted Abundance of Thought and Impression) का एक प्रवाह दिखाई पड़ता है। वस्तुतः उसमें सभी विचार आदि व्योम के लोकोपचार नहीं किये जाते। कुछेक विचारों के सख्त द्वारा निरूपित रूप ही प्रस्तुत किये जाते हैं लेकिन ऐसा प्रतिभास होता है कि सख्त द्वारा चुनाव और विपर्यय विनियोजन नहीं हुआ है।^४ एक श्रेष्ठ उपन्यासकार ने इस तरह के उपन्यासों की निम्नलिखित विशेषताएँ बनायी हैं।^५ १. वहाँ तक विकास का सम्बन्ध है वह अचेतन के निकटतम आरम्भिक भावों को प्रकट करता है। २. वह भावों के मुख्यवर्णित रूप कारण करने के पहले ही उनको

^१ The Forsythe Saga, A Modern Comedy End of the Chapter

नामक तीन उपन्यास-त्रिविधों में प्रकाशित इसके कुछ भी भाग हैं।

^२ इस उपन्यास-कथी में Hilda Lessways These Twain, Riceyman Steps के तीन हैं।

^३ जोला के Les Rougon Macquart नामक उपन्यास-परम्परा के बीच उपन्यास १८७० और १८९६ के बीच प्रकाशित हुए।

^४ "His selection is addressed to the creating of an illusion that there had been no selection"—Edel The Psychological Novel P 22.

कसी मौलिक रूप में प्रकट करता है जिसमें वे मन में उत्पन्न होते हैं। १ उसका प्रथम व्यंजन सीधे धीरे लघुतम रूप में संकुचित वाक्यों द्वारा होता है। ४ इन कारणों से यह प्रत्यन्त काव्यमय होता है।^१

चेतनाप्रवाह उपन्यास का विकास घरेबी में ही हुआ है। जेम्स बायस का प्रथम उपन्यास 'युवक कलाकार का एक चित्र'^२ (१८१४) प्रथम चेतनाप्रवाह उपन्यास समझा जाता है। इसके बाद बायस का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'युसीसेस' निकला। यद्यपि बर्नीनिया ड्रमक, मिश मई गिन्सलघर आदि कुछ लेखिकाओं ने भी चेतनाप्रवाह उपन्यास लिखे हैं^३ तो भी बायस की रचनाएँ अपनी विशेष शैली के कारण उनसे भिन्न जात होती हैं। 'युवक कलाकार का एक चित्र' का प्रारम्भ उसी शैली का परिचय देता है। साधारण सीधे-सारे विवरण में ही उपन्यास शुरू होता है किन्तु वाक्यों के मात्र और रूप ऐसे हैं कि उनसे एक विचित्र प्रभाव उत्पन्न हो जाता है उसमें दृश्यवस्तु स्मरणार्थों का विहित रूप प्रकट होता है। वहाँ स्मरणार्थों का नैरन्तर्य विशेष रूप से दृश्य है। विद्यीन पर पद्यान करने से अनुभूत गरमी और ठंडक—फिर माता का ठेक-पट बिछाना—तब ठेक-पट की बू—फिर माँ और बाप की बू—इस तरह एक से एक विषय की धीरे-धीरे स्मरणा जाती है। 'युसीसेस' का अन्तिम वाक्य जो सननन वालीस पृष्ठों का है चेतना के एक अनियमित प्रवण्ड प्रवाह का परिचय देता है।

इस शैली के उपन्यासों की विशेषता उसके अपार प्रभाव में है। विषय की दृष्टि से, प्रायः सभी चेतनाप्रवाह उपन्यास मनोविश्लेषक उपन्यासों के समान मानसिक तत्त्वों का ही विश्लेषण करते हैं। मनोविश्लेषण में वह शैली भी बहुत सहायक रहती है।

हिन्दी में चेतनाप्रवाह शैली

१९४ हिन्दी के उपन्यासकारों ने अभी इस क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया है। पूर्णतया चेतनाप्रवाह शैली का उपयोग करनेवाला एक भी उपन्यास हमें प्राप्त नहीं हुआ है। 'मैना घाँसल' एवं परती परिकथा में इससे कुछ अंशों में मिसरी-मुनरी एक शैली का उपयोग किया गया है। इनके पास भी प्रायः अपने मन के भावों को बिना संवरण के प्रकट करते हुए बोलते हैं। किन्तु लेखक का व्येय मनोविश्लेषण न होकर सामाजिक प्रवृत्तियों का विवेचन होने के कारण पात्रों के विचार भी अधिक बाह्योन्मुख एवं विषयगत रहे हैं। कथा-प्रवाह में या भाषावरण के स्पष्टीकरण में सहाय न देनेवाले मनोभावों को व्यक्त नहीं किया गया है। अतः घरेबी के चेतनाप्रवाह उपन्यासों में जो

१. E'dourd [Dujardin] Quoted by Edel, The Psychological Novel, P 55

२. A Portrait of the Artist as a Young Man

३. इतिहास १९११।

महगटा खड़ी है वह इनमें नहीं आ पायी है।

बैठनाप्रवाह खैली के सम्पर्क उबाहरण के रूप में जो एक ही प्रसंग देखने में आया वह 'सीधा' में है। प्रभाकर माचवे के इस उपन्यास के अन्त में जेल में पड़े मनोहर के मनोभावों के चित्रण में लेखक ने इस खैली का उपयोग किया है।

"सब धीरे मुर्बंगी—सफेदी फैस ययी होगी—सिमेटरी कफ़न भवतिमा इस सछेद पर आमा बाध—बेस्या—स्वैत कमस पर मृग—बाधमाटी—कागज के बड़े घत्ते पर खेद—बीमक—बीमक ही तुम सोक को लेई है।
 " "अच्छिष्ट दृष्टि" "असच्छिष्ट दृश्य" "अच्छिष्ट पशुता" "अधिक वैदिक वैदिक छापा। राम राज मई तुलसी कापा" "१

३

गढ़न हड़ और सिधिल

१६५ उपन्यास के कथानक से संबंध घटनाओं में कितना पारस्परिक संबंध है विभिन्न पात्र एक-दूसरे से धीरे घटनाओं से कितनी सबल कड़ियों से घाबड़ किये गए हैं आदि बातों पर उपन्यास के गढ़न की हड़ता निर्भर रहती है। हड़ता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि कथा की एक ही चारु आदि से अंत तक क्रम से चले। कथा की चारु के टूट-टूटकर जाने पर भी विभिन्न अंशों की कड़ियाँ मिलाने में कठिनाई नहीं हो तो ऐसे उपन्यास की गढ़न सबल या हड़ मानी जायगी।

हिन्दी उपन्यासों की हड़ता

१६६ हिन्दी के प्रायः सभी उपन्यास गढ़न-सिधिल्य से युक्त हैं। अंग्रेजी और फ़ारसी उपन्यासों में जो सिधिल्य सामान्य रूप में देखा जाता है वह हिन्दी उपन्यासों में नहीं मिलता।

हमारे प्रायः सभी उपन्यासकार कथा-सूत्र को पकड़कर धीमे बढ़ते हैं। आमा श्रीनिवासदास से लेकर इंदर नाथार्जुन प्रभाकर माचवे बर्मबीर मारट्टी लक्ष्मी नारायण नाथ आदि नवीन उपन्यासकार तक इस परम्परा के पालक रहे हैं। प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों में कबल 'अज्ञानता' 'अज्ञानता सन्तति' 'मृतमा' आदि बामुनी और ऐमारी के उपन्यासों में कुछ गढ़न-सिधिल्य मिलता है, जो उपन्यास को रहस्यमय बनाने के लिए लाया गया है। प्रायः सभी सामाजिक उपन्यासों की गढ़न हड़ है भले ही उनकी कथाई पूर्णतया सुलभी हुई न हों। केवल किमोरीलाल मोस्वामी की 'अपरा' में पात्रों और घटनाओं के आधिक्य के कारण कुछ सिधिल्य पा गया है।

प्रेमचन्द के उपन्यास भी प्रायः सीधे प्रवाह में चलते हैं। उनके बृहत् उपन्यासों

में—'रूपभूमि' 'कर्मभूमि' 'गोदान' आदि में—यद्यपि थोड़ा वैविध्य आया है तथापि संपूर्ण उपन्यास पढ़ने के बाद कोई असंबद्धता नहीं दिखती। थोड़े थोड़े असंबद्धता है उसका कारण भी टेक्नीक का कोई विशेष प्रयोग नहीं है बल्कि विषय का विस्तार है। जैसे ऊपर कहा जा चुका है इन सबकी पटभूमि विस्तृत है और इतने विस्तृत जीवन में एकरस कथानक को बनाये रखना असंभव है। विशेषकर 'गोदान' में उसके पनोरमिक होने के कारण वैविध्य का अनुभव हो सकता है।

प्रसन्न के पश्चात् क उपन्यासों में यदन की हड़ता कई उपायों से सुरक्षित रखी गई है जिनमें (१) आराधनात्मक कथानक (२) एक ध्येय (नायक) का प्रामुख्य (३) कोई मूल समस्या (४) किसी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का विश्लेषण आदि मुख्य हैं। किसी एक उपन्यास में इनमें एक या अनेक कारणों से हड़ता आ सकती है। पर हड़ता के मुख्य साधन के आधार पर कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

१६७ आराधनात्मक कथा—जयसंकर प्रसाद निराला भगवतीप्रसाद बाजपेयी प्रतापनारायण श्रीवास्तव कोष्ठिक आदि क उपन्यासों में विषय बटना-समूह में भी एकता स्थापित करनेवाली वस्तु कथा है। सियारामधरस्य पुत्र और गोविन्दबल्लभ पन्त के सभी उपन्यासों में बृन्दावनलाल वर्मा और बसुरसेन धास्वी के सामाजिक उपन्यासों में तथा उपादेवी मित्रा के 'जीवन की मुस्कान' 'पञ्चपाटी' जैनेन्द्र का 'परश' यशदत्त के 'कुनिमा की दासी' 'इनसाफ़' प्रयागराज माधव का 'साँचा' नायार्जुन का 'सिमाप की चाँची' अम्क का 'सितारों का खेल' आदि क कथानक ही यदन की हड़ता का आधार है।

१६८ ध्येय की जीवनी के द्वारा यदन-बाह्य की रक्षा करनेवाले उपन्यासों में बृन्दावनलाल के 'झोसी की रानी' 'मृगमयनी' 'बिरछा की पञ्चिनी' और 'अहिस्ता बाई' 'झोसी के 'पर्व की रानी' 'सत्यापी' 'निर्वासित' और 'सुबह के सूर्य' अश्वमेध का 'संसार' राहुलजी का 'जीने के लिए' देवेन्द्र सत्यापी का 'कठपुतली' उपादेवी का 'पिया' नायार्जुन का 'बलचनमा' अम्क का 'गिरती दीवारें' जयसंकर मट्ट का 'सागर, सहरे और मनुष्य' आदि क नाम लिये जा सकते हैं।

१६९ समस्या—उप और मृगमयनाथ मुन्त के सभी उपन्यास बसुरसेन का 'अपराधिता' जैनेन्द्र का 'कल्याणी' 'स्वामपत्र' और 'सुबह' अम्क के 'बहरी घुप' और 'उत्का' आदि में यदन की ज़ुस्ती का मुख्य कारण समे विश्लेषित समस्याएँ हैं।

१७० मनोवैज्ञानिक तर्कों के आधार पर जैनेन्द्र के 'कुनिमा' 'अपटीन' 'निर्वासित' इत्यादि झोसी के 'मुखिपत्र' आदि में एकता स्थापित हुई है। 'प्रेत और छाया' और 'मुखिपत्र' आदि के आधार भी मनोवैज्ञानिक तर्क हैं पर उनकी कथाएँ ही मनोवैज्ञानिक तर्कों की कड़ी मिताती हैं। इनमें कहीं-कहीं सीधा मनोविश्लेष यदन वैविध्य का ही कारण बना है।

हिन्दी में चित्रित गढ़न के उपन्यास

१७१ वस्तुतः चित्रित गढ़न के उपन्यास टेक्नीक क कन्वेंशन का परिचायक नहीं है क्योंकि चित्रित गढ़न के उत्कृष्ट उपन्यासों में भी एक विशेष प्रकार की एकता रहती है। यह एकता उस चित्र की है जो सम्पूर्ण उपन्यास की बटनाओं एवं पात्रों द्वारा मन पर प्रकट किया जाता है। इस तरह का एकतायुक्त बड़ भावचित्र बनाने में उपन्यास सफल हो तो गढ़न की चित्रितता उसकी कमजोरी नहीं मानी जा सकती। ई एम फ्रास्टर का 'सिक्की बासा कमरा' (A Room with a View) इसका प्रथम उदाहरण है।

हिन्दी में संश्लेष उपन्यास के प्रायः सभी उपन्यासों की गढ़न चित्रित है। लेकिन उन सबमें समवायी प्रभाव डालने की शक्ति है। 'विपादमठ' 'बरीदे' जैसे सामाजिक एवं 'अधरे के चुपड़' 'मुर्खों का टीला' जैसे प्रारंभिक उपन्यासों में उन्होंने इसी चित्रित शैली का प्रभाव लेकर बातावरण के स्पष्ट एकात्मक धीरे सुवर्णित चित्र खींच दिये हैं। बिप्लव प्रसाद के 'निषिक्त' धीरे श्रुत के बन्धन' बमबरीर भारतीय का 'गुलाहों का देश' धरक का 'बड़ी-बड़ी आँखें' आदि भी चित्रित गढ़न के प्रथम उपन्यास हैं।

बतुरसेन के 'बैरानी की नगरबहु' में एक व्यक्ति के द्वारा धीरे सोमनाथ' में एक कथा के द्वारा हड़ता लाने का जो प्रयत्न किया गया है, वह असंभव बटनाओं की रेंपटी हुई गति के कारण कुछ विकृत-सा हुआ है। 'बर्ष राधा' पूर्णतया चित्रित है, और उससे एक एकात्मक समग्र चित्र का भी निर्माण नहीं होता। यही वही एक तरह से 'नेला घाबल' और 'परती परिक्रमा' की भी है पर उनकी गढ़न के चित्रित होने पर भी उनमें समाज की छपटी तह का जो सामान्य रूप प्रस्तुत किया गया है वह उनके चित्रित पर आधारित कामता है।

एक अन्य प्रकार की चित्रितता का कारण बीच-बीच में ऐसे व्याख्यात्मक भाषों का प्रयोग है जो प्रभावशालि न होने पर भी अति रस्य प्रभाव विशेष व्यंजन शैली के कारण उपन्यास के सहज प्रवाह में अवरोध प्रकट करते हैं और इस कारण से ही अनुचित लगते हैं। ऐसी व्याख्याएँ कभी राजनीतिक होती हैं कभी धार्मिक और कभी दार्शनिक। ह्यूयो के विस्मयिका उपन्यास 'अ मित्रराज' के सम्प्रदाय में मिटन स्ट्रैची का विचार है कि वह भीतात्मक प्रभाव और विकारोत्प्रेषित दार्शनिक चर्चाओं के कारण जीवनरहित रूपहीन और हास्यास्पद हो गया है। लेकिन इसके बाद भी ही स्ट्रैचि ने इस कमी को समझकर अपने उपन्यासों में नीतिक तथ्यों और मनोवैज्ञानिक तथ्यों से संबंधित विचारों को कथानक से कलात्मक रूप में संबद्ध करके परचाएँ के उपन्यासकारों का मार्गनिर्देशन किया। अनातोले फ्रांस ने अपने आखणों के बार से उपन्यासों को चित्रित बनाया है। उनके कठिन उपन्यासों में पात्रों का चरित्र-विकास

१. Landmarks in French Literature. Lytten Strachy P 136.

२. See his Novel. Le Rouge et Le Noir

तक सिमित हो गया है।^१ यही तक कि कभी-कभी ऐसा ज्ञात होता है कि उनके पात्रों का ध्येय बीना नहीं है उन्नीसवीं शती के अन्त की सामाजिक विपमता को प्रकट करना है। अंग्रेजी में मेरिथिज के उपन्यासों में कसा निरन्तर लंबे-लंबे दार्शनिक विचारों से संवर्धन करती चलती है।^२ सेलक के व्यक्तिगत विचार पात्रों की गति को नियमित करते हैं और उनके स्वाभाविक विकास को कुण्ठित कर देते हैं।^३ इसका और एक उदाहरण सामुएल बट्सर का 'मांस का मार्ग' (The Way of All Flesh) है जिसमें तर्कपूर्ण विचार पात्रों के स्वाभाविक विकास में बाधक हैं।

हिन्दी में इस तरह की सिमितता के कई उदाहरण मिलते हैं। १९३ तक के सभी सामाजिक उपन्यासों में समाज की जो आलोचना प्रस्तुत है वह पात्रों के चरित्र से सम्बन्धित न होकर सेलक के स्वतंत्र विचारों के रूप में ही रह गया है। पात्र मानो सेलक के विचार प्रकटन का उपकरण-मात्र रह जाते हैं। 'सेवासदन' में बेत्या प्रभा के रूप का रख आदि की व्याख्या करते हुए पणसिंह के भाषण 'प्रेमात्म' में ज्ञानसंकर के सामाजिक विद्वत्पक्ष और आदर्श 'रगभूमि' और 'कर्मभूमि' के सामाजिक विचार आदि पूर्णतया उपन्यास में रूप नहीं पाये हैं यद्यपि वे अश्वसन्निक और अनुपपुष्ट नहीं हैं। भगवतीप्रसाद वाचपेयी के 'निर्यत' की सम्प्री-सम्प्री राजनीतिक स्वीर्ष गहन को सिमित और चरित्र-विमल को विच्छिन्न बनाती है। १९३ के बाद यह प्रवृत्ति कुछ कम हुई तो भी पूर्णतया क्षुप्त नहीं हुई। कई लम्बप्रतिष्ठ सेलकों के उपन्यासों में भी इसके कई उदाहरण मिलते हैं। बोधीजी के उपन्यासों के मनोविज्ञान-संबन्धी विचार, 'शुद्धता' के दार्शनिक विचार और 'बयालीश' और 'विसर्जन' के उत्तबनापूर्ण शीर्ष भाषण आदि ऐसे ही उदाहरण हैं जो सेलक की मायकाओं से अधिक संबन्ध रखते हैं वास्तविक जीवन से और उपन्यास के पात्रों से कम।

नवीन स्त्री उपन्यासों में इस तरह के दार्शनिक विचारों के बरने संविस्य की एक और प्रवृत्ति मिलती है। सामाजिक विचार-मोचनाओं से सम्बन्धित उपन्यासों में प्रायः जो सांकेतिक विषयों के वर्णन मिलते हैं, वे सिखा की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण हैं पर उपन्यास को नीरस बनाते हैं। 'फ्लोटिंग स्टानिस्स' में मत्स्य-नामन-विज्ञान से सम्बन्धित भाग ऐसे ही हैं। म्बाबकोव का 'अक्ति' पिलनियाक का 'बोला कैस्पियन की

१ "As a novelist Anatole Franco was less a creator of characters than a compressor of them. Living Novel, Pritchett,

P 214.

२ "Meredith certainly seems in places to keep up a running fight between his philosophy and his fiction, between himself and his characters." The Facts of Fiction Collins P 208

३ "It is a great weakness of 'The Way of All Flesh' that characters are dwarfed and burned dry by Butler's argument" Living Novel, Pritchett, P 106.

घोर बहती है। कोबेत्सोव का 'पुनर्निर्माण' धारि में भी सैकड़ों विषयों का धारिभ्रम नक़्क़न को चिबित बनाता है।

यूरोपीय उपन्यासों में गढ़न-दाह्य

१७२ यूरोपीय उपन्यासों में साधारण रूप में प्रथिनी घोर वसी उपन्यासों की गढ़न चिबित रही है। फॉर उपन्यासों से ज़रूर के रूप में प्राप्त कान्तात्मक मनु उपन्यासों के धारिभ्रम सभी प्रथिनी उपन्यास चिबित रहे हैं।^१ विक्टोरियन उपन्यास कारों में विषय के वैविध्य घोर घटनाओं की बटितता के कारण यह नक़्क़न-सैबिस्य अधिक रहा। इस चिबितता के कारण डिफेंस बैकटे, स्काट धारि का कोई भी उपन्यास पूर्ण मध्यम के पहले कोई निबिधत बिन्न हमारे सामने नहीं रज सकता। बाजें इन्डियट में चिबितता कम है। उसके बाह हैनरी जेम्स से निकर लेखकों ने हड़ गढ़न पर अधिक ध्यान दिया है। इधर बिलकुल नवीन कान्तात्मक मनु उपन्यासों में विषय के धर्मन्त सीमित होने के कारण हड़ता सुपधित रही गई है।

इसके बिच्छ कभी उपन्यास का सैबिस्य बड़ता बा रहा है। पुस्किन घोर मापोल की नक़्क़न को चिबित नहीं कह सकते। यद्यपि तुर्गेनेव के 'पिता घोर पुत्र' में जो बड़ता है वह 'असत भूमि' घोर 'रबिन' में नहीं है तो भी हम कह सकते हैं कि इनमें भी प्रस्तुत पूर्ण बिन्न समबायी हैं। तास्त्वाय के 'असा करेनिना' में बड़ता है तो 'पुत्र घोर धान्ति' में चिबितता। प्रायः ऐसा जाता है कि सीमित विषय के उपन्यासों में गढ़न की बड़ता रहती है जैसे तास्त्वाय के 'असा करेनिना' 'पुनर्निर्माण' मोर्की का 'मा' धारि उपन्यासों में। धाकुनिक वसी उपन्यासों में विषय-सीमा अधिक निधारित नहीं होती घोर बातावरण को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसलिये इनकी नक़्क़न भी चिबित होती है। मोर्की के 'मैगनट' 'आइस्टेडर' घोर सोपोजोव घेरीन ग्रेडिन कतयेव धारि के सभी उपन्यास गढ़न में धर्मन्त चिबित हैं। तास्त्वायवसी में विषय-संकुलता के कारण चिबितता प्रायी है पर यह संकुलता जीवन की ही संकुलता है इस संकुलता में ही जीवन की एकरसता है, इसलिये उनके उपन्यासों में भी एक कान्तात्मक सुधाष्टा दृष्टिगत होती है। जो भी हो वसी के चिबित एवं बड़ धारों तरह की गढ़न के उपन्यासों में जो बिन्न निमित्त किये गये हैं, उनके समबायत्व में सन्देह नहीं है। मने ही यह समबायत्व पनोरमिक उपन्यासों के समान बिस्तृत क्षेत्र का हा या कान्तात्मक घोर कान्तात्मक उपन्यासों की भांति सीमित क्षेत्र का।

१ 'The English Novel like the Russian is traditionally of loose epic structure, built in a vast scale and able to digest widely diverse materials. The artistry with which it is put together is tremendously uneven from the carefully planned novels of Feilding to the loosely picaresque stories of Smollett or the hastily extemporised romances of Scott'

—Grabo The Technique of the Novel, P 25

कॉच उपन्यास परम्परा से ही प्रत्यन्त बुरा रहे हैं और पात्र भी रहते हैं। कॉच उपन्यासकारों ने व्यक्ति को विशेष महत्त्व दिया है और घटनाओं तथा वातावरण को सीमित रखकर क्रमवत भाव विकास पर विशेष ध्यान दिया है। ऐसे उपन्यासों में भी बिनके कथानक में सीबिस्म रहता है—जैसे प्रुस्त के 'मृतकाम-पर्यवेक्षण' में—यह न प्रत्यन्त बुरा होती है। इस कारण मनोभावों को बीरे-बीरे विकसित करके चरमसीमा तक पहुँचाने की जो व्यक्ति कॉच उपन्यासों में मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। नवीनतम उपन्यासों में यह बुराता और अधिक हो गयी है क्योंकि वर्तमान उपन्यासकार अभी प्रेवास्टा के 'नैनम मेस्का' गालिये का मादमोजिब-द-मापिन' ह्यूयो का 'स मिबराबल' फ्लावेयर का 'महाम बोवारी' मोपसां के 'केल ऐमी' 'ऊनबी' आदि में समान व्यक्ति के संपूर्ण जीवन का अध्ययन न करके जीवन की एक ही दशा या पहलू को प्रस्तुत करते हैं। मारिया के 'कासे देवता' (Dark Angels) 'जो जो गया था' (That Which Was Lost), जीव का 'जिनीविवे' तम दरवाजा' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

४

विषयाधिक्य और विषयास्पत्य

(Over Plotting and Under Plotting)

१७३ उपन्यासकार द्वारा इच्छित प्रभाव उत्पन्न करने में और विषय के प्रति पाठक के ध्यान को आकृष्ट कर केन्द्रित रखने में विषय निबिडता (Intensity of Plot) का विशेष स्थान होता है। संपूर्ण उपन्यास में आयी हुई घटनाओं का परिमाण मात्र से उपन्यास को विषय-निबिड नहीं माना जा सकता प्रत्युत उपन्यास के कल चर के अनुपात में उसके विषय का परिमाण कितना है इसके अनुसार विषय निबिडता होती है। अथवा यों कह सकते हैं कि अगर किसी उपन्यास में उपन्यासकार जितना विषय लेकर स्पष्ट विवरीकरण कर जीवन या जीवन का एक घंटा का प्रत्यक्ष रूप प्रस्तुत कर सकता है उससे अधिक विषय रखा जाय तो उसे विषयाधिक्य मान सकते हैं। विवरीकरण की विस्तृति की सुचना में विषय कम रहे तो विषयास्पत्य होता है। विषय और अभिव्यंजन के परिमाणों में समुत्तम न होकर अभिव्यंजन कम हो तो विषयाधिक्य और अधिक हो तो विषयास्पत्य माना जा सकता है।

वस्तुतः इन दोनों को अपने-आप में कोई दोष नहीं मान सकते। कभी-कभी परिष्ट प्रभाव के लिए इन दोनों में किसीका आश्रय लेना पड़ता है। रावेय राभव के 'विषादमठ' में विषयाधिक्य है। पर उसमें वर्णित वंशज की मूर्ख के व्यापक और भयंकर रूप को दिखाने में यह विषयाधिक्य प्रत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसी तरह 'मुनीठा' और 'भुक्तिपक्ष' में जो मानसिक विस्फेपण हुआ है उसके लिए विषय को सीमित रखकर, भाव-विकास की विविध दशाओं का विस्तृत विवेचन करना अनिवार्य था है।

१९३१ के पहले के सभी हिन्दी उपन्यासों में विषयाधिक्य है और अधिकतर दोषयुक्त भी हैं। साक्षात् भीतिवासवास से लेकर प्रेमचन्द तक उपन्यासकार बिना एक भी दोषवाद के बटनाथों पर विशेष ध्यान रखते थे (इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य किसी बात पर उनका ध्यान न था) और यथाशक्ति उपन्यास को रोचक बनाना चाहते थे। इनमें प्रेमचन्द को छोड़कर किसीने पात्रों के चरित्र के पूर्ण विकास तक की धान स्पष्टता नहीं समझी। टनसाबी पात्रों के चरित्र तीव्र बटनाचक्र के द्वारा ही विकसित किए जाते थे। प्रेमचन्द ने पात्रों के साथ तनिक बढ़कर परिस्थितियों और बातावरण का निरीक्षण कर विषय को अधिक स्पष्ट करते हुए भीरे से चलने की रीति अपनायी थी। परन्तु उनके उपन्यास भी विषयाधिक्य से मुक्त नहीं हैं। विशेषकर 'रमभूमि' 'कर्मभूमि' और 'कायाकल्प' का विशेषतः किया जा सकता है। 'कायाकल्प' का सबसे बड़ा दोषत्व भी यही है। 'सेवासदन' में भी विषय कम नहीं है पर एक व्यक्ति के गृहजन्तव्य जीवन से घुमिष्ठ होने से यह अधिक नहीं बढ़ता। 'बोहान' का विषयाधिक्य विस्तृत सामाजिक बातावरण के चित्रण में उपयोगी ही है। इन सब उपन्यासों का विषय-बाहुल्य एक और सामाजिक दशाओं को व्यक्त करने में सहायक होता है तो दूसरी ओर वैयक्तिक आत्म विकास को दुर्बल बना देता है। इस कारण से और कभी-कभी गहन-वैयक्तिक के कारण प्रेमचन्द के पात्रों के विकास के साथ पाठक के मन में भी एक वैकारिक जीवन का विकास करना असंभव हो जाता है। चाँकि ठेक के 'मैनस सेन्का' 'महान बोहारी' 'तंग दरवाजा' 'पेरेडी के 'साइसस मार्नर' या क्वी के 'अमा क्रेमिना' या 'अपराध और बंड' पहले पर होता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रेमचन्द के पात्र अवधार्य एवं अप्रमविष्णु हैं। निस्सन्देह प्रेमचन्द ने पाठकों को पात्रों के निकट जाने में और पात्रों के भावों से पाठकों का साक्षात् स्थापित करने में अपार सफलता पायी है। किन्तु उनके पात्र हमें कभी वैयक्तिक तीव्रता की चरमसीमा तक नहीं पहुँचाते। उपर्युक्त सब उपन्यासों के अन्तर्गत चरित्र के पात्रों से प्रेमचन्द के पात्रों की तुलना करने पर यह बात स्पष्ट होगी। विकास के चित्रण में भी प्रेमचन्द अपनी साधारणता के कारण अत्यन्त दबाव एवं मार्मिक होते हैं। जबकि सरस्वती हमारे हृदय को फटखोरते हुए और उसपर बार बार आघात करते हुए, हमें ऐसे एक विशिष्ट सोक में पहुँचा देते हैं जहाँ हमें बरजस प्रभावित कर के जानेवाली वैकारिक धारा से मुक्त होना हमारे लिए असाध्य हो जाता है। इस अतिमाधुर्यता (Ultra Sentimentality) कह सकते हैं और इस अतिमाधुर्यता की चरमसीमा तक पहुँचाने में उनके महान-साहस और विषयवस्तु सहायक हुए हैं।

प्रसाद के तीनों उपन्यासों में तथा कीर्तिक के माँ और 'मिस्टरिस्की' में विषयाधिक्य सामान्य की सीमा नाब जाता है। 'कंकाल' में किन्नोर और मीनन्द की कथा अधिक बढ़ित नहीं है पर मनसरेव तारा (बाद में ममूना) धारि की कथा बहुत संतुलन और उमझी हुई है। रोचकता बढ़ाने के लिए मिलने नरते उपाय हैं—जैसे बेस बदलना पात्रों का जो जाना हुआ धारमहत्या का प्रयत्न एवं रता मृत धारि—

सबको एक कथानक में समाविष्ट करके प्रसार ने विषय को अनावश्यक रूप में निबिड़ और जटिल बना दिया है। 'तितली' में जटिलता इतनी नहीं है पर निबिड़ता कम नहीं है। प्रतापनारायण भीरासठ के 'विकास' और 'बयालीस' उस और सम्मयनाथ मुक्त क मनी उपन्यास चतुरसेन के 'बहते बाँसू' 'अपराजिता' 'गोरी' (यह नवीन ऐतिहासिक उपन्यास किसी बामुसी उपन्यास से कम आश्चर्यजनक नहीं है) विष्णु प्रभाकर का 'शुट के बग्नन' आदि भी विषयाधिक्य से ग्रसित हैं। जोशी के 'प्रत्यागत' 'निर्वासित' 'सुन्यासी' प्रथ और छाया' और 'जहाज का पंखी' में मेखक के ध्येय की दृष्टि में रचकर देखा जाय तो विषयाधिक्य अस्पष्ट है। जोशीजी का शैव स्वच्छ मनोविस्तेषण है जिसके लिए सीमित व्यक्तियों और सीमित संभवों के बीच में मनस्तल की अयाप्यता तक पहुँचने का प्रयत्न अधिक उपयुक्त है। उनके अन्य उपन्यास विशेष कर 'मुक्तिमय' और 'मुझ के भूमे' इस शोध में बहुत कुछ मुक्त हैं।

हिन्दी उपन्यासकारों में प्रथम प्रथम विषय-परिमाण की ओर जान-बूझकर ध्यान देनेवाले जैनेन्द्र थे। 'कल्याणी कल्या मेरा उद्देश्य नहीं है'¹ बोधित करते हुए जैनेन्द्र ने पहले 'सुनीता' में और फिर 'कल्याणी' तथा 'मुजदा' में विषय-परिमाण को बढ़ाकर आत्म-विकास को पूर्णता दी। इनमें भी 'सुनीता' इस प्रवृत्ति की प्रतिनिधि रचना है। शायद हिन्दी के अन्य किसी उपन्यास में इतने छोटे विषय का इतना अधिक विस्तार नहीं किया गया है। अत्यन्त सीमित विषय के आकार पर रचित होने के कारण 'सुनीता' में कई गुस्र जा गये हैं। पहली बात यह है कि पात्रों का आधिक्य और कथावस्तु की जटिलता न होने के कारण मेखक को पात्रों के अन्तर्लोक के रहस्यों का आविष्कार करने का पर्याप्त अवसर मिला है। विषयात्मक का द्रुमर फल यह हुआ है कि जैनेन्द्र सम्पूर्ण उपन्यास में विषयैक्य का भी पालन कर सके हैं। मनोभावों के क्रमिक विकास में भी विषय की कृपता सहायक हुई है।

'कल्याणी' और 'मुजदा' के विषय 'सुनीता' के समान हृदय न होने पर भी उनका विषय-परिमाण उठना ही है जिसने से मुजदा रूप में आत्म-विकास सम्भव हो। किन्तु जैनेन्द्र के हास के निश्चित 'व्यतीत' एवं 'विगत' में विषय-निबिड़ता कुछ अधिक है और इसी कारण उनमें सुनीता के समान सुवर्णित चित्र-निर्माण अथवा समबद्ध आत्म-विकास नहीं हो सका है।

हमारे कतिपय उत्कृष्टतम उपन्यासकारों ने विषय निबिड़ता की दृष्टि से सन्तुष्ट रहने का बोझ-बहुत प्रयत्न किया है। अज्ञेय मधुपाम 'अगवतीकरण बर्मा', 'रायेश' 'राज' अथवा यज्ञरत्न कर्मवीर भारती प्रभाकर माधवे राहुण माइत्यायन मागार्जुन आदि ने अपने-अपने विषय के अनुसार उसका विस्तार किया है।

१. 'सुनीता' की प्रथिका

विषयबन्ध (Unity of Plot)

१७४ पर जिस गड़न-खेबिस्य की चर्चा की गयी है उसका कई कारणाँ में एक विषयबन्ध की कमी है। विषय की एकात्मकता उपन्यास के रूप-सौष्ठव और प्रभावप्रसूता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। विषयबन्ध का तात्पर्य उपन्यास में एक घटूट कहानी के होने से नहीं बल्कि उसके सभी पात्रों घटनाओं तथा भावों की पारस्परिक सम्बन्धिता से है। विषय के विविध घटनों के बीच में तथा विषय तथा पात्रों के बीच में हड़ सम्बन्ध का होना उपन्यास के नाटकीय ऐक्य और प्रभाव के लिए अनिवार्य है। नाटकीय ऐक्य कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। विभिन्न होयर्स के मत में "सम्पूर्ण उपन्यास में नाटकीय ऐक्य न हो तो उसका अपकर्ष होकर कई असम्बद्ध घटनाओं के रूप में बिगड़न हो जायगा।" विषय चाहे सीमित व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित हो चाहे विस्तृत सामाजिक जीवन से उसमें कुछान सिस्प-विधान से इस ऐक्य का पालन करना पड़ेगा।

जब व्यक्ति के संपूर्ण विषय जीवन को न लेकर उसके व्यक्तित्व की उपन्यास का आधार बनाया जाता है तब समय व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखते हैं और अपनी विभिन्नता में भी एकात्मक रहते हैं। डॉब के अधिकांश उपन्यास इस तरह व्यक्तित्व के आधार पर लिखे गये हैं, वही उपन्यासकार तुर्गनेव भी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह को अपने उपन्यासों का मूल आधार बनाते थे।^१ 'दखत भूमि' 'रबिन' पिता और पुत्र' आदि लिखते समय तत्कालीन उच्च-मध्य वर्ग से निकले हुए बौद्धिक उपरिजब (Superfuous) युवकों का चित्र उनके मन में था जो नवनोव रबिन और बबरोव के रूप में प्रकट हुआ। हिन्दी में इस तरह व्यक्तित्व के आधार पर विषयबन्ध रखनेवाले थोड़े उपन्यास 'सुनीता' 'मुक्तिपत्र' और 'सुबह के धुने' हैं जिनका उल्लेख हो चुका है।

डॉब के उपन्यासकारों के समान विषयबन्ध पर ध्यान रखनेवाले सेलक ग्रन्थ किसी भाषा में नहीं मिलते। फ्लावैयर के 'ग्रहाम बोबारी' सन्त एन्थनी का प्रसंगमन (Tentation de St. Anthony) मारिया के 'जो खो गया' (Ce qui était perdu or That which was lost), 'काले कोण' (Les Angers noirs, or The Dark Angles), मोपासाँ के 'बेल एमी' 'एक औरत की जिवनी' (Une Vie or A Woman's Life), पॉम बोवों का 'दिष्य' (Le Deciple) ग्रस्तोस बार्दे के 'जैक' (Jacque), 'छँको'

१ Hogarth The Technique of Novel-Writing P 78

१ कथानक गुणवत्ता के लिए प्रथम आधार नहीं कमिष आधार है। वनव्य प्रथम आधार को व्यक्ति या व्यक्ति-समूह है। वे किसी कथानक को चित्रित करने के पहले उन व्यक्ति या व्यक्ति-समूह को अपनी आँखों के सामने देखते हैं और उनको उनकी प्रकृति के अनुसार चित्रित बनाते हैं।—'पिता और पुत्र की हैबरी' वन्य विविध धूमिः Quoted by Grabo : The Technique of the Novel P 180

(Sapho) ऐसी प्रिवाट का 'मैमन लेस्का' (Manon Lescaut) घाटि में विषय की धारा को पकड़कर बसने की जो प्रकृति है वह एक भावधारा के विकास में अत्यन्त उपयोगी हुई है। यद्यपि ये सामाजिक जीवन का चित्रण करते हैं तो भी कभी कभी कथाकारों की भाँति समाज के असबझ चिन्तों से बातावरण को पूर्ण नहीं बनाते। यन्कोर्ट मोपासाँ और मारिया के विषय ही अत्यन्त सीमित रहते हैं। मोपासाँ के अधिकांश उपन्यासों के विषय इतने परिमित रहते हैं कि वे कहानी जैसे लगते हैं। विस्तृत विषय के उपन्यासों में जोसा ने विषयव्यय का पूरा पामन किया है। यद्यपि उनके 'रोगन मक्कार' परम्परा के *La Fortune des Rougon*, *L'Assomoir*, *L'oeuvre*, *La Bête Humaine*, *Nana* आदि में प्रतिबिम्बित समाज के विभिन्न वर्ग प्रथम दृष्टि में असबझ लगते हैं तो भी उनसे एक एकस्मी चित्र निमित्त होता है।

विषयव्यय की कमी

१७५ हिन्दी के कई उपन्यासों में विषयव्यय की कमी दिखायी पड़ती है। यह कमी मुख्यतया दो कारणों से हुई है। विषय के ही विभिन्न वर्गों की असंबद्धता के कारण या लेखक के अपनी मान्यताओं को विषय में खबरबस्ती समन्वित करने के प्रयत्न के कारण अथवा इन दोनों कारणों से कई उपन्यासों में विषयव्यय की कमी आयी है।

पहले सबसे असबझ 'धोबे की मूँच' (रविंद्र रायच) को लीजिए। इसे उपन्यास कहना ही असंभव है क्योंकि इसमें एक सबड कथानक के बने कई कथाएँ हैं। कई पात्रों द्वारा कही गयी ये कथाएँ न कोई पारस्परिक संबन्ध रखती हैं, न वे सब मिलकर समाज का एक सामान्य रूप ही दिखाती हैं। उनमें सम्बन्ध इतना ही है कि उन कथाओं के कुछ पात्र एकसाथ मिलकर अपनी-अपनी कथा कहते हैं। जमबीर भारती का 'भूरज का सातवाँ घोड़ा' भी इसी तरह कई कहानियों का संग्रह है जो समाज के कुछ पहलुओं को व्यक्त करती हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'कमी न कमी' के आरम्भ में मजदूरों की विषयता का एक प्रतिबिम्बित रूप मिलता है। पूरे पाँच अध्याय इसीसे भरे हैं। इसके बाद शुरू होती है कहानी—सम्पन्न द्वारा सीता से बेबकू के विवाह का प्रयत्न विफलता सम्पन्न सीता विवाह घाटि की। इस रसीले प्रसंग में भूले हुए लेखक जब मजदूरों के कष्टों की चिन्ता ही नहीं करते। सीता को बध में करने का भेट का प्रयत्न भी साधारण प्रेमकथा के दुष्टपात्र की ओर ही संकेत करता है, मजदूर वर्ग की सामान्य पुरस्धा और कष्टों की ओर नहीं।

१ "He wrote several novels that were short stories and all his short stories are novels"

धीरे एक तरह की विषय-हीनता इसाचन्द्र बोधी के 'निर्वासित' धीरे विष्णु प्रभाकर के 'निश्चिकान्त' में है। 'निर्वासित' का पूर्वार्थ वैयक्तिक जीवन की व्याख्या ठाढ़ सामाजिक जीवन का रूप दिखाता है—इस भाग में व्यक्ति का ही विषय महत्त्व है। पर उत्तरार्ध में धाकर रंग बदल जाता है। राजनीतिक सिद्धांत-कलाओं के बीच में व्यक्तिगत धूमिल हो जाता है। उसे ही पूर्णतया छुट न होता हो। 'निश्चिकान्त' में विलक्षण उलटी बात है। इसका प्रथम अर्ध मुख्य रूप में राजनीतिक वातावरण को—हिन्दू मुस्लिम संघर्ष के रूप को—दिखाता है। इस विषय की इसनी विस्तृति के बाद—इस बीच में धीरे किसी विषय का संकेत नहीं है धीरे लगता है कि उपन्यास इस संघर्ष से सब बित होया—निश्चिकान्त धीरे कमला की कथा शुरू होती है। इस भाग में मुख्य रूप में स्त्रियों की सामाजिक कथा का ही चित्रण है। यद्यपि मेसक ने हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष से कथा का संबंध जोड़ने के दो-एक प्रयत्न किए हैं तो भी यह सम्बन्ध अत्यन्त सिध्द है। इस सिध्द संबंध के लिए इसनी विस्तृत भूमिका आवश्यक ज्ञात नहीं होती। नामार्जुन के 'बाबा बटेश्वरनाथ' में पहले जो सामाजिक जीवन है वह बरसकर राजनीतिक संघर्ष को स्थापन देता है। लेकिन यहाँ यह परिवर्तन सटकरा नहीं है क्योंकि सामाजिक जीवन में राजनीति का भी स्थान है।

उपन्यासकार शत्रु का सर्वप्रथम उपन्यास 'सायर' सहर्ष धीरे मनुष्य' बरसोवा के मनुष्यों के जीवन का यथार्थ रूप प्रकट करते हुए सही कलाकार छेड़न कोइकेविच धारि के उपन्यासों के समान ही मार्मिक हुआ है। किन्तु अन्तिम सम्प 'घटनन्त' में धाकर जीवन का यथार्थ चित्रण नष्ट हो जाता है। रत्ना के चरित्र का स्वाभाविक विकास सतरे में पड़ जाता है। कमलक ही जीवन की स्वाभाविक गति छोड़कर वैचित्र्य का मार्ग अपनाता है। घातिलबाजी के बाण के समान अपने सतरंगी सौन्दर्य से ऊपर छठनेबाजी कला वहाँ धाकर राज की डेरी बन गिर जाती है। फिर वही बीसवीं सदी के प्रथम पाह के उपन्यासों की स्वच्छन्दता संयोग धीरे धारस के हुकमरे ! जब तक रत्ना ग्राम में है तब तक उसका विकास स्वाभाविक रूप में होता है। जब वह सहर जाती है, तब स्वयं तो बिगड़ ही जाती है। उसका चित्रण भी बिगड़ जाता है। उसका मगर-जीवन पहले के जीवन से विलक्षण भिन्न हो जाता है धीरे इस परिवर्तन की कोई ठोस नींव नहीं दिखायी पड़ती। यह अस्मरण नहीं पर उपन्यास-शिल्प में ऐसा प्रतिपक्षी परिवर्तन अस्वाभाविक अवश्य है। ज्ञात होना है कि सही जीवन की कृत्तिपताओं को दिखाने के लिए मेसक को रत्ना के जीवन को मोड़ना पड़ा है। उसके बाद कुछ धारस साधना का अर्थ रत्ना को नष्ट बनाकर उससे बहुत सैबा कराई पयी घटनन्त को पढ़ाकर ग्रामसेवा में भपा दिया गया। पर इन सबसे उपन्यास की स्वाभाविक एकता में बाधा पड़ी है। इसी कारण से इस अन्तिम भाग में घटनन्त-गति भी ठीक होती है धीरे पात्रों की मनोदशाओं का विकास पुरा नहीं हो पाया।

यही दोष प्रथम अर्ध के उन सब उपन्यासों में भी मिलता है जो धारसोमुख यथार्थवादी मान जाते हैं। इन सबके अन्त में धाकर जब प्रथम अर्ध नामादिक समस्याओं को मुसम्हने लगते हैं तब वे ऐसे जीवन का निर्माण करते हैं जो यथार्थ नहीं है धीरे

बिनाके प्रतिष्ठान में धीरे-धीरे सभी-सभी समाप्तता तक में समेटे हुए होने समता है। घटनाओं का क्रम देखें तो यह सुधारात्मक धारण जीवन धर्मभाव्य नहीं लगता पर पहले के मूल्य जीवन का बिना जीता-जागता मूल्य बिना प्रेमभाव्य प्रस्तुत करते हैं। उतना ही उनका धारण जीवन धर्मपूर्ण रह जाता है। इससे टेक्नीक में भी कुछ होप या आते हैं।^१

अपेक्षी में स्कॉट के ऐबनहो^२ धीरे 'माइ मैगरेय' विषय की एकता के न रहने से ही बटकरनेवाले हैं। 'माइ मैगरेय' के प्रथम तीन बार अध्याय तक माइ मैगरेय नायक-सा लगता है, पर उसके बाद वह भीण पात्र बन जाता है। स्वयं स्कॉट ने भूमिका में इसका कारण बताया है कि उपन्यास के कुछ अपने के बाद उसकी योजना ही बदल गयी। इसी तरह 'ऐबनहो' के मध्यभाग तक ऐबनहो ही मुख्य पात्र है उसीके जीवन के आधार पर उपन्यास चलता है पर इसके बाद रिचर्ड और उसके भाई का संघर्ष प्रमुख हो जाता है। नायिका रोबेना के स्वाम पर रेबका या जाती है। इस तरह कुछ उत्कृष्ट उपन्यासकारों ने भी विषयवस्तु पर ध्यान दिये बिना अपनी रचनाओं को होप मुक्त बनाया है।

लेखक की मान्यताएं विषयवस्तु में बाधक

१७६ आचारसु तोष उपन्यास में सबसे अधिक बिना जीवन की खोज करते हैं वह एक कथा है। उल्टर के पाठक धीरे धीरे जीवन का स्वरूप देखना चाहते हैं। उन्हें लेखक की मान्यताओं धीरे विचारों से अधिक दिसचस्पी नहीं रहती चाहे वे राजनीतिक हों चाहे धार्मिक या नायिक। जैसे वे विचार धीरे मान्यताएं उपन्यास के अनुपेक्षणीय संग भी नहीं हैं। इसके विरुद्ध लेखक के राजनीतिक धार्मिक या नायिक विचारों का प्राधिक्य कलात्मक सीप्टन बनाये रहने में बाधक भी हो सकता है। अगर कथा छोकर बाये बिना ठीक तरह से बसती हो या जीवन का रूप विषयवस्तु (distorted) हुए बिना व्यंजित होता हो तो उसके साथ बोझी-बहुत राजनीति धीरे फिलासफी को सहन किया जा सकता है। ऐसी रचना में भी यह धार स्वयं है कि विषय के साथ इन विचारों का दूध-मानी का सा मिलन हो जाय। भगवती-चरण बर्मा के 'बिभलेसा' बौद्ध मन के 'पवित्र पापी' (The Holy Sinner) इनमें भी धार्मिक विचार हैं, वे उपन्यास से भिन्न हुए ही नहीं हैं बल्कि उपन्यास के आधार ही हैं। वास्तविकता के 'अपराध धीरे रण' की नींव यह सिद्धांत है कि घटनाओं के सहन से जीवन उदात्त बनता है। गोर्की के राजनीतिक विचार ही 'म' के प्रत्येक पात्र का चरित्र-निर्माण करते हैं। ह्यूगो का 'अ मित्रराज' चार्स इसमिट का 'अद्वैत धार्मिक' टाकटाय का 'अन्धारेनिता' प्रवास्त का 'पीनल सेल्फ' एलावेयर का 'मराम बोधारी' धारि में लेखक की जीवन-दर्शन-सम्बन्धी जो मान्यताएं हैं उनको उपन्यास से प्रमाण करके देखना धर्ममय है। आधुनिक सभी उपन्यासों में राजनीति भी इसी तरह अभिन्न रहती है।

हिन्दी में प्रेमचन्द के आनन्दकर, सुरदास चक्रवर्त, धर्मरामदास धारि धारस पात्र सेवक के विचारों के आधार पर बड़े हुए हैं। यद्यपि इन विचारों का उनसे हड़ संबन्ध है। पात्रों से संबन्ध तोड़कर अपने विचारों का प्रचार करने का प्रयत्न प्रेमचन्द नहीं करते। अपने विचारों का प्रचार करना हो तो भी वे पात्रों से उनका सम्बन्ध स्थापित करके करते हैं। यद्यपान के राजनीतिक उपन्यास यद्यपि कला की दृष्टि से वस्तु उत्कृष्ट नहीं हैं, तो भी लेखक ने अपने विचारों को पात्रों में पचा दिया है।

अब हम सेवक के विचारों के भार से विपरीत न रखनेवासे कुछ उपन्यासों को देखें। पहले उपेन्द्रनाथ सेवक के 'गिरती दीवारें' को लें। इसमें मुख्य कथा—बेतन की कथा—बसती खूबी है। बीच-बीच में कई पात्र धाते हैं जो अपना सबकुछ धनित्व दिखाकर मिट जाते हैं। कुन्ती केसर, सामो वीर विरिवाचकर, जमहीधरिह कविपत्र रामदास धन्नी धारि से संबद्ध बटनाएँ ऐसी ही हैं। लेकिन वे सब उपन्यास में अपने-अपने धनित्व को सार्थक नहीं बनाते। बयालीसवें से लेकर बस-बारह अध्यायों का विषय कविराम रामदास से धनिक सम्बन्ध रखता है और उसका मुख्य विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि बेतन के चरित्र-विकास में रामदास का कोई महत्त्व नहीं है। उपन्यास सामान्य सामाजिक वातावरण प्रस्तुत करनेवाला होता तो बच्चों की काली कपड़ों की यह धामोचना कुछ महत्त्व रखती। पर वस्तुतः उपन्यास ऐसा नहीं है। स्पष्ट है कि सेवक के मन का कुछ तीव्र विकार ही यहाँ मुख्य विषय के बीच में एक दरार बनाकर प्रविष्ट हुआ है। इसीलिए सेवक का उद्देश्य भी यहाँ कुछ बदला हुआ था दिखायी पड़ता है। अब तक के माहौल-जीवन से सम्बन्धित समस्याओं का यथार्थ और प्रसन्नता पूर्ण रूप में हो जाता है और उसके स्वान में कविराम के समाज-विकास जीवन का धामोचनार्थक रूप धाता है। सेवक जहाँ धारम्भ में बेतन के बल और बलहीनताओं के यथार्थ विचार से जीवन के धनुभूतिपथ रूप को प्रकट करता है वहाँ इन अध्यायों में एकपक्षीय होकर जीवन के धामे धंध-मात्र के धामोचक बन बैठे हैं और धामोचनार्थक यथार्थवादी (Critical Realist) के रूप में परोक्ष धारसवादी बन जाते हैं। 'गिरती दीवारें' का अध्याय पचास पूरा सबसे कमजोर है। यहाँ जब तत्पक्ष बेतन को मुन्तरोनों के कारणों से धनगत करता है तब उपन्यास की सब दीवारें गिर जाती हैं और कथकुर के रूप में बच्चों के विचारधर्मों की बस-बसह ईर्ष्या-भाव बची रह जाती है। इन्हीं बातों को सेवक व्याख्यात्मक रूप में लेकर भूत रूप में प्रस्तुत करते तो कम पृष्ठों में अधिक प्रमाण होता।

और एक प्रसंग देखिए। जब धिमला के एम्प्यूर डामा बलब और लाहीर से धामे नाटक बलब की चर्चा में कला की उत्कामीन दशा पर ध्यय करन के लिए पृष्ठ के पृष्ठ रये जाते हैं तब विपरीत पर धापात ही किया जाता है। यहाँ भी बेतन का जीवन नहीं सेवक के विचार ही अधिक प्रकट होते हैं।

रोसा के 'की बिस्पाफ' में भी इसी तरह कई अध्याय बिस्पाफे हाप कला की धामोचना करने में ध्यय किये गये हैं। लेकिन जहाँ बिस्पाफे स्वयं एक कलाकार है

त्रिषुका जम से मरण तक कला से सम्बन्ध रहता है।^१ वह केवल कला का निरी-
क्षक नहीं कलाकार है। हरवम कला उसपर प्रभाव डालती है। वृषित कला के निरुद्ध
उसका मन हमकलाव कर उठता है। पर चेतन के कलाकार होने का पता तब तक नहीं
पसठा जब तक मेखक को कला की आलोचना करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।
धीरे तब पलक बैंक (Flash back) देकर चेतन के वास्तविकाल के संघीत-संग धीरे
धमिलय पाठ्य को प्रकट करना पड़ता है। फिर भी भ्रमा यह है कि चेतन को कासेत्र
की माटक समिति के माटक में रायबहादुर जानकीनाथ का घाट सेकर प्रसिद्ध हुषा
वा त्रिसर्ग 'कई स्थानीय माटक समितियों में भाग लिया था' और 'भ्रमक माटक केसे
के' यह सब तक समझे बैठे हैं कि धीन कम एक विज्ञान हृष्ट कमरा है। त्रिसर्ग हरे
परदे होते हैं।^२ दूसरी बात यह है कि ये बातें चेतन के जीवन में घाटी हैं और चली
जाती हैं। न ये चेतन पर प्रभाव डालती हैं न इनपर चेतन अपना इष्टिकोण
व्यक्त करता है। सब कुछ लेखक की ओर से होता है। जो किताबों में लेखक ने
विपर्यय पर अधिक ध्यान दिया है। फिर भी वह मानना पड़ता कि ऐसे भाग कुछ
कमजोर ही हैं।^४ भ्रुस्त के ब्रुतकाल-पर्यवेक्षण में स्वन की प्रेमकला भी खटकती
है पर वह भी मुख्यपत्र विन्नेट क स्वभाव-निर्माण का एक मुख्य आधार है।

स्मरणशीली और विपर्यय

१७७ स्मरणशीली (Flash back Style) का उपयोग उपन्यास की भाषाभाष
में धार्मिक प्रभाव का सकता है। इनका सुन्दर उदाहरण 'गिरती दीवारों' में है। कुन्ती
के सम्बन्ध में अधिकोष्ठ बटनार्थ चेतन की स्मरणार्थों के रूप में प्रमह-बगह पर उतायी
गई है। इन सबका सिलसिलेवार विवरण प्रस्तुत किया जाता तो क्या अधिक सुलभी
रहती पर इतनी मार्मिक नहीं होती। पर यहाँ का विरुद्धलता है उसस बटनार्थों के
मिन्न-कालत्व का ज्ञान हो जाता है। कमजोर में रहत समय चेतन की स्मरण के रूप
में फर्नस बैंक देकर उसीके वास्तव का जो वर्णन किया गया है वह भी सुन्दर है।

फर्नस बैंक सभी का सबसे बड़ा दुस्प्रयोग प्रतापनारायण दीवास्तव ने किया
है। इनक 'विद्वान्' की स्मरणार्थ स्मरण की समस्त सीमाओं के बाहर हो जाती हैं।
लेखक इस बात पर ध्यान ही नहीं रखता कि स्मरणार्थ कहानी के रूप में नहीं घाटी

१ वह बात भी प्रसिद्ध है कि 'ऑ किताबों' जलन में जयन्ती के प्रसिद्ध संघीनकर
दीनेश्वर की जीवनी से संश्लिष्ट उपन्यास है जिन्होंने तत्कालीन जयन्त कलाओं की पर्यन्त धारो-
चना की थी। ऐसी दशा में इसे उपन्यास में रचना लेखक की विवराता थी।

२. देखिए, गिरती दीवारें पृष्ठ २७।

३. देखिए, गिरती दीवारें पृष्ठ २९।

४ इस कमजोरी को ओर सूचित करने हुए कर्न पत्र धारो ने माना है कि 'ऑ किताबों'
को प्रेम बना विद्वान् सुन्दर और जाकनेक है अन्ध मान नहीं। प्रथम भाग के बालकाल में
ऐसी अर्द्धक बटनार्थों का विचार नहीं है। अन्ध भागों में है।

धीर न उनमें घटनाओं का बिस्तेरण ही होता है। फलतः 'विकास' में स्मरणों सेवक की वाली हो जाती है। मालती का अपने धीर पति के सख्त का स्मरण^१ एक नमूना है। दूसरा सख्तरण इस ढंग में अगुपकुमारी की पूर्व कथा का स्मरण है। यह सचमुच घोचरी नहीं हमसे कहानी कहने समीची है।

मेरे माता-पिता बोड़ी बगल में कालकबलित हो गये। मेरा मामन-पोपरा मेरे मामा धीर मायी ने किया। उनके पास रहकर उनकी बुद्धि का साठ काम करने लगी। क्यों-क्यों दिन बीतने लगे। मेरी एक सखी का विवाह घर में एक घनी घावनी से हुआ था।"

सगमम इस पृष्ठ^२ तक चलनेवाली यह स्मरणा वस्तुतः आत्मकथा सीधी में कथा समझने का प्रयत्न है स्मरण नहीं। फिर कापेस्करप्रसाद की^३ धीर गिरिजानन्द की^४ स्मरणों भी इस तरह की कहावियाँ हैं। ये सब कथानक को तो स्पष्ट करती हैं, पर कथाधिस्य में बिचलता जाती हैं। इसी तरह के स्मरण 'विसर्जन' में भी मिलते हैं।

पनोरमिक उपन्यास का विपरीत

१७८ पनोरमिक उपन्यास के बहुत-सीधिस्य के प्रसंग में उसके विपरीत की चर्चा हो चुकी है।^५ विविध के बीच में भी एकता उसकी विद्यमान है। सैकड़ों घटनाओं मिसकर वो सामान्य चित्र प्रस्तुत करती हैं, उनमें एक तरह की एकता छाती है। किन्तु ठाकुरदास के 'मुझ धीर छान्ति' में धीर एक तरह की विपरीत हीनता प्रष्ट है। उसके प्रति बिस्तृत वातावरण में ठाकुरदास ने वो महान कथाओं का विकास किया है। एक में मानवता की यह चिरन्तन कथा है वो हृदय के विविध विकारों को मूर्त रूप देती हुई चलती है। पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित होता हुआ समाज ह्रास-विकास के चक्र में निरन्तर गतिशील जीवन—जीवन का क्रमच विगमित होता जाता है—मार्क्स को नवजीवन को जन्म दे चुका है आधा वो निपटा में परिणत होती है—निपटा जो नयी आशाओं और समितापाओं को मुहूर्त करती है। इसी में इन सबकी कहानी से कुछ न होकर ठाकुरदास एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक संघर्ष का भी चित्रण करते हैं। वस्तुतः 'मुझ धीर छान्ति' में वो उपन्यास है। इस कारण से दोनों में बिचलता भी आयी है।^६

१. विजयस पृष्ठ १११-११२।

२. " पृष्ठ १८०-१८१।

३. पृष्ठ ४१४-४४।

४. " पृष्ठ २२१-२२२।

५. रेडियर अगुपकुमारी १०-।

६. Percy Lubbock says of this want of unity of plot "In 'War and Peace' the story suffers twice over the imperfection of form. It is

भाव-वेग (Tempo)

१७२ उपन्यास एक चित्र या मूर्ति के समान नहीं है जिसका संपूर्ण रूप एक-दम हमारे सामने धाकर अपने पूर्ण अस्तित्व से हमारे मन पर प्रभाव डालता हो बल्कि एक संगीत के समान है जिसकी स्वरसहस्रियाँ समय-समय के साथ विकसित होती हुई, धीरे-धीरे अपनी ही गति से परिचायित एक तरह का कम्पन उत्पन्न करती हैं। उपन्यास घनेक अनुभवों का समामेष है जो धीरे-धीरे प्रस्फुटित होते हैं। किसी उपन्यास के कालवर्षों के अनुकूल मात्र पर प्रभाव डालने के लिए उसके भाव-वेग को नियंत्रित रचना पड़ता है। विषय-विकास के पक्ष-पक्ष पर मन में अनुकूल भाववस्था स्थापित करके घाये बढ़ने पर ही पाठक लेखक और पात्री के हृदय में क्रमशः विकसित होनेवाली सूक्ष्म भावनाओं की अनुसृष्टि कर सकेगा। इस भाव-नियंत्रण का उपादान बटनाचक्र ही नहीं उसका भाव-वेग भी है। उपन्यास के विषय को इस भाव-वेग से पूर्ण शक्ति मिलती है।^१ भाव-वेग का नियंत्रण पूर्णतया उपन्यास के अभिव्यञ्जन पक्ष या टेक्नीक पर अवलंबित रहता है। इसकी व्याख्या करते हुए रैबो ने कहा है

"The basic problem of tempo is a purely mechanical one, the adjustment of story's pace to the visual speed of reading."^२

कहा जा सकता है—उपन्यास के पात्रों के जीवन के समय के साथ पाठक के मानसिक समय का समुजन ही भाव-वेग या टेम्पो है। बटनाओं के वास्तविक समय में और उनके लिए उपन्यास में दिये गये समय में जो अन्तर है उसे मिटाकर उपन्यास में

damaged in the first place by the importation of another and an irrelevant story—damaged because it so loses the sharp and clear relief that it would have if it stood alone. Whether the story was to be the drama of youth and age or the drama of war and peace, in either case it would have been incomparably more impressive if all the great wealth of the material had been used for its purpose."

The Craft of Fiction P 40

१ वहाँ बटना-वेग और भाव-वेग का अन्तर समझना आवश्यक है। बटनाओं का कोई प्रभाव हो सभी बल्की साधकता है। वह प्रभाव जिस वेग से तीव्रता पहुँचता है वही वहाँ भाव-वेग (tempo) नाम से संज्ञायित है। बटनाचक्र के प्रभाव का वेग ही भाव-वेग है।

२ "By the absolute certainty of tempo the story is made to gather momentum until it rushes to its appalling close."

—Grabo: The Technique of the Novel, P 214

१ Ibid., P 214

जी वास्तविक समय का बोध कराना टेम्पो का ध्येय है।^१

टेम्पो-नियंत्रण के विविध उपाय

भाव-वेग-नियंत्रण सांकेतिक विधाओं से ही होता है। तारों की एक लाइन लगाकर तीन बर्ये बीच गये' कहना समय-व्यतिथान दिखाने की सबसे सरल रीति है। पर विलक्षण यांत्रिक इस रीति से समय का व्यतिथान हृदय में संक्षिप्त नहीं होता। इसके लिए बिन ध्वन्य रीतियों का आश्रय लिया गया है। उनकी कर्षा यहाँ की बायनी। प्रायः सेवक इस भाव-वेग के नियंत्रण के प्रति सचेत होकर नहीं निश्चित पर अपने हृदय में संक्षिप्त चित्र का प्रभावपूर्ण प्रतिबिम्ब उतारने के प्रयत्न में उनके मनमाने ही टेम्पो का नियंत्रण हाँ बाँठा है।

१८० विवरण और संक्षिप्तीकरण—विवरणात्मक उपन्यासों में बटनाचक्र की गति को नियंत्रित करने के लिए विवरण को विस्तृत या संक्षिप्त बनाया जा सकता है। प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास अथवा अधिकांश विवरणात्मक हैं। तथापि उनमें इस बात पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। 'चन्द्रकान्ता' 'नरेन्द्रमोहिनी' 'चपला' 'कुटीर वासिनी' 'प्रादर्यो हिन्दू' आदि में और 'ककाल' 'तिलकी' 'हृदय की प्यास' 'अमर अधिवासा' (बहुते धाँसू) 'कुँडली चक्र' 'बिस्मिली का वलास' 'सुमुष्मा की बेटों' (मनुष्यात्मन्) 'छाया' 'जी जी जी' 'त्यागपत्र' आदि में विवरण एक तरह की सीढ़ता उत्पन्न करके भाव-वेग को बढ़ाता है। लेकिन कौशिक के 'मिथ्याचिन्ता' में गीण संभवों की भी विस्तृति के कारण एक मंदगति आ जाती है।

१८१ हृदय और संक्षिप्तीकरण—मुख्य और पार्श्वपूर्ण संभवों और पात्रों को हृदयों द्वारा प्रस्तुत करके गीण संभवों को संक्षिप्त विवरण का रूप देने की रीति से प्रेम चन्द बड़ा प्रभाव डालते हैं। उनके किसी भी उपन्यास को भीड़िए, यांत्रिक बटनाचक्रों के विस्तृत हृदय-रूप में आती है। बीच-बीच में संक्षिप्त विवरण हृदयों की कड़ियाँ मिलाते जाते हैं। 'तुर्निक' के 'पिता और पुत्र' 'मविन' 'वेन वास्टिन' के 'अहमात्र और पूर्वग्रह' (Pride and Prejudice), 'एमा' (Emma) आदि में इस शैली के अन्धे नमूने हैं। हिन्दी में प्रेमचन्द के समान विवेक से और किसीने हृदय और संक्षिप्त विवरण का सम्मिश्रण नहीं किया है। यमवतीप्रसाद बाजपेयी के आरंभिक उपन्यासों में हृदय के योग्य प्रयोग भी विवरण में हैं।^२ हाल के उपन्यासों में विवरण के योग्य प्रयोग भी हृदय रूप में हैं।^३ 'उपादेवी' के 'जीवन की मुस्कान' की शैली प्रेमचन्द की रीति से मिलती जुलती है। पर 'पिया' और 'अजबारी' अधिक विवरणात्मक हैं, मष्ट नीड़ यांत्रिक

१. "It is a question of creating an illusion of duration which shall correspond with the sense of duration."

—Read Collected Essays in Lit Criticism, P 357

२. अनाम वल्ली स्वामन्वी पिप्रमा आदि-में।

३. बचार्थ से जाये में।

हस्तात्मक । प्रत्येक भगवतीचरण वर्मा धादि ने हस्त धीर विवरण दोनों का उपयोग किया है, भक्ति सब जगह बिन्दु से नहीं । 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' के कई हस्तों को विवरण बनाने से उसका टेम्पो अधिक समानुक्त हो सकता है ।

१८२ प्रवाह का अवरोध—साधारणतया कई कपारों के समावेश के कारण गड़न में दिक्कत उपन्यास का भाव-वेग सफल रहता है । जब कपारों की विविध धाराएँ जमती रहती हैं तब एक-एक की धारा को बीच-बीच में प्रवृत्त करके प्रत्येक धाराओं को प्रवाहित करने से धीरे-धीरे बीच-बीच की बटनारों को छोड़ देने से पात्र अपने अकथित अस्तित्व से हमारी मानसिक अवस्था को प्रभावित करते रहते हैं । 'गोदान' में राम और नगर के जीवन को बारी-बारी से लिया जाता है । किन्तु नगर-जीवन को पहले समय धामीण पात्र हमारे ध्यान में बँध रहे हैं और धामीण जीवन का निरीक्षण करते समय भाविक पात्र । यह सूक्ष्म अस्तित्व प्रत्यक्ष हस्त के मूर्त अस्तित्व से कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि यह एक धीरे-धीरे के साथ सुस्पष्टता में मन के बसने में सहायक होता है तो दूसरी ओर प्रवाह को स्थायी बनाने में सहायक होता है । बाबू इतिहास के 'मिथिल मार्ग' में जोरोबिया की धाँसी के बाव कथा टूट जाती है और मिथिल और सेसामेंड की कथा जमती है । इसके बाद जोरोबिया की कथा पर घाटे समय यह टूटती है अधिक प्रसन्नता देती है । तात्स्थाय के 'प्रभा करेनिना' में टेम्पो नियंत्रण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जब कभी एक या अधिक धाराओं में होकर विकसित होनेवाली उत्कृष्ट चरमसीमा तक पहुँचती है तब वहाँ कथा का प्रवाह टोड़ दिया जाता है उसका ध्यान छोड़ पकड़ने के लिए उत्कृष्ट मन बीच के धाराओं से होकर तीव्र गति से चलता है इससे सब धाराएँ धीरे-धीरे समय भी मानसिक क्षेत्र में सिक्कू जाते हैं । जगमग यही प्रभाव 'गोदान' में मिलता है । किन्तु प्रवाह के 'तितली' में मावभारा के टूटने पर भी इस तरह का प्रभाव नहीं होता क्योंकि उसमें मावभारा के अवरोध से जो उत्कृष्ट होती है वह कुछ से अधिक सन्तुष्ट रहती है हृदय से कम । 'प्रभा करेनिना' और 'गोदान' में उत्कृष्टता का आचार रहस्यात्मकता नहीं है बटनारों को क्षिपाना या पार्श्वों का पूर्ण परिचय न देना नहीं है परिचित परिस्थितियों में परिचित पार्श्वों की कल्पना विकसित होती हुई मावभारा का अवरोध है । पर 'तितली' में बटनारों क्षिपाना जाती है पार्श्वों से संबन्धित कई बातें प्रष्ट तक प्राकृत रहती जाती है । चतुरसेन के 'बेबासी की नगरज' में मावभारा का अवरोध टेम्पो के नियंत्रण में काफी सहायक है । लेकिन उन्हींके 'सोमनाथ' में ऐसा नहीं है क्योंकि 'सोमनाथ' में पार्श्वों के विकास उतना नहीं होता बितना बटनारों का । भगवतीप्रसाद वाजपेयी के 'यपार्थ से भाये' में प्रत्येक दो धाराओं के बीच धारा टूटती है । पर इससे समय-व्यतिक्रम का बोध नहीं होता । एक ही समय के विभिन्न संभवों को विवरण करने के लिए ही इस धीमी को स्वीकृत करने को वाजपेयीजी विवश जात ठहरे हैं । प्रायः हिन्दी के अधिकांश लेखक कथासूत्र को छोड़ते नहीं, यद्यपि हिन्दी में इस धीमी की संभावनाओं के संभव में अधिक प्रयोग नहीं हुआ ।

१८३ अभिव्यक्ति से टेम्पो का नियंत्रण—विचारों और विचारों की तीव्र

भी वास्तविक समय का बोध कराना टेम्पो का ध्येय है।^१

टेम्पो-नियंत्रण के विविध उपाय

भाव-वेग-नियंत्रण सांकेतिक विचारों से ही होता है। तारों की एक साइन लगाकर 'ठीक बर्य बीत गये' कहना समय-व्यवस्थित रहिताने की सबसे सरल रीति है। पर विलक्षण यांत्रिक इस रीति से समय का व्यवस्थापन हृदय में प्रकट नहीं होता। इसके लिए बिना अन्य रीतियों का आश्रय लिया गया है। उनकी चर्चा यहाँ की जायगी। प्रायः सबक इस भाव-वेग के नियंत्रण के प्रति सज्जत होकर नहीं लिखते पर अपने हृदय में प्रकट बिना का प्रभावपूर्ण प्रतिबिम्ब उत्पन्न के प्रयत्न में उनके धनधाने ही टेम्पो का नियंत्रण हो जाता है।

१८ विवरण और संक्षिप्तीकरण—विवरणारमक उपन्यासों में बटनाचक्र की गति को नियंत्रित करने के लिए विवरण को विस्तृत या संक्षिप्त बनाया जा सकता है। प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास यद्यपि अधिकतर विवरणारमक हैं तथापि उनमें इस बात पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। 'बन्धुकास्ता' 'करेखुमरीहिनी' 'अपरा' 'कुटीर बासिनी' 'आदर्श हिन्दू' आदि में और 'ककास' 'तितुसी' 'हृदय की प्यास' 'अमर अभिलाषा' (बहुते भासु) 'कुटुम्बी बक' 'दिस्ती का दफान' 'बुझमा की बेटी' (मनुप्यातम्ब) 'शराबी' 'जी जी जी' 'स्वायम्भ' आदि में विवरण एक तरह की तीव्रता उत्पन्न करके भाव-वेग को बढ़ाता है। लेकिन कौटिल्य के 'मिथ्यारिणी' में गीण संभवों की भी विस्तृति के कारण एक भव्यता पा जाती है।

१८१ हृदय और संक्षिप्तीकरण—मुख्य और चरित्रपूर्ण संभवों और पात्रों को हृदयों द्वारा प्रस्तुत करके गीण संभवों को संक्षिप्त विवरण का रूप देने की धौनी से प्रेमचन्द बड़ा प्रभाव डालते हैं। उनके किसी भी उपन्यास को भीखिए, यांत्रिक बटनाचक्र हृदयों विस्तृत हृदय-रूप में आती है। बीच-बीच में संक्षिप्त विवरण हृदयों की कड़ियाँ मिलाते आते हैं। तुर्गनैव के 'पिता और पुत्र' 'वहिन' जेन आस्टिन के 'अहंभाव और पूर्वग्रह' (Pride and Prejudice) 'एमा' (Emma) आदि में इस धौनी के अच्छे नमूने हैं। हिन्दी में प्रेमचन्द के समान बिके से और किसीने हृदय और संक्षिप्त विवरण का सम्मिश्रण नहीं किया है। भगवतीप्रसाद बाबूदेवी के आरंभिक उपन्यासों में हृदय के धौम्य प्रसंग भी विवरण में हैं,^२ हास के उपन्यासों में विवरण के धौम्य प्रसंग भी हृदय रूप में हैं।^३ उपादेवी के 'जीवन की मुस्कान' की धौनी प्रमत्त की धौनी से मिलती जुलती है। पर 'पिया' और 'पञ्चाशी' अधिक विवरणारमक हैं 'नष्ट मोड़' अधिक

१. "It is a question of creating an illusion of duration which shall correspond with the sense of duration"

—Read Collected Essays in Lit. Criticism, P 357

२. कलाव रत्नी स्वयंमयी विपत्ता आदि में।

३. बर्बाद से आने में।

हस्तात्मक । धरक भण्डारीचरण कर्मा धारि ने हस्त धीर विवरण दोनों का उपयोग किया है, लेकिन सब अगह विवरक से नहीं । 'टेडे येडे रास्ट' के कई हस्ता को विवरण बनाने से उसका टेम्पो अधिक मनोनुकूल हो सकता है ।

१८२ प्रवाह का अवरोध—नागरागण्यमा कई कवामों के समावेश के कारण मङ्गल म मिथिल उपस्थान का भाव-वग सफल रहता है । जब कवामक की विविध बाधों जगती रहती है तब एक-एक की धारा को बीच-बीच में अवरोध करके अन्य धाराओं को प्रवाहित रखने से धीर कमी-कमी बीच की बटनाओं को छोड़ देने से पात्र अपने प्रकटित धस्तित्व से हमारी मानसिक अवस्था को प्रभावित करते रहते हैं । 'गोबान' में ग्राम और नगर के जीवन को बारी-बारी से लिया जाता है । किन्तु नगर-जीवन को पढ़ते समय ग्रामीण पात्र हमारे ध्यान कीर्षित रहते हैं धीर ग्रामीण जीवन का निरीक्षण करते समय नागरिक पात्र । यह धूम्र धस्तित्व प्रत्यक्ष हस्त के मूठ धस्तित्व से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि यह एक धीर कवा के साथ सुम्यवेग में मन के चलने में सहायक होता है तो दूसरी धीर प्रभाव को स्थायी बनाने में सहायक होता है । जार्ज हर्तिग्ट के 'मिथिल मार्च' में होरोविवा की धारी के बार कवा टूट जाती है धीर सिम्पेट धीर सैलामंड की कवा जगती है । इसके बार होरोविवा की कवा पर पाठे समम यह धुरी हने अधिक प्रबलता देती है । तास्त्याय के 'मन्ना करेनिना' में टेम्पो नियंत्रण की सबसे बड़ी विरोधता यह है कि जब कभी एक या अधिक धम्याओं से होकर विकसित होनेवाली उत्कण्ठ अवस्थाएँ एक एक होती हैं तब वहाँ कवा का प्रवाह छोड़ दिया जाता है उसका धूम्र धीर पकड़ने के लिए उत्कण्ठ मन बीच के धम्याओं से होकर तीव्र गति से चलता है, इससे नब्बे धम्याय धीर बीच समय भी मानसिक क्षेत्र में चिक्कड़ बाते हैं । लपनग यही प्रभाव 'गोबान' में मिलता है । किन्तु प्रसा के 'तित्ती' में भावधार के टूटने पर भी इस तरह का प्रभाव नहीं होता क्योंकि उसमें भावधार के अवरोध से जो उत्कण्ठ होती है वह बुद्धि से अधिक संवन्न रहती है हृदय से कम । 'मन्ना करेनिना' धीर 'गोबान' में उत्कण्ठ का आधार रहस्यात्मकता नहीं है बटनाओं को छिपाना या पात्रों का पूर्ण परिचय न देना नहीं है परिचित परिस्थितियों में परिचित पात्रों की क्रमशः विकसित होती हुई भावधार का अवरोध है । पर 'तित्ती' में बटनायें छिपायी जाती हैं पात्रों से संबंधित कई बातें छल तक धातृत रही जाती हैं । चतुरसेन के 'बैधानी की मण्डलधु' में भावधार का अवरोध टेम्पो के नियंत्रण में काफी सहायक है । लेकिन उन्हीके 'सोमनाथ' में ऐसा नहीं है क्योंकि 'सोमनाथ' में पात्रों के विकास उसका नहीं होता बितना बटनाओं का । भववतीप्रसाद राजपेयी के 'यवार्थ से धाये' में प्रत्येक दो धम्याओं के बीच धारा टूटती है । पर इनसे समय-व्यतिरिक्त का बोध नहीं होता । एक ही समय के विभिन्न संभर्षों को विचार करने के लिए ही इन धम्याओं को स्वीकृत करने की राजपेयीजी विषय ज्ञात तेहो है । प्राम हिन्दी के अधिकार्य लेखक कवामुत्र को छोड़ते नहीं, यद्यः हिन्दी में इस धम्या की संभावनाओं के संवन्न में अधिक प्रयोग नहीं हुआ है ।

१८३ अभिध्वज से टेम्पो का नियंत्रण—विचारों धीर विकासों की तीव्र

बेसता के साथ पाठक का मानसिक सम्बन्धन बनाये रखना सबसे कठिन कार्य है। पाठों के मन में छलीवाले भावों का संयोज या गूँझसायज होना अनिवार्य नहीं है। धीरे-धीरे उनके चित्तवेग में ही स्थिरता होती है। अंतर्व्यक्त भावों का अस्थिर चित्त में पाठक के मन में प्रतिबिम्ब छतारने का प्रयत्न अधिक उपन्यासकारों ने नहीं किया है। अंतर्व्यक्त में केवल केम्स बायस ने इस बात पर विशेष ध्यान दिया। 'प्रुलीसत' में जिस अभिव्यक्त्यावाही (Expressionistic) शैली का प्रयोग किया गया है वह प्रथम दृष्टि में एक अस्पष्ट प्रभाव के धारिण कुछ नहीं मान्य होता। अकिन बायस ने यहाँ मन के विविध भावों को उनके सूर्य परिवर्तनों को धीरे-धीरे वेग को बिना किसी घन्टार के पाठक के मन में उतारने का प्रयत्न किया है। हिन्दी में केवल प्रभाकर माकड़े के 'साँच' के अन्त में यह शैली देखने में आयी। एक उदाहरण देखिए। अन्त में पड़े मनोहर की मनोवशा का चित्रण है।

"ऐंठन—बदन के जोड़-जोड़ में ऐंठन—हाथ पैरों में ठिठुरन—बिस्मरह—
बाँझा पाला—बिचसीकर—बरफाना ठंडा—पत्थर पर कम्बल में छे हड्डी
में भिदनेवाला जाड़ा—इस वक़्त शिमले में बरफ़ गिर रही होमी—काश्मीर
के झीलें पर छिकारे जकड़े होये—सब धीरे मुरदगनी—छपेरी फँस गयी
होमी—सिमेटरी कज़ल बबलिया इस सछें पर कासा बाप—बेरमा—बेत
कमल पर भृग—बाँवमारी—कागज—के बड़े-बड़े गते पर छेद—बीमक—
बीमक हो तुम सोक को नेई है।"

फिर यह विचारबाज बेध की दशा की ओर जाती है।

"अध्वित मानव 'अध्वित दृष्टि' 'अध्वित दृश्य' 'अध्वित
पशुता—वैदिक वैदिक वैदिक तापा। राम राज मंह तुमसी काँपा।
क्षिप्त-मिप्त क्या' "

यहाँ यह बात इष्टव्य है कि पात्र के अन्दर-बाहर के मेघ को मिटान का प्रयत्न किया गया है। यह सभी पाठक के मन को पात्र की मनोवृत्तियों के साथ पर बढ़ते चलने में सह दक होती है। पात्र और पाठक के बीच की दूरी निर्वन्धित रहती है। इसमें जो अस्पष्टता है उसकी मात्रा पात्र के अन्तर्गत या उपवेगित मन के विविध स्तरों को व्यक्त करती है।

इस शैली के साथ दूसरी एक शैली की भी सर्वा की जा सकती है जो पाठक को पात्र से बढ़कर सैराक की मनोवशा के निकट लाती है। विचारमठ के छांट-छोटे वाक्य बाह्य परिस्थितियों को ही व्यक्त नहीं करते सैराक के भाव-वैय को भी व्यञ्जित करते हैं। पाठक का भाव-वेग भी उधसे सम्बन्धित हो जाता है। धीरे-धीरे तीव्र टेम्पो का आभास होता है। 'मैसा पाँचल' की शैली इन दोनों के बीच की है। पात्र सदा पाठक सबके भाव-वैय यहाँ समता में आ जाते हैं। तीनों में भाव-साम्य और भाव-व्य-साम्य

स्थापित होता है। संपूर्ण उपन्यास में भाव-भग कुछ अधिक है।

मन्द गति के कुछ उपन्यास

१८४ अब कुछ उपन्यासों को देखें जिनका टेम्पो मन्द है और इस मन्दता का कारण हैं। एलाचन बोधी के प्रायः सभी उपन्यास—पर्व की रानी और 'पुण्यमयी' को छोड़कर—मन्द गति से चलते हैं। विशेषकर 'मुक्तिपथ' और 'मुबह के मुने' का टेम्पो अधिक मन्द है। कथानक रंगता गुमा सा दिखायी पड़ता है। इसका प्रथम कारण विषय की कमी है। छोटे-से कथानकों को ही प्रतिबिम्बित रूप से दिये गये हैं। किसी विशेष मनस्त्व का धीरे-धीरे विकास करने के कारण संपूर्ण चित्र के अनावृत होने में बहुत समय लगता है। वहाँ लेखक प्रत्यक्ष मनो-विश्लेषण का साहस करे हैं वहाँ कथा एक-सी जाती है भाव-भग धूम-सा हो जाता है। इस तरह के अन्य उपन्यास अनेक हैं। मन्दतम उपन्यासों की श्रेणी में 'सुनीता' और 'मुक्तिपथ' को रख सकते हैं। इनमें जितनी घटनाएँ हैं सब एकमुची हैं, एक ही भाव-रस को कमजोर विकसित करके चरम सीमा तक पहुँचानेवासी हैं। किसी असाधारण घटना या विषय के अप्रतीक्षित समीपन से और स्वभाव के अति-धीम्र परिवर्तन से पाठक का मन विग्रह कर चला है। 'सुनीता' और 'मुक्तिपथ' की चरम सीमाएँ भी ऐसी ही हैं जिनपर सहज विश्वास नहीं किया जा सकता। इनमें अत्यन्त अस्वाभाविक चरम सीमाओं को अथवा कोई वस्तु बोझी-बहुत स्वाभाविक बनाती है तो वह यह गतिवैय ही है जो धार्यन्त नियमित होकर घटनाओं का संचालन करती है धीरे-धीरे परिस्थितियों को अनुकूल रूप देती है पाठक के मन को प्रस्तुत चरम सीमा को निस्वर्क स्वीकृत करने को प्रेरित करती है।

पेंच और अग्रेजी के आधुनिक विस्लेषणात्मक सभ्य उपन्यासों में भी भाव-भग कम होता है। फल में जात होता है एलाचन का 'मदाम बोवारी' ही इस तरह के उपन्यासों का मार्ग-दर्शक है। उसके लगभग चार सौ पृष्ठों में एक नारी की कभी न सुप्त होनेवासी वाचना के क्रमगत विकास का ही वर्णन है। इसी तरह मोपासॉ का 'एक स्त्री का जीवन' शब्द का सफ़ा पिछर सोती के 'सोती की घाटी' 'मदाम क्रिस्टेन' फॉस के 'छाई' सिस्तेस्टर बेन्नाई का 'अपराध' मारिया के 'काले देवता' 'बो बो गया' और के 'जिनीबिये' 'रंग दरवाजा' आदि उपन्यासों का भाव-भग बहुत ही मन्द है। अग्रेजी में भी बर्मीनिया बुस्त डोरोथी रिचर्डसन एम्बुधस हस्तने की एक आरम्भ आदि विस्लेषणकारियों के सभी उपन्यास इस तरह मन्द गति से चलते हैं। कहीं में वास्तव्यवस्की और तुर्गेनैव के अतिरिक्त किसी पुराने लेखक से मन्द गति से चलनेवाले उपन्यास नहीं लिखे हैं। तास्ताय बेस्त्रव और गोर्की मध्यम गति से चलते हैं। आधुनिक समाजवादी यथार्थवाद के उपन्यासों में जिनमें किसी जनता के आन्तरिक और बाह्य विकास का क्रमवद् रूप मिलता है विश्वास के ठीक-बोध के लिए भाव-गति मंद रखी जाती है। सोलोमोव का 'जयी बुती जमीन' फ्रेडिन के 'नगर और बर्य' 'वास्तवका का सुख' और 'अपूर्व सीध' एलकोव का 'सिमस्ट' अति

कठमेव का 'घाने बड़ो समय ! तिविहिन्स्की का एक नायक का जन्म' कोट्येवा का 'इवान इवानोविच' पालिवाय का 'एक सच्चे बाइमी की कहानी' निकोसेयवा का 'कसम' आदि इसके उदाहरण हैं।

फ्रेंच के समाजिन 'जी जिस्ताफे' 'भूतकाल-पर्यवेक्षण' आदि स्रष्टोपम उपन्यासों की भी गति बंद है। बहुत धीरे रंगते हुए विज्ञान उपन्यासों को पढ़ते समय गतिहीनता से पाठक प्रायः उन्नत होता है विशेषकर प्रुस्त के 'भूतकाल-पर्यवेक्षण' से। लेकिन पूरा पढ़ने के बाद पुनः स्मरण करने पर इनकी कई बटनार्यें सुप्त-सी हो जाती हैं। और प्रबल पात्र पर पड़ा उनका प्रभाव-भाव साफ-साफ दिखायी देता है। अतः पढ़ते समय अधिक गति से कथा की गति अधिक तीव्र भाव होती है। इस तरह की शक्ति हिन्दी के किसी उपन्यास में नहीं पायी है।

साध गति के आधार पर और कुछ तीव्र गति के उपन्यास

१८५ भाव-वेग की दृष्टि से तीव्र उपन्यासों में तीव्रता प्रायः निम्नलिखित कारणों से पायी है।

१ एक के बाद एक घटना का बिना किसी अवरोध के प्रतिपादन करते जाने से टेम्पो तीव्र होती है।

२ विभिन्न घटनाओं और पात्रों के चरते हुए भी उन सबको एक ही केन्द्र की ओर सम्मुख करने से तीव्रता का आभास होता है।

३ भाव-वेग उपन्यास के आधारभूत विषय के वैचारिक भार (Emotional weight) और तीव्रता पर भी अवलम्बित रहता है। विषय की वैचारिक समृद्धि (Emotional richness) से भाव-वेग बढ़ता है। विकार-समुत्पन्न से भाव-गति बंद होती है।

४ वाक्यों की भाव-शक्ति (Stamina) भी टेम्पो का नियंत्रण करती है। पर अतिशयन की भाव-शक्ति लेखक के हृदय की ही प्रेरक शक्ति का दूरगम रूप है। एक अच्छा उपन्यास लिखते समय कम भाव-शक्ति का उपयोग नहीं होता। लेखक की समस्त विरासतों की उत्तमक प्रेरणा उपन्यास में प्राण-संचार करती है। अम्पाव के अम्पाव—पूछ के पूछ—वैचारिक तीव्रता को बनाये रखने के लिए प्रत्येक वाक्य की भावशक्ति को तीव्र रखना पड़ता है।

उपर्युक्त सभी मुख्य रोमैय राजन के 'विपादमठ' में और फलीस्वरनाम रेणु के 'मैला पाँचम' तथा 'परती परिकथा' में हैं। तीनों में चलचित्र की भाँति घटनाओं 'अहमद्मिक्या' पायी रहती हैं। घटनाचक्र की इस तीव्र गति के साथ छोटे-छोटे वाक्यों की भाव-अव्यंजना शक्ति भी है। घटनाओं का एक केन्द्र से संबन्ध 'विपादमठ' में अधिक है। सभी घटनार्यें एक कथा को विकसित करने से बढ़कर, वर्तमान के अकाल की दशा को प्रकट करने में अधिक सहायक हैं। घण्टापान के राजनीतिक उपन्यासों में भी छोटे-छोटे वाक्यों से बड़ी तीव्रता लायी गयी है। लेखकों के वैचारिक भार और समृद्धि का परिचय इन सबमें मिलता है।

मनोवशा (Mood)

१८६ आत्मविष्करण और आत्मनिर्व्यजन की प्रवृत्ति कविता में ही नहीं साहित्य की अन्य रचनात्मक विधाओं में भी उपस्थित रहती है। उष्णकोटि के उपन्यासों में लेखक की आत्मा पात्रों में जीवन फूँटती है। पात्रों को पाठक के लिये सहज वस्य बना देती है। पात्रों को समझने का धर्म स्वयं उनका दौड़िक परिधम प्राप्त करना नहीं है उनके भावों को अनुभूत करना है। समझे मुझ-कुत्तों के साथ सतुष्ट विपण्य होना है संक्षेप में उनका जीवन बीना है—कम से कम उस समय जब उनके संपर्क में पाठक रहता है। इसी तरह लेखक को पुरुषता समझने का धर्म है लेखक की ही अनुभूतियों में अपने-आपको भी बुझा देना। इस तरह का आत्मस्थ स्थापित करने के लिए सबसे आवश्यक है मनोवशा को अनुगुणित करना (Tuning of Mood)। उपन्यास का प्रभाव मुख्यतया लेखक और पात्रों के मूड पर आधारित रहता है और पाठक के मूड को रूप देता है। साधारण रचनाओं में लेखक का मूड स्पष्ट प्रकट रहता है पर उत्कृष्ट रचनाओं में वह परोक्ष रूप में पात्रों को रूप देता है और पाठकों पर प्रभाव डालता है। प्रायः आदर्शवादी और आलोचनात्मक धर्मादर्शवादी उपन्यासों में लेखक का मूड प्रत्यक्ष रहता है उत्कृष्ट धर्मादर्शवादी निरपेक्ष भाव से अपने मूड का प्रकट रहता है। आदर्श और धर्मादर्श के परे विचरनेवासी उत्कृष्ट कला के विधायक विस्मय के सर्वभष्ट कलाकार वे ही हैं जो अपने अपने पात्रों के तथा पाठकों के मूडों में समरस सम्बन्ध और आत्मस्थ स्थापित करने में सफल हुए हैं।

लेखक का मूड

अब हम विविध प्रवृत्तियों के अन्तर्गत आनेवाले उपन्यासों में लेखक के मूड का विस्लेषण कर देंगे।

१८७ अस्तुव्यपुर्ण रचनाओं में लेखक का मूड—हिंसी में प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों में दो तरह की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं—एक किसी कल्पित कथा के आश्चर्य और रहस्यपूर्ण सभकों द्वारा पाठक की उत्सुकता बनाये रखने की है—देवारी-बादूरी उपन्यास इस श्रेणी में आते हैं। दूसरी प्रवृत्ति सामाजिक कुरीतियों का भंडाफोड़ करने की है। इनमें प्रथम प्रवृत्ति के उपन्यासकार न अपना ही कोई मूड रखते हैं न पात्रों के मूड पर ध्यान रखते हैं। ये लेखक अनुभूति के परे हैं क्योंकि उनकी रचनाओं में अनुभूति के योग्य कुछ भी नहीं रहता। अगर ये पाठक से कोई संबंध रखते हैं तो पाठक में उत्सुकता उत्पन्न करने का। दूसरे प्रकार के आलोचनात्मक उपन्यासों की दशा भिन्न है।

१८८ आलोचनात्मक धर्मादर्शवादी उपन्यासकारों का मूड—आलोचनात्मक धर्मादर्शवादियों की दृष्टि जीवन के निहृष्ट पक्ष की ओर धार्मिक आह्वान रहती है, और कुराहियों की आलोचना उनका ध्येय रहता है। आलोचना में निरपेक्षता रखना प्रायः

प्रसंग ही रहता है। अतः आत्मोन्नतात्मक उपन्यासों में लेखक का तीव्र आलोच-भाव प्रकट होता ही है। 'परीक्षा गुरु' से लेकर आज तक के आत्मोन्नतात्मक उपन्यासों में—यहाँ स्मरणीय है कि हिन्दी उपन्यास में यही एक प्रवृत्ति आरंभ काल से अब तक प्रमुख प्रवाहित रहती आयी है—लेखक का एक तरह का संयमहीन मनोभाव दिखायी पड़ता है। बुराइयों के प्रति भयंकर क्रूरता वृष्ट पार्श्वों के प्रति अपार विरोध बिना किसी दया-भ्रमता के उनकी क्षाम उखाड़ने का अग्रिम धाप्रह यही आत्मोन्नतात्मक यथार्थवादी का रूप है। क्रिस्टोरीना गोस्वामी के 'अपसा' 'कुशीर वासिणी' 'सौधिया डाह' चन्द्र सेखर पाठक के 'यवसा की आत्महत्या' 'आराधना रहस्य' प्रसादक 'कंकाल' 'तितली' कौशिक के 'मा' 'मिन्नारिणी' अनुराग के 'हृदय की प्यास' 'अमर अमिताभ' 'अरमेज' 'अर्मपुत्र' उग्र प्रपञ्चरस मम्मनाथ मुक्त गुह्यत आदि के सभी उपन्यास निराशा के 'अपसा' 'असका' 'निरपमा' भयवती प्रसाद बावपेयी के 'पिपासा' निमजल' 'पतिता की साधना' 'दो बहनें' 'अमास पत्नी' उपादेयी के 'पिया' 'अनजारी' प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'विकास' 'विचरन' 'अयासीस' आदि उपन्यासों में लेखकों के भयंकर ईर्ष्यावादी रूप देख सकते हैं। पर वहाँ ये लेखक भयंकर निर्ममता दिखाते हैं। दूसरी ओर सव्पाशों पर असीम कृपा करके उनपर समस्त दुखों का आरोप कर उन्हें देव दुष्ट भी बना देते हैं।

इनमें उग्र मम्मनाथ और अनुराग को छोड़कर सब लेखक जोड़े-अनुत्त संयम से ही समाज की बुराइयों का विमर्श करते हैं। उग्र और मम्मनाथ हमेशा मज्ज कुत्सितता को नाक-भौं सिकोड़कर ऐसे घण्टों में प्रकट करते हैं जो कम कुत्सित नहीं हैं कम प्रमत्त नहीं हैं।^१ कहीं-कहीं इनमें बाल्झाक टोन (Balzac tone) या आवाज है।

'अब मैं मंगलाप्रसाद की लड़की को देना तभी से कम वह मुझे मिले इसके लिए पायस हो रहा है। व्याहृ ज्येष्ठ में होगा जिसे सभी ठीन महीने हैं। आनकम तो फलान की हवा चल रही है। अगर वह आज ही मिल जाती तो क्या मजा आता।'^२

बाल्झाक मोपासाँ और बोमा में भी इस तरह के मज्ज विचल मिलते हैं किन्तु उग्र और मम्मनाथ में इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता जबकि उग्र जैब कलाकारों ने जीवन के अन्त्य भागों का भी आत्मिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उग्र और मम्मनाथ का मूढ़ आत्मोन्नता का है कोसने का है गालिमा देने का है जबकि बाल्झाक मोपसाँ और बोमा निरपेक्ष तटस्थ भाव रखते हैं।

१८६ यथार्थवादी उपन्यासकारों का मूढ़ निरपेक्ष भाव—यथार्थवादी कलाकार प्रायः पार्श्वों के प्रति निरपेक्ष भाव स्वीकृत करते हैं। पार्श्वों के सुख-दुखों को निर्मम भाव से निरखनेवाले ये कलाकार बिना किसी अन्तर के सग्न और समत् का रूप

१. इ. उग्र के जुबान की बेटी' 'दिल्ली के बत्ताल' 'कहीं में कोसना' मम्मनाथ का 'दोस्त की गल' अनुराग के 'अमर-अमिताभ' हृदय की प्यास।

२ उग्र का 'मी बी बी' इ. २२।

विज्ञाते हैं। समाजवादी यथार्थवादी धारार्थोन्मुख यथार्थवादी यथार्थ यथार्थवादी (Real Realist) मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी ये सब इस निरपेक्षता का पालन करते हैं। यूरोप के प्रायः सभी धार्मिक यथार्थवादी निरपेक्ष रहते हैं। फ्रेंच के पसादियर, मोपासाँ जैसे प्रकृतिवादी आन्द्रे भीद मन्तरसों प्रुस्त मारिया आदि मनोविश्लेषक इस के समाजवादी-यथार्थवादी सब बोझी-बहुत मात्रा में इस निरपेक्षता का पालन करते हैं। प्रपञ्च के गल्लबर्डी और बेनेट जैसे समाज-विश्लेषक और हक्सल ब्रून्स आदि मनोविश्लेषक भी निरपेक्ष निरीक्षक हैं।

हिन्दी में ज्योत्स्नाब धरक उद्यमशूकर भट्ट नागार्जुन भगवतीप्रसाद बाजपेयी (केवल गनीमत उपग्यासों में) आदि मेखक वहाँ यथार्थवादी रहते हैं वहाँ निमम भी रहते हैं। भस्म का 'पिरली टीबारे' कबिराज रामदास के प्रसंग को छोड़कर सर्वत्र निरीह भाव से यथार्थ का चित्रण करता है। भट्टजी के 'सागर, तहरें और मनुष्य' के अन्तिम खण्ड को छोड़कर बाकी में भी मेखक की निर्ममता दृष्ट्य है। अन्तिम खण्ड में उनका आदर्शभाव रत्ना और मधुबन्ध पर सहानुभूति का कारण बनता है। नागार्जुन और रेणु निरपेक्ष रहकर भी कुछ-कुछ प्रेमचन्द की ही प्रसन्नता के मूढ में हैं।

कुछ विरोध मेखकों का मूढ

१६० प्रेमचन्द—प्रेमचन्द का मूढ साधारणतया निरपेक्ष निश्चिन्तता और उससे उत्पन्न प्रसन्नता का है। जोर व्यथा के हस्यों को सोकारमक बनाने के लिए वे मूढ बदलते तो हैं, मकिन वहाँ भी ऐसा सबता है कि मेखक इन जोर यातनाओं को कुछ नहीं समझता एक फ़िलासफ़र की भाँति इन सबसे ऊपर उठ जाता है। जब प्रेमचन्द के पास भयकर बेचना में पड़ जाते हैं, तब ऐसा नहीं लगता कि प्रेमचन्द रो रहे हैं या रट हो रहे हैं, पर लगता है कि वे जीवन पर हँस रहे हैं। जीवन क इस अनुभवी के लिए—जो जन्म से मरण तक कष्टों का ही अनुभव करता रहा—यह स्वाभाविक ही है। उन का यह मनोभाव देखकर कभी-कभी लगता है कि यह ऐसा आदमी है जो मरते समय भी हँसता रहेगा। किन्तु इस हँसी के बीच में भी एक करुणा है। हृदय की वो लज्ज आलामुखी है वह इन हँसी से अप्रत्यक्ष नहीं होती। वहाँ-वहाँ प्रेमचन्द धार्मिकवादी न होकर जीवन का यथाप चित्रण करते हैं, उनका यह रूप स्पष्ट है। इस निर्ममता में पात्रों पर सहानुभूति की हीनता नहीं है उसलत मनीम सहानुभूति है। पर यह सहानुभूति एक व्यथाग्रस्त व्यक्ति को देखकर बया करनेवाले सुखी और समुत्पन्न मनुष्य की नहीं है बल्कि ऐसे एक व्यक्ति की है जो उस व्यक्ति से अधिक यातनाओं सह चुका है अथ अधिक कठोर हो चुका है। इसलिये प्रेमचन्द की सहानुभूति में अधिक सहृदयता है। 'निर्मला' में मम्माराय क मरण के और 'निर्मला' के अन्त के प्रसंगों में तथा 'गोदान' के अन्त में प्रेमचन्द का यह रूप दृष्ट्य है।

सेकिंग प्रेमचन्द जब आदर्शवादी बन जाते हैं वहाँ उनकी क्या प्रम्य सुचारु बाधियों की सी ही है, वे पात्रों से भी अधिक व्याकुल विवासी पड़ते हैं उनसे अधिक व्यग्रता से उनके कष्टों को दूर करने का रास्ता ढूँढ़ते हैं। यह व्यग्रता उनकी सबसे बड़ी कमजोरी है।

मुश्क-दुश्क राय-विराम प्रीति-विशेष धार्मिक के बन्धन में पड़े मनुष्यों से ऊपर उठना और फिर ऊपर से मनुष्य के उन्नत से उन्नत बौद्धिक विकास और साम्प्रदायिक प्रेत्य को तथा उसकी बन्धन मूर्खता और गोर बन्धनता को देखकर मन्त्र हास करने की शक्ति विद्व-साहित्य में ही बहुत कम भक्तकों में है। हिन्दी उपन्यासकारों में एक प्रमचन्द ही इस स्तर तक कुछ-कुछ उठ पाये हैं। कभी वे वास्तविकता की तुलना और सबसे अधिक वास्तव्य साधारण मानवता से ऊपर उठ पाये हैं। मोर्फी ऊपर उठते तो हैं पर मुस्कराते-से रह जाते हैं। बाद के लच्छक जीवन में अधिक डूबते जा रहे हैं। फेंच में मानव-जीवन का महाभाष्य प्रस्तुत करनेवाले ह्यूया बहुत ऊँचे उठे पर उनके बाद मनोविश्लेषण के क्रमेण म पड़े हुए लेखक इस उन्नत स्तर तक नहीं पहुँच सके। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि फेंच के विश्लेषणकारी लेखकों में जीवन के प्रति पूर्ण निमित्यता का भाव है। प्रचंडी उपन्यास में भी धार्मिकता बड़ी बसा है। पर बहुत पहले ही बँकरे अपने 'खेती का बाजार' (Vanity Fair) में जीवन पर हँस चुके थे और बहुत हँस चुके थे।

साधारण सामाजिक और गार्हस्थ्य-जीवन के हस्तों म प्रमचन्द का जो प्रसन्न भाव है वह, ज्ञात होता है, कभी उपन्यास की बेग है। सरल से सरल किन्तु अत्यन्त मार्मिक और हृदय को प्रभावित करनेवाले अग्रणीत नाटकीय हृदय प्रेमचन्द के प्रत्येक उपन्यास में होते हैं। यही हृदय इस प्रमचन्द के कारण है।

प्रचंडी बेग आस्टिन के उपन्यासों में यह प्रसन्नता बिल चुकी है। अपने विषय को बर की बहारसीबारी के चन्दर ही सीमित रखनेवासी जब आस्टिन इसी प्रसन्न भाव से पाठकों को मुग्ध करती है। प्रमचन्द के समान ही वे साधारण धुन्न बटनाओं को भी ऐसा रूप देती हैं कि उनमें मन्त्र हास की यात्रा ही सा जाती है। 'ग्रहभाव और पूर्वग्रह' (Pride and Prejudice) के इन प्रथम बाधों से ही स्पष्ट होना कि यह लेखिका कितनी सात्व निर्मम और निर्विषय है 'यह सब जगह मानी हुई सचाई है कि हर एक प्रकैसा मुश्क जिसके पास काफी मन ही एक डी की बकरत में होना। पड़ोम में प्रथम-प्रथम आकर रहनेवाले ऐसे एक मुश्क के वास्तविक भावों और विचारों के सम्बन्ध में कोई आगकारी न हो तो भी आग-पास के घरवालों के लिए यह एक निर्विषय सत्य है कि वह मुश्क उनकी सड़कियों में किसीकी संपत्ति है।' जेन आस्टिन के बाद प्रचंडी में किसी उपन्यासकार का ऐसा मूढ़ नहीं है। हिन्दी में प्रमचन्द के बाद यह प्रसन्न भाव और चित्तामकर का सा हास्यपूर्ण वीर्य्य और किसी सेटक में स्थायी रूप में नहीं रहा। यज्ञरत का उपन्यास 'मुगिया की दादी प्रसन्नता में प्रमचन्द के पास पहुँचता है पर उनमें अन्ध धन्यास नहीं। अमृतराय के 'वीर' के प्रारंभिक अध्यायों में निर्मम प्रसन्नता है, पर शीघ्र ही वह गट हो जाती है।

यह ठहरा प्रमचन्द का व्यक्तिगत मूढ। पाठकों के प्रति उनका भाव बड़ी ईमानदारी का है। अपने मित्र का है। ईश्वरानुपाध्याय के मत में "प्रेमचन्दकी का पाठक ऐसा अनुभव करता है वह मानो एक साफ-सुखरी खुशी हुई सड़क पर चल रहा हो। वह निश्चय रूप से जानता है कि वह बिना किसी कष्ट के अपने लक्ष्य स्वान पर परवश्यमेव पहुँच जायगा। वह जानता है कि सेवक अर्थात् उसका पत्र प्रदर्शक बड़ा ही मलामानस है। सहृदय है। वह उसे हाथ पकड़कर लक्ष्य पर पहुँचा ही देगा। कभी उसे धोखा न देगा।^१

बैनेन्द्र ने भी यही मत प्रकट किया है। यह ईमानदारी का भाव प्रेमचन्द की अपार सहृदयता का परिचायक है। बैनेन्द्र के मत में

"अपने पाठक के साथ मानो वे अपने भेद को बाँटते चलते हैं। अपनी में यों कहें कि वे पाठक को काम्प्लेन्स में—विश्वास में—ले लेते हैं।

प्रेमचन्दकी ऐसे विश्वास ऐसी मैत्री और परिचय के साथ सब कुछ बतलाते हुए पाठक को वहाँ तक ले जाते हैं कि उसे बचका-सा कुछ भी नहीं लगता।

पत्र-पत्र पर उसे पता चलता है कि इस कहानी के स्वर्ग में से उसका हाथ पकड़कर ले जाता हुआ उसका पत्र-वर्तक बड़ा सहृदय और विश्वासार्थ पुरुष है।^२

प्रमचन्द की इस ईमानदारी का यह प्रयोजन हुआ है कि वे सच पाठक की मनोरंजा को अनुरोधित (Tupod) करने में समर्थ रहते हैं। उनके प्रत्येक पात्र के सम्पर्क में पाठक ही पाठक एक विशेष तरह के मूढ या मनोरंजा में आ जाता है। सामान्य जीवन में अपने परिचित व्यक्तियों में किसीको देखते ही हम जैसे एक विशेष मनोरंजा में आ जाते हैं। उसी तरह प्रमचन्द के पात्रों से कुछ परिचित होने के पश्चात्, उनमें से किसीके सम्पर्क में आते ही हम एक विशिष्ट मनोरंजा अपना लेते हैं। मनोरंजा के अनुरोधन या अनुस्वरण (Tuping of mood) में प्रमचन्द के प्रतिष्ठित हिन्दी का कोई उपन्यासकार (अथवा को छोड़कर) इतना सफल नहीं हुआ है। प्रेमचन्द इसमें वास्तव्य और वास्तव्यवस्की के स्तर तक पहुँच जाते हैं। इन कलाकारों के उपन्यास पात्रों के मनोविकारों की उठती-गिरती तरंगों के साथ पाठक के विकारों को अनुचालित करते हुए उसे पात्रों की प्रकृति से इतना परिचित करा देते हैं कि एक-एक पात्र के वर्चस्व-भाव से उसमें एक-एक प्रकार की मनोरंजा उत्पन्न हो जाती है। ह्यूगो प्रेवास्त फ्लाबेयर, मारिया मोपासाँ जीव धावि फेंच उपन्यासकारों में और जेम्स आस्टिन एनिमी ब्रांटी चार्ल्स डिकिन्स हार्डी आदि अंग्रेजी उपन्यासकारों में भी यह गुण विद्यमान है। 'जी-बल-जी' 'एक स्त्री का जीवन' 'ओ ओ मया' 'साइमस मार्नर' 'टैस' 'बूड' 'तम बरबाबा' आदि उपन्यास मनोरंजा के अनुरोधन की दृष्टि से अत्युत्कृष्ट रचनाएँ हैं।

हिन्दी के अन्य उपन्यासकारों में केवल अज्ञय ने मनोरंजा के अनुस्वरण की

१. ईश्वरानुपाध्याय इस सितम्बर १९४२, पृष्ठ २२३२।

२. बैनेन्द्र : साहित्य का ज्ञेय और प्रिय पृष्ठ १-२-३।

सामर्थ्य प्रकट की है। विशेषकर उनके 'परी के द्वीप' के उत्तरार्ध में पार्श्वों के विकार पाठकों के विकारों को प्रभावित कर उनको रूपा देते हैं। भगवतीप्रसाद बाजपेयी के 'यथार्थ स धामे' के पात्र भी मनोवशा की अनुस्मरण करने में थोड़ा-बहुत सफल हुए हैं।

१९१ जेनेत्र और बोधी—जेनेत्र और इलाचन्द्र बोधी दोनों मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं पर उनकी मनोवैज्ञानियों में मौलिक भिन्नता है। वस्तुतः दोनों में वैज्ञानिक दृष्टि से विस्तेषण करनेवाले एक निरपेक्ष लेखक का भूख नहीं है जैसे कि वास्तविकता की क्षेत्रों प्रुप्त मारिया बोरोशी रिचमंडन ब्रूक आदि उपन्यासकारों में है। इन यूरोपीय कलाकारों के उपन्यासों में कई ऐसे भाग हैं जो बिल्कुल गीरस कीकते हैं। लेकिन उन गीरस भागों में अपार शक्ति निहित रहती है। इन भागों में लेखक और पात्रों के विशेष प्रकार के भूख के कारण ऐसा लगता है कि जीवन और उसकी समस्याओं परमन्थ मन्मीर हैं। लेखक निष्क्रिय होकर चिन्तन में मग्न होजाता है। जेनेत्र और बोधी आदि हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की बसा इससे बिल्कुल भिन्न है।

जेनेत्र 'परम' और 'रमानपन' के अतिरिक्त सभी उपन्यासों में एक धार्मिकवादी दार्शनिक की मनोवशा में है। लेकिन यह दार्शनिक मनोवशा प्रेमचन्द की दार्शनिक मनोवशा से भिन्न है। प्रेमचन्द जीवन की छूर यातनाओं का अनुभव करके कठोर बन गये हैं और अब जीवन पर हँसते हैं पर जेनेत्र जीवन की व्याकुलताओं को देखकर चिन्तित-से दिखायी पड़ते हैं। उनका मन स्वयं व्याकुल-सा हो जाता है। उनके पात्र भी मानसिक उद्वेग-मुद्वेग की दशा में हैं। यह मानसिक उद्वेग-मुद्वेग अभि व्यंजन की शैली में भी प्रकट हुई है।

'विवाह पर मुझे ठहरना चाहिए। वह क्या चीज है? मुझको मालूम होता है कि जीवन में उस जगह आकर एक मंजिल पूरी और दूसरी आरम्भ होती है। वहाँ से रास्ता कुछ और तरह का होता है। मानो यह सब एक समतल थी। अब वह ऊपर को चलती है। सरपट भागना यहाँ सम्भव नहीं। वहाँ व्यक्तित्व घुसने नहीं छुटता भी साथ में है। छुटता ही साथ नहीं है अन्य घनेक भी साथ हैं। विवाह के बाद व्यक्ति निरा व्यक्ति नहीं है वह नागरिक भी है। वह बड़े सचम का एक संक है' १ २

इन छोटे-छोटे वाक्यों से व्याकुल मनोवशा का स्पष्ट परिचय मिलता है।

बोधी का भूख सर्वत्र एक प्रकार की रोमान्टिक उच्छ्वसता का साध होता है। वे पाठक को व्यक्ति उत्कृष्टित और स्तम्भित करने को अप्य दिखायी परते हैं। 'प्रथ और द्वाया' 'अहाड का पक्षी' 'भुबह के भूमे' आदि उपन्यासों में कई स्तोम जनक दृश्य हैं। बोधीजी का दूसरा भूख उन प्रसंगों में मिलता है जहाँ वे समाज की घामो-चना करते हैं। ऐसे सन्दर्भों में वे उठे और घामय में धा जाते हैं। माया भी इस धामेय का प्रतिनिधन करती है जैसे

“मान सामूहिक और संगठित हिंसा के सम्बन्ध में भी मेरे विचारों में भ्रमवश परिवर्तन आ गया है। पर इस वास्तविकता की धोर से मैं आर्सेनल बना किए हुए हूँ कि जब तक मान के संचार की वास्तविक संकीर्ण रूप से नीतिक और अष्टावारी मनी-कृति में परिवर्तन नहीं होता जब तक विषय समाज का कोई वर्ग अधिकारिक धर्म संघर्ष के निरर्थक प्रयोग के बलवान में स्वयं प्रेमते चले जाने और अपने साथ दूसरों को भी उस क्षीय प्रत्यक्ष म होनेवाले प्रत्यक्ष में बसीटते रहने के बचकर में पड़ा रहेगा।

इस प्रारम्भ और स्वच्छन्दता के कारण जोभीभी चिन्तन के प्रसंगों में भी गमीरता का पावन नहीं कर सकते जो मनोविज्ञान में वास्तविक वास्तविक है।

१६२ रैण्ड—एलीस्वरनाथ रैण्ड के ‘मैला भाषन’ और ‘परती परिकषा’ दोनों में एक विशेष प्रकार के मूक का परिचय मिलता है। उसके छोटे-छोटे वाक्य शीघ्र हृदय-परिवर्तन हवाओं का एक-एक करके ऐसे माना जैसे कोई ‘नैप्टस्केप’ रेलगाड़ी की विज्ञानी पढ़ें यह सब मिलकर पाठक में एक बैकारिक तनाव (Emotional tension) उत्पन्न करता है। संपूर्ण उपन्यास में ऐसी तनावशी है कि लगता है लेखक ने बड़े बराबरसेपन से साँस रोककर यह सब लिखा है।

यही बैकारिक तनावशी अपने-आप के ‘विषादमठ’ में भी है। उसकी शैली रैण्ड की शैली से बहुत कुछ मिल है पर विचारों को प्रभावित करने में वह भी ‘मैला भाषन’ की शैली में आता है।

इतनी विवेचना के बाद प्रत्यक्ष में हम यह कह सकते हैं कि हमारे अधिकारिक उपन्यासकारों ने मूक या मनोवैज्ञानिक प्रति संकेत रखकर उपन्यास नहीं लिखे हैं। वेदन्त रैण्ड के उपन्यासों में विशेष रूप से संकेत रहने का आभास मिलता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों का मूक स्वच्छन्द और महत्त्व है प्रेमचन्द की ही वास्तविक मनोवैज्ञानिक उनके उपन्यासों में प्रकट हुई है। अन्य उपन्यासकारों ने विशेष सुतराँ नहीं लिखा है। उनके उपन्यासों में जिन मनोवैज्ञानिकों का आभास मिलता है वे विषय के विकास के साथ-साथ स्वयं प्राप्ति हुई है।

चौथा अध्याय उपन्यास और समाज

१६३ साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब माना जाता है किन्तु उसी साहित्यिक रचनामें समान रूप में सामाजिक जीवन की विभिन्न घटनाओं तथा उसकी गतिविधियों को प्रकट करती है, यह कहना नुटिरहित नहीं है। विभिन्न देशों और कालों की रचनाओं में और एक ही देश और काल की भिन्न-भिन्न साहित्यिक शाखाओं में सामाजिक प्रवृत्तियों का जो आभास मिलता है उसमें बहुत कुछ अन्तर रहता है। तत्कालीन परिस्थिति साहित्यिक सामाजिक आर्थिक और धार्मिक मान्यताओं से एक ही वैयक्तिक अभिवृत्ति तथा उससे ज्ञान चेतना और अनुभूति की सीमाएँ आदि के अनुसार ही साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब उसकी समस्याओं का विस्तारण और उसकी आशाओं और अनिष्टापाओं का प्रदर्शन मिलते हैं।

उपन्यास दूरव्या साहित्य की सर्वश्रेष्ठ मूर्ति है।^१ किन्तु वह इस समय सबसे अधिक जनतन्त्रीय साहित्यिक विधा है^२—जनतन्त्रीय इस अर्थ में कि वह जनता के हर वर्ग के बाह्य रूपों तथा आन्तरिक भावों को उसकी विकासोन्मुख प्रति को व्यक्ति और वर्ग की प्रत्येक विचारधारा को बिना किसी छद्मरस (रिक्वेन्शन) के प्रतिपादित करने की क्षमता रखता है। किसी वैयक्तिक व्यवसाय सामाजिक समस्या के आकार पर लिखित मधु-उपन्यास (Novellette) से लेकर हजारों पृष्ठों में मानव-जीवन के विरस्तन हस्तों को या सामाजिक क्रान्तियों के इतिहास को प्रस्तुत करनेवाले विशालकाय महाकाव्यों परमान उपन्यासों तक में वैयक्तिक या सामाजिक जीवन का छोटा-बड़ा घंटा प्रतिबिम्बित होता है। सामाजिक आकाशचरित्र और वैयक्तिक अनुभूतियों का वैज्ञानिक रीति में अध्ययन करने की क्षमता जितनी उपन्यास में—आधुनिक उपन्यास में—रहती है साहित्य के अन्य किसी रूप में नहीं रहती। सन्तोष और आनन्द को व्यक्त देनेवाली बेचनाई, राग मात्र में ही निराशा से परिणत होनेवाली अस्थायी आशाएँ, अल्प-मात्र हरिदानी से लेकर रूप बदलनेवाली निराशाएँ, जीवन को अभ्युदय की प्रेरणा देनेवाली शक्तिप्राप्त धनुषियाँ इन सबका वैयक्तिक और सामाजिक अरातल पर विस्तारण करने के लिए सबसे उपयुक्त साहित्यिक माध्यम उपन्यास ही है। इस विस्तारण के क्षेत्र में नये वर्षों

१ "We can say that not only is the novel the most typical creation of bourgeois literature, it is also its greatest creation"—Fox *The Novel and the People* P 80.

२ "The Novel is the most democratic form of literature easily adaptable to minds of high, low and no intelligence"—Phelp *The Advance of the English Novel*, P 5

और नये उपाचारों को बूढ़ निकालने का प्रयत्न उपन्यास-साहित्य के इतिहास में सदा रहा है और इस प्रयत्न के फलस्वरूप उपन्यास में विषय-सीमा और टेक्नीक की दृष्टि से बहुत परिवर्धन आया है। इस तरह हम देखते हैं भाव और शिल्प की दृष्टि से उपन्यास का जीवन से कितना घटूट सम्बन्ध है।

मनुष्य के ज्ञान-सम्बन्ध के क्रमिक विकास के अनुसार जीवन के प्रति उसकी दृष्टि भी बदलती आती है। मानव-जीवन का इतिहास बताता है कि उसके विकास की विविध दशाओं में यावुकता क्रमशः कम होती आती है और बौद्धिकता का विकास होता आया है। उपन्यास साहित्य में यह विकास स्पष्टतया दृश्य है। प्रारम्भिकतम उपन्यासों में जीवन के प्रति जो नैतिक धारणायें स्पष्ट की गयी हैं उनसे मात्र की चार गायें बहल गयी हैं। दूसरी बात यह है कि प्रारम्भिक दशा में उपन्यास सामाजिक जीवन एवं व्यक्ति के बाह्य जीवन के सम्बन्धों पर ही प्रबलित रहता था लेकिन बौद्धिक विकास ने हमें जो नयी दृष्टि दी है उसके कारण अब समाज की विपदाओं को समझने के लिए व्यक्ति की मानसिक शक्तियों का अध्ययन भी किया जाने लगा है। तीसरी बात यह है कि पहले व्यक्ति और समाज को सुधारना उपन्यास का एक मुख्य ध्येय माना जाता था अब नैतिकता के प्रश्न पर अधिक महत्व न देकर जीवन को समझने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह विकास-क्रम सामान्य रूप में हिन्दी एवं पारश्चात्य उपन्यासों में दृश्य है। इन्हीं बातों की विवेचना करने का प्रयत्न इस अध्याय में किया जा रहा है। किन्तु पारश्चात्य उपन्यासों के अध्ययन में उनमें प्रतिपादित सभी समस्याओं तथा यूरोपीय समाज से उनके सम्बन्धों की विस्तृत चर्चा यहाँ नहीं की जाती है क्योंकि यूरोप की समस्याओं का हिन्दी उपन्यास की समस्याओं से कोई सम्बन्ध नहीं है और यूरोपीय उपन्यास के सामाजिक आधार को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक विवेचन प्रथम अध्याय में ही किया जा चुका है।

१

सामाजिक अनतिक्रम और सुधारवादी दृष्टिकोण

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों की सामाजिक समस्याएँ

१८४ उन्नीसवीं सदी के भारत ने सामाजिक क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण धार्मिक बौद्धिक और सांस्कृतिक प्रेरकशक्तियों का अवतरण देखा। राम मोहन राय और ब्रह्म-समाज ने स्वामी ब्रह्मन्मन्द सरस्वती और मार्क्ससमाज ने महामा आनन्दसिन्हा और ब्रह्मविद्या-संघ ने (बीयोसाधिक्रम सोसाइटी) रामद्वय विवेकानन्द और रामतीर्थ ने भारतीय समाज और धर्म की पतनोन्मुख प्रवृत्तियों को बहुचर्चाकर जीवन के विकास में बाधक शक्तियों परम्पराओं धर्मविश्वासों और पाचार-विचारों का जयकर विरोध किया। बाल-विवाह पर्व-श्रमा सती असुरतता

अन्धे इनसान को सँतान की भट्टी में बरबस से जाकर जोंक देता है। यह वह सनक है जिसमें धार्मिक अपने जागवान को ईमान धीर समाज तक को भूल जाता है। यह भ्रम धार्मिकों के पीने की नीबू नहीं है। यह साराण का पानी है, सत्यानाश का प्रथम प्रवाह है।^१ यहाँ बिना कत्तारमक चारवा के केवल सेनगरबाजी से काम लिया गया है। इसी तरह शुष्क धामोचना का रूप रायेय रायब के प्रथम उपन्यास में भी उपलब्ध है।

मगर यह बुर्रूया लड़कियाँ। साम्राज्यवाद को यह बुरा समझती है, मगर रेड क्रस के पद के लिए नाच-ना सकती है। बाहे वह साम्राज्यवादी युद्ध के लिए ही गया क्यों न हो रहा हो। साम्राज्यवाद भी ठीक है मगर अपनी तरीकी नहीं। पार्श्वों पर हल्क भी लड़ाती है और सतीत्य का मयंक पर्या भी इनपर पड़ा रहता है।^२ मनीतम उपन्यासों में सामाजिक धनीतियों और धर्माचारों की धामोचना सबसे अधिक इलाचन जोशी के 'बहाक का पंछी' में मिलती है। इससे पड़े सिधे नायक के जीने का मुख्य हृदय ही सामाजिक नीति-मनीति पर सेनगर झाड़ना मायूम होता है। 'त्रैल धीर धामा' 'मुक्तिपथ' 'सुबह के भूसे' धारि भी इस दोष से मुक्त नहीं हैं।

१९७ (क) प्रत्यक्षीकरण—समाज की धनीतिका को दिखाने के लिए स्वी कृत बुररा मार्ग सनका प्रत्यक्ष रूप से वर्णन करना धीर धर्माचारों के दुस्वों को उप-स्थित करता है। १९४ के पहले के प्रायः सभी उपन्यासों का मुख्य आधार यही प्रकृति रहा है। धर्माचारों और धसन्माधिका के प्रत्यक्षीकरण—माथ के आधार पर ही पूरे के पूरे उपन्यास रचे गये। जोस्वामी प्रसाद निराला जब बचुरसेन मम्मयनाथ इनके उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हैं।

१९८ (घ) उपवेश—नीतिकता का उपवेश नीतिकवावी उपन्यासों की तीसरी प्रकृति है। इस उपवेश के भी दो रूप मिलते हैं। धामोचनात्मक उपन्यासों में जो आधार पात्र हैं—माथ के नायक होते हैं—वे अपने जीवन द्वारा ही उत्कृष्ट धार्मिक प्रस्तुत करत हैं। दूसरी ओर धार्मिक स्वयं सेनक के धर्माचारों के उपवेशपूर्वक वर्णनों में भी मिलते हैं। उपर्युक्त सभी उपन्यासों में इनके उदाहरण मिलत हैं। मनुने के लिए जो-एक ही हैं।^३

'तितथी' में इन्ड्रेव के धर्म हैं 'मैं तो समझता हूँ कि जीवों का सुधार होना चाहिए। कुछ पड़े-सिधे सप्ल धीरस्वस्व लोगों को नागरिका के प्रतीकनों को छोड़ कर देश के गाँवों में बिखर जाना चाहिए। उनके सरस जीवन में 'दिरदास प्रकाश धीर धामन्य का प्रचार करना चाहिए।'^४

'ककाल' में एक जोस्वामी का उपवेश है 'बायो सेवा में मगो समाज-सेवा करने अपना हृदय मुद बनाओ जहाँ स्थिति सतायी जाएँ मनुष्य धपमानित हो, यहाँ

१. राखी, ५ १८०।

२. बरौदा, ५ २१।

३. विमल, ५ ३२ से ३८।

४. गिरती, ५ ५६४।

तुमको अपना दम्भ छोड़कर कर्तव्य करना होगा । ^१

‘विकास’ और ‘बयालीस’ में प्रतापनारायण श्रीवास्तव पृष्ठों तक उपन्यास को पूर्ण विराम देकर सम्ये-सम्ये विवेचनों और उपदेशों में लग जाते हैं ।^२ उपदेश के नमूने देखिए— ‘हमें अपने समाज का निर्माण इसी प्रकार करना चाहिए जिसमें हम उन पतों में न गिरें, जिनमें पश्चिमी राष्ट्र गिर रहे हैं । हमें अपने देश-कास की परिस्थिति के अनुसार सतता ही बदलना चाहिए जिसका आवश्यक हो ।’^३

संसारहरण बढ़ाना अनावश्यक है । उपर्युक्त तीन प्रकृतियों का विस्तृत विवेचन यहां मुख्य उद्देश्य नहीं है ।^४ हमें देखना यही है कि इन उपन्यासों में सामाजिक तत्त्व कहाँ तक हैं और उनका विस्तेरण कौंसा हुआ है । वस्तुतः इन सब आलोचनात्मक और उपदेशपूर्ण उपन्यासों में समाज का अधूर्ण और एकांगी रूप ही प्राप्य है । आलोचना करते हुए जीवन के काले पक्ष को ही देखा गया है जो अपूर्ण जीवन नहीं है । जो आदर्श जीवन प्रस्तुत किये गये हैं वे भी जीवन से निरास्त दूर हैं । दृष्टिकोण के एकांगी होने के कारण जीवन की विभिन्न प्रकृतियों का सन्तुलित विस्तेरण भी असम्भव हो गया है । प्रेमचन्द को छोड़कर और किसीके उपन्यास में हमारे समाज का सर्वांगीण रूप प्रतिबिम्बित नहीं हुआ है ।

ऐसे उपदेशों तथा समाजनीति के प्रचार के कारण अधिकोद्य उपन्यासों के चिन्तन-विधान में सिमिलता आयी है और पात्र बहुत कुछ अस्थायामयिक हो गये हैं । इस तरह के प्रचार के संबंध में प्रेमचन्द ने लिखा था “बहु (प्रोपगन्डा) रसविहीन होने के कारण आनन्द की वस्तु नहीं । लेकिन यदि कोई चतुर कलाकार उसमें सौम्य और रस भर सके तो वह प्रोपगन्डा की चीज न होकर सद्-साहित्य की वस्तु बन जाती है ।”^५

वस्तुतः जैसे एक संवेदी आलोचक ने कहा है—प्रत्येक लेखक की रचना उसके विश्वासों से प्रभावित रहती है अतः यह कहना कठिन हो जाता है कि कहाँ लेखक की तटस्थता समाप्त होती है और कहाँ ‘प्रचार’ का आरम्भ होता है ।^६ इस संबंध में कहा जा सकता है कि औपन्यासिक वास्तव पर आघात किये बिना और पात्रों की नैसर्गिक गति में बाधा उपस्थित किये बिना लेखक अपने आशयों का प्रचार करे तो

१ कथन पृ १४१ ।

२ विकास पृ ३२-३८ बयालीस पृ ११-१२ ।

३ विकास पृ ३८ ।

४ उक्त प्रकृतियों का विवेचन यथार्थतः से संबंधित अध्याय में किया जाना है ।

५ ‘साहित्य का प्रचार’ रीतिरिक्त लेख, ‘आनन्द’ १२ मसतूर १९३९, पृ १ ।

६ “What a man writes will be modified by what he believes and

having got so far it will be almost impossible to say where detachment and objectivity end and ‘propaganda’ in its more subtle and insidious form begins. —Henderson The Novel Today P 16

अन्धे इनसान को दीर्घाग की भट्टी में बरबस न जाकर भोंक देता है। यह वह सनक है जिसमें धार्मिक अपने ज्ञानवान को ईमान और समझान तक को मुक्त बाठा है। यह अने धार्मिकों के पीने की शीख नहीं है। यह सरासरी का पानी है। सत्यानाश का प्रबल प्रवाह है।^१ यहाँ बिना कलामक चारता के केवल सेनकरजाजी से काम लिया गया है। इसी तरह मुक्त धर्मोपना का रूप पवित्र पावन के प्रथम उपन्यास में भी उपलब्ध है।

मगर वह कूर्तुषा लड़कियाँ। साम्राज्यवाद को यह बुरा समझती हैं, मगर देश-प्रेम के पक्ष के लिए नाच-ना सकती हैं। चाहे वह साम्राज्यवादी युद्ध के लिए ही चन्दा क्यों न हो रहा हो। साम्राज्यवाद भी ठीक है। मगर अपनी बरीबी नहीं। पाटियों पर इसके भी लड़ावी हैं और सतीत्व का अयंकर पर्दा भी इनपर पड़ा रहता है।^२ नवीनतम उपन्यासों में सामाजिक धनीतियों और धर्माचारों की धर्मोपना सबसे अधिक इलाज्ज ओशी के 'बहाल का पंखी' में मिलती है। इसने पड़े-सिसे नायक के जीने का मुख्य प्रह्वेय ही सामाजिक नीति-धनीति पर सेनकर झाड़ना मान्य होता है। 'प्रेम और धर्मा' 'मुक्तिधर्म' 'मुक्त के भूते' धारि भी इस शेष से मुक्त नहीं हैं।

१६७ (क) प्रत्यक्षीकरण—समाज की धनीतिका को दिखाने के लिए स्त्री-कृत बुरा मार्ग जनका प्रत्यक्ष रूप में वर्णन करना और धर्माचारों के दुस्तरों को उप-स्थित करना है। १६४ के पहले के प्रायः सभी उपन्यासों का मुख्य आधार यही प्रवृत्ति रहा है। धर्माचारों और धर्मधर्मिकता के प्रत्यक्षीकरण-मान के आधार पर ही पूरे के पूरे उपन्यास रचे गये। पोस्वामी प्रसाद निराला उद्य-चतुरसेन सम्मन्नाय इनके उपन्यास विशेष उत्तेजनीय हैं।

१६८ (घ) उपदेश—नैतिकता का उपदेश नैतिकवादी उपन्यासों की तीसरी प्रवृत्ति है। इस उपदेश के भी दो रूप मिलते हैं। धर्मोपनात्मक उपन्यासों में जो धार्मिक पात्र हैं—प्रायः वे नायक होते हैं—वे अपने जीवन-दृष्टि ही उत्कृष्ट धार्मिक प्रस्तुत करते हैं। दूसरी ओर धार्मिक स्वयं लेखक के प्रवचन पात्रों के उपदेशपूर्ण वचनों में भी मिलते हैं। उपर्युक्त सभी उपन्यासों में इनके उदाहरण मिलते हैं। तमूने के लिए दो-एक ही लें।^३

'विपत्ती' में इन्द्रदेव के सम्म है। "मैं तो समझता हूँ कि गाँवों का सुधार होना चाहिए। कुछ पड़े-सिसे संयम और स्वस्थ लोगों को मानविकता के प्रभावों को छोड़ कर देश के गाँवों में बिखर जाना चाहिए। उनके सरल जीवन में 'निराश प्रकाश और धान्य का प्रचार करना चाहिए।"^४

ककाल में एक पोस्वामी का उपदेश है 'आपो सेवा में सगो समाज-सेवा करके अपना हृदय भुल बनाओ जहाँ सिखाँ उठापी जाएँ मनुष्य धर्ममार्ग हो बहाँ

१ शतपी, १ १ ।

२ पर्वता १ १२ ।

३ निराला ५ ३२ से ३८ ।

४ टिप्पणी, ५ १६४ ।

मुमको अपना दम्भ छोड़कर कर्तव्य करना होगा।”^१

‘विकास’ और ‘बयालीस’ में प्रतापनारायण धीमास्तन पृष्ठों तक उपन्यास को पूर्ण विराम देकर लम्बे-लम्बे विवेचनों और उपदेशों में भग जाते हैं।^२ उपदेश के नमूने देखिए—“हमें अपने समाज का निर्माण इसी प्रकार करना चाहिए जिसमें हम उन गतों में न गिरे, जिनमें पश्चिमी राष्ट्र गिर रहे हैं। हमें अपने देश-काम की परिस्थिति के अनुसार सतता ही बदलना चाहिए जिसका आवश्यक हो।”^३

उदाहरण बढ़ाया घनावश्यक है। उपर्युक्त तीन प्रवृत्तियों का विस्तृत विवेचन यहाँ मुख्य उद्देश्य नहीं है।^४ हमें देखना यही है कि इन उपन्यासों में सामाजिक उत्थन कहाँ तक है और उनका विस्तारण कैसा हुआ है। वस्तुतः इन सब आलोचनात्मक और उपदेशपूर्ण उपन्यासों में समाज का संपूर्ण और एकांगी रूप ही प्राप्य है। आलोचना करते हुए जीवन के काम ग्रंथ को ही देखा गया है जो संपूर्ण जीवन नहीं है। जो आदर्श जीवन प्रस्तुत किये गये हैं वे भी जीवन से निराला दूर हैं। दृष्टिकोण के एकांगी होने के कारण जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियों का समुचित विस्तारण भी प्रमत्त हो गया है। प्रमत्त को छोड़कर और किसीके उपन्यास में हमारे समाज का सर्वांगीण रूप प्रतिबिम्बित नहीं हुआ है।

ऐसे उपदेशों तथा समाजनीति के प्रचार के कारण सबिकोंस उपन्यासों के चिन्तन-विधान में छिपसिता छापी है और पात्र बहुत कुछ दस्ताभासिक हो गये हैं। इस तरह के प्रचार के संबंध में प्रमत्त ने लिखा था “बहु (प्रोपगन्डा) रमविहीन होने के कारण मानस की वस्तु नहीं। लेकिन यदि कोई चतुर कलाकार उनमें सौन्दर्य और रस भर सक तो वह प्रोपगन्डा की ओर न होकर सद्-साहित्य की वस्तु बन जाती है।”^५

वस्तुतः जैसे एक सरकारी आलोचक ने कहा है—प्रत्येक लेखक की रचना उसके विद्वानों से प्रभावित रहती है। अतः यह कहना कठिन हो जाता है कि वहाँ लेखक की सत्यता समाप्त होती है और कहाँ ‘प्रचार’ का आरम्भ होता है।^६ इस संबंध में कहा जा सकता है कि औपन्यासिक चार्ता पर आचार किये बिना और पात्रों की नसबिक सति में बाधा उपस्थित किये बिना लेखक अपने आदर्शों का प्रचार करे तो

१. बंधन पृ. १६२।

२. विकास पृ. ३२-३८ बयालीस पृ. ११-१२।

३. विकास पृ. ३-।

४. कुछ दृष्टिकोणों का विवेचन चर्चार्थक से संक्षिप्त आध्याय में किया जाना है।

५. ‘साहित्य का आचार’ टीनक लेख ‘आचार’ १२ मार्च १९२५ पृ. ६।

६. What a man writes will be modified by what he believes and

having got so far it will be almost impossible to say where detachment and objectivity end and ‘propaganda in its more subtle and insidious form begins.’—Henderson The Novel Today P 16

कोई आपत्ति नहीं है। पर जहाँ ललक के बिचार उपन्यास से दूध-पानी की तरह न मिलकर धमय विद्यायी पड़ते हैं वहाँ उपन्यास कमजोर हो जाता है और हमारे धार्मिकोप उपन्यासों का यही एक दोष है। इनके संवर्धन में प्रीस्टली के ये ही शब्द उत्कृष्ट किये जा सकते हैं जो उन्होंने जर्मनीसर्ग सती के मध्यकालीन धर्मोपन्यासों के संबंध में कहे हैं, 'यद्यपि सती के मध्यकालीन राजनीतिक-सामाजिक उपन्यास निस्संदेह देश के लिये उपयोगी थे पर हमारी दृष्टि में कथा-साहित्य में उठने वाले न थे'। इस समय के उपन्यासों के सबसे दुर्बल धर्म सामाजिक प्रचार से भरे हुए भाग हैं।^१

२

स्त्री-समस्या

सुधार भर के उपन्यास-साहित्य में स्त्री की समस्या एक सर्वकालीन विषय रही है। इसके दो रूप प्राप्य हैं—सामाजिक समस्या के रूप में और मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप में। हिन्दी उपन्यास में ये दोनों रूप मिलते हैं किन्तु मनोविज्ञान के आधार पर स्त्री-जीवन की व्याख्या और अध्ययन प्रेमचन्द के पश्चात्—बैनेन्द्र से ही प्रारंभ हुआ। नारी के सामाजिक बन्धनों पारिवारिक जीवन की निस्पृष्टताओं और परम्परागत कठिनों के कारण उत्पन्न भारोपित वास्तवताओं का निरूपण हमारे उपन्यास साहित्य के एक विशाल भाग का विषय है।

स्त्री के सामाजिक बंधन और पराधीनता

१९६ विज्ञान रूप में स्त्री की सामाजिक पराधीनता और तदुत्पन्न धर्मशास्त्रों की उपन्यास का विषय बनानेवाले प्रथम उपन्यासकार किछोरीनाथ पोस्वामी थे। उन्होंने अपने दर्बनों उपन्यासों में ब्रह्मा-प्रथा ब्रह्म-विवाह विधवा-जीवन आदि की विस्तृत चर्चा की है। 'कुसुम कुमारी' में एक कुलीन लड़की को बेवरासी बनाकर बेवरास बनने को विवश किया जाता है। इनके अध्याय १५ और १६ मुख्य रूप से बेवरासी प्रथा और बेवरासी-जीवन के कारणों की सीमांक्षा और आलोचना का विषय हैं। इस कारण से धर्मन्यायिक दसा बहुत कुछ भुविष्ठ हो गयी है। पोस्वामी के 'अपसा' का सामाजिक आधार अधिक ठोस नहीं है। इसमें समाज के लज्जस्वरीय वर्गों के वितापमय जीवन का जो चित्रण हुआ है वह भी जून जोपी पार्श्वों का गायक होगा रहस्यमय पत्र सतीत्य-जंग के प्रवास और किसी भद्र पुष्प द्वारा रखा धार्मिक रूपमापुर्ण विविध कृत्याओं में छिद्र-स पाठे है। 'हेटामिरान' की सी इसकी अतिरिक्तता उपन्यास की सामाजिक नींव को बहा देती है। 'चरणतपस्विनी' 'प्रथमयी' आदि कुछ उपन्यास उठने अतिरिक्त नहीं हैं। त्रिकोण प्रेम और प्रथम माय की बाधाएँ इनके विषय हैं। 'प्रथमयी' का बेवरास

रखा एंटने के लिए कई विवाह करनेवाला विधवाकृ पति और उसकी सब तरह से भलाई चाहनेवाली पत्नी भारत के उच्छुद्धन पुण्य और विधवा प्रश्न के प्रतीक हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्त्री-समस्या

२००^६ भारी-समाज के प्रति प्रेमचन्द की अपार भ्रष्टा पी और वे बड़ी ब्या और सहानुभूति से ही नारी-जीवन का निरीक्षण करते थे। भावुकता से यथा-साध्य बचकर यथाव्यवशी हृष्टिकोण से समाज का निरीक्षण करनेवाले प्रथम लेखक होने पर भी वहाँ तक नारी से उनका सम्बन्ध है वे भावुकता से पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाये। प्रेमचन्द के प्रारम्भिक उपन्यासों के विषय भारतीय स्त्री का विषम जीवन ही है। 'प्रभा' यथा 'प्रतिज्ञा' वैवाह्य की समस्या का और 'सेवा-सदन' वैवाह्य-जीवन का आश्रयकारी आश्रय है। 'प्रतिज्ञा' में विधवाधर्म की और 'सेवा-सदन' में सेवा-सदन की स्थापना वस्तुतः लेखक के राष्ट्रीय चिन्तक की भावना व्यक्त है। वैवाह्य और वैवाह्य-जीवन की जो तक-वितर्क पूरा मीमांसा की गयी है वह औपन्यासिक चारना में बाधक सिद्ध हुई है। 'सेवा-सदन' के पद्मसिंह के विचारों की सुलगा विधोतीनाले मोस्वामी के 'कुसुम कुमारी' के अध्याय ३२ और ३६ से करने पर ज्ञात होगा कि इन भावों में प्रेमचन्द अधिक आगे नहीं बढ़े हैं। किन्तु इन दोनों को जिन कथाओं में स्थान दिया है वे बटिल करनेवाली मुष्टि नहीं हैं और उन कथाओं का जिन रूप में विकास किया गया है वह स्वच्छन्दतावादी कलाकार की कला से बहुत कुछ भिन्न है। किन्तु 'वरदान' की बटिल कथा अपनी बटिलता के कारण भी सामाजिक उत्थन के विकास में बाधक हुई है।

'निर्मला' कलात्मक दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट नहीं है यहाँ तक कि उसमें कई असांगत्य और तथोप की चन्नाएँ हैं। उसमें अनमल विवाह की जो समस्या प्रस्तुत की गयी है उसका मार्मिक विवेचन मनोवैज्ञानिक पाचार पर किया गया है। शायद यही हिन्दी में वैवाहिक मनोविज्ञान का प्रथम प्रयास है। प्रेमचन्द समाधारण मनोभावों की व्याख्या नहीं करते यौन-सम्बन्धी कृष्टाओं के अभाव तक तक पहुँचने का प्रयास नहीं करते लेकिन उन्होंने बड़ी सरलता से निर्मला और सम्भाराम के सामाजिक सम्बन्ध का पालन करते हुए भी उनके हृदय के एक-एक अंश को न पलनेवाले स्वाभाविक पारस्परिक आकर्षण का जो सजीव रूप लिखाया है वह मनोविज्ञान की दृष्टि से बहुत सफल बना है। स्त्री की मोहित करने के लिये प्रवेश पति के अथ प्रपल निरीह निर्मला और सम्भाराम पर सन्देश और दुर्लभ अथार्थों से होते हुए जो जो जीविषों का जीवन और भरण इन सबका विवेचन अत्यन्त मार्मिक हुआ है। निर्मला और सम्भाराम के मार्मिक दृष्टि में वैवाहिक कृष्टाओं की सकुल बतियाँ नहीं हैं, सामाजिक आचारण में मर्त्य करमचार बतियाँ का मर्त्य है। पति के सख्त रूप आनाम पाकर निर्मला विषय कर गयी है कि मैं मूलकर भी सम्भाराम से न जोलूँगी। पर उसकी दया दक्षिण

लेकिन यह तथ्य उम अथार्थ ज्ञान पत्नी भी। सम्भाराम से हँसने-मोसने

कोई प्राप्ति नहीं है। पर जहाँ सचक के विचार उपन्यास से पूर्य गानी की तरह न मिलकर भलग दिसाभी पड़ते हैं वहाँ उपन्यास कमबोर हो जाता है और हमारे अधिकांश उपन्यासों का यही एक दोष है। इनके संबंध में प्रीस्टली के ये ही सब उद्धृत किजे जा सकते हैं जो उन्होंने समीक्षणीं सती के मध्यकालीन अंग्रेजी उपन्यासों के संबंध में कहे हैं, 'इस सती के मध्यकालीन राजनैतिक-सामाजिक उपन्यास निस्संदेह देस के लिये उपयोगी थे पर हमारी दृष्टि में कथा-साहित्य में उतने सभ्य न थे। इस समय के उपन्यासों के सबसे दुर्बल घंघ सामाजिक प्रचार से बरे हुए था।' १

२

स्त्री-समस्या

संसार भर के उपन्यास-साहित्य में स्त्री की समस्या एक सर्वकालीन विषय रही है। इसका दो रूप प्राप्य है—सामाजिक समस्या के रूप में और मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप में। हिन्दी उपन्यास में ये दोनों रूप मिलते हैं किन्तु मनोविज्ञान के आधार पर स्त्री-जीवन की व्याख्या और अध्ययन प्रेमचन्द के पश्चात्—जैनेन्द्र से ही प्रारंभ हुआ। नारी के सामाजिक बन्धनों पारिवारिक जीवन की क्लिष्टताओं और परम्परागत बद्धियों के कारण उसपर आरोपित मातनाभों का निरूपण हमारे उपन्यास साहित्य के एक विद्याल भाग का विषय है।

स्त्री के सामाजिक बंधन और पराधीनता

१९६ विद्याल रूप में स्त्री की सामाजिक पराधीनता और उदुत्तल अ-

धर्मों को उपन्यास का विषय बनानेवाले प्रथम उपन्यासकार किमोरीनाल पोस्वामी थे। उन्होंने अपने दर्बनों उपन्यासों में बेस्वा प्रथा बाल विवाह निवन्ध-जीवन धारि की विस्तृत चर्चा की है। कुसुम कुमारी में एक कुलीन लड़की को दबवासी बनाकर बेस्वा बनने को विवध किया जाता है। इसके अग्रिम ३२ और ३६ पूर्णरूप से दबवासी प्रथा और बेदवा-जीवन के कारण की मीमांसा और आभोचना बन गये हैं। इस कारण से अध्यात्मिक कथा बहुत कुछ दुर्लभ हो गयी है। पोस्वामी के 'अपसा' का सामाजिक आधार अधिक ठोस नहीं है। इससे समाज के उच्चस्तरीय वर्गों के विलासमय जीवन का जो चित्रण हुआ है वह भी भून खोरी पात्रों का पापक होना रहस्यमय पर सतीत्व भंग के प्रमाण और किसी भद्र पुरुष द्वारा रक्षा धारि कल्पनापूर्व विचित्र घटनाओं में क्षिप-मे जात है। 'हेष्टामेरान' की ही हमकी बलितता उपन्यास की सामाजिक नींव का दृष्टा देसी है। 'सदल उपस्थिती' धारि कुछ उपन्यास उतने बलित नहीं हैं। निकोण प्रेम और प्रेम-मार्ग की बाधाएँ इनके विषय हैं। 'प्रेममयी' का बेवत्त

रम्या ऐंठने के लिए कई बिबाह करनेवाला पियनकड़ पति और उसकी सब तरह से मनाई चाहनेवाली पत्नी भारत के सम्पूर्ण पुरुष और विवश ब्रह्मा के प्रतीक हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्त्री-समस्या

२००^६ नारी समाज के प्रति प्रेमचन्द की अपार श्रद्धा बी और वे बड़ी दया और सहानुभूति से ही नारी-जीवन का निरीक्षण करते थे। भावुकता से यथा साध्य बचकर यथार्थवादी दृष्टिकोण से समाज का निरीक्षण करनेवास्त प्रथम लेखक होने पर भी जहाँ तक नारी से उनका सम्बन्ध है वे भावुकता से पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाये। प्रेमचन्द के प्रारम्भिक उपन्यासों के विषय भारतीय स्त्री का विषम जीवन ही है। 'प्रेम' अथवा 'प्रतिष्ठा' वैषम्य की समस्या का और 'सेवा-सदन' वैषम्य-जीवन का प्रार्थनावादी आख्यान है। 'प्रतिष्ठा' में विषमतायम की और 'सेवा-सदन' में सेवा-सदन की स्थापना वस्तुतः लेखक के धर्मोद मस्तिष्क की आवृत्ति कल्पना है। वैषम्य और बेस्वा-जीवन की जो तक-वितक पूरा भीमांसा की गयी है वह धौपन्यासिक वास्तव में बाधक सिद्ध हुई है। 'सेवा-सदन' के पद्मसिंह ने बिचारों की तुलना किशोरीमान योस्वामी के 'कुसुम कुमारी' के अध्याय १५ और १६ से करते पर जात होगा कि इन भावों में प्रेमचन्द अधिक आगे नहीं बढ़े हैं। किन्तु हम तर्कों को बिन कबाधों में स्थापन दिया है वे बटिल कल्पना की सृष्टि नहीं है और उन कबाधों का जिस रूप में विकास किया गया है वह स्वच्छन्दतावादी कलाकार की कला से बहुत कुछ भिन्न है। किन्तु 'बरबान' की बटिल कथा अपनी बटिलता के कारण भी सामाजिक उत्सव के विकास में बाधक हुई है।

'निर्मला' कलात्मक दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट नहीं है यहाँ तक कि उसमें कई असांवाय और संयोग की बटनाएँ हैं। उसमें धनमेन बिबाह की जो समस्या प्रस्तुत की गयी है उसका मार्मिक विश्लेषण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया गया है। शायद यही हिन्दी में लैंगिक मनोविज्ञान का प्रथम प्रयास है। प्रेमचन्द असाधारण मनोभावों की व्याख्या नहीं करते बौद्ध-सम्बन्धी कुष्ठार्थों के पताचन तब तक पहुँचने का प्रयास नहीं करते भिक्षु लन्होंने बड़ी सरलता से निर्मला और मन्साराम के सामाजिक मर्मका का पालन करते हुए भी उनके हृदय के एक-एक अक्षर कोण में पसनेवाले स्वाभाविक पारस्परिक आकर्षण का जो सजीव रूप बिखाया है वह मनोविज्ञान की दृष्टि से बहुत सफल बना है। स्त्री को मोहित करने के लिये अघेड पति के व्यर्थ प्रयत्न निरीह निर्मला और मन्साराम पर सन्नेह और वुरन्त अध्याधों से होते हुए जो जो जीविमों का जीवन और मरण इन सबका विश्लेषण अत्यन्त मार्मिक हुआ है। निर्मला और मन्साराम के मानसिक दृष्ट में वैयक्तिक कुष्ठार्थों की संकुल वृत्तियाँ नहीं हैं सामाजिक वातावरण में संघर्ष करनेवाले व्यक्तियों का सचर्चा है। पति के सन्नेह का आभास पाकर निर्मला निष्कथ कर लगी है कि मैं भुसकर भी मन्साराम से न दोस्तीगी। पर उसकी दशा दण्ड

लेकिन यह उपन्यास उसे अपनाकर जान पड़ती थी। मन्साराम से हँसने-बोलने

कोई आपत्ति नहीं है। पर जहाँ समाज के विचार उपन्यास से कुछ-बारी की तरह न मिलकर प्रसंग बितायी पड़ते हैं, वहाँ उपन्यास कमजोर हो जाता है। और हमारे अधिकांश उपन्यासों का यही एक दोष है। इनके संभव में प्रीस्टली के वे ही अर्थ उद्घाट किये जा सकते हैं जो उन्होंने अपनी सभी सती के मध्यकासीन धरोत्री उपन्यासों के संवत्स में कहे हैं, 'जिस सती के मध्यकासीन राजनीतिक-सामाजिक उपन्यास निस्संदेह देश के लिये उपयोगी थे पर हमारी दृष्टि में कथा-साहित्य में उठने प्रशंसनीय न थे। इस समय के उपन्यासों के सबसे पूर्वम धंस सामाजिक प्रचार से भरे हुए भाव हैं।'^१

२

स्त्री-समस्या

संसार मर के उपन्यास-साहित्य में स्त्री की समस्या एक सर्वकालीन विषय रही है। इसके दो रूप प्राप्य हैं—सामाजिक समस्या के रूप में और मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप में। हिन्दी उपन्यास में ये दोनों रूप मिलते हैं किन्तु मनोविज्ञान के आधार पर स्त्री-जीवन की व्याख्या और अध्ययन प्रेमचन्द के पश्चात्—जैनेन्द्र से ही प्रारंभ हुआ। नारी के सामाजिक बन्धनों पारिवारिक जीवन की निमित्तताओं और परम्परागत लड़ियों के कारण उसपर आरोपित पाठनाओं का निरूपण हमारे उपन्यास साहित्य के एक विशाल भाग का विषय है।

स्त्री के सामाजिक बंधन और पराधीनता

१९६ विद्यास रूप में स्त्री की सामाजिक पराधीनता और उदुत्पन्न व्य-

क्तियों को उपन्यास का विषय बनामबाने प्रथम उपन्यासकार किछोरीलाल बोस्वानी थे। उन्होंने अपने दर्बनों उपन्यासों में बेस्मा-प्रवा बाल विवाह विधवा-जीवन आदि की विस्तृत चर्चा की है। 'कुसुम कुमारी' में एक कुलीन लड़की को बेवरासी बनाकर बेस्मा बनने को विवश किया जाता है। इसके अग्राय ३३ और ३६ पूर्णरूप से बेवरासी प्रवा और बेस्मा-जीवन के कारणों की भीमांसा और प्रामोचना बन गये हैं। इस कारण से अधीनस्थानिक कथा बहुत कुछ पुष्टि हो गयी है। गोस्वामी के 'चपला का सामाजिक आधार' अधिक ठोस नहीं है। हममें समाज के उच्चस्तरीय वर्गों के विमलसमय जीवन का जो चित्रण हुआ है वह भी गुन चोरी पात्रा का मायब होना रहस्यमय पत्र सतीत्व संघ के प्रबाम और किसी भद्र पुष्प द्वारा रखा आदि कल्पनापूरुष विविध चटनाओं में छिप-ये पाते हैं। 'हृष्टामेराग' की सी इनकी अटिमतता उपन्यास की सामाजिक नींव को बहा देती है। 'चरण उपलब्धि' 'प्रेममयी' आदि कुछ उपन्यास उठने अटिग नहीं हैं। त्रिकोण-प्रम और प्रम-भाग की काचार्य इनके विषय हैं। 'प्रदययी' का बेवरा

से विभूयित हैं। 'बरदान' की विरजन 'प्रतिभा' की सुमित्रा 'प्रेमाश्रम' की विद्यावती 'निर्मला' की निमला 'रमभूमि' की इन्दु—सब व्योम्य पतियों को पाकर भी बड़ी भय आ और तत्परता से उनकी सेवा करती हैं। उनके कष्ट और व्यथाओं का कारण पुर्यों के आस्थाचार है या समाज की रुढ़िग्रस्त परम्पराओं के निर्मम व्यवहार हैं। इन आप-तियों से उनको बचाने की आकुलता में प्रेमचन्द ने जो इस बड़े निकामे हैं उनको हम अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं मान सकते। 'बरदान' की विरजन अपनी व्यथा काव्य रचना में भूल देती है पर उसका अरिच स्वयं काव्यमय और आधुनिक बनकर व्यक्त हो जाता है। 'सेवा-सदन' 'प्रतिभा' आदि के आश्रम-स्थापन भी केवल कल्पित (Utopian) आदर्श हैं। इनके प्रतिरिक्त बड़ी मरण या आत्महत्या से नारी का धर्म कर दिया गया है बड़ी समस्त्राओं की संयंकरता तो अधिक स्पष्ट होती है पर मर्यादा सन्निध ही रहती है।

प्रेमचन्द-काल के लेखकों के उपन्यासों में स्त्री-समस्या

प्रेमचन्द-काल के अन्य लेखकों ने भी स्त्री के विवाह की समस्याओं और साम्प्रदायिक जीवन की विपमताओं को ही अपने उपन्यासों का विषय बनाया। इनमें अनेक लेखक प्रेमचन्द के समान ही स्त्री की अपनी वृत्ता से व्यथित थे और उन्होंने नारी-जीवन के अन्तर्गत पुरुषों को उपन्यास में स्थान दिया जिनमें सुधार की आवश्यकता थी। लेकिन उनमें न प्रेमचन्द के समान आर्थिक सहानुभूति का भाव या न मर्यादावादी निरीक्षक की तटस्थता। सामान्य रूप में कहा जा सकता है कि उन्होंने आलोचना की दृष्टि से सामाजिक भूमिका में स्त्री-जीवन का निरीक्षण किया और कुछ सुधार के उपाय सामने रखे।

२०१ सामाजिक भूमिका में स्त्री-जीवन—प्रेमचन्द के काल में और उसके तुरन्त पश्चात् सामाजिक भूमिका में स्त्री-जीवन की विपमताओं का विश्लेषण करने वाले लेखकों में कोई विशेष दृष्टिकोण आया यह नहीं कहा जा सकता है। बोझ-सा जो अन्तर आया उसके परिणाम यह हुआ कि केवल रोचकता के लिए पड़ित आश्चर्यमय प्रसंग कल्पित बटनाओं को कम किया गया। संयोग की बटनाएँ भी कम हुईं। कल्पना के बने समाज के अदृष्ट प्रश्नों को स्थान दिया गया। लेकिन इन प्रश्नों के विश्लेषण के लिए जिस कथा का विधान किया जाता था उसमें प्रतिरोध की भाषा कम नहीं थी। यह प्रतिरोध कभी-कभी पात्र के आचार-व्यवहार और बटनाओं की असंभाव्यता तक प्रत्यक्ष पहुँच जाता था।

मर्याद की मात्रा और आदर्श के समन्वय के आधार पर इन उपन्यासों को कई श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। दो बाराएँ मुख्य हैं—'आलोचनात्मक मर्यादावादी और गन्तवादी'।

प्रथम श्रेणी में अवश्यताप्रसाद बाबूजी के 'अनाथ पत्नी' 'रामायण' 'पतिता की साधना' बृन्दावनलाल वर्मा के 'मगन' 'कृष्णजीवन' आदि प्रसाद के 'ककास' और 'विपत्ति' मगधजीवरण वर्मा का 'तीन वर्ष' श्रीधर के 'माँ' 'मिसाविष्ठी' उपादेवी

में उसकी विभासिनी कल्पना उत्तेजित भी होती थी और तृप्त भी। उससे बातें करते हुए उसे एक अपार सुख का अनुभव होता था जिसे वह सन्तों में प्रकट न कर सकती थी।" समकालिक मुक्त-मुक्तियों का यह स्वाभाविक आकर्षण सामान्य मनोविज्ञान का एक सत्य है किन्तु कृपासमा की उसके मन में छाया भी न थी। वह स्वप्न में भी मत्स्याराम से कल्पित प्रेम करने की बात न सोच सकती थी। निमला के इस संयम का कारण प्रेमचन्द का आदर्शवाद नहीं है। अपनी परम्परागत संवित सत्कृति में एतनेवासी एक भारतीय नारी और कुछ नहीं हो सकती—दूसरा मनोवैज्ञानिक सत्य। सृष्टि की सबसे बड़ी अच्युत शक्ति—यौन प्रेरणा—पर भारतीय नारी ने भी संयम रचना सीखा है उसीका रूप यहाँ प्रस्तुत है। फिर भी प्रकृति अक्षय है। अतः "प्रत्येक प्राणी को अपने हमजोतियों के साथ ईश्वर-बोधने की जो नैसर्गिक लृप्ति होती है उसीकी पूर्ति का यह अज्ञात साधन था। अब वह अत्युत्त लृप्ति निमला के हृदय में दीपक की भाँति जलने लगी। वह-रहकर उसका मन किसी अज्ञात वेदना से विकल हो जाता।" यहाँ जिन मनोवृत्तियों का प्रमचन्द ने प्रत्यक्ष उल्लेख किया है उनका मूल रूप में विकास 'निमला' के कई अध्यायों तक प्रसारित है। निर्मला के विवाह से मत्स्याराम की मृत्यु तक प्रमचन्द मनोविज्ञान के धावार पर ही कथानक का विकास करते हैं।

इस अनुचित और अनर्थक विवाह का परिणाम है—कई निरीह व्यक्तियों की। अथवा मानसिक पीडा और बो-बो कुटुम्बों का सर्वनाश। इस अवार्थ कथा में अन्तः प्रेमचन्द की दृष्टि सुधारवादी है। निर्मला की कथा में सुधारवाद परोक्ष रूप में है। तो उसकी बहू का कथा में प्रत्यक्ष रूप में—आदर्श-विवाह के रूप में—प्रस्तुत है।

प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों में 'नवम' को छोड़कर सबमें धन्य मुख्य समस्याओं के साथ स्त्री के साम्प्रदायिक-जीवन की विषमताओं का चित्रण है। केवल 'नवम' में स्त्री की एक विविष्ट मनोवृत्ति आश्रय प्रेम की प्रबल विषम के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि यहाँ आसपास का आश्रय प्रेम ही सब आपत्तियों का कारण है। तो भी अन्त में वह इतनी उदात्त मनोवृत्तियों का परिचय देती है कि उसकी आदर्श की कामना कुछ जाती है। 'प्रमाणम' की विद्यावती और 'कर्मभूमि' की मैना दुष्ट-बुराबारी पतियों को पाकर व्यथित हैं। विद्यावती सब सहकर भी पति की सेवा करती है और अन्त में जब सहना असम्भव हो जाता है आत्महत्या कर लेती है। मैना ऐसी भीरु नहीं है वह देख-सेवा में आकर शहीद हो जाती है। विद्यावती का पति उसकी बहू कायरी को उसके धन के लिए चाहता है और उसे पतिव्रत करता है। सभी उपन्यासों में प्रेमचन्द ने उस वृत्तिवादी व्यवस्था की कमी खोज दिखायी है जिसमें स्त्री की स्वतन्त्रता नहीं है जिसमें वह केवल पुरुष के उपभोग की वस्तु मानी जाती है, जिसमें पुरुष जब चाहे जैसा चाहे मजा ले और फिर ठुकरा दे। इस भयंकर पराधीनता का भासिक रूप प्रमचन्द के हर उपन्यास में मिलता है।

प्रमचन्द की सभी नारियाँ सतीसाम्नी धरताएँ हैं जो भारतीय स्त्री के आदर्शों

बाजपेयीजी ने 'पतिता की याचना' में भी प्रमियों को कठों से गुबारकर भिसाने का प्रयत्न किया है। बिबाह मन्दा और बेबर हरिनाम एक-दूसरे से घ्राह्य होते हैं, पारिवारिक उत्सवों में मिलाते हैं। अन्त में बहु बर्जित हो जाती है। अल्पमान से बचने के लिए मन्दा मंगा में कूदती है पर बच जाती है। किन्तु मरने का समाचार छेड़ता है। निराशा में बीसों फोड़कर भिखारी बननेवासे हरि से मन्दा मिलती है और दोनों संतुष्ट होते हैं। यहाँ यद्यपि बाजपेयीजी ने मन्दा की समस्या को विद्याम सामाजिक समस्या का रूप देने में और यथार्थ बनाने में असमर्थ हुए हैं तो भी उसके मानसिक संघर्ष का चित्रण कर करिग को मार्मिक बनाने में उन्हें काफी सफलता प्राप्त हुई है।

दुग्धाबनवास बर्मा ने 'मगन' में बह्वेज की समस्या का हल प्रस्तुत करने अपना आदर्श स्थापित किया है। जो अंग बह्वेज में देने की शर्त पूरा न होने से विवाह रक जाता है। पर वर देवसिंह अपने लोगों का विरस्कार कर बच्चा रामा के यहाँ पहुँचता है और बच्चा पिटा है। इसी समय बच्चा वर से भाग निकलकर वर के घर पहुँच जाती है। 'कुण्डलीचक्र' में दो लड़कियों का जीवन है। जिनमें एक रतन अपनी धान्य प्रकृति और भारतीय परम्परा की बड़ि के कारण अपने मनचाहे व्यक्ति से विवाह नहीं कर पाती। इसने विद्वत् पूर्णिमा अपने मानसिक बर्ष से काम लेती है और अपना वर चुन लेती है। धिबलाल धावित भुजवस से तीन मुकदमों पर घ्राह्य रहते हैं। भुजवस बीजे से उत्तम विवाह का प्रबन्ध कर लेता है। पर पूर्णिमा अपनी बुद्धि एवं चेत से काम लेकर इन तीनों से बच जाती है और समितसेन से विवाह कर पाती है। रतन से समित के ये सब लेसक के आदर्श को स्पष्ट करते हैं—“तुम्हीं यदि कुछ रीति प्रकृति की होती तो आज यह नीबल क्यों जाती? तुम लोगों की आदर्श पूजा ने ही बहुत-से पुत्रों को मरक का बीड़ा बना रखा है।”

२२ उग्रबादी या मन्दाबादी—प्रेमचन्द के कास में (और परचात् भी) सामाजिक रूप में स्त्री समस्या को उपन्यास का मुख्य विषय बनानेवालों की दूसरी धारा अर्धकर आक्षेप और निष्ठुर नम्रता के साथ—कभी-कभी अतिरंजन की सीमा तक पहुँचाते हुए भी—समाज की निरास-वृत्तियों का महाफोड़ करनेवासे लेखकों की है जिन्हें मन्दाबादी प्रथमा उग्रबादी कह सकते हैं। इनमें पाण्डेय बचन समी 'उग्र' बचुरसेन आकरी अपमचरण जैन मन्मथनाथ गुप्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

व्यभिचार इन सबका मुख्य विषय है। अग्य विषय बहुत ही गीण माना में हसर-उसर दिखामी पड़ते हैं। उदाहरण के लिए उग्र के 'शुभ्रमा की बेटी' 'दिप्ती का रत्नास' 'शराबी' 'कमकता रहस्य' बचुरसेन के 'हृदय की व्यास' 'अन्तर भूमिताया' 'आत्मदाह' अपमचरण के 'हर हावनेस' 'बयापुत्र' मन्मथनाथ के 'बह्वी' 'बुरचरित' 'होटम की ताज' आदि को ले सकते हैं। बिना किसी आक्षेप के और चुपके हुए ही सबमें में अनेक व्यभिचार-वृत्तियों का वर्णन इन उपन्यासों में है। कला के सामाजिक

के 'पयबारी' पिया' निराशा के 'भाप्सरा' 'भसका' आदि नाम उल्लेखनीय हैं। इन सबका विषय प्रायः स्त्री जीवन की मयकर पराधीनता और पुरुष की घलमेल उत्पन्नता है। समाज ने स्त्री को विषय बनाने के लिए जो जो नियम बना रखे हैं, रूढ़ियाँ बना रखी हैं उनकी धास उलाहना इन उपन्यासों का ध्येय है। बहुल कुसीनता पुरुष की व्यवहार-वृत्ति आदि जितनी बातें स्त्री को विषय परिस्थिति में बाँधती हैं उनको एक-एक करके लिखा गया।

'अनाथ पत्नी' में किशोरीशाल की पत्नी कन्या रजनी की कुसीनता पर सन्नेह करके बराब सौट जाती है। पर इससे चिंतित बर प्रतिमा से विवाह करके भी शान्ति नहीं पाता। वह ब्यथा से विचलित होकर परीक्षा में समुत्तीर्ण हो जाता है। प्रतिमा चित्ता से बीमार हो जाती है। रजनी को सब तक डाक्टर बन चुकी है। ससंधी चिकित्सा करती है। एक दिन प्रतिमा मकान से नीचे गिरती है और चिकित्सा करने पर भी मर जाती है—पर रजनी को पहचानकर और उसे मुसीबत को छीपकर। आधसबाड़ी सेवक को दोनों प्रणियों को मिलाया जा इसके लिए वे विषय ने। इसी-लिए रजनी को डाक्टर बनाकर, उसकी छवरीनी कराकर, प्रतिमा की चिकित्सा के लिए माना पड़ा प्रतिमा को छत से गिराया पड़ा—बिसकुल निर्मम हत्या।—उसकी चिकित्सा के लिए रजनी को ही बुलवाना पड़ा और बिल रात दिन लगाकर सुम्पवा करने पर भी उसे मरने को विवश करना पड़ा। 'रजापमयी' में भी सेवक को ललिता को फाँसी बढ़ाकर विषय और एलिस के प्रेम को सफल कराना पड़ा है। ललिता का जीवन करुणाजनक है। कोई मुश्किल उस नष्ट कर छोड़ देता है उसके धारमहत्या के लिए बना से झुटने पर विजय बचाता है। फिर वह एलिस की एक हत्या का अपराध अपने पर लेकर दण्ड-वश करती है और इस तरह एलिस और विषय का रास्ता साफ कर देती है। ललिता के मर्णा होने पर उसकी जेठानी उसे ममा बोटकर मार जाती है। सेवक ने इस निराशिता और निर्दयता की कड़ी आलोचना की है।

'एक कुसीन कुलबधू' जिसे अपनी प्रतिष्ठा और संपत्ति की अन्वेषण ने पशु-पक्षियों से भी पया-बीठा बना रखा है। कितनी कर और प्रसन्न हृदय की सिद्ध होती है? यही है न नारी-जीवन का जल रूप'। (पृ. ७३)।

प्रतिमा और ललिता की मृत्यु से निर्मला की मृत्यु की तुलना करें तो स्पष्ट होया कि राजपमयी का सामाजिक आधार कितना स्थिर है। प्रतिमा और ललिता की हत्या करके सत्तक ने सतको उदात्त बनाया है। लेकिन उपन्यासों में उठायी गयी सामाजिक समस्याओं से समाज कोई संबंध नहीं है। केवल सेवक की हत्या-भूति तथा भावुकता की भूति के लिए ये हत्याएँ हुई हैं। इनके बिना निरमला की मृत्यु से सेवक के हृदय की पुत्रीभूत व्यापक प्रकट हुई है। एक तरह से यह एक बलि है जो सामाजिक संयम के लिए बढ़ायी जाती है। दूसरी बात यह है कि निर्मला का अन्त मानसिक ब्यथा की क्रमिक वृद्धि से होता है। और उसका मानसिक नष्ट हीन रूप में व्यक्त हुआ है। पर ललिता और प्रतिमा की मृत्यु आकस्मिक है। सेवक की रचो हुई है अतः अस्थानाधिक है।

बाजपेयीजी ने 'पतिता की साधना' में भी प्रमियों को कर्पों से गुबारकर मिशाने का प्रयत्न किया है। विधवा मन्दा और बेबर हरिनाम एक-दूसरे से भाङ्गुट होते हैं पारिवारिक उत्सवों में मिलते हैं। अन्त में वह परिणीत हो जाती है। धर्ममान से बचने के लिए मन्दा ममा में डूबती है पर वध जाती है किन्तु मरने का समाचार फसता है। निराशा में धीरे-धीरे मिसारी बननेवाले हरि से मन्दा मिलती है और दोनों सन्तुष्ट होते हैं। यहाँ यद्यपि बाजपेयीजी ने मन्दा की समस्या को विद्यास सामाजिक समस्या का रूप देने में और मयार्थ बनाने में असमर्थ हुए हैं तो भी उसके मानसिक संघर्ष का चित्रण कर चरित्र को मार्मिक बनाने में उन्हें काफी सफलता प्राप्त हुई है।

बृन्दावनदास वर्मा ने 'लगन' में बहेज की समस्या का हल प्रस्तुत करके अपना आदर्श स्थापित किया है। जो उस बहेज में देने की चर्च पूर्ण न होने से विवाह रक जाता है। पर वर देवसिंह अपने सोगो का विरस्कार कर बहू रामा के यहाँ पहुँचता है और चुन पिटा है। इसी समय बहू वर से भाग निकलकर वर के घर पहुँच जाती है। 'कुम्हनीचक्र' में दो लड़कियों का जीवन है जिनमें एक रत्न अपनी धान्य प्रकृति और भारतीय परम्परा की दृष्टि के कारण अपने भनचाहे व्यक्ति से विवाह नहीं कर पाती। इसके विरुद्ध पुष्पिमा अपने मानसिक धर्म से काम लेती है और अपना वर चुन लेती है। शिवदास यादव सुबबस से तीन युवक उससे भाङ्गुट रहते हैं। सुबबस बोले से उससे विवाह का प्रबन्ध कर लेता है। पर पुष्पिमा अपनी बुद्धि एवं धर्म से काम लेकर इन तीनों से वध जाती है और ललितसेन से विवाह कर पाती है। रत्न से ललित के ये शब्द लेखक के आदर्श को स्पष्ट करते हैं— 'तुम्हीं यदि कुछ रीति प्रकृति की होती तो आज यह नीबल क्यों घाटी? तुम लोगों की आदर्श पूजा ने ही बहुत-से पुरुषों को तरक का कीड़ा बना रखा है।'

२२ उधवादी या मन्मथवादी—प्रेमचन्द के काल में (और परचास् भी) सामाजिक रूप में स्त्री समस्या को उपन्यास का मुख्य विषय बनानेवालों की दूसरी श्रेणी सर्वकर आदेश और निष्ठुर ममता के साथ—कभी-कभी प्रतिरजन की सीमा तक पहुँचाते हुए भी—समाज की विधास-वृत्तियों का बड़ाकोड़ करनेवाले लेखकों की है जिन्हें मन्मथवादी अथवा उधवादी कह सकते हैं। इनमें पाण्डेय बेचन शर्मा 'उध' चतुरसेन आस्थी अपमचरण जैन मम्मथनाथ गुप्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

व्यभिचार इन सबका मुख्य विषय है। अन्य विषय बहुत ही पीछे माना में इपर-उपर दिखायी पड़ते हैं। उदाहरण के लिए उध के 'बुध्या की बेटी' 'दिङ्गी का बसाव' 'सराबी' 'कलकत्ता रहस्य' चतुरसेन के 'हृदय की व्यास' 'अमर अभिसापा' 'धामनाह' अपमचरण के 'हर हावनेस' 'बेयापुत्र' मम्मथनाथ के 'चूड़ी' 'दुर्लभ' 'होटस की ताज' आदि को से सकते हैं। बिना किसी आचरण के और चुनते हुए सीधे चर्चों में प्रत्येक व्यभिचार-वृत्तियों का वर्णन इन उपन्यासों में है। कला के सामाजिक

साहित्य और समाज के प्रति इनकी दृष्टि ही नहीं पड़ी है।

'बुध्मा की बेटी' में औरों को बचा होने के मार्ग बतानेवाले होंगी 'कौरी' और सामिक संस्थाओं से सम्बन्धित लोगों का और 'बिष्नी का दलाल' तथा 'कसरता रहस्य' में कथाकथित मात्र समाज में पड़ी हुई दुर्दृष्टियों का विमल है। 'चराबी' में एक किशोरी हीरा यौवन में प्रविष्ट होने के पहले ही एक बुधाह्वे घर से बाँधी बस्ती है जो उसे अपनी कामातुरता का शिकार बनाता है। जब वह हीरा से प्रेम पाना प्रसं सभ समझता है। बाजार की हवा खाने लगता है। पुरुष की कामातुरता का अविरंजित वर्णन ही 'चराबी' का विषय है। उद्य 'बी बी बी' में धाकर अधिक गरम और संयत हुए हैं।

मम्मननाथ के 'दुस्वरिज' में याँब के मुखिया का बेटा किसान गिरधारी की बेटी का चरित्र भ्रम करता है और वह काबी में छाड़ दी जाती है—बिरादरी के घर से। लेकिन अन्त में जब गिरधारी अपनी कुसरी बेनी और नयी पत्नी को मुखिया के पुत्र के मनमाने के लिए समर्पित कर देता है तो बिरादरी कुछ नहीं कहती। समाज में पाप जब सुप्त जाता है तभी वह पाप है। गिरधारी की पत्नी के शब्दों में लेखक ने इस दशा को स्पष्ट किया है— 'यहाँ पाप को कौन पूछता है? जब तो ऐसा रही हैं पाप से कुछ नहीं धाँसा-धाँसा बस इतनी ताकत हो कि पाप छिपा ले या सुप्त ही जाय तो सबों की कुछ हिम्मत न पड़े तो कोई बात नहीं।' 'अनुराधे के 'अमर अमिताभ' में विधवा भगवती को सामाजिक कड़ियों पुरुषों की वासना और अपनी दुर्बलता के कारण पतित होकर बर्बरक कष्ट सहने पड़ते हैं।

इन सब लेखकों को प्रायः प्रकृतिवादी कहा जाता है।^१ किन्तु इनका दृष्टिकोण ध्येय ऐसी सब प्रकृतिवाद से बहुत दूर है।^२ समाज की आलोचना ही इनका भी ध्येय है। इस समय के और इसके पहले के अन्य उपन्यासों और इन उपन्यासियों के उपन्यासों में एक बड़ा अन्तर जो है वह स्त्री के प्रति दृष्टिकोण में है। जब तक के उपन्यासों में स्त्री स्वयं बिनकटी बी तो वह एक विरोध वर्ग की होती थी। साधारण या उच्च श्रेणी की स्त्रियों का जो पतन होता था वह पुरुष के अत्याचार के कारण होता था। लेकिन उपन्यासियों के उपन्यासों में अविचार के लिए पुरुष की ज़बरपस्ती नहीं करनी पड़ती। अपने पूर्ववर्तियों न स्त्री के प्रति जो अपार उदारता दिखायी उसकी आवश्यकता उपन्यासियों ने नहीं समझी। स्त्री अपनी दुर्बलता या विषमता के कारण स्वयं भी पतन की ओर जाती है। 'अमर अमिताभ' में विधवा भगवती परिस्थितियों और अपने

१ दुस्वरिज पृ २४१।

२. देखें डॉ. श्रीकल्याणः आधुनिक हिन्दी सा. का विकास पृ ११२।

विश्वनाथसिंह बालान : साहित्यालोचन पृ० १३६।

मन्मथलाल वाक्येयी तथा साहित्य मन्मथन पृ २।

विश्वनाथसिंह हिन्दी उपन्यास और कथाकार पृ० १८६-१८७।

३. देखें प्राक्तनवाद से संबंधित परिचय।

प्रथम के कारण ही हरमोबिन्द की बसवतिनी होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चतुरसेन ने यहाँ एक अत्यन्त मार्मिक वास्तव को प्रकट किया है। वास्तविकता में ही बिभवा होकर जीवन के समस्त सुखों से विरक्त रहनेवाली युवतियों में नैसर्गिक वासना का बाधित होना सामाजिक है। बिभवा भगवती जिसे धर्म्य युवतियों के समान धर्म्य जाने और अपने को अलंकृत करने का अधिकार नहीं मिलता हरमोबिन्द से मिठाईयाँ और प्रसादन-सामग्री पाकर छिपे-छिपे उनका उपभोग करती है। धीरे धीरे उसके बच में आकर पतित होती है। यहाँ तक चतुरसेन ने बड़े प्रीतिरस से काम लिया है। इसके बाद उनके हुए घटनाक्रम का निर्माण यही दिखाने के लिए हुआ है कि पतित बिभवाओं को कहीं-कहीं ठोकर खाती पड़ती है। उग्रवी के 'बुधुषा की बेटी' में भी स्त्री अपनी काम-वासना सबका पुत्र प्राप्ति की इच्छा से ही पतन की ओर जाती है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्त्री-समस्या सामाजिक पक्ष

प्रेमचन्द के परवर्ती उपन्यासकारों ने स्त्री और स्त्री-समस्या के अध्ययन में अधिक सूक्ष्म दृष्टि से काम लिया है। समस्याओं के विश्लेषण और चरित्र चित्रण की जो पद्धति प्रेमचन्द ने उपस्थित की थी वह तो भी ही। प्रेमचन्द की एक बड़ी बेत यह थी कि उन्होंने पात्रों को अमूर्त (Abstract) न रखकर मूर्त बना दिया था। अमूर्तवाद न रखकर जीवन की विस्तृत भूमि में चलने फिरने की स्वतन्त्रता दी थी।

परचाट के लेखकों ने प्रेमचन्द के इन धारकों को अपनाया। साप-साव क्रमशः विश्लेषण की प्रवृत्ति भी आने लगी। अतः अन्य समस्याओं के समान स्त्री-समस्या का भी सामाजिक तत्त्वों और मनोविज्ञान के आधार पर विश्लेषण किया जाने लगा। इस कारण परवर्ती उपन्यासों में स्त्री-चरित्र और स्त्री-जीवन की समस्याओं का अधिक जटिल और बंधनपूर्ण रूप मिलता है। इनमें भी सामान्यतया स्त्री-जीवन की विवशता और पराधीनता का ही चित्रण है। जैसाकि प्रेमचन्द-काल के और उसके पहले के उपन्यासों में। अन्तर केवल दृष्टिकोण और निष्कर्ष के हिसाब में है। समस्याओं के प्रति समीपन और दृष्टिकोण के अनुसार इन उपन्यासों को कई श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं।

२. प्रथम श्रेणी में उन उपन्यासों को से सकते हैं जिनमें केवल समस्या-निष्कर्ष के उद्देश से पात्रों को रूप दिया गया है। 'त्यागपत्र' 'पिया' जीवन की मुस्कान 'आखिरी रात' आदि ऐसे ही उपन्यास हैं। इन सबमें सामाजिक विवशता या पुरुषों की उच्छृङ्खलता के कारण अनीय अन्ध को प्राप्त होनेवाली युवतियों की कल्याण कबालें प्रस्तुत हैं। 'त्यागपत्र' की मूलान पति द्वारा सन्धेह के कारण बाहर निकाली जाती है और गली की ठोकरें खाकर मरती है। 'पिया' की पपीहरा अमीर-पुरुष की अप्राप्ति से निराश होकर देह-सेवा में लग जाती है। अपनी बीमारी में भी आधी पाणी में एक घमा में आकर सौतेले समय रास्ते में ही मर जाती है। इस कथा के साव-साव और दो स्त्रियों की रामकहाणी भी है। पपीहरा का काला सुकान्त अपनी पत्नी की

विषय बड़ी सड़न को अपने प्रेम का छिकार बनाता है। गमिणी होने पर बेचारी को आत्महत्या के प्रतिष्ठित श्रीर कोई उपाय नहीं रहता। पपीहटा की सीरी यमुना का पति स्त्री-स्वातंत्र्य का सेवक देता फिरता है श्रीर अपनी पत्नी को कड़े बन्धन में रखता है सकल स्वयं दूसरी स्त्रियों के पीछे दौड़ता रहता है। उपादेवी ने इस तरह स्त्री-जीवन की विषयता के विविध रूपों को एक ही उपन्यास में समाहित किया है। 'माखरी दाँव' की चमेसी भी विषय है श्रीर उसे साध के आत्माचारों से अपने के लिए घर से भान बना पड़ता है। फिर वह जिन-जिन पुरुषों के संपर्क में जाती है उनकी बन्धनता और दुर्बलताओं के कारण बार-बार पतित होकर और डोकरें लाकर अन्त में आत्महत्या करती है। इन सब उपन्यासों में लेखक का दृष्टिकोण आलोचनात्मक है। पात्र सब एकांगी हैं और उन्हीं पहलुओं से युक्त हैं जो लेखक को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक हों।

२०४ दूसरे प्रकार के कुछ उपन्यासों में स्त्री की पराधीनता के अत्यन्त रूप दिखाने के साथ-साथ उनकी मुक्ति के मार्ग भी बताया गए हैं। 'चतुरसेन के अपराधों' की नायिका वैवाहिक जीवन की असंभवियों और पति समुर आदि के आत्माचारों के विरुद्ध सत्याग्रह कर बैठती है। साम्प्रत्य-जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिए बाँधी बरत का यह उपयोग तत्कालीन राजनीति का प्रभाव है। उपादेवी ने 'बचारी' में ठीक इसके विरुद्ध नारी को आर्थिक स्वतंत्रता और सार्वजनिक हस्त प्राप्त करके सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का मठ दिया है। बासुरीदेवी की व्यायामशाला फलपत्र द्वारा बल और व्यवसायों से धन प्राप्त करने की शिक्षा देती है। प्रतापनाथमुख श्रीवास्तव ने भी 'विश्वजैन' में यही नारा समया है। "इसका प्रतिकार तथा नाश के फलों का नाश उसी समय होगा जब स्त्री-मानव पुरुष-मानव के विरुद्ध अस्त्र प्रहृत करेगी।" लेखक ने इसका जो उदाहरण दिया है वह और भी विविध है। उमिता आर्चर पात्र है इसलिए उसे हर तरह की आपत्ति से बचाना लेखक अपना कर्तव्य समझता है। निश्चय उमिता को कमरे में बंद करके पिस्तीस लिए उसे वध में करने जाता है उसे अवपात में मरने के लिए पिस्तीस लाट पर छोड़ता है और उमिता बड़ी धरमता से उसे लेकर निश्चय को मार डालती है।

इन सुधारवादी लेखकों में किसीने अनुमिश्र दृष्टि से सामाजिक दशाओं को नहीं देखा है। स्त्री-स्वातंत्र्य का जो उपाय बताया गया है, वे सार्थक नहीं हैं। संघर्ष और प्रतिकार से स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध व्यवस्थित नहीं किया जा सकता है। स्त्री का आत्मदमन और आदि पात्रा अशुभ है पर उसका पुरुष से प्रतिद्वन्द्वी का सम्बन्ध कहीं तक उचित है यह मोक्ष की बात है। सामाजिक शृंखलाएँ तो विविधता की या सखती हैं पर उन मानसिक शृंखलाओं का क्या होगा जो अनावि काम से स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण अधिकार और उचित धनताओं का कारण बनी रहती हों? पुद्गलत् सबन बनकर और आर्थिक स्वतंत्रता पाकर स्त्री स्वतंत्र हो सकेगी यह बात

सन्देह से रहित नहीं है। स्त्री का साठी लेकर पुरुष का निमाण ब्रुस्त करना धीर अपने अस्तित्व को सुरक्षित करना उपन्यास में सरल कार्य है पर सामाजिक जीवन की विषमता में यह कहाँ तक प्रायोगिक है यह बात चिन्तनीय है। इस समस्या को सुसम्झने के लिए अधिक प्रगाथ तल पर मनोवृत्तियों का अध्ययन करना होगा। समान के व्यवहारों को रूप बेनेवासी मूल प्रवृत्तियों को बूझ निकालना होगा। पर इन उपन्यासकारों का विश्लेषण प्रायः स्त्रियों से यह कहाँ तक समाप्त हो जाता है कि हम लोभ धारणियों से कमबोर पड़ती हैं। इसलिए वे मार के बल से मनबाह्य करवा लेते हैं।^१ किसी भी लेखक ने विस्तृत रूप में स्त्री की पराधीनता का सामाजिक कारण बूझ निकालकर उसके छिर पर सबल धावा नहीं किया है।

२. ५ तीसरे प्रकार के उपन्यास वे हैं, जो कुछ सीमता सहित प्रेमचन्द के उपन्यासों के समान समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं और उनको सुलझाने की चेष्टा करते हैं। उदाहरण के रूप में नागार्जुन का 'नई पीढ़ी' यज्ञवल्क्य का 'श्रुतिमा की छाती' और सखीनाथमल्ल साहू का 'बया का बोंसला धीर साय' आदि को ले सकते हैं। प्रथम दोनो सामाजिक पारिवारिक बाधाकरण में खड़ी होनेवाली विवाह की समस्या को सुलझाने का मार्ग बूझते हैं। श्रुतिमा के विवाह की बाधा का कारण सामाजिक नहीं है। उसका बाप बन्धू धावाला है घर का काम-काज तक नहीं देखता। पर उसकी माँ रामननिया और दादा बूढ़ा बातापीन निरन्तर परिश्रम से कुछ कपड़ा इकट्ठाकर विवाह सम्पन्न करते हैं। बन्धू घर से बह कपड़ा हूकूप लेने का प्रयत्न करने पर भी ननिया की सख्ती के कारण विफल होता है। प्रेमचन्द के समान ही सन्तुलित रूप में 'साइट' और 'खेद' लेकर यज्ञवल्क्य ने बातावरण को व्यक्त किया है। आकर्षण यहाँ कथा का नहीं है उस बरेख परिस्थिति का है जो समस्या उत्पन्न करती है। टूटकी किसी मायिक संघातिक घटना से नहीं है, सम्पूर्ण उपन्यास की शोकारमक छाया में है (अन्त में बन्धू की सात से उसके पिता का मरना छटना प्रभावशाली नहीं है बिना कि उपन्यास में भावोपान्त छापी हुई शोक छाया।) जब बूढ़ा बातापीन और बहू रामननिया विकट परिस्थिति में भी जब न खोकर केवल श्रुतिमा की छाती के विचार से एक-एक पैसा जुटाने के प्रयत्न में अपने जीवन अर्पित करते बिसामी पड़ते हैं, तब जीवन की जटिलता और सार्थकता समझ में आती है। 'नई पीढ़ी' में नागार्जुन इस तरह मग्नीरता का पावन नहीं कर सके हैं फिर भी उनकी दृष्टि बहुत सन्तुलित रही है। जिसेसरी का एक बूढ़ से विवाह कराकर नारकीय जीवन में बकेसने का जो पक्ष्यन इसरी पीढ़ी ने किया है और सम्राज ने जिसका अनुमोदन किया है उसे चट्टी पीढ़ी के नवयुवकों ने ताब दिया है। परिवार और ग्राम के युवक अपनी समस्त शक्तियों के उपयोग से आयोजित विवाह का विरोधकर योग्य युवक से उसका विवाह करा लेते हैं। कहीं-कहीं नागार्जुन ने प्रत्यक्ष रूप में नयी आलोचना की है। जब विवाह रोकने के लिए जिसेसरी से न कराने आदि का प्रयत्न किया जाता है तब

समस्या एक खेलतमाछे से ऊपर उठ नहीं पाती। 'बया का बोंसना और सांप' में तीव्रता अधिक है। अस्वाभाविकता भी अधिक है। इसमें एक माँ और बेटी की कथा है, जिनकी असहाय दशा में समस्त समाज उनके सतीत्व रंग का प्रयत्न करता रहता है, और ऐसे उपन्यासों की साधारण परिपाटी के अनुसार चमकी रखा करनेवाले आदर्श पुरष भी है। इन सब उपन्यासों में स्त्री-जीवन की परवक्षता की समस्या को बिना किसी अटिसता के बिस्लेषण कर सुसम्झाया गया है।

२०६ इनके अतिरिक्त भीषी यखी के दो उपन्यास हैं उनमें स्त्री-जीवन की अधिक बटिम समस्याओं का बिस्लेषण मिलता है। 'सितारों का खेल' 'बड़ी-बड़ी दाँवें' 'निष्क्रान्त' 'उठ के बन्दन' 'नये मोड़' 'संयासी' 'निर्वासित' आदि ऐसे कुछ उपन्यास हैं जिनमें जीवन के कुछ सामाजिक पहलुओं को छिमा गया है। मान जीवन न एक सीधी-सादी कहानी है न सरलता से सुसम्झयी जा सकनेवाली समस्या। सामाजिक उत्तरदायित्वों और वैयक्तिक कर्तव्यों की उत्तमझों के बीच में विरह जीवन की विपरीतार्थ सुगमता से हम नहीं की जा सकती। समाज और पुरुष की बाहिरदारी और जालबाजी से विरह स्थियों की कथा इन उपन्यासों में है। 'सितारों के खेल' की सता में विवाह के भारतीय आदर्शों का समर्थन करनेवाले जगत से विवाह किया पर उसके आदर्शों के खोसलेपन के कुछ जाने पर व्यापारस्त होकर बंधी की और प्राकृष्ट हुई। फिर उसका जीवन मानसिक व्यापारों में होकर व्यतीत होता है। 'निष्क्रान्त' और 'नये मोड़' में सम्मानपूर्वक स्वतन्त्र जीवन बिठान का आग्रह करनेवाली स्थियों की कठिनाइयाँ बिखायी गयी हैं। 'संयासी' और 'निर्वासित' मनोवैज्ञानिक होने पर भी उससे बढ़कर सामाजिक है और स्त्री की निस्सहाय दशा का परिचय देते हैं। 'उठ के बन्दन' में विवाह की कठिनाइयों के घावे दर्जन से अधिक उदाहरण हैं।

स्त्री-समस्या का बिस्लेषण करनेवाले सबसे ग्रीक उपन्यास वे हैं, जिनमें सेक्त को समस्या का रूप दिया गया है। वे प्रायः मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं और मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर उनका अध्ययन आवश्यक है। पर इस अध्याय में केवल उनके सामाजिक रूप की चर्चा की जाती है।

प्रेमचन्द के बाद के उपन्यासों में स्त्री-समस्या यौन पक्ष

२०७ अब एक जिन उपन्यासों की चर्चा की गयी उनमें स्त्री-समस्या को केवल उसके सामाजिक रूप में परखा गया है उनका कोई मनोवैज्ञानिक आधार नहीं है। सेक्स की समस्या एक चिरस्थान समस्या है और अत्येक युग में किसी न किसी रूप में साक्षित्य का विषय रही है। मानव-जीवन के मन्वात्मन-मूक को नियंत्रित करने-वाली महाशक्ति यौन-प्राकर्षण है और वह व्यक्ति एवं समाज के जीवन के बचि का निर्णय एक बड़ी सीमा तक करता है। आधुनिक उपन्यासकारों ने इस शक्ति की अप रिमेयता को समझा है और उपन्यास-साक्षित्य यौन-प्राकर्षण में उत्पन्न वैयक्तिक एवं सामाजिक मर्पद को अधिकाधिक महत्त्व देने लगा है। किन्तु हिन्दी उपन्यास में वैभेद के पहले स्त्री और पुरुष का संबंध एक सामाजिक संबंध के रूप में ही चित्रित हुआ

या। उनमें पुरुष की उत्कृष्टता और विनाशशीलताओं का जो रूप मिलता है वही किसी मानसिक पृष्ठभूमि पर नहीं है। केवल सामाजिक अत्याचार के रूप में है। इन उपन्यासों में प्रेम वही भेष है जो वासना से रहित है। वैदिक ऋग्वेद के लिए रचाए जाने की भावना से भोत प्रोत् है। किन्तु वस्तुतः वासना ही जीवन का चिरस्थायी तत्त्व है, मनोवृत्तियों की और बाह्यप्रवृत्तियों की रूप देने में उसका विशेष स्थान है। जैनिक के पूर्व के उपन्यासों में इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। उन सबसे मही प्रतीय होता है कि वासना एक प्रवृत्ति प्रवृत्ति है। वह मनुष्य को पशु बनाती है जीवन को मरक बनाती है। यद्यपि इस सामाजिक जीवन में वह एक अनादिक्यक एवं प्रापति-जनक वस्तु है।

जैनिक से लेकर इस चरण में एक परिवर्तन आया। बीरे-बीरे हमारे उपन्यासकारों को—यानी उन उपन्यासकारों को जो बोझा बहुत मनोविज्ञान का आशय लेते थे—बिहित होने लगा कि प्रेम केवल अध्ययन की अनुमति नहीं है। शरीर से उसका एक सम्बन्ध है। भाव में उसकी चेतना है। रक्त में उसका उष्ण है। यह वासना का ही प्रवृत्ति हो जाहें बुरी जीवन का अनिवार्य घण है। इस बात को समझ लेने पर वह साहित्य में केवल आलोचना का विषय नहीं रही। अध्ययन का विषय बन गयी। जैनिक तथा बाद के कई लेखकों ने शक्ति की विभिन्न प्रवृत्तियों का विभिन्न रूपों में विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। इन्होंने इस अध्याय में केवल उसके सामाजिक स्वरूप को देखा है।

२. जैनिक के उपन्यासों में—जैनिक के उपन्यासों में एक ही समस्या है—नारी का स्त्रीत्व तथा उत्सम्बन्धी मान्यताएँ। वे नारी के उस रूप को मान्यता नहीं देते जो हमारी सांस्कृतिक परम्परा को मान्य है। अगण्य सहिष्णुता से समस्त सामाजिक बन्धनों और अत्याचारों को सह्य ही हुई, निर्बल किन्तु भावमयी नारी जैनिक के लिए प्रस्ताव है। स्त्री के प्रति जैनिक का दृष्टिकोण मनु के 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' के सिद्धान्त को माननेवाला नहीं है। पर पारम्पर्य सभ्यता की उस बाधित नारी को भी वे मान्यता नहीं देते जो पुरुष तथा समाज के बन्धनों को खोलकर—बल्कि तोड़कर—अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करती है। उन स्त्रियों के जीवन का आधार प्रेम और सहयोग नहीं है। यद्यपि स्त्री का वह रूप भी जैनिक के लिए वर्ज्य है। उन्होंने बिना नारी का चित्रण किया है वह भव्य है। पुरुष से अधिक मानसिक बल रखनेवाली है। प्रेम तथा प्रेम सहस्रानुभावी की अविच्छात्री है। धारमशक्ति में अक्षय्य है—और यह सब होने के कारण बहुत कुछ भौतिक और अस्वाभाविक भी है।

'शरत्' और 'त्यागपत्र' में शक्ति के जिस रूप का अध्ययन किया गया है वह सामाजिक है। मनोवैज्ञानिक नहीं है। का देवराज में हमें भी मनोवैज्ञानिक अध्ययन हुई निकालने का प्रयत्न किया है। वह जीवन में हर व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया किसी मनोवैज्ञानिक प्रेरणा से ही परिभाषित होती है किन्तु इस कारण से हर उपन्यास में

मनोविज्ञान का प्रयोग करना आवश्यक नहीं है। जहाँ सेलक का ध्यम मनोवैज्ञानिक अध्ययन न होकर सामाजिक समस्याओं का अध्ययन होता है वहाँ बबरदस्ती मनो-विज्ञान का आरोप करना समीचीन नहीं है। 'परख' में बिहारी तथा कट्टों के त्याग और परोपकारी जीवन को वासना का मनोवैज्ञानिक उदासीकरण मानने का कोई आधार नहीं है। वह केवल एक विशेष प्रम-कथा का पादर्थवादी ग्रन्थ है। प्रमन्थ के पुष क कई सामाजिक उपन्यासों में भी कुष्ठित प्रेम का ऐसा परिणाम दिखाया गया है। उनमें भी सेलक की दृष्टि मनोवैज्ञानिक नहीं रही है।

'परख' में कट्टो और सरवजन का प्रम प्लेटोनिक (Platonic) है। उसके पहले के कई उपन्यासों के समान उसमें भी प्रेम-मार्ग की बाबाएँ दिखाकर पादर्थवादी ढंग से कथा का उपसंहार किया गया है। 'त्याग पत्र' में भी सामाजिक प्रवाचार और स्त्री की पदाधीनता मुख्य विषय है। किन्तु 'त्याग-पत्र' के पहले सुनीता' म जनेन्द्र ने भीत प्राकर्षण को एक सामाजिक समस्या के रूप में उपस्थित कर मानसिक संघर्ष के प्रसंग निमित्त किया थे। हरिप्रसन्न का सुनीता के प्रति आकर्षण एक समाज विरोधी प्रवृत्ति है। जब तक उसे स्त्री-जीवन से सम्पर्क का अवसर नहीं मिला था जब इस जीवन की दशा में एक नैतिक प्रबोधन के फलस्वरूप उसका सुनीता के प्रति आकर्षण होता सामाजिक है। किन्तु सुनीता उसको चाहत हुए भी उसके प्रति सैद्धिक आकर्षण नहीं रखती—प्रकट रखती है तो समाज के मय के कारण उसे दमित रखती है—प्रकट होने नहीं देती। दोनों के मानसिक संघर्ष के कारण सामाजिक है, किन्तु संघर्ष स्वयं वैयक्तिक है। इसका जो समाधान सेलक ने प्रस्तुत किया है उसमें धार्मिकता से प्रभावित पादर्थवाद है।

जनेन्द्र मानते हैं कि व्यक्ति त्याग और कष्ट-सहन के द्वारा बुराई को सही मार्ग पर ला सकता है—युद्ध धार्मिकता। उनके विचार में इस नैतिक समस्या का समाधान नारी की स्वतंत्रता में नहीं उसके पुरुष के समान होने में नहीं बल्कि कष्ट-सहन एवं त्याग के द्वारा नैतिक पुण्य को नैतिक बनाने में है—प्राचीनवादी मन-परिवर्तन। सुनीता का आत्मसमर्पण ऐसी ही प्रवृत्ति है। यह नारी एक मातृक क कल्पना-भौक में असीम उदात्तता तक पहुँचकर बाहर और अज्ञा का पात्र बन सकती है पर कोई बौद्धिक व्यक्ति उसकी वास्तविक सत्ता पर विश्वास करेगा यह बात संशय है। वह व्यावहारिक नहीं है तर्क-समय नहीं है लौकिक बिलकुल नहीं है। 'कल्याणी' 'मुसरा' 'अप्रीत' और 'विपत्ति' में भी पात्रों का सामाजिक जीवन सैद्धिक जीवन से बहुत प्रभावित है। कल्याणी मुन्ना जिनेन ('विपत्ति' में) और अय्यर ('अप्रीत' में) के जीवन की यति पूर्णतया उनकी काम असुक्ति (Sexual frustration) की प्रतिक्रिया है। कल्याणी पहले एक युवक से प्रेम करके उसे निराश करती है पर बिवाह हो जाने पर पति का अमराजी के साथ उसका जीवन सुगम नहीं बनता। उनकी परिस्थितिसे लेनी है कि उसे स्वयं और सुगमय यौन जीवन का अवसर नहीं मिला। प्राय-तुष्टि के लिए कल्याणी को नुब प्रेषित करनी पड़ती है और इस बीच का घटनागर से परिचित होने के कारण पति के साथे का पात्र बनती है। पारस्परिक

बैतत्य छोटी से छोटी बातों से बढ़ जाता है। प्रेम के समाज में वह अपना जीवन अन्यों की सेवा में समर्पित है और स्वयं व्यापारें सहती है। मनोवैज्ञानिक भाषा में यह एक तरह का 'उदासीकरण' है।^१ प्रथम भुक्त्या के जीवन को जीविए। काल के साथ उसका जीवन पहले प्रागल्भ्य रहता है पर फिर उसमें काम-असुक्ति से एक नैराश्य आ जाता है। प्रथम प्रान्त की वसा इच्छाओं की पूर्ति की भाषा की वसा है उसमें सेक्स की चेतना जागृत होने की वसा में है। जागृत होने पर उसे साम्प्रत्य जीवन में वृष्टि नहीं मिलती। परिणाम में वह राजनीति में घाती है। फिर सात से परिणम—पति की ईर्ष्या—मातृसिद्ध संघर्ष। उसके पारिवारिक जीवन का बाधा पूर्णतया सेक्स की प्रवृत्ति से निर्णयित है। 'बिबर्त' में पारिवारिक असमत्व के कारण भुवनमोहिनी से विवाह को अनुचित समझनेवाले जितेन की दमित कामवृत्ति आत्मवृत्ति का बुरा मार्ग है। अन्तिकारी जीवन में। 'अपरीत' में अत्यन्त के सामाजिक पारिवारिक एवं वर्णसिद्ध जीवन को उप देनेवाली बीज अनिता क प्रति उसकी दम्य आसक्ति (Morbid fixation) की प्रवृत्ति से उत्पन्न नराश्य ही है। इन सब प्रसंगों में एक बात इष्टम्ब यह है कि जैनस्य सामाजिक पृष्ठभूमि को छोड़कर केवल मनोविज्ञान की यहुरई में नहीं बूखते। किन्तु सामाजिक आधार किटना पुष्ट बन पाया है यह बुरा प्रसंग है। सामाज्य बुद्धि (कामनसेंस) से जैनस्य के उपन्यासों के सामाजिक दृष्ट्यों पर विचार करें तो कई असंगतियां मिलनी। कही-कहीं जैनस्य स्वयं समस्या बताते हैं—ऐसी समस्या जो वस्तुतः समाज की समस्या नहीं है। वैवाहिक जीवन में व्यक्तित्व और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के विकास की भी एक सीमा होती है और पति क अपनी पत्नी को अपने मित्र के नैराश्य को दूर करने के लिए सब कुछ करने का आदेश देने प्रथम पत्नी के उसके प्रेमी के कमरे में कई दिनों तक रहने का स्वयं पति द्वारा प्रबन्ध कर देने की वसा तक आता प्रसंग ही है। भुक्त्या का पति काल सुनीता के पति श्रीकान्त का ही बुरा रूप है। परब में आत्मपीडन और आत्मसंयम पर विशेष और देनेवाला का माग्यीवादी आदर्श सुख होता है वही 'सुनीता' 'व्याम-पत्र' और 'अस्वाणी' से होकर जीर्ण-अर्जर हो जाता है और 'भुक्त्या' में वह जीवित रूप में नहीं है तो मृत रूप में है। ऐसी कई असंगतियों पर ध्यान दें तो इन उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक आधार कुछ क्षीण-सा हो जाता है।

'अस्वाणी' और 'भुक्त्या' में बुरा एक पहलू भी है जो शायद मनोवैज्ञानिक अध्ययन से बढ़कर जैनस्य को घसीट है। यह सुख रूप में एक सामाजिक पहलू है और भारतीय समाज में क्रमशः विकास-मय से असेनेवाले नारी-जीवन के संघर्षमय रूप का पहलू है। देश-भर में फैली हुई शिक्षा एवं सामाजिक चेतना के कारण आज नारी अपने बन्धनों से मुक्त हो रही है। नवीन शिक्षा में पसकर स्वर्ग चिन्तन की

१. देखें प्रोफ़ेसर २८०-२८२।

२. सुनीता में।

३. भुक्त्या में।

शक्ति रखती हुई और आत्मनिर्भर-शक्ति के कारण आर्थिक स्वतंत्रता-प्राप्त्य वाली अपनी परम्परागत संचित संस्कृतिजनित मानसिक पराधीनता से पूर्णतया मुक्त नहीं हुई है। आज भी भारत की नारी पुरुष की अनुगामीनी है सहगामीनी नहीं बन पायी है। विकासशील नारी-जीवन की यह पराधीनता 'कन्याश्री' और 'सुखरा' में उपलब्ध है। कन्याश्री पति की आज्ञा मानकर प्रेरित करने लगती है। यद्यपि वह पहले ही यह शर्त सबसे स्वीकृत कराती है कि उसपर पर-मुद्रण सम्बन्ध का सम्बन्ध नहीं करना चाहिए, तो भी वह पति उसे वा भटनागर से सम्बन्ध रखने की संका में पीटता है तो वह चुपचाप सहन कर लेती है। उसमें अपना ही दोष मानती है। इसी पक्षी सिद्धी अपने पति से भी अधिक चिकित्सा में कुशल भारत-नर्चिणी (उसकी शर्तों से यह प्रकट है) नारी की यह दोष-स्वीकृति क्या भारतीय नारी की उस परम्परा-सिद्ध सहनशीलता और पाठित्य के धारकों को नहीं दिखाती जिससे कन्याश्री मुक्त नहीं है?

सुखरा में भी स्त्री का व्यक्तित्व चापलू होता है। अपने एक नौकर लड़के को आन्तिकारी दल में होने से गिरफ्तार होते देखकर वह अपने पति को 'भीरस' 'सामान्य' और 'कामर' समझने लगती है। 'जाने किस एक अनिर्दिष्ट शक्ति से मैं (सुखरा) पति से स्वाधीन होती जमी जयी। वह पति के सामने बोधना करती है 'मैं इस समा में जाऊँगी तुम रोक नहीं सकते' और 'जब की शर्तों को स्वीकृत करती है, वह मैं नहीं हूँ।' उसकी यह स्वच्छन्द वृत्ति गृह-जीवन में छापी पैदा करती है फिर भी वह आन्तिकारी दल की उपन्यास बनकर काम करती है। समस्याओं की एक पूरी शृङ्खला हम मिलती है। क्या सुखरा स्वयं अपने इस कार्य से होनेवाली परधनों को नहीं जानती? क्या वह अपने धर्म के विकास के कारण अपनी राह चलना चाहती है? या केवल राजनीति के मोह में ऐसा होता है? या फिर आन्तिकारियों में पुरुषत्व की ज्योति देख स्त्री का मन स्वाभाविक रूप से उनके प्रति आकृष्ट होता है? जैन्य के धर्म के सम्बन्ध में उल्लेखना मुख्य प्रश्न यह है कि क्या सुखरा का यह प्रयत्न स्त्री की दुर्गम की पराधीनता से मुक्त होकर सामाजिक स्वातन्त्र्य प्राप्त करने की चेष्टा के रूप में एक सामाजिक क्रिया का निमित्त है अथवा धर्मवृत्ति के विकास से वैयक्तिक स्वतंत्रता प्राप्ति के रूप में एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन? मुझे लगता है कि जैन्य पहली बात से शुरू करते हैं पर जाने-अनजान दूसरी में आ जाते हैं। पूर्णतया सामाजिक समस्या होती तो जेकर स्वयं ऐसी परिस्थिति में सामाजिक बन्धनों और परम्परा के विरोध का विश्लेषण करते सुखरा स्वयं सामाजिक उत्तरदायित्व में बधित नहीं रहती। इसका धर्म यह नहीं है कि वह सामाजिक बन्धनों को स्वीकृत कर अपने पर नियन्त्रण रखती पर नहीं है कि वह आत्मविकास करते हुए भी प्रत्येक बन्धन को पहचानती उन्हें धारण करने का प्रयत्न करती कुछ को छोड़ पाती कुछ बन्धन बंध ही रह जाते और इन सब क्रिया-कलापों में उसका जीवन अधिक संतर्पणमय होता। 'सुखरा' में

सामाजिक स्वतंत्रता का यह वैज्ञानिक इतिहास नहीं है। उल्टे सामाजिक कार्य में जाय मेरी हुई उसके व्यक्तित्व का विकास होता जाता है और उसकी चरम सीमा तक होती है जब वह ज्ञान के कमरे में छोटी है।

२०६ गुनाहों का बेवता—सेक्स की समस्या का सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ बिस्मेलण करनेवाले दो उपन्यास १९४६ में निकले—भारती का 'गुनाहों का बेवता' और भक्त का थिरती बीमारें। दोनों में सैमिक बिकारों का मनःशास्त्रीय अध्ययन है किन्तु व्यक्ति की मासिक कुष्ठार्थों के आवरण से जीवन के सामाजिक रूप को प्रकट नहीं बनाया गया है। स्त्री-पुरुष का पारस्परिक आकर्षण एक नैसर्गिक अनोखुति है जिसके नियन्त्रण और संभालन का सामाजिक कर्तव्यों और नियमों ने काफी प्रयत्न किया है। मानव-सभ्यता में इस नियन्त्रण को बहुत महत्त्व दिया जाता है। काम की नैसर्गिक प्रवृत्तियों से प्रेरित असंयत चेष्टाएँ पाण्डित्य मानी जाती हैं और इस नैसर्गिक प्रवृत्ति का नियन्त्रण मानव सभ्यता के विकास का परिणामक माना जाता है। मनुष्य के सामाजिक जीवन का इतिहास वासना की इस प्राकृतिक प्रवृत्ति एवं मनुष्य द्वारा निर्मित नियमों के पारस्परिक संघर्ष के मध्य गुंथा है और आज भी यह कहना कठिन है कि मनुष्य ने अपनी मानसिक संस्कृति और सामाजिक सभ्यता के द्वारा इस नैसर्गिक कामवृत्ति पर बिजय प्राप्त कर ली है। सेक्स के इस सचपंमम रूप का स्पष्टीकरण भारती और भक्त ने किया है।

गुनाहों का बेवता' में चन्द्र का जीवन काम-असुक्ति की प्रतिक्रिया का मनुना है। सुषा वास्तविकता में ही चन्द्र की आत्मा बग जाती है। उनमें लैसबी-मौन-आकर्षण (Lofantile Sexuality) है जो बाह्य बियाघ्रों की सीमा तक नहीं पहुँचता जो केवल मानसिक बिकार के रूप में रहता है। शारीरिक बनकर पड़री बेवता को उत्तेजित नहीं करता—एक तरह का प्लेटोमिक प्रेम। इससे अनभिज्ञ समाज सुषा को और क्रिस्तीस विवाह के लिए बिचल करता है। पर सुषा अन्तः कर पाकर भी कुष्ठग्रस्त मन की ओर निरन्तर में गलकट मर जाती है। चन्द्र की इमित वासना बागरिष्ठ होकर एक सामाजिक समस्या बन जाती है। वह एक और पमीला ट्रिक्ले की ओर और बूझरी ओर बिगती की ओर बाहृष्ट होता है। विवाह-मोचन पाकर स्वच्छन्द जीवन विवादावासी पम्मी वासनामय जीवन में संतुष्टि न पाकर पति से माफी माँग फिर ब्याहृष्ट जीवन में प्रविष्ट होना चाहती है। लज्जक का सामाजिक आदर्श स्पष्ट है। पम्मी चन्द्र को निखती है "स्त्री बिना पुरुष के आश्रय के नहीं रह सकती। उस प्रभापी को प्रकृति न जैसा कोई अभिसाप दे दिया है मैं थक गयी हूँ। इस प्रेत-सोक की भटकन से" मैं अपने पति के पास आ रही हूँ। मैं अब सोच रही हूँ कि स्त्री स्वाधीन नहीं रह सकती। उसक पास पत्नीत्व के सिवा कोई चारा नहीं। जहाँ वह खरा स्वाधीन हुई कि वह उम अन्ध-रूप में आ पड़ी है, जहाँ मैं थी। वह शरीर भी लोकर तृप्ति नहीं पाती। फिर प्यार से भरा तो बिद्वान जैमे उठता आ रहा है। प्यार स्थायी नहीं होता परनीत्व स्थायी होता है। मैं ईर्ष्या हूँ पर सभी अनुभवों का आज मुझे पता लगता है कि हिन्दुओं के यहाँ प्रेम नहीं बनूँ थम और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर विवाह की रीति

बहुत वैज्ञानिक और नारी के लिए सबसे ज्यादा लाभदायक है। उसमें नारी के लिए थोड़ा बन्धन क्यों न हो लेकिन स्वायत्तता रहता है संतोष रहता है वह अपने घर की रानी रहती है।^१ यह वही पमीना है जो उपन्यास के धारक में कइती है 'शारी अपने-आपको दिया जानेवाला सबसे बड़ा धोखा है।'^२ पमीना का यह परिवर्तन नारीय संस्कृति के दैतिक आयकों पर अवलम्बित ही नहीं है बल्कि मनोविज्ञान से सम्बन्धित भी है।

पूर्वराग और विवाह की समस्या को भी भारती उठाते हैं। चन्द्र शाह यह प्रश्न उठाना चाहता है कि वो विभिन्न जाति के लड़के-लड़की अपना मानसिक संतुलन स्थापना अच्छी तरह कर सकते हैं, तो क्यों न विवाह की इजाजत दी जाए? इस प्रश्न के विपक्ष को भी स्पष्ट करते हुए भारती बड़ी बारीकी से समस्या का विश्लेषण करते हैं। पहला प्रश्न यह आता है कि व्यक्तियों के भ्रूकाव को साम्यता देकर समाज की क्यों नुकसान पहुँचावे? दूसरा प्रश्न है विवाह के पूर्व का धार्कश्य क्या विवाह के बाद भी उसी तरह रहेगा?^३ इस धर्मवचन की दृष्टि में स्त्री आपत्ति में रहती है। केदार से विभवा गन्दा पूछती है, 'व्याह क पहले ही एक-दूसरे के स्वभाव और जीवन का परिचय पा लेने में दोनों के मन से बच कभी कोई अपनी सम्मति की मर्यादा मँब कर बैठने सब उसकी जिम्मेवारी किसके ऊपर होगी?'^४ इन सब प्रश्नों को उठाने पर भी उपन्यास के अन्त को देखते हुए पता चलता है कि भारती पूर्वराग-मुक्त विवाह का समर्थन करते हैं।

२१० गिरती दीवारें—'मुनाहों के देवता' में अगर पम्मी विज्ञासिता के जीवन से असंतुष्ट होकर पति की ओर लौटती है तो गिरती दीवारों में बैठन' उच्छलित जीवन से संतोष न पाकर पत्नी की ओर लौटता है। बैठन का जीवन भी काम प्रयुक्ति का उदाहरण है। सामाजिक परबधता के कारण—परिवार के अनुरोध के कारण वह अपनी इच्छा के विरुद्ध एक मोटी-भुटसी लड़की चन्दा से विवाह करने को विवश होता है। पहले कुछ दिन तो विरोध करके टालता रहता है और कई लड़कियों से धाकूट होकर अपनी कमजोरीता समझ पाता है। कुम्ती प्रकाशो केसर इनके प्रति उसका धार्कश्य उसे स्वयं मैंगिक जीवन नहीं दे सकता। अन्त में परान्त-वित्त होकर चन्दा से विवाह कर लेता है पर उनके काम-नैराश्य में कोई अन्तर नहीं आता। चन्दा 'सरल सीधी समझदार' लड़की है उसके मार्ग में बाधा डालनेवाली नहीं है। किन्तु ये सब मुख बैठन के जीवन के लिए मकाधायक सिद्ध होते हैं। चन्दा में सक्रिय धार्कश्य नहीं है। उसकी धार्कश्य-आसना को तुष्ट करने का कोई सामन नहीं है।

गिरती दीवार में समस्या बैठन मैंगिक विकास की न रहकर अधिक विपक्ष

१ मुनाहों का देवता पृ. २९-३०।

२. मुनाहों का देवता पृ. २।

३ वही पृ. ६३।

४ वही पृ. १६६।

बनी है और हमारे पारिवारिक जीवन के सम्बन्धों और दायित्व को भी व्यक्त करती है। चेतन को धर्मिष्ठ विवाह से बचने के लिए माँ-बाप से भागना पड़ता है। उनका बेमनस्य मोल सेना पड़ता है—सौमित्र की प्रथम दशा। मित्र रश्मि और सस्कृति की पत्नी को जैसी की तैसी रखकर उससे सामन्तस्य स्थापित करना सर्वप्रथम काठ होता है—पारिवारिक सौमित्र की दूसरी दशा। उस अपनी रश्मि के अनुकूल बनाने का चेतन का प्रयत्न अधिक उत्तमों को बन्ध देता है। वह उसे पढ़ना-लिखना माना-बमाना और अधिक सुभा व्यक्तहार करना सिखाता है। लेकिन यह बन्ध की सास और भाभी को अच्छा नहीं लगता—यह सौमित्र की तीसरी दशा है। इस अस्वामित्वपूर्ण दायित्व जीवन से हरबन्ध छान्द चेतन की भावना उसके सर्पक में भागेबासी प्रत्येक स्त्री की ओर उन्मुख रहती है। भले ही उन स्त्रियों का सामाजिक स्तर ऊँचा न हो भले ही वे उन्नत में सबसे बड़ी हों। यहाँ तक कि वह नौकर बावराज की पत्नी तक से प्रेम कर बैठता है। पर किसी तरह उसे शांति नहीं मिलती। बड़ता हुआ मानसिक दुर्बल अत्यन्त विषादमय वातावरण उपस्थित करता है। उसकी कार्यशील शक्तियों की पराजय इसकी बरस सीमा है। वह माता या पर धन समा में बाते समय मयकर पराजय होती है। नाटक सुन्दर खेलता या पर धन एक छोटी-सी बात से—दो मित्रों को पास न बिता सकने से—मानसिक अन्तर्ग्रस्त होकर अन्तर्ग्रस्त हो जाता है और रंगमंच से भाग जाता है।^१ इस दुर्बली को धाने बढ़ाना सेहत को दायव प्रमीष्ट नहीं है। इसलिए इन सब उत्तमों को सुलभित हुए अपना आदर्शवादी समाधान सामने रखते हैं। चेतन कनिराज के उपदेशों से प्रभावित होकर बन्ध की ओर मोड़ता है।

पत्नीमा और चेतन के इस मन-परिवर्तन को मनोविज्ञान कहाँ तक मान्यता देगा यह विषय यहाँ विचारणीय नहीं है क्योंकि उपन्यासों से स्पष्ट है कि इन प्रसंगों में लेखक पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने का प्रयत्न नहीं करते बल्कि मानसिक उत्तमों का आदर्श समाधान खूबने का प्रयत्न ही करते हैं।

सेहत की समस्या का अधिक जटिल रूप ?

✓ कामवासना की प्रकृति मनुष्य के मात्रों और क्रियाओं पर जो प्रभाव डालती है वह सीधा और सरल नहीं होता। वासना की प्रतिक्रिया अत्यन्त जटिल होती है। इन जटिल प्रक्रियाओं से जीवन में कौसी उत्तमों और विह्वलियाँ आती हैं। तरह-तरह के मानसिक सर्पों को पार कर जीवन जैसे-कैसे भौड़ सेता है। इन सबका अध्ययन इलाचन्द्र जोषी और अन्नय के उपन्यासों में मिलता है। यद्यपि इन दोनों में उपन्यास आत्यधिक बेवक्तिक है तथापि उनका ध्येय सामाजिक है। उनके सामाजिक मूल्य का निर्धारण करने के पहले उनकी सेहत की समस्याओं का निरूपण करना आवश्यक है।

२११ इलाचन्द्र जोषी—जोषीजी का ध्येय अत्यन्त आदि के सिद्धांतों का

समर्पण नहीं है, धीर ने अपने उपन्यासों पर फायदा का आरोप होते देखकर चिढ़ते हैं।^१ किन्तु वे अपने उपन्यासों में फायदा या धीर किसीने मनोविश्लेषणवाद के होने का निवेदन नहीं करते। उनके अपने ही कथन से स्पष्ट है कि उन्होंने मनोविज्ञान को जो अपनाया है सामाजिक मनोवृत्तियों के अध्ययन के लिए अपनाया है। विशेष कर मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का आधार लेकर ब्रह्म समाज की मनोवृत्तियों को उत्पत्तियाँ द्वारा समझने का प्रयास किया है।^२ बोलीची के उपन्यासों के क्रमिक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उनकी मूल प्रेरणा सामाजिक ही है। 'पर्व की रानी' और 'तन्वा' (या पूणामयो) में उन्होंने समाज में जो सैंगिक उत्पत्ति लता है उसका मनोवैज्ञानिक कारण बूझा है। 'पर्व की रानी' वेस्वा-जीवन के सम्बन्ध में उसके पहले के उपन्यासों से अधिक ऊँच नहीं उठता किन्तु उसमें जीव विज्ञान की पैशागति (Heredity) और मनो-विज्ञान के नियतिवाद (Psychic Determinism) की एक हल्की रेखा भी मिलती है। 'पर्व की रानी' की निरचना पठित मातृ-पिताओं की संतान है। अतः उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों के आधार पर उसका पतन की ओर जाना अस्वाभाविक नहीं है। प्रकृति परिस्थितियों में पसरी हुई वह बहुत दिनों तक इस पतनोन्मुखता का निवारण करती है परन्तु में इन्द्रमोहन द्वारा उसका कीमार्ग भग होता ही है। किन्तु निरञ्जना को पाने के लिए इन्द्रमोहन जो विविध सीसाएँ करता है, वे सब किसी एक मनोवैज्ञानिक आधार पर मढ़ित नहीं हैं। जासूसी और प्यारी के उपन्यासों के विविध रोमांटिक घटना चक्रों के समान ही हैं।

अब बोलीची के 'संयासी' निर्वासित धीर प्रथम धीर छाया' को ले। इन सीनों के नायकों की समस्त प्रवृत्तियाँ जो लेखक ने चित्तावी हैं, वेकत से प्ररित हैं। उनकी कामोन्मत्त की मानसिक प्रवृत्तियाँ और विकृतियाँ यहाँ चर्चा का विषय नहीं हैं क्योंकि वे वैयक्तिक मनोविज्ञान से अधिक सम्बन्धित हैं और उनकी प्रत्यक्ष चर्चा की सामग्री। यहाँ इन प्रवृत्तियों के सामाजिक परिणामों को देखें। 'संयासी' में विचारों जीवन में उत्पद्युतम रहनेवाला नव्यकिमोर बहुत अम्ली से छिड़ छांति से प्रम करता है। इन दोनों प्रसंगों में स्त्री की पराधीनता और पुरुष की उत्पद्युतमता एवं अधिकारेच्छा स्पष्ट है। छांति को समा में आकर वह एक रात कई दिन रूठा है। इन समय में पूर्णतया माई-बहन का ही सम्बन्ध रहता है। अब तन्व का भाई या कर छांति को मांग जाने की प्रेरणा देता है ताकि नव्यकिमोर का जीवन स्वच्छ हो जाए, उसका मार्ग में कोई बाधा न आए और उसकी बहना के विवाह में उसमें न हो। महा छांति के अधिपत्य के सम्बन्ध में उसे कितना विवशता नहीं रहती। यही

१ "मैं फायदा का समर्थक नहीं हूँ, हाँकि मेरे अन्तर्धानों में मेरी रचनाओं का फायदाही बनाए रखना जरूरी है। —गोविन्द-चन्दन २ १।

२ पाँच उपन्यासों में पाँच-छह दुसरे मानसिक-तत्त्वों पर इसी प्रकार का प्रयास किया जाता है। मित्रों को ब्रह्म समाज की मनोवृत्तियों की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए यह प्रयास है। तब इसे फायदा में आने को क्यों माना जाता है? —साहित्य विश्व २ १५।

बहु बुर्रूमा मनोवृत्ति है जो सम्मता और सदाचार का समर्थन करती है एवं अपनी सामाजिक दशा को बनाए रखने की पुनर्स्थापना में उससे हानि उठानेवाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में जरा भी नहीं सोचती। और फिर जयन्ती से मूल का विवाह हो जाता है पर उसके साथ जयन्ती का भीषण प्रभुत्व रहता है और वह जम मरती है। यह स्त्री की दूसरी तरह की पराधीनता का उदाहरण है जिसके कारण वह अपने मनवाहे पुरुष को बरग करने का अवसर न पाकर किसीके घसे बाध भी जाती है। इस तरह की मयकर पराधीनता में स्त्री को दबा रखकर भी प्रभुत्व और साहचर्य का दावा करनेवाले समाज की बोलीनी ने काम उड़ा भी है। जब नम्बकिशोर का भाई पान्ति से कहता है 'तुम मारी हो तुम्हें धारमत्याग का महत्त्व सिखाना नहीं है।' और जब पुराणा का उदाहरण देकर भाव जाने की प्रेरणा देता है तब उस समाज की दुर्घटना और हृदय की हीनता स्पष्ट प्रकट होती है।

'निर्वासित' और 'प्रेत और छाया' 'सम्पादी' से भी अधिक वैयक्तिक है। 'निर्वासित' का नायक महीप और प्रेत और छाया' नायक पारसनाथ नम्बकिशोर के समान ही कई सङ्कियों से प्रेम करते हैं। महीप खन्ना परिवार की दो सङ्कियों से प्रेम करके उनका विवाह हो जाने पर सीसरी सबकी नीतिमा से प्रेम करता है उसका विवाह भी और एक बनी से हो जाता है। यहाँ समस्या पूर्णतया वैयक्तिक है और इसमें महीप से बड़कर नीतिमा के मानसिक संघर्ष का महत्त्व दिया गया है। लेकिन इसके बाद प्रतिमा छाया क्या भादि की कथाओं से उपन्यास में जो परिवर्तन आता है—यह परिवर्तन तकनीक की दृष्टि से उतना समीचीन नहीं लगता—उसके कारण वैयक्तिक संघर्ष के सबसे स्त्री की सामाजिक पराधीनता मुख्य बिंदु बन जाती है। और इसके आगे जब इन पीड़ित मारियों की दुर्घटना देख और पान्ति की प्रेरणा पाकर सामाजिक अन्तिम के निमित्त गुप्तदल का सम्पर्क होता जाता है और कई स्त्रियों को पठित करनेवाले ठाकुर साहब के घर को घाग लगाई जाती है तब सामाजिक आधार भी बिलकुल सिद्ध हो जाता है। स्त्रियों की समस्या को लेकर भारत में कोई गुप्तदल संघठित हुआ ऐसा ज्ञात नहीं। यह स्त्री-समस्या का हम डूबने का नेत्रक का अर्थ प्रयत्न है। और चूंकि महीप के गुप्तदल की हिंसा-नीति के विरुद्ध हो जाना और ठाकुर साहब का बचाना नेत्रक की गांधीवाद पर आस्था का परिचायक है। इन सब क्रिया-कलापों में और महीप के मानसिक परिवर्तन प्रेरक परिस्थितियों का विवेचन उपन्यास में नहीं होता।

'प्रेत और छाया' में पारसनाथ जो अपने पिता से समर्थ पाता है कि वह उसका पुत्र नहीं है माता की अथवा सम्मान है कई सङ्कियों से जीवन-संबन्ध स्थापित करता है। इन सब स्त्रियों के प्रति उसके आकर्षण के कारण बिलकुल मनोवैज्ञानिक है और अत्यन्त कठिन है। ये वैयक्तिक सम्बन्ध और बीच-बीच में आई कई विचित्र घटनाएँ उपन्यास के सामाजिक आधार को बहा देती हैं। अन्तिम कथाचक्र और

धनात्मक मानुष्यता के कारण भी उपन्यास समाज से बहुत दूर जा पड़ता है।

जोशी के 'भुत्तिय' में सैंगिक समस्या का बिलकुल भिन्न एक रूप है। राजीव एक अनाथ बालिका मुन्दा को अपने साथ रखकर उसके व्यक्तित्व का विकास करता है। वह बड़ा भावपूर्ण होती है। अतः उससे उदात्त संबंध ही रहता है। मुन्दा को यौन चेतना एक धीरे-धीरे होकर और दूसरी ओर राजीव से व्यक्तित्व-विकास का प्रसरण पाकर दूसरा रूप धारण कर लेती है। अन्त में वह अपने व्यक्तित्व को इतना विकसित पाती है कि वह राजीव का आश्रय ग्रहण करने को भी तैयार नहीं रहती और अपनी स्वतंत्रता की भोषणा कर उसके यहाँ से जाती जाती है। मेज़क ने यहाँ मनोवैज्ञानिक आधार पर व्यक्तित्व का जो विकास दिखाया है धारम्यतः समीचीन है और यह एक तरह का उदात्तीकरण (Sublimation) है। इस उपन्यास का भी सामाजिक आधार सख्त ठोस नहीं है।

२१२ अश्वेय—अश्वेय के 'खेखर' में बिलनी स्त्रियाँ आती हैं, सब खेखर की मददकर प्रवृत्ति के कारण किसी न किसी तरह की बचना का अनुभव करनेवासी हैं। सबसे मार्मिक बिचस्र घटि का है, जो खेखर की प्रवृत्ता के सामने झुकती है और प्रसीम व्यापार्यं चहती है। स्त्री के रूप में घटि के दो रूप स्पष्ट हैं। पहला रूप वह जो खेखर को जीवन की प्रेरणा देकर उसके कार्यों को संभावित करता है। यह बालिका बिचके तिर पर सोटा मारकर खेखर ने कोट की बी उसके लिए सब कुछ बन जाती है। खेखर में आभरित सेक्स की चेतना एक घटि के प्रति एक उदात्त रूप धारण कर लेती है और उसका जीवन ही उसके उसपर टिक जाता है। अन्त्य सब अथर्व खेखर की प्रवृत्ता अपने स्वेर विहार की स्वतंत्रता न पाकर सब जाती है किन्तु घटि के सामने वह अपनी पूर्णता प्रकट होती है वह उससे प्रेम करते हुए भी उसकी अवहमना करता है। फिर घटि उसकी प्रेरणा है। वह कहता है 'बिलने स्वप्न में देखे तुममें आकर बुल जाते हैं'।^१

घटि का दूसरा रूप स्त्री की पराधीनता और बिचस्रता की दिखाता है। बिचस्रता वह नहीं बिचके कारण हमारे सामाजिक उपन्यासों की कितनी ही मुबती मुन्सरियाँ पुरुषों के प्रत्याचार से पतित और समाज से निष्काशित होकर रंग के आँचल में आश्रय खोजती हैं। घटि की बिचस्रता नारी-समाज की नैसर्गिक बिचस्रता है 'तुम्हादी आत्मस्थ-कता मुझे है क्योंकि मेरा लक्षित व्यक्तित्व तुम्हारे द्वारा अभिव्यक्ति का मार्ग पाता है'।^२ खेखर के प्रति घटि के ये शब्द एक अनियोज्यश्रम की ओर संकेत करते हैं। स्त्री की उस मानसिक दुर्बलता और बिचस्रता की ओर बिचके संबंध में प्रसाद ने कहा था

जब बहारी लकड़ी भी रसमिग होती है उसका एक मुबके से अगला हो जाता है और बनडो रसा के लिए जलक नारतकाल चहुँपता है। वह किशोरीगत गोबामी की माविद्यमों की व्यपति और माविद्यों के बीर कर्मों से परा भी ऊपर नहीं उठता।

१ रोप्प दितीय भाग पृ. २४२।

२ रोप्प, दितीय भाग पृ. २४७।

भुवन-मता पँसाकर नख-तह में

भूसे-सा भोंका जाती है ।

प्रप्रेम के 'नदी के द्वीप' में भी सामाजिक आधार अधिक पुष्ट नहीं है । यद्यपि इसमें उठायी गयी सेक्स की समस्या बड़े सामाजिक महत्त्व की है । पार्श्वों की मगो-वृत्तिर्मा विवृत है अतः सामान्य नहीं है । एक विशेष तरह का मानसिक अपम्य उन सबके संपूर्ण व्यक्तित्वों को घोर निरोध कर यौन-भावों को अभिभूत रखता है । भुवन और रेखा को एक-दूसरे के प्रति शैथिल्य भावपूर्ण होता है—इसे प्रेम कहना अनुचित है । जो प्रथम संपर्क की वसा तक पहुँचता है घोर रेखा को गर्मिणी बनाता है किन्तु दोनों विवाह के लिए तैयार न होते । जब भुवन विवाह का प्रस्ताव करता है तब रेखा हँकार करती है जब रेखा तैयार होती है तब भुवन गौरव के प्रति आक्रुष्ट हो चुका है । रेखा में भी अपम्य कम नहीं है । वह भुवन के प्रति आक्रुष्ट है । उत के सम्य-कामोन्माद की वसा में भुवन के कमरे तक में जाती है । फिर भी भुवन द्वारा गर्मिणी होने पर विवाह नहीं चाहती अथ हुरसा करती है । इन अटिल व्यक्तित्वों को जिस सामाजिक नींव पर खड़ा किया है वह भी कमजोर है । रेखा पीरा धादि स्थितियों को उपन्यास में स्वच्छर विहार की घोर पर-पुखों से भिन्न-भुम्ने की जो स्वतन्त्रता मिसी है वह सामय हमारे समाज के किसी वर्ग में नहीं मिलती । सामाजिक बाधावरण से विभक्त वे पात्र इतनी बड़ी समस्या को सामान्य अनुभूति का विषय न बना सके यह आश्चर्य की बात नहीं है ।

२१३ डा बैरनाम—इनके 'पय की खोज' का नायक जन्मनाम भी सेक्स की खोजना है आन्तरिक वैयक्तिक पात्र है । 'खेसार' में बहुला खेसार की कामवृत्ति को नियंत्रण में रखनेवासी बीज है, जो 'पय की खोज' में यहू का बीज-स्य । जन्मनाम पड़ी मिसी हर एक लड़की से प्रेम करता है, पर इससे धाने बढ़ने की हिम्मत उसमें नहीं है । किसीसे प्रेम-याचना करने को वह तैयार न होता । याचना का यौन भाव रेखा का सा अपम्यपूर्ण है वह बार-बार जन्मनाम के प्रति आक्रुष्ट होती है, प्रेम-याचना तक करती है पर जब जन्म उसके पास आता है वह मुँहार उतर जाता है और उसे 'मैया' कहना पसन्द करती है ।

यौन समस्या का सामाजिक मुख

२१४ भारतीय समाज में घोर पारम्पर्य समाज में स्त्री और पुरुष के पारस्परिक संबन्ध में बहुत बड़ी भिन्नता है । यह सत्य है कि सर्वत्र स्त्री-पुरुषों को एक-दूसरे की घोर आक्रुष्ट करनेवासी मूल कामवृत्ति एक ही है । किन्तु उसके बाह्य स्वरों में घोर उससे प्रेरित सामाजिक क्रियाधर्मों में सामाजिक इति के कारण बहुत भन्तर भिन्नता है । यूरोपीय देशों में स्त्री और पुरुष को मिलने घोर परस्पर निकटता से व्यवहार करने की जो स्वतन्त्रता मिसी है वह धाम भी हमारे समाज में नहीं मिसी है । दूसरी बात यह है कि हमारे समाज में सेकड़ों वर्षों से स्त्री पराधीनता घोर पीड़न का पात्र बनकर अपना व्यक्तित्व ही को छुकी है घोर भव स्त्री के बापस्य के होते हुए

भी यह पूर्णतया अपने स्वार्थीय की धोखा करने अपनी इच्छानुसार पुर्यों से मिलने-पुलने और व्यवहार करने का साहस नहीं कर सकती है। इस परिस्थिति के कारण हमारे समाज में स्त्री-पुरुष के बीच में बहुत बड़ा अन्तरांतर पाया गया है।

हमारे मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में जिन स्थितियों और पुरुषों की विशेष बर्णन है ऐसे स्त्री-पुरुष हमारे वास्तविक जीवन में कम मिलेंगे। महीष नन्दकिशोर, पारस नाथ राय और मा भुवन हमारे समाज के किसी भी वर्ग में मिलने इसमें संदेह है। इन सबमें जिन यौन-गुणों का आरोप किया है उसके विकास के लिए भी हमारा समाज सावधान अधिक अवसर नहीं देता। अगर कोई पुरुष घर में अपनी वासना पूर्ण कर नहीं पाता तो वह कुष्ठार्थों में अपने प्राणों की बलिदान नहीं समझता। उसके लिए मार्ग साफ है। प्राण भी हमारे देश में संसार के सबसे पुराने देशों का बाजार परम है।

हमारी और स्थितियों की पराधीनता भी इस कुष्ठार्थ के विकास में बाधक है। जैसे अपने व्यक्तिगत ही संबंधित स्थितियों भारतीय संस्कार की चरबीबारी में पसनेवासी स्थितियों अन्य पुरुषों के साथ स्वतंत्र व्यवहार की कल्पना एक नहीं कर सकती। अगर वह अपनी मर्मांश छोड़कर थोड़ी-सी स्वतंत्रता दिखावे तो समाज उनका बहिष्कार कर देगा। निरजना नीतिमा मंजरी रेखा और धारि की तरह व्यवहार की स्वतंत्रता प्राप्त भवितव्य हमारे समाज में कितनी मिलेगी? अज्ञेय और जोशीजी ने जिस मध्य वर्ग का चित्रण किया है उसमें भी प्रायः समाज का कड़ा नियंत्रण है उसमें भी कुछ स्थितियों को अधिक स्वतंत्रता की अनुमति नहीं दी जाती। जिन स्थितियों को इस तरह की स्वतंत्रता प्राप्त है उनका समाज न एक बर्ग ही बना रहता है जो बिनासी पुरुषों की वासना पूर्णता का साधन बनता है। पर भद्र समाज से और किसी तरह का सम्बन्ध स्थापित न करके अपना समय जीवन व्यतीत करता है। ऐसी परिस्थिति में स्त्री-पुरुषों के ऐसे व्यवहारों और कुष्ठार्थों की बर्णन करना और उनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में उपन्यासों के घन-रस घुल देना अधिक सामाजिक उत्तरदायित्व का परिचायक नहीं है। इन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में जो समस्याएं उत्पन्न हुई हैं वे अत्यंत रूप में वैयक्तिक हैं और उनका कोई आधार है तो भारतीय समाज में नहीं यूरोपीय समाज में है। हमारे उपन्यास-साहित्य में कुष्ठार्थस्त नर-नारियों को जो स्थान मिला है उसकी तुलना में बहुत कम ऐसे स्थानों स्त्री-पुरुषों को मिला है जो अपना रास्ता जीवन जीवन का भार ठोस में ही बिठा देते हैं कभी रोमान्स का अनुभव नहीं करते बसवा करते हैं तो भी सामाजिक रूप में बहुत ही सीधे रूप में। इसका धन यह न समझा जाए कि भारत का समाज ऐक्य की प्रबल शक्तियों में पूर्णतया मुक्त है। इसका मतलब इतना ही है कि इन उपन्यासों में जिन तरह और जिन रूप में चित्रण हुआ है उस तरह और उस रूप में हमारे समाज में कम मिलता है। इसी कारण नन्दकिशोर, महीष पारसनाथ राय मा भुवन नीतिमा मंजरी रेखा और धारि से आत्मीयता का अनुभव करने में हम असमर्थ होते हैं। उन्हें नजदिके में हमें बटिना होती है चाहे उनके चरित्र चित्रने ही प्रभावित हों। चरित्र के एकाधिक स्वरूप के

विस्फेपण में उनका सामाजिक अस्तित्व नष्ट-सा हो जाता है। विषय की एकान्ति कठा केन्द्रीकरण (Concentration), प्रचरण (Selection) और परिधि निर्णय तक-नीक की दृष्टि से बुरी नहीं है। बल्कि उपन्यास को प्रभावशाली बनाम में उपयोगी ही है। पर जब इस तरह की संकुचित सीमाओं से उपन्यास बांधा जाता है, तब उसका प्रतिपादित विषय सामान्य सामाजिक जीवन से अधिक सम्बन्धित न हो तो उसका सामाजिक मूल्य संश्लेष हो जाता है।

यह प्रकृति मात्र केवल हिन्दी में ही मिसरी है ऐसी बात नहीं। प्रपञ्च और फेंच के उपन्यास-साहित्य भी इसी पागल म बहते आ रहे हैं। सामाजिक समारंभों से प्रभावित तत्कालीन कवी ह्यूबेरीयन पोसिबल कमनियन आदि भाषाओं के साहित्य जब सामाजिक जीवन के अध्ययन में अधिक विमर्शशील दिखते हैं तो फेंच और प्रपञ्च के उपन्यास व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं को सुलझाने के प्रयत्न में हैं। हिन्दी से वे इस बात में भ्रम हैं कि वे केवल स्वयं की ही नहीं मनोविज्ञान के अन्य क्षेत्रों से सम्बन्धित प्रक्रियाओं के प्रपञ्चन में लगे हुए हैं। इस तरह के वैयक्तिक अध्ययन से मनुष्य को समझने में और उसकी समस्याओं को सुलझाने में और उसके सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन में जो विषयगत हैं, उनको दूर करने में कहीं तक सफलता मिलेगी, यह समझ ही बता सकता है।

३

राष्ट्रीय वातावरण का प्रतिबिम्ब

—११५ विस्म-इतिहास में बीसवीं सदी की दो सबसे बड़ी स्थायी प्रभाव की बटमाएँ एक और भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति है। दोनों महायुद्धों से भी इन सम्मनों का अधिक महत्व है क्योंकि इनका प्रभाव आधिक गहरा और अपने-अपने देशों की जनता की भाग्य-विधायक है। इनका महत्व केवल राजनीतिक क्रांतियों के रूप में नहीं मानवजाति के चिन्तन-व्यवस्था के महान विप्लवों के रूप में भी है। कृषि विप्लव एक ऐसा सम्मन था जो केवल रूस की राजसत्ता का बदलकर जनता का का विधि-निर्यात ही नहीं सिद्ध हुआ बल्कि उसने संसार की राष्ट्रीय नीमांशों समाजशास्त्रीय साम्यताओं धार्मिक विचारों और आर्थिक सिद्धान्तों में विस्म-वास्तविक विचार-परिवर्तन का बीजारोपण भी कर दिया। विद्यालय में एक सामाजिक और आर्थिक योजनाओं से युक्त गांधीवाद भी कम महत्व का नहीं है। किसी निश्चित विद्यालय कार्यक्रम में उसको सम्भावनाओं का पूर्ण परीक्षण अब तक नहीं हुआ है। पर उसकी महत्ता के सम्बन्ध में अभी कुछ कहना असामयिक होगा। किन्तु यह निश्चित है कि गांधीवादी पद्धति से संज्ञासित भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम संसार के इतिहास में कम महत्व का विषय नहीं है। ये दोनों वैश्वीय विप्लव साहित्य-क्षेत्र में भी प्रत्यक्ष महत्व-पूर्ण हैं। ये इतनी ज्ञानधार बटमाएँ हैं कि उनके सम्बन्ध में प्रथम धरती के उपन्यास रच आ सकते हैं। हिन्दी और कभी में इस विप्लव के विचार का बोझ बहुत प्रचलन

भी वह पुरातन करने स्वाभाविक की घोषणा करते अपनी इच्छानुसार पुरानों से निम्ने-
पुनर्नवीन और व्यवहार करने का माहम मग कर मकी है। इस परिस्थिति के कारण
हमारे समाज में स्त्री-पुरुष के बीच में बहुत बड़ा अन्तरांतर था था है।

हमारे मनोवैज्ञानिक उन्मासों में जिन स्थितियों और दुरावस्था की विवेचना की है
उमें स्त्री-पुरुष हमारे वास्तविक जीवन में बन मिसेये। महीन मजबूती, पारम
नाय पारम या सुबन हमारे समाज क किमी भी बय में मिलेये इसमें समझ है।
इन ममें जिन चीज-पुण्य का आरोह किया है उनक विचार के लिए भी हमारा
समाज मान्य अधिक व्यवहार नहीं देता। अगर कोई पुरुष घर में अपनी बातना पूरा
कर नहा पना तो वह पुण्य में अपने धर्म की अवस्था नहीं बन
भया। उनके लिए माय माय है। बाव भी हमारे देश में अंधार के समय पुराने देश
का आधार मान्य है।

दूसरी ओर स्थिति की परीक्षा भी इस पुण्य के विचार में बावक है। जैसे
अनेक अन्तरांतर म ही बचिन स्थिति भारतीय संस्कार की अवस्थावादी म पसनेवासी
मिना अन्तरांतर के माय स्वयं व्यवहार की बलना तक नहीं कर सकती। अगर
बहु अपनी मर्यादा छोड़कर योग्य-भी स्वयंवादी विचारों का समाज उन्मास बहिष्कार कर
देगा। निरवस्था नीतिमा मजरी रखा चीज धारि की तरह व्यवहार की स्वयंवादी
प्राप्त मुश्किलों हमारे समाज में जिनकी मिलेगी? अन्तरांतर अन्तरांतर ने जिस अन्तरांतर
बय का बिचार दिया है उसमें भी बाव समाज का कड़ा निर्बंधन है उसमें भी दुर्ग
तियों की अधिक स्वयंवादी की अनुमति नहीं की जाती। जिन स्थितियों को इस तरह की
स्वयंवादी प्राप्त है उनका समाज में एक बर्ग ही बना रखा है जो विचारों पुरानों की
बामना प्रति का मान्य बनना है। पर घर समाज के और किसी तरह का अन्तरांतर
अन्तरांतर न करके अन्तरांतर अन्तरांतर जीवन अन्तरांतर करता है। ऐसी परिस्थिति में स्त्री-पुरुषों
के ऐसे व्यवहार और पुण्यों की बर्ग करना और उनके मनोवैज्ञानिक विवेचन में
उन्मासों के अन्तरांतर पण्ट रंग देना अधिक सामाजिक उत्तरदायित्व का परिष्कार
नहा है। इन मनोवैज्ञानिक उन्मासों म जो समस्याएं उठाये गयी हैं वे अन्तरांतर रूप
में वैयक्तिक हैं और उनका कोई आधार है तो भारतीय समाज म नहीं पुरोपाय
समाज में है। हमारे उन्मास-वास्तविक म कुण्डलिन नन्तरांतरों की जो स्वाभाविक
है उसकी मुद्रना में बहुत बय ऐसे मान्य स्त्री-पुरुषों की मिला है जो अन्तरांतर सात
पौषण जीवन का भार होने में ही बिता देता है कमी रोमांस का अनुभव नहीं करके
अवस्था करने हैं तो भी सामाजिक रूप में बहुत ही लीक रूप में। इनका अर्थ यह न
मनमा जाए कि भारत का समाज केवल की प्रचोदक धारि में पूर्णतया पुण्य है।
इसका मतलब इतना ही है कि उन उन्मासों में जिन तरह और जिन रूप में बिचार
हुया है उन तरह और उन रूप में हमारे समाज में कम मिलता है। इसी कारण
अन्तरांतर, महान परमनाय अन्तरांतर, सुबन नीतिमा मजरी देखा चीज धारि का
आत्मियता का अनुभव करने में हम अन्तरांतर में हैं। उन्हें अन्तरांतर में हमें बहिष्कार
होती है बावें उनक अन्तरांतर विचारों ही अन्तरांतर हैं। अन्तरांतर के अन्तरांतर स्वरूप के

विश्लेषण में उनका सामाजिक अस्तित्व नष्ट-हा हो जाता है। विषय की एकान्ति कता केन्द्रीकरण (Concentration) प्रचरण (Selection) और परिधि-निर्णय तक-मीक की दृष्टि से बुरी नहीं है। बल्कि उपन्यास को प्रभावशाली बनान में उपयोगी ही है। पर जब इस तरह की संकुचित सीमाओं से उपन्यास बाधा पाता है तब उसका प्रतिपादित विषय सामान्य सामाजिक जीवन से अधिक सम्बन्धित न हो ता उसका सामाजिक मुख्य संदेश हो जाता है।

यह प्रकृति धात्र केवल हिन्दी में ही मिलती है ऐसी बात नहीं। अंग्रेजी और फ्रेंच के उपन्यास-साहित्य भी इसी धारा में बहता जा रहे हैं। सामाजिक मर्यादा से प्रभावित तत्कालीन कवी हबेरियन पोमिण्ड क्लानियन आदि नायकों के साहित्य जब सामाजिक जीवन के अध्ययन में अधिक विस्तारपी दिखाते हैं तो कब और अंग्रेजी के उपन्यास व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्तियों को सुझाने के प्रयत्न में हैं। हिन्दी से वे इस बात में भ्रम हैं कि वे केवल संस्कृति की ही नहीं मनोविज्ञान के अन्य दोषों से सम्बन्धित प्रवृत्तियों के प्रप्रवृत्त में बने हुए हैं। इस तरह के वैयक्तिक अध्ययन में मनुष्य को समझने में और उसकी समस्याओं को सुझाने में और उसके सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन में जो विपदाएँ हैं उनको दूर करने में कहीं तक सफलता मिलेगी यह समय ही बता सकेगा।

३

राष्ट्रीय वातावरण का प्रतिबिम्ब

२१५ विस्म-इतिहास में बीसवीं शती की दो सबसे बड़ी स्वामी प्रभाव की बटमाएँ इस और भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति हैं। दोनों महायुद्धों से भी इन सम्बन्धों का अधिक महत्त्व है क्योंकि इनका प्रभाव अधिक गहरा और अपने-अपने देशों की जनता की भाव्य-विधायक है। इनका महत्त्व केवल राजनीतिक क्रान्तियों के रूप में नहीं मानवजाति के चिन्तन-मार्ग के महान विप्लवों के रूप में भी है। कवी विप्लव एक ऐसा सम्भव था जो केवल इस की राक्षसता को बल्लभर धनता का का विधि-निर्णयक ही नहीं सिद्ध हुआ बल्कि उसने संसार की राष्ट्रीय सीमासाधों समाजशास्त्रीय मार्गदर्शकों वास्तविक विचारों और धार्मिक सिद्धान्तों से विप्लवार्थक विचार-परिवर्तन का बीजारोपण भी कर दिया। विद्यालय नैतिक सामाजिक और धार्मिक योजनाओं में युक्त गांधीवाद भी कम महत्त्व का नहीं है। किसी निश्चित विद्यालय कार्यक्षेत्र में उसकी सम्भावनाओं का पूर्ण परीक्षण अब तक नहीं हुआ है। अतः उसकी महत्ता के सम्बन्ध में अभी कुछ कहना असामयिक होगा। किन्तु यह निश्चित है कि गांधीवादी पद्धति से संघालित भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम मंदार के इतिहास में कम महत्त्व का विषय नहीं है। ये दोनों वैश्वी विप्लव साहित्य-क्षेत्र में भी अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण हैं। ये इसी ध्यानसार बटमाएँ हैं कि उनके सम्बन्ध में प्रथम खेती के उपन्यास रहे जा सकते हैं। हिन्दी और कवी में इस विप्लव के विवरण का बोझ बहुत प्रचुर

हुपा है। इन शक्तियों धीर उनके तुरन्त पूर्व धीर परचाव की विराट राजनीतिक घटनाओं से सम्बन्धित उपन्यासों की बर्चा यही की जायगी।

प्रेमचन्द

२१६ हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनों को यथायोग्य महत्त्व देनेवाले प्रथम उपन्यास प्रेमचन्द के ही हैं। अद्यपि राजनीतिक परिस्थितियों का विस्तृत अध्ययन उनके उपन्यासों में केवल 'रंगभूमि' धीर 'कर्मभूमि' में ही मिलता है तो भी प्रमाथम 'आवाकल' धीर 'बोखान' में प्रस्तुत समाज भी देशीय बातावरण को बहुत कुछ स्पष्ट करते हैं। 'प्रमाथम' में पतित पद्धतिमानों पर वर्गीशरों तथा सरकारी कर्मचारियों के जो अत्याचार होते थे उनका विस्तृत अध्ययन किया गया है तो 'आवाकल' में हिन्दू-मुस्लिम समस्या का रूप दिखाया गया है। इन दोनों में तथा देशीय विप्लव का ही रूप प्रस्तुत करनेवाले 'रंगभूमि' धीर 'कर्मभूमि' में प्रेमचन्द एक सुधारवादी के रूप में प्रकट हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि उन्होंने देशीय बातावरण का यथार्थ धीर सर्वांगीण चित्रण अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया सभी रूपों के सभी प्रकार के लोगों का अध्ययन किया धीर देश के इन गुणानुसार विदेशी शासन तथा स्वयं जनता के मनोभावों के दूषित पक्षों पर अपार घृणा प्रकट की। साथ ही स्वातन्त्र्य की अदम्य आकांक्षा से लटकी हुई जनता की अपार बेचता को उन्होंने प्रत्यक्ष कर दिखाया। सरासरी आन्दोलन का जो विस्तृत चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलता है, उनकी सजीवता अनुजनीय है। नाट्यभूमि के लिए समस्त जीवन समर्पित करने वाले अगणित स्त्री-पुरुषों को उन्होंने अद्वितीय चित्रित की। स्त्रियों पर प्रेमचन्द की अपार भ्रष्टा भी ही। पुरुषों से भी अधिक उत्साह धीर आत्मीयता से आन्दोलन में भाग लेनेवाली धीर देश-सेवा करनेवाली स्त्रियों को प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' की सोनिया इन्दु धीर बाबूजी तथा 'कर्मभूमि' की सुलहा मुन्नी रेसुकादेवी नामा सभीना आदि के रूप में अमर कर दिया। इस तरह हम कहते हैं कि प्रेमचन्द ने असीम सहानुभूति देश प्रेम तथा समता से हमारे देशीय आन्दोलन का चित्रण किया है। नाट्यभूमि उनके लिए समावर्णीय देशी भी स्वातन्त्र्य संघाम उनके लिए अति पवित्र द्य था।

किन्तु जैसे सामाजिक समस्याओं को सुलभ करने के लिए उन्होंने अस्मात्त आदर्श प्रस्तुत किये उसी तरह राष्ट्रीय-आन्दोलन के परिणामों के सम्बन्ध में भी कुछ विविध कल्पनाएँ की। गांधीवादी सत्य-परिवर्तन धीर समझीता ही यहाँ भी उनकी 'अक्षर' रहा है। ऐसा समझता है कि समस्याओं से समझते समय वे कभी-कभी भावुकता के आधिपत्य के कारण विह्वलता की दृष्टि से होते हैं। पर इससे उनकी ईमानदारी धीर समता कम नहीं होती मने ही उनके समाजानुपारिपक्व रूपों।

प्रेमचन्द धीर योर्की

२१७ मैक्सिम योर्की कसी जगजगति की पुण्ड्रभूमि को आदि-मरे घर्मों में रंजित करनेवाला कलाकार है तो भारतीय स्वातन्त्र्य-संघाम के बातावरण का उनके

समष्टि रूप में प्रस्तुत करनेवाले सबसे बड़े लेखक प्रेमचन्द हैं। यद्यपि दोनों के दृष्टि कोण और रचना-विधान आदि में बहुत अन्तर है तथापि राजनीतिक चेतना के आधार पर देखा जाए तो दोनों बहुत निकट हैं। प्रेमचन्द और गोर्की ने एक ओर बीछे-बर्बर समाज की अन्ध-परम्पराओं और स्वार्थों से सञ्चालित कुत्सित मनोवृत्तियों पर अपार प्रतुष्टि प्रकट की तो दूसरी ओर जागती हुई जनशक्ति की गतिविधियों को जानकर विद्यालब्धि की प्रेरणा दी। दोनों में परिवर्तन की प्रेरणा बैठ गए अपने उपन्यासों में जो राष्ट्रीय वातावरण प्रस्तुत कर दिखाए हैं। उनका दो रूप हैं। प्रथम रूप उन उपन्यासों में है जिनमें उन्होंने राष्ट्रीय चिन्तन से मुक्त रहकर केवल समाज की कुत्सित वृत्तियों को सात उखाड़कर दिखाया पराधीन जनता की ओर विद्यार्थियों को बड़ी सहायुक्ति से चिन्तित किया। प्रतिज्ञा 'देवासदन' 'बरबान' 'निर्मला' 'मदन' 'गोदान' आदि में एक या अधिक समस्याओं को लेकर समाज की व्यापकतम जनता की आँखें प्रकट की गयी हैं। पर गोर्की ने समस्याओं का सूत्र पकड़कर जीवन को नहीं देखा स्वयं जीवन को लेकर उनका सर्वांगीण रूप में निरक्षण किया। उनका 'आर्टेमोव' 'क्रोमा बोर्देव' और धार्मिकधार्मिक उपन्यासों में तत्कालीन समाज के निम्न वर्गों के पतित और दयनीय जीवन का चित्रण है। लेकिन गोर्की प्रेमचन्द के समान कहीं भी किसी समस्या को लेकर जीवन का एकांगी नहीं बनाते। यत उनका सामाजिक वातावरण अधिक विस्तृत और अधिक व्यापक है। किन्तु प्रेमचन्द के समान निम्न वर्ग के जीवन से उनकी प्रतुष्टि स्पष्टतया प्रकट है। प्रेमचन्द प्रचारक और सुधारक होने के कारण न जीवन को संपूर्णता में देख पाए हैं, न उसके प्रति दृष्टि रख सके हैं। उनमें जो प्रत्यक्ष आलोचना और प्रचार है उससे गोर्की बहुत दूर हैं। प्रेमचन्द की तुलना में गोर्की की भेद्यता का कारण यही है। किन्तु पतित वर्ग के प्रति प्रेमचन्द की सहायुक्ति और उनकी ईमानदारी पर कभी सन्देह नहीं किया जा सकता है। उनके हृदय की बेचना और प्रतुष्टि गोर्की की बेचना और प्रतुष्टि से किसी दशा में कम नहीं है। दोनों के हृदय एक हैं और उनमें सहायुक्ति और दया के स्वन्दन ही है मने ही उनकी बौद्धिक क्षमताओं और अनुभव-क्षमाओं के अन्तर के कारण दोनों की कला में बहुत कुछ अन्तर था क्या हो।

दूसरी ओरी के उपन्यासों में देश की तत्कालीन जातिव्यवस्था का चित्रण और स्वतंत्रता के लिए आगे बढ़ने की प्रेरणा है। गोर्की का 'मैं' सोवियत क्रांति की प्रेरक शक्ति के रूप में प्रसिद्ध हो चुका है। प्रेमचन्द ने 'अमावस्य' 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' में देशीय जागरण का एक विशाल रूप धारित कर दिखाया। उनकी 'समर यात्रा' और बीसों कहानीयों से उनकी राष्ट्रीय चेतना स्पष्ट होती है। पाँबीदारी आदर्शों को स्वीकृत कर घसीम घास्ता के साथ गुलामी की शृङ्खलाओं को तोड़ने का प्रयत्न करती हुई जनता के हृदयों को उन्होंने समझा और अपने उपन्यासों और कहानीयों में प्रवर्तित किया। सोवियत की जातिव्यवस्था दूसरे प्रकार की थी। सर्वहारा वर्ग ने अपनी शक्ति पहचान ली और उस शक्ति ने अपने अधिकारों को हस्तगत करना चाहा। भारत की आध्यात्मिकता और गांधीवाद ने स्वयं कष्ट सहकर, स्वयं भाँटी-बोली सहकर शत्रुओं

को धार्मिकता से पराजित करने की प्ररणा दी। भारतीय और स्वी देवीय धार्मिक-मनों में जो घन्टर है वही प्रेमचन्द और मोर्फी के उपन्यासों में है। मोर्फी ने लिखा था "हम सब लोगों से पूछा करने की विषय है जिससे अधिक में ऐसा समय आवे जब हम सबसे प्रेम कर सकें। हमें ऐसा हर एक व्यक्ति को मिटा देना होना जो प्रपति के मार्ग में बाधक बन सजा हो जो अपनी कीर्ति और मरणा के निमित्त सब कमाने के लिए दूसरों का सब देता हो।" तो प्रेमचन्द ने बार-बार धार्मिक और धर्ममर्यादा का प्रचार किया 'तुम सब की सड़ाई सड़ रहे हो। सड़ाई नहीं यह तपस्या है। तपस्या में क्षय और उप या जाता है तो तपस्या स्रं हो जाती है।' १ प्रेमचन्द तो धार्मिकवादी और आध्यात्मिक है ही। पर अन्य उपन्यासों में धर्मवादी के रूप में दिखायी पटनेवाले मोर्फी भी 'माँ' में धार्मिकवाद और आध्यात्मिकता को अपनाते हैं। पात्र बन जाता है 'माँ' बनता है ऐसा एक समय आया जब लोग अपनी ही सुन्दरता को देख कर बहिन रह जायेंगे जब हर कोई दूसरों के लिए एक ठाण बन जायगा। सारी भूमि स्वर्णन लोगों में आबाद हो जो अपनी स्वतन्त्रता में महान होंगे। २ राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धित उपन्यासों में मोर्फी का उपन्यास प्रेमचन्द के उपन्यासों से अधिक शुद्ध है। प्रेमचन्द के समस्या प्रधान उपन्यासों से उनके राजनीतिक उपन्यासों का विषय विभिन्न है पर विषय जितना विभिन्न है उतना ही उसका विस्तार है और देश का सम्पूर्ण आकाशवाणी सामने आ जाता है। इसके विरुद्ध मोर्फी के अन्य उपन्यासों में जो ऐतिहासिक है वह 'माँ' में नहीं है। 'माँ' का कथानक विषय से इतर-उपर नहीं हटता उसमें पात्रों के वैयक्तिक जीवन का अधिक विस्तार भी नहीं है। पर 'बाइबल' 'मगनेट' 'फोमा गोर्बोव' 'आटेमनोव' आदि में जैसा विराट सामाजिक आकाशवाणी है वह 'माँ' में नहीं है।

टङ्क-मङ्क रास्ते और सीधा-सादा रास्ता

२१८ प्रेमचन्द के प्रधान राष्ट्रीय आकाशवाणी को विस्तृत रूप में प्रस्तुत करनेवाले दो बड़े उपन्यास 'टङ्क-मङ्क रास्ते' और 'सीधा-सादा रास्ता' हैं जो एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न दृष्टिकोणों से लिखित हैं। मगधवासीकरण कर्मों का उपन्यास १९८५ में प्रकाशित हुआ था राणाय रायच का १९९२ में। दोनों उपन्यासों का विषय और प्रायः पात्र भी एक-जैसे हैं पर दोनों के दृष्टिकोण में बहुत अन्तर है। इस अन्तर का कारण केवल लेखकों के वैयक्तिक मतों का अन्तर नहीं है उनके लिखने के समय का भी है। नौ वर्ष सार्वजनिक इतिहास में सायब सम्वाकाश नहीं हो पर इन उपन्यासों के विषय में धारणा महत्वपूर्ण है क्योंकि 'टङ्क-मङ्क रास्ते' उस समय लिखा गया था जब हमारे स्वातन्त्र्य-संग्राम का विधि-निर्णय नहीं हुआ था और राजनीति को

१ Mother P 153

२ कमलूमि पृ ३२२।

३ Mother P 154

भाषी बहि-विधियों की कल्पना विस्तृत नहीं की जा सकती थी। यह समय हमारे राष्ट्रीय मानस में बहि-विधियों का समय था। लेकिन 'सीमा-साश रास्ता' के लेखन के समय भाषी पत्र-पत्रों की राष्ट्रीय धारणा का विधि-निर्णय हुए घाट बर्ष व्यतीत हो चुके थे। अतः रायच रायच के सामने राष्ट्रीय विप्लव की अधिक ठोस सामग्री थी जो बर्माबी को उपलब्ध न थी। बर्माबी के लिए धारणा के अधिक सम्बन्ध में निश्चित पूर्व धारणा बनाकर लिखना कठिन था रायच रायच के सामने धारणा का परिणाम यथावत् रूप में था अतः उसके धारणा पर राजनीतिक बटनाओं और पार्टियों का प्रत्यक्ष करना अधिक सरल था। विभिन्न पार्टियों के संघर्ष में जो विधिमता थी उनसे जो चुटियाँ हुई, इन सबको ही बर्माबी ने देखा। पार्टियाँ स्वयं अपने-संघर्ष में जो दावा करती थी और अन्य पार्टियों पर जो दोषारोपण करती थी सबसे बर्मा-बी परचित थे। लेकिन उनकी दृष्टि एकाग्र है क्योंकि उन्होंने विभिन्न पार्टियों की विधिमताओं को ही देखा। इन विधिमताओं दोषों चुटियों और अपराधों के बीच में भी जो महान् सक्ति बागवत् होकर काम कर रही थी जो धारणा कल्याणकारी से कमीर तक की बनता के रूप में सहर्ष मार रहा था उनको बर्माबी ने नहीं पहचाना। अतः उनके कायेसी कम्युनिस्ट धारणा की किसीका भाग सीमा नहीं है सब पराक्रम का बरण करके विधेसी धारणा और उससे अनित नती बुद्धवस्थाओं को रहने देते हैं। इस तरह उपन्यास निराशावादी बन जाता है। किन्तु रायच रायच ने जन-चेतना को पहचाना है। विधेसी धारणा के विरुद्ध संपूर्ण जनता में और तथा कथित उच्चमर्गों के विरुद्ध निम्नस्तर के लोगों में जो बागवत् धारणा थी उसको उन्होंने स्पष्ट दिखा दिया है। समाज की वृद्धित प्रवृत्तियों में और स्वार्थमोक्ष प्रवृत्त बहि-विधियों के निष्ठ कर्मों के बीच में भी उनकी दृष्टि में मानवता की शक्ति बची है। स्वामता कहता है 'युनिया में धर्म इन्सानियत बाकी है। जिस दिन वह नहीं भी नहीं मिलेगी उसी दिन हम एक-दूसरे का गला घोंकर हत्या करने लगेंगे।' 'उन्ने-नेडे रास्ते' में स्वतन्त्रता के लिए अपने-अपने धारणा लिए बहनेबास व्यक्ति प्रतिक्रियात्मक दृष्टियों से रोक जाते हैं पर सीमा-साश रास्ता में न प्रतिक्रियात्मक दृष्टियों से लड़ते हुए भावे बद्ध हैं। इन धारणाओं के हान पर भी इन दोनों का प्रत्यक्ष के परभाव हमारे राष्ट्रीय धारणा पर सिद्धि सर्वथा उपन्यास मानना होगा।

प्रत्यक्ष के उपन्यासों की तुलना में देखा जाए तो इनमें वह विधान जनता नहीं मिलती जो 'प्रगल्भ' 'राष्ट्र' और 'कम्युनि' में है। ऐनीन धारणा पात्रों के होने पर भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि यह धारणा एक जन-धारणा है। पर कुछ मध्यममर्ग पात्रों तक ही सीमित रह जाता है।

बयासोस 'स्वाधीनता के पथ पर' 'फनर' 'बोत्र

२१६ हमारे राष्ट्रीय धारणा पर विविध जन उपन्यासों में प्रभावितारण

जीवास्तव का ब्यासीस गुरुदत्त का 'स्वाधीनता के पक्ष पर' हस्तक्षेप रहबर का 'कनर' धर्मतराय का 'बीज' धारि नाम लिए जा सकते हैं। ये बहुत उत्कृष्ट उपन्यास मही माने जा सकते क्योंकि इनमें विषय अत्यन्त समुचित हैं, दृष्टिकोण एकांगी है और तकनीक पुष्टिपूर्ण है। फिर भी हमारे राष्ट्रीय इतिहास को निपि-बद्ध करने के कारण ये उपेक्ष्य भी नहीं हैं।

'ब्यासीस' में १९४२ के आसपास का हमारा राष्ट्रीय वातावरण है। प्रताप-नारायण जीवास्तव की भोजस्विनी श्री स्वतंत्रता के लिए जनता में जो प्राण का उसे प्रभावशाली रूप में प्रकट करने में समर्थ हुई है। जमींदारों के आत्याचार, संघर्षों द्वारा हिन्दू-मुसलमानों में मत विरोध उत्पन्न करना उनके एजेंट बनकर मौलवियों और पुरोहितों का कट्टर आंध्रवाहिक मनोभावों का प्रसार करना—इन सबके बीच में श्री स्वतंत्रताकांक्षी जनता के हृदय की आध्यात्मिक अभिलाषाएँ पल्लवित होती हैं। सर्पमय जीवन भयंकर ज्वर में परिणत होकर सन् ब्यासीस का दमनीय चित्र खींचता है साम्राज्यवादियों का विद्रु बनकर जनता का घोषण करनेवाले जमींदार का पुत्र (विवाकर) ही स्वतंत्रता के समर में जाता है। पुत्री माधवी और यशोधरा समर से सहानुभूति रखती हैं। इनसे अतिरिक्त इस समर में सम्मिलित होनेवाले मध्यमवर्ग से आनेवाले अन्य पात्र भी हैं। यह बात स्पष्ट होती है कि भारत का जन-मान्यमान निम्न-वर्ग ही नहीं मध्यवर्ग से ही आये बढ़ाया गया। विवाकर अपने पिता से ही मारा जाता है और जमींदार पागल हो जाता है। यही शोकात्मकता का कारण है। मुझा पुरोहितों का मन-परिवर्तन गांधीबाब के संस्पर्श से मुक्त प्रादुर्भाव है।

गुरुदत्त का 'स्वाधीनता के पक्ष पर' १९३९ के राजनीतिक वातावरण पर लिखित है और सत्याग्रह आन्दोलन तथा आतंकवादी दल की हिंसात्मक प्रवृत्तियों के बीच के संघर्ष पर आधारित है। प्रादुर्भाव में लेखक का दावा है कि दोनों पक्षों को मर्चाव रूप में प्रकट करने पर ध्यान दिया गया है। किन्तु यह उपन्यास अपने सीमित पात्रों और उनकी पाटियों के सीमित वातावरण को छोड़ विद्यालय जन-आन्दोलन की ओर नहीं जाता। समस्त राजनीतिक पार्टियों के सदस्यों के वैयक्तिक स्वभावों में ही समाप्त हो जाती है। मुख्य पात्र मधुसूदन और पूणिमा के जीवन राजनीतिक प्रादुर्भावों से बढ़कर पारस्परिक रोमाञ्चिक प्रेम से ही संज्ञालित हैं। पूणिमा कन्वर पार्टी में भागकर बम फेंकती है और फिर मधुसूदन के पैरों पर पुष्पार्पण करती है। उनके प्रेम और उसमें आनेवाली बाधाओं से भरे हुए कथानक को 'स्वाधीनता के पक्ष पर' चलाने के लिए इधर उधर कुछ गांधीवादी और साम्यवादी नारे बुझा दिए गए हैं। मधुसूदन जो सत्याग्रह कर जेल जाता है जेल से भाग जाता है, तो उस भगोड़े से विवाह करने को पूणिमा तैयार न होती। यह फिर जेल जाना चाहता है। पूणिमा शिष्टा से उपेक्षित-पीड़ित होकर मर जाती है और मधुसूदन पागल हो जाता है। इस मानुष कथा से राजनीति का संबंध जोड़कर जो कथानक तैयार किया गया है वह मानुष और मानवमय है पर मर्चाव से बहुत दूर।

हस्तक्षेप रहबर के 'कनर' और धर्मतराय के 'बीज' में श्री सामाजिक विप्लव

का विकास रूप नहीं है। मजदूरों के वर्गों और राजनीतिक पार्टियों के राजनीतिक कार्य और उनमें जानेवाली बाधाएँ, फूट, संघर्ष इतने तक ही 'कंकर' सीमित हैं। 'बीम' का मुख्य धार्यण सत्यवान और राजेश्वरी का वैयक्तिक जीवन है जो बहुत पहले सूत्र से ही राजनीतिक संघर्ष से बाँधा गया है। इन दोनों में विचार और मानुषता का घनमेत सम्मिश्र है। जहाँ सेवक परिस्थितियों और समस्वाधों पर विचार प्रकट करते हैं, वहाँ केवल तर्क का आचार लेते हैं। उपन्यास के लिए अनिवार्य सामाजिकता में बंथित हो जाते हैं और जहाँ मानुषता में जो जाते हैं वहाँ तर्क-बुद्धि सून्यत्व हो जाती है।

मजदूरों के उपन्यास

२२० मजदूरों के सामाजिक उपन्यास घातकवादी दल की क्रांतिकारी प्रवृत्तियों का उद्घाटन करते हैं। 'बाबा कामरेड' 'हेसरोही' 'पार्टी कामरेड' 'मनुष्य के रूप' इनमें घातकवादियों की रोचक और रहस्यमय प्रवृत्तियों का विस्तृत चित्रण मिलता है। मजदूरों के स्वयं घातकवादी हैं और उन्हें उन सब क्रांतिकारी प्रवृत्तियों का परिचय है जो घातकवादियों ने अपनाई थी। साथ-साथ मजदूर-वर्ग की कठिनाइयों और उनमें फैले हुए असन्तोष से भी वे परिचित हैं। इन सब बातों पर मजदूरों के उपन्यास अतिशय हैं। लेकिन मजदूरों में न समुचित एवं विस्फोटक शक्ति प्रदान करके हैं और न क्रांति का सार्वजनिक रूप प्रस्तुत कर सकते हैं। इसीसे उनके पास प्रायः अतिमानव अथवा रोमांटिक हो जाते हैं। 'बाबा कामरेड' में घातकवादी दल की संघटित प्रवृत्तियों से अधिक सुसज्जित की अतीति प्रवृत्तियाँ हमें घातकवादी हैं। 'हेसरोही' में बाबा कामरेड के जीवन की बटनाओं की बहुलता प्रति की मात्रा तक पहुँच जाती है। मजदूरों के इन उपन्यासों का सबसे बड़ा दोष उनके पात्रों की वैयक्तिक जीवन का अनिश्चित प्रभाव है। स्त्री-पुरुष का पारस्परिक धार्यण प्रकृति का सत्य है पर उससे प्रेरित प्रवृत्तियों को अस्वाभाविकता तक पहुँचा देना जीवन की अनुचित ध्यास्या है। 'मनुष्य के रूप' में राजनीति वैयक्तिक जीवन के सामने सिर झुका लेती है और सम्पूर्ण उपन्यास स्त्री-पुरुषों के धार्मिक सम्बन्धों के आधार पर चलता है। सोमा स्वाभिमान की रक्षा के लिए स्वार्थ-नोबुध पुरुषों की कामवासना की दृष्टि के लिए बार-बार आत्मसमर्पण करती है। सोमा और मनोरमा के चरित्रों में नारी के विभिन्न मनोभावों का जो निरूपण किया गया है उसका विस्तार यहाँ पर्यप्त है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष की समस्या के सामने विद्यास राष्ट्रीय समस्याएँ भुल जाते हैं। 'बाबा कामरेड' की बात भी सत्य नहीं है। उसमें से रोमांटिक धंध को निकाल दें तो कुछ ऐसे राजनीतिक विचारों और पार्टियों के दृष्टि-बिन्दु भी नहीं रहेगा।

हमारा स्वातन्त्र्य-संघाम हमारे इतिहास की सबसे रोचक घटना रही है। हिन्दी उपन्यास के शीघ्र गति से विकसित होते समय हमारे देश में हुई जादूति और जन-आन्दोलन उत्कृष्ट कला को प्रेरणा दे सकते हैं। गांधीजी के नाम से देश का सम्मान

बच्चा पुमकित होता था। 'अन्वैमातरम्' धीर 'भारत माता की बच' मुझे मैं भी जीवन दासते थे। ऐसी महान घटना हमारे चाहिये को एकाधिक सचुतम कोटि की रचनाएँ प्रदान कर सकती हैं। लेकिन ध्यान तक भारत के इस राष्ट्रीय सपना के संलग्न में एक विद्याल उपन्यास नहीं लिखा गया है जो सपूर्ण भारत की बचती हुई भात्मा को अभिव्यक्ति कर सके।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पदवात् के देदीय वातावरण पर लिखित उपन्यास

२२१ स्वातन्त्र्य प्राप्ति के तुरन्त पदवात् हमारे हृदय का सबसे बेहता-जनक संलग्न देख—विभाजन के दुष्परिणाम के रूप में हुई सराष्ट्रीय घटनाएँ थीं। इनके आधार पर लिखित उपन्यासों में वज्रवत् का 'इन्धान' चतुरसेन का 'धर्मपुत्र' धीर बेनेज सत्वाची का 'कठपुतली' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कला की दृष्टि से प्रथम दोनों विषय महत्त्व के नहीं हैं। हिन्दू-मुसलमान द्वन्द्व से संबंधित पाछाधिक अत्याचारों को कला का रूप देना सहज कार्य नहीं है। हत्या धीर व्यवहार से उपन्यास में रोचकता और समझनी का सकती है। विधेयकर जब मेसक की मेसनी भी अत्यन्त तीव्र होती हो तब समझनी की कमी हो ही नहीं सकती। लेकिन हृदय के कोमल विकारों को धीरे धीरे जगाकर मानवता के प्रति स्वस्थ सहानुभूति की दृष्टि उत्पन्न करने के लिए नहीं पर्याप्त नहीं है। आदेश धीर उद्येय हृदय पर सात्विक प्रभाव नहीं डाल सकते। यद्यत्त में आदेश जितना अधिक है संतुलन धीर तर्क उतना ही कम है। 'इन्धान' का धारम हिन्दू-मुसलमान द्वन्द्व के वातावरण में किया गया है धीर फिर कम्युनिस्ट पार्टी की प्रवृत्तियाँ की आलोचना करते हुए मागनी आदर्शों की पोषणा की गयी है। द्वन्द्व के प्रसंग में जो भी बीमत्स हृदय उपस्थित किये गए हैं, वे प्रभावशाली अवस्थ हैं, पर उनका प्रभाव चौकानेवाला है अनुभूति का अभावमेवाला नहीं। क्रोध धीर आदेश में अत्याचार की जो आलोचना की गयी है धीर उसके बाद कम्युनिस्ट पार्टी के कस्वित एकाकी विभा-नमापो का सूचन करने उनका जो लक्ष्यन किया गया है, वे सब कलाकार के लिए क्या उचित हैं? पाठियों के परे अनुप्य की जो उता है उसे यद्यत्त देख ही नहीं सके हैं।

चतुरसेन भी हस्त रंगों का उपयोग करना नहीं चाहते। 'धर्मपुत्र' में रोमान्स धीर यथार्थ का अपूर्व मिश्रण है। एक अविवाहित मुस्लिम बालिका हुस्तबातू का अर्धध 'पुत्र' किसी हिन्दू कुटुम्ब में हिन्दू धर्म में पाला जाता है। वह कट्टर हिन्दू बनकर द्वन्द्व में भाग लेता है धीर माँ का ही भर जसा रंता है। यह जातीय प्रसंग अत्यन्त रोचक बना है। लेकिन उपन्यास का विषय स्पष्ट नहीं हो पाता। अर्धध यौन-सम्पर्क अनजान में हत्या का प्रमत्त आदि पुराने उपादानों का ही अवसरजन चतुरसेन ने किया है। हिन्दू मुस्लिम दगा यहाँ अपना स्वतंत्र महत्त्व नहीं रखता कबल कथानक में एक रोचक प्रसंग उपस्थित करने का कार्य करता है।

'कठपुतली' इस विषय पर सबसे सफल उपन्यास है। एक कलाकार के अनुभूति दीय हृदय में भारत विभाजन के बाद की घटनाओं का जो प्रभाव हुआ उसे अत्यार्थी में चित्रित किया है। साप्रदायिक विरोधों में कितन ही बन्धुओं को अलग-अलग कर दिया

कितने ही पारस्परिक सम्बन्धों को विच्छिन्न कर दिया। मानव-सुख पर इस समय में जो मयकर आघात किया वह सुनील मामक कलाकार के दृष्टिकोण से हमारे सामने आता है। वैयक्तिक जीवन धीरे-धीरे वातावरण का ऐसा सुन्दर सम्बन्ध सत्पार्थी ने किया है कि दोनों एक-दूसरे के कारण अधिक मार्मिक हो गए हैं। सुनील का कलात्मक रूप हिन्दू-मुसलमानों के आस्थापारों की झूठा को समझने में सहायक है तो उसका कलात्मक जीवन इस मयकर वातावरण में अधिक सार्वजनिक दिखाई पड़ता है।

४

द्वन्द्वात्मक जीवन का विदलेपण

२२२ सामाजिक उपन्यासों में प्रौढ़तम उनको मानेंगे जिनमें समाज-विकास को प्रभावित करनेवाली प्रेरक एवं अवरोधक शक्तियों के पारस्परिक संघर्ष का अध्ययन किया गया हो। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए, तो यह सच्य सच रहा है और उसी में मानवता का इतिहास निहित है। धर्म के उद्बुद्ध मानव ने इन परस्पर विरोधी शक्तियों को पहचान लिया है और मनुष्य को समझने के लिए आसोन्मुख तथा विकासोन्मुख शक्तियों का अध्ययन आवश्यक समझता है। वह विचारचार्य मार्क्स के द्वन्द्वात्मक मौलिकवाद की प्रणाली से प्रभावित है और दर्शन एवं सास्त्र के हर एक क्षेत्र में उसे बोझी-बहुत मान्यता प्राप्त हुई है। मार्क्स और एन्गल्स के द्वन्द्वात्मक दर्शन के धनुस्तर बन्धु (मौलिक एवं मानसिक) गतिशील है प्रकृति की परस्पर-विरोधी शक्तियों की एक-दूसरी पर जो प्रतिक्रिया होती है उसके परिणाम में होनेवाले विरोधाभास के स्वयं में प्रकृति में विकास होता है।^१

इन विरोधी शक्तियों से होकर विकसित होनेवाले समाज का विदलेपण धीरे-धीरे गति निर्णय करने के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से इस द्वन्द्व का अध्ययन करना होगा। यद्यपि समाजशास्त्र में ऐतिहासिक मौलिकवाद का विशेष महत्त्व है। समाज का अध्ययन करनेवाले कलाकार को भी इन शक्तियों के प्रति पूर्णतः अवगत होकर ही मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्ति का विदलेपण करना पड़ता है।

यद्यपि हिन्दी उपन्यासकारों ने बान-बुझकर द्वन्द्वात्मक (Dialectic) प्रणाली नहीं अपनायी है तो भी कुछ नवीनतम उपन्यासों में उसका प्रभाव अवश्य पड़ा है। उपन्यास के दारुम्यकास में समाज की बुद्धि शक्तियों का अध्ययन कर मताचार का उपदेन देने की जो प्रवृत्ति थी वह अब समाप्त हो गयी है। आज तब एक घण्टी कृतियों को समाज के

1 Dialectics...is only the reflection of the motion through opposites which asserts itself everywhere in nature and which by the continual conflict of the opposites and their final passage into one another or into higher forms, determines the life of nature.

—Engels Dialectics of Nature P 280

नैसर्गिक एवं मानकर बिस्लेषण करने की जो प्रवृत्ति पाई है वह इन्द्रात्मक प्रणाली की ही प्रवृत्ति है और ग्रीक बौद्धिक चिन्तन का स्रोतक है। समस्त विकसित होने का प्रयत्न करते हुए भी मनुष्य को विविध बाधाओं का सामना करना पड़ता है परम्परा के बन्धनों से मुक्त होने का प्रयत्न करने पर भी वह पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाता इन बाधों को ध्यान में रखकर जो उपन्यास लिखे गए हैं उनकी चर्चा यहाँ करेंगे। यहाँ यह बात स्मरण रखने की है कि ये समाज की आलोचना करके कुछ कल्पित आदर्श प्रपञ्चित करनेवाले उन उपन्यासों से बिल्कुल भिन्न हैं जिनमें ह्रास-विकास की परस्पर विरोधी शक्तियों का संघर्ष ही नहीं होता।

२२३ हिन्दी के इन्द्रात्मक बिस्लेषणाधी उपन्यासों को हम दो श्रेणियों में विभक्त करेंगे। प्रथम श्रेणी में ऐसे उपन्यासों को रखेंगे जिनमें परम्परा की प्रबल अवरोधक शक्तियों से संघर्ष करते हुए जीवन का प्रसरण होना दिखाया गया है। प्रथक का 'गिरती बीमार' अक्षय के 'बढ़ती घुप' और 'उल्ला' तथा गुरुवर के 'बुछन' की इस श्रेणी के प्रसङ्गत मान सकते हैं। द्वितीय श्रेणी के उपन्यासों में विकास के लिए प्रयत्नशील समाज का अवरोध करनेवाली प्रतिक्रियात्मक शक्तियाँ प्रवृत्ति की गई हैं। प्रथक का 'बड़ी बड़ी घाँघे' यज्ञराज के 'इसाक' और 'बदलती राहें' बृम्हावनसाध बर्मा का 'अमर बैल' प्रभाकर माधवे का 'साँचा' आदि की इस श्रेणी में रख सकते हैं। रंगु के उपन्यासों को इस श्रेणी के अधिक विस्तृत उपन्यास मान सकते हैं।

२२४ 'गिरती बीमार' में अक्षयजी ने पुरानी परम्परा की बीमारों के गिरने और नयी पीढ़ी की नवीन विचारधारा के निर्माण के प्रश्न को उठाया है। लेकिन प्रथक अक्षयजी ने सर्वत्र परम्परा को ही संशुद्ध रखा है। परम्पराओं और कड़ियों की बीमारों फिर नहीं पायी उनके सामने नयी पीढ़ी की आशाओं की बीमारें ही फिर जाती हैं। वेतन अपनी इच्छा के विरुद्ध चन्दा से विवाह करता है क्योंकि उसके माँ-बाप के मन में वह अपने स्वभाव की है। वेतन में विरोध करने का साहस नहीं है। विवाह भी नयी आर्यसमाजी रीति से होता है पर वेतन को पुरानी प्रथा की छिद्र-छाड़ और उल्लास से अभिष्ट होकर अन्त-हृदय होना पड़ता है। एक ओर प्रवृत्ति की तीव्र अभिलाषा दूसरी ओर पुरानी परम्परा हैं सम्बन्ध-विच्छेद करने में असमर्थ — यह सामाजिक विकास की सबसे बड़ी बाधा है। वेतन का वैवाहिक जीवन भी गये-मुराने के संघर्ष में ही बीतता है। वेतन के अमुकूल होने का प्रयत्न करनेवाली वह को पाप निकम्मी समझती है और उसकी हृदय शिकायत करती है। वेतन बाह्य कर भी पाना को पपा नहीं सकता बिनास होकर उसे पत्नी उठने देर से जाने और अग्य सब परम्परागत आदर्शों का पालन करने का आदेश देता है (पृ. १७३)। पर पाप-पाप वेतन को घुमाने से जाता है अधिक पढ़ा न करने को और ईशमुख रहने को भी कहता है। इस सबसे बुधित होकर सात पाँच बत्ती जाती है वेताभी पत्नी को डाँटती है। गये-मुराने विचारों के बीच ठोकर खानेवाली मेवारी चन्दा की बच्चा अत्यन्त प्यनीय है। दूसरी ओर नवयुवती सुन्दरी नीला का विवाह एक अयेड़ से होता है जिसे नीला की बच्चा बिना देने ही नीला के लिए चुन लेती है। यहाँ भी पुरानी बीमारें

प्रबल खड़ी रहती हैं आचार्यों और धर्मशास्त्रियों की बीमारों ही मिटती हैं ।

२२५ प्रबल के दोनों उपन्यासों में गार्हस्थ्य दृष्टि से कुछ समस्याओं का अध्ययन है । 'उठती हुई बौद्धिक चेतना और पीढ़ियों से बस आ रहे जीवन-न्यायी संस्कारों का पारस्परिक बात-प्रतिबात और संघर्ष' दिखाना उसका ध्येय है । परम्परा से बमती आनेवासी खड़ी-गसी रीतियों के विरुद्ध और उन रीतियों के कारण उत्पन्न हुए नूतनवासी परिस्थितियों के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले युवक-युवतियों के जीवन दोनों उपन्यासों में है । पर ये नव्यम और समस्याएँ देश के अग्रणीत सार्वजनिक बन्धनों और समस्याओं के रूप में नहीं आती केवल वैवाहिक जीवन की भ्रंशों से उत्पन्नी हुई हैं । 'बढ़ती धूर' का मोहन आर्थिक कष्टों और विषय परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ अन्तिकारी बन जाता है लेकिन इस अन्तिक को सामाजिक रूप देने में प्रबल सफल नहीं हुए हैं । 'बल्का' में स्त्री की पराधीनता की समस्या ही है । समुदाय के लोगों की पूँजीवासी सम्मता से अनित कंबूरी विभासिता स्त्री को केवल उपभोग की सामग्री समझने का भाव आदि सं संकु की जिसित परिष्कृत और स्वाधिमानी धारना विद्रोह कर उठती है । समुदाय में धनाहृत नारी का धावर मातृगृह में भी नहीं होता । हर बन्ध उसे संघर्ष करना पड़ता है ।

इनमें किसी उपन्यास में विद्यालय दृष्टि से परिवर्तनशील समाज की विभिन्न प्रवणताओं का विरलेपण नहीं किया गया है । परिवार के विकास की दृष्टि से देखा जाय तो हमारे समाज के सम्मिलित परिवार वा जीवन और उसका अन्तः पतन एक अन्धे उपन्यास का विषय बन सकता है जो गार्हस्थ्य के 'अरसाष्ट साया' के समान विद्यालय आकार और वैज्ञानिक अध्ययन से अति गम्भीर बन सकता है । इस विषय को 'मुष्टन' में बुरबुर ने उठाया है पर उसे समालन की शक्ति सेवक में नहीं है । मान बीम सम्बन्धी सांस्कृतिक विचार-बन्धनों, और पीढ़ी-दर-पीढ़ी बदलती हुई सामाजिक मान्यताओं पर ध्यान रखते हुए विषय का निर्वाह संभव नहीं कर सके हैं । नयवत स्वल्प की पीढ़ी के परभाव उसके पुत्र-पुत्रियों की पीढ़ी जिस रूप में बदलती है वह समाज अर्थिक विकास के अनुभूत नहीं है । दोनों पीढ़ियों का अन्तर इतना अधिक है कि उनपर सहज विषाद नहीं किया जा सकता है । बलुण समाज का विकास ऐसा नहीं होता बसकि मार्च के अन्त में कभीपर का पृष्ठ सलटने पर तुरन्त मार्च के चिह्न मिट जाते हैं और धर्मेस धा जाता है । सन्धी बात यह है कि जीवन परम्परा से मुक्त होने का प्रयत्न करते हुए, पर पुख मुक्त न होकर निरन्तर विचलित होते हुए, उस प्रकृति के समान बदलता है जो अपने परिवर्तन का स्पष्ट आभास दिए बिना ही मार्च से धर्मेस में चली जाती है । स्पष्ट देखाए जीवनकर नामाजिक विभास की विभिन्न दशाओं की सीमा निर्धारित करना धमम्भव है । मुदत का जीवन कलण्डर के पृष्ठ के समान बदलता है । दोनों पीढ़ियों से अलग-अलग निविचन आकारों के सौर्षों में आसकर कुनिम आचार निये गए हैं । आ-बाप पुरानी भारतीय पूँजीवासी परम्परा के हैं पुत्र विभास्यती

विद्या-भाष्य बीबीन जो मां-बाप से समझ होना चाहते हैं। पुत्र स्वयं विवाह करने और धनम रखन का निश्चय करने के बाद मां-बाप को सूचना देता है। मां-बाप के यह पूछने पर कि कितनी बार हमें देखने आओगे जवाब देता है कि कितनी बार माताजी उसके (बहु के) पास आया करेंगी। (पृ. १८)। पत्नी के लिए मां-बाप से भसप होते हुए पुत्र में और मां-बाप में जो मानसिक संबंध होना वह एक दृष्ट कमा कार के हाथ में अनुभूतियों का एक भ्रम संसार ही रह सकता था। पर पुरुष ने इस मामिक प्रसंग को नहीं पहचाना है। इसी तरह सम्पूर्ण उपन्यास लेखक के भावों से कसकर दबाये हुए पात्रों से भरा हुआ है।

२२६ दूसरी ओर की उपन्यास प्रायः १९५३ के बाद लिखे गए हैं और उनका विषय स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् का भारतीय समाज है। देश में नया सचिवाज बना नये नियमों का निर्माण हुआ नयी योजनाएं बनाई गयीं इन सबको कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त प्रयत्न भी किया गया। लेकिन इन सबके बीच में कितनी ही विरोधी शक्तियाँ ने बाधाएं उपस्थित की। एक ओर बुजुर्गों में पुरानी संस्कृति की स्वच्छन्द और स्वस्थ विकास को रोकने लगी तो दूसरी ओर अगसरवाहियों और समाज-रोहकों (Social climbers) के भ्रष्टाचार भी बने रहे। इस दशा के प्रति भयंकर अनुप्राण प्रकट करता ही इन उपन्यासों का मुख्य ध्येय है। बर्फी-बर्फी-सूजन के पश्चात् देश भर में फैले हुए भ्रष्टाचार का लम्बित 'धमर बेस' का विषय है। अश्विन और अन्य वस्तुओं का भोरजाबार, पुलिस विभाग के भ्रष्टाचार लूट-मार सहकारी समिति और बेटों की बकबन्दी आदि में कार्यकर्ताओं की भयंकर क्षीणियाँ इन सबपर बर्मा-बी की सूक्ष्म दृष्टि लगी है। योजनाओं के प्रति जनता की अनास्था और अन्धेह नवी वस्तु को अपनाने में संका करनेवासी हमारी मानसिक पराधीनता का परिचायक है। 'पटवारी और बायोगा के भ्रष्टाचार और अगसरों से लाभ उठाकर अपनी दशा को सुदृढित और हड़ बनानेवाले पूजावासी ही पक्षधर के 'बदसती राहों' में भी राह के कबजने में वाक्क हैं। मुन्सुलाला जो पहले ही स्वार्थी और शोषक था अब समाज में अधिक बन और उन्नत पद प्राप्त कर लेता है 'भुम्भू जाला एक साधारण सड़क पर पड़े पत्थर के टुकड़े से बहकर अब तक विज्ञान पर्वत बन चुके थे।' नयी पीढ़ी के विषय और धीमा के भावार्थ कर्मों और उनकी प्रेरणा से रसबीर सिंह अपने समय आदि के मन-परिवर्तन में समाज की उन्नति का आकाशवादी समझान मिलता है। इसे प्रमत्त के उपन्यासों का सुधारवाद भी मान सकते हैं, लेकिन भ्रष्टाचारों की व्यापकपूर्ण आलोचना न करके धर्मार्थ को लेखक ने यथार्थ के रूप में अपनाया है। 'बड़ी-बड़ी धाँचें' 'इसाफ' और 'साँचा' निराशावादी हैं। आज हमारे समाज में जो जाहिरकारी और पालन्य फैले हुए हैं उनकी कतई धमक ने 'बड़ी-बड़ी धाँचें' में कोम बिछायी है। सुधार के नाम से कितनी ही संस्थाएँ जाली जाती हैं कितने ही लोग बेस-सुधार और समाज-समा करने का दावा करते हैं। पर

इन सबमें बाहिरबारी भी क्रम नहीं होती। जितना बाहरी दिखावा होता है, धुमार के जितने मध्य रूप का हिडोरा पीटा जाता है, उतना ही आन्तरिक खोखलापन भी होता है। देवाजी के द्वारा स्थापित 'वेवनगर' 'वेवमण्डल' 'वेववाणी पत्रिका' आदि में उन सब संस्थाओं के प्रति तीव्रण आस्था है, जिनके नाम सुन्दर होते हैं, विज्ञापन धुमावने होते हैं, पर जिनके अन्दर ही अन्दर हृदयहीन स्वार्थ का गन्ध नाट्य होता है। देवाजी का प्रैक्टिकल स्कूल जोषना एक उदाहरण है। 'देवाजी के सामने इस समय सब से बड़ा आश्चर्य इस सस्ती खरीदी जमीन को ऊँचे शर्मा बेचना है। लेकिन इस बीचने में कोई क्यों आया और क्यों महंगी जमीन मोल लेगा? इसीलिए उन्होंने प्रैक्टिकल स्कूल शुरू किया है।^१ इस प्रैक्टिकल स्कूल में घपीर भड़कों को ही जगह मिलती है। यह बोंग और इकोसला तक बाँकर भयकर रूप में प्रकट होता है जब गाँव और पास पास में भयकर घाबी के कारण किसानों का सर्वनाश होने पर भी सर्वत्र बाहि-बाहि मचने पर भी बड़ी धुम-धाम और कोलाहल से स्कूल का उद्घाटन किया जाता है, जिसमें देवाजी कोरी निर्जन्मता से लेबरर भड़के हैं। 'देहात की इस ठगानी को दस कर मन नहीं होता कि हम प्रैक्टिकल स्कूल के उद्घाटन का उत्सव मनाएँ लेकिन मीठ का एक ही बरबाद है—बिन्दगी। नाश का एक ही बरबाद है—निर्माण। इस जुत्सी में हमारी सारी वृत्तियाँ जल्दी माइनों साधियों और परोसियों की ओर लगी हुई हैं जो इस बेबी विपत्ति में अपनी सारी कमाई गुंटा बैठे हैं।^२

धन और अधिकार के ठेकेदारों के अत्याचारों से विवश कुपकों की ओर निराशा को यथार्थ में इसाफ में बड़े मामिक ढंग से प्रकट किया है। क्याधू और पत्नी जम्हो बड़े उत्साह से आबाबी की बीपमावा बभाते हैं 'यह आशा करते हुए कि 'आबाबी में कुछ होया कपड़ा होया खाया होया और इन्सानियत का अधिकार होया'^३ जमींदारी के अन्त से प्रसन्न होकर बेबरों तक को बेचकर सरकार में जमा करते हैं। लेकिन उनकी आशाएँ एक-एक करके मिट्टी में मिल जाती हैं। जमींदारी गयी तो भी किसान को भूमि नहीं मिली। खोपख का रूप-मान बरसा। एक के स्वाम में अनेक खोपक धा बमके। अन्त में उनको कड़ना पड़ता है 'इस आबाबी से तो आबाबी न मिलती बहूँ धन्धला पा'^४ जीवन-भर सघर्ष करते हुए उन्हें पुमिस जमीन से निकालकर छोड़ देती है—मजदूरी का आशय लेने के लिए। क्याधू का यह धन्ध होरी के अन्त के समान ही ककलापनक है।

ऐसी ही परिस्थितियों का विस्तेरण करके प्रयाकर माचवे 'साँचा' में ईमान-बारी से लिखा बैठे हैं कि पहले जीवन एक साँचे में था अब भी साँचे में है। जीवन का विकास नहीं हो पाया है। 'हमारी जिन्दादियाँ साँचे में जैसे बँध-सी गयी हैं।

१. बडी-बडी बीजे, पृ. ११६।

२. बडी-बडी बीजे, पृ. १७१।

३. इसाफ, पृ. १६।

४. इसाफ, पृ. १७।

विधि-नियम के से चौकटे लाने दखे दराज छोटे छोटे घामे और बिल ! क्या हमारी इच्छाएँ और हमारे दराजे कोई पालतू परती हैं या बिड़ियाखाने में कँद बोतल-बंद पालतू-कौट ? ^१ इस बयनीय दराज में भी जो घाघा बंधी हुई हैं, उसे सेखर ने एक मकदूर के छोटे बच्चे के आग्रह के रूप में प्रकट किया है। वह भी 'मारत का राजा' होना चाहता है। ^२ इस भवाव आग्रह में एक आघावाही भाव है, तो साव-साव हमारे रक्त में धरी हुई प्रतिकारेण्णा भी है।

कसी उपम्यासों से तुमना

२२७ विपय-साम्य के कारण इन उपम्यासों की तुमना स्व के सामाजिक निर्माण-संबन्धी उपम्यासों से की जा सकती है। धस्तुवर-विपय ने स्व के शोषक और पूँजीवादी वर्गों को एकदम समाप्त नहीं किया था। राष्ट्रीय विकास योजनाओं को कार्यान्वित करते हुए कसी बनता को भी उनके प्रतिक्रियात्मक शक्तियों का सामना करना पड़ा था। इन शक्तियों का शोषित उपन्यासकारों ने बड़े वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया है। शोषक-वर्ग की स्वार्थ भावना ज्ञानेवाले निम्नवर्गों के कुछ अन्न सरकारी व्यक्तियों के स्वार्थमूलक कार्य संयुक्त विरोध और उग्रव्य समाज विरोधी प्रवृत्तियाँ इन उनके प्रतिरिक्त योजना के किसी विशेष क्षेत्र में काम करने-वाले नये कार्यकर्ताओं की अनुमतिहीनता और धमकीभित प्राकृतिक शक्तियों के कारण होनेवाली कठिनाइयों को भी कसी उपम्यासकारों ने सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। सोसो-खोब डेविन फारदेन मास्नोवस्की कोखेवनिकोव बकस्विन यसीना निकालयेवना आदि लेखकों के निर्माण-संबन्धी उपम्यासों में इस दुन्हात्मक जीवन-विकास का वैज्ञानिक अध्ययन है। सोसोखोब के 'नयी कुटी जमीन' में साम्यवादी निर्माण-यष्टियों में बाबा डालनेवाले और व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा करनेवाले क्रुसकों की प्रवृत्तियों के साथ ही उनको निर्दयता से मोमी मारकर या देश से निकालकर योजनाओं को बिजली बनाने का विचार है। ^३ तरह-तरह के सन्नेहों के कारण नयी योजनाओं और नये सिद्धान्तों को स्वीकृत करने में असमर्थ अन्न बनता के प्रति सोसोखोब को ड्रेप नहीं अपार सहानुभूति है। डूकोव सिन सन्नेह करता है कि सबसे बेस बच्चे स्त्रियाँ कटोरे चम्मच सब स्टेट के बनाए जाएँ। ^४ डूडियों में यह बातों उँल जाती है कि सबको काम करना होगा अतः उन सबको भी अँडों पर बैठकर उन्हें खँकने का काम दिया जायगा। और वे एकदम इंकलाव के लिए तैयार हो जाती हैं। ^५ सामूहिक कपि-कर्म

१. सँचा, पृ. १६।

२. सँचा, पृ. १७।

३. Vergin Soll Upturned P 12, 43 84-85, 208, 287

४. Ibid., P.24

५. Ibid., P 203

में सगे कामचोर कृपक रपया बचाने के लिए झूठ बोलनेवाले " सबको सोसोखोख में हमारे सामने खड़ा कर दिया है। बाइबिल के 'फ्लोटिंग स्टागिस्ता' में सबसेबड़े कुटुम्ब के प्रथम सार्वजनिक मत्स्यबाधियों से छिपे छिपे मछली पकड़कर व्यक्तिगत लाभ उठाना चाहते हैं तो कायकर्ताओं में ही कुछ लोग निरोधित स्थलों पर घोर मिसे-मिथ मछलियों को पकड़ते हैं। उधारखरण बढ़ाने की प्रावश्यकता नहीं है। प्रायः सभी उपन्यासों में ऐसे प्रथम मिलते हैं। इन उपन्यासों की विशेषता यह है कि लेखकों ने जीवन की इन समाज विरोधी प्रवृत्तियों के कारण निराशा की दृष्टि से गहरी देखा है। इन विरोधियों को या तो स्वयं उबरकर नये सिद्धान्त को अपनाया पड़ता है या वे बड़ी निर्ममता से नष्ट किये जाते हैं। प्रकृति की बिनाबकारी छत्तियाँ एक-एक करके बीती जाती हैं। मनुष्य को ही नहीं बर के बरों मछलियों तक को प्रकृति की निंदा बनाओं से बचाया जाता है। १६२३ से लेकर आज तक के सोवियत उपन्यास प्राप्तावाही हैं। उन्हें भ्रष्टकार के बीच में भी एक ज्योति स्पष्ट दीख पड़ती है। बिनाम मछुमि में बुर पर हरिमासी दृष्टिगत होती है। 'नवी पुठी पमीन' में नाबुसनोव कहता है, "सब लोग मिसे-कुले हो जाएँगे। घोर पीसे और कासे की चर्चा तक न रहेगी। सबके बेहरे प्रसन्न रहेंगे।" "कसल" में बासिनी पराजयों के बीच में भी अपने-आप कहता है "मैंने नटकाये रहने से क्या फायदा? आज बुरा है पर कम भ्रष्ट होगा। संभव बाधों" "फ्लोटिंग स्टागिस्ता" में बासिनी की घोषणा है "बिनाबकारी मनुष्य का लोन हो रहा है और उसके स्थान पर एक नये रचनाकारी मनुष्य का उदय हो रहा है।" इन सब उपन्यासों में एक नये प्रकार का मानवतावाद है, जो मनुष्य की अपार क्षति पर विरक्त करता है।

हिन्दी के उपन्यास उपन्यासों में भी समाज की ऐसी हतात्मक प्रवृत्तियों का अध्ययन हुआ है। प्रेमचन्द के काम से लेकर आज तक इन प्रवृत्तियों के अध्ययन की एक निरन्तर धारा प्रवाहित होती आयी है। राजनीतिक एवं सामाजिक दृष्टि से बनता को समझने के लिए ये उपन्यास अत्यन्त उपयोगी हैं। कम में प्रफुल्ल-कान्ति के परचात एक निश्चित परिपाटी के अनुसार साहित्य-सर्जना करने के लिए जो लेखक-व्यक्तियाँ बनायी गयीं उनके कारण ऐसे उपन्यासों की रचना का एक जोड़-पूरा प्रयत्न हुआ। अतः इन उपन्यासों में समाज की पतनोन्मुख एवं विकासोन्मुख शक्तियों का द्वन्द्व का अधिक वैज्ञानिक अध्ययन हुआ तो आश्चर्य की बात नहीं है। पर मारत में ऐसी कोई पद्धति नहीं बनी अतः हतात्मक समाज-विश्लेषण के प्रीकृतम सवाहरण प्रस्तुत नहीं हुए। कुछ लेखकों की ओर से इन विषय में जो प्रवृत्ति हुई वह स्तुत्य है।

१ Ibid P 92.

२ Ibid P 253 108-109

३ Ibid., P 166.

४ Harvest, P 154.

५ Floating Stanitza, P 278.

रेणु के उपन्यास

२२८ रेणु के उपन्यासों में यही आशावाद और मानवतावाद मिलते हैं। 'मेसा घाँस' और 'परती परिकषा' दोनों ग्रामीण विकास-योजनाओं से संबंधित हैं। इसी योजना-उपन्यासों के समान इनमें जीवन का दृष्टांतमय रूप प्रस्तुत है। योजनाएँ घाँसे बढ़ रही हैं जनता का पूरा विश्वास नहीं है। 'परती परिकषा' में जनता बिड़ोह के लिए भी तैयार हो जाती है। रेणु की दृष्टि सम्पूर्ण सामूहिक जीवन पर है। ग्रामीण जनों में जो स्वार्थ-पक्षपात और पारस्परिक ईर्ष्या है वे निर्माण कार्यों में बहुत कुछ बाधक हैं। लेकिन रेणु इन सबसे गिराव नहीं होते। उन्हें जनता की शक्ति पर आस्था है। बाधरहित हाँसी हुई जनता पर और संपन्न बरती की संभावनाओं पर उन्हें पूरा विश्वास है। वही आशावाद और मानवतावाद यहाँ बंध सकते हैं जो कभी उपन्यासों में मिलते हैं। परजबो ॥ निराश न होकर प्रयत्न करता है मैं फिर काम शुरू करूँगा। यही इस गाँव में मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। घाँस से भीगी हुई बरती पर प्यार के पीछे सह-सहाय्ये। मैं साबना करूँगा। ग्राम्यवासिनी भारतमाता के जैसे घाँस तले। कम से कम एक ही गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाने होंठों पर मुस्कुराहट लौटा सकूँ उनके हृदय में आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ।^१ अज्ञान धर्मविश्वास व्यवस्थावाद स्वार्थ-आनुपता इन सबसे भरे हुए सोपों के घाँस की परती भूमि भी अन्त में 'आसन्न प्रसन्न हो' करबटें बरसने लगती हैं।^२ हिन्दी के नवीनतम उपन्यासों में प्रकट होनेवाली यह आशा क्या स्वतंत्रता की वायु में स्वास लेती हुई हमारी जनता की आशाओं-अभिजायाओं तथा कल्पनाओं की प्रथम किरणें तो नहीं हैं ?

५

सूक्ष्मांकन

२२९ हिन्दी उपन्यास की मुख्य सामाजिक प्रवृत्तियों का विवेचन करने के बाद अब हमें देखना है कि उसमें भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब कहाँ तक हुआ है और कितनी विस्मयता के साथ हुआ है।

बिना संदेह के हमें कहना पड़ेगा कि हमारे उपन्यास साहित्य में सामाजिक जीवन का एक बृहत् खंड उपस्थित रहा है और जिन खंडों का अध्ययन हुआ है वह बहुत अभाव नहीं है। कोई निवेसी पाठक हमारे उपन्यासों में हमारे सामाजिक जीवन का ज्ञान प्राप्त करना चाहे तो प्रेमचन्द के प्रतिरिक्त और कोई सबल सहाय उसे नहीं मिलेगा। प्रेमचन्द ने हमारे समाज का चित्रना निस्तुत अध्ययन किया है और सभी भेदकों ने मिलकर भी नहीं किया है।

१ मेसा घाँस पृ. ४२५।

२ परती : परिकषा पृ. ५१८।

विस्तार का अभाव

२३० हमारे उपन्यास साहित्य की एक बड़ी बमी है। न सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर हमारे उपन्यासकारों का ध्यान गया है न वैयक्तिक जीवन की वैविध्यपूर्ण मनोवृत्तियों पर। दोनों क्षेत्रों में हमारे उपन्यासकारों ने कुछ विशेष और विभिन्न प्रवृत्तियों को ही लेकर अपनी प्रतिभा समाप्त कर ली है। हमारी सम्मिश्रित कुटुम्ब प्रथा का वास्तविक स्वरूप किसी उपन्यास में मिलता है? जैन धार्मिक घर की बहुरसीबारी के घन्दर रखकर भी बरेलू जीवन का जो सपूर्ण चित्र खींच सको वह निश्चित ही प्रशंसनीय है। गाँसबर्नी ने कई पीढ़ियों का शृंगसाबद्ध इतिहास प्रस्तुत करके पारिवारिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को ही नहीं प्रकट किया है बल्कि ग्रंथी समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन भी किया है। हिन्दी में आज तक इस बरेलू जीवन से और सामाजिक विकास से संबंधित कोई उपन्यास नहीं लिखा गया है।

देश के विद्यालय बातावरण को लेकर प्रेमचन्द के प्रतिष्ठित हमारे कितने लेखकों ने लिखा है? यूरोप के पनोरमिक उपन्यासों में विविध घण्टियों की जगह को विभिन्न राज्यों को और मिश्र मिश्र संस्कृतियों को लेकर जो विद्यालय अध्ययन किया गया है वह संपूर्ण मानवता को समझने के लिए पर्याप्त है। यूरोप-भर के युद्धकाशीन बातावरण को सामने लानेवाला 'भीषी' फ्रांस और रूस के नेपोलियन के समय के बातावरण के साब-साब संपूर्ण मानवता के हृदय-विकारों का अध्ययन करनेवाला 'युद्ध और शान्ति' १९११ से १९१२ तक के रूस के संपूर्ण समाज को और सशर की एक सबसे महान जटला को अपने-आपमें समाविष्ट कर रखनेवाले 'बोन' उपन्यास धार्मिक अपनी विस्तृति तथा जीवन के अध्ययन के कारण ही इतने प्रसिद्ध हुए हैं। भारतीय जीवन भी अपने वैविध्य और वैविध्य के कारण इतने ही विद्यालय उपन्यास की सामग्री दे सकता है पर आज तक हिन्दी में ही नहीं किसी भारतीय भाषा में ऐसे विद्यालय उपन्यास लिखने का प्रयत्न नहीं किया गया है।

एक ही व्यक्ति के अथवा कई पीढ़ियों के वैयक्तिक जीवन के साब-साब विद्यालय सामाजिक जीवन को भी प्रस्तुत करनेवाले सखिषोपम उपन्यास में सामाजिक जीवन की विद्यालयता और वैयक्तिक जीवन की अभावता सिद्ध होती है। हिन्दी में सखिषोपम उपन्यास का जो कहने योग्य विकास नहीं हुआ है।

हमारे आलोचनात्मक उपन्यासों में शिकेस और बँकरे की सी विस्तृति नहीं है और न वास्तव्यवस्की का सा अभाव अध्ययन। शिकेस और बँकरे ने जिस ग्रंथी समाज को प्रकट किया उसमें सर्ववृत्तियों का अभाव नहीं तो कमी अवश्य है। फिर भी जिस दृष्टि से उन्होंने लिखा उस दृष्टि से देखा जाए तो उनका विस्तार पर्याप्त है। अपने तिकता के बितने कम समाज में प्रकटित हैं उनमें प्रायः समीका निरूपण उन्होंने किया। लेकिन हिन्दी उपन्यास में समाज की जिन कुर्वृत्तियों की खोज हुई है उनका अवश्य अधिकतर धार्मिक जीवन-संपर्क से ही है। धार्मिक सोपण और सांप्रदायिकता पर भी बोजा-बहुल लिखा गया है। इन विषयों पर लिखित उपन्यासों में भी बहरे अध्ययन और सुनिश्चित विस्तार का अभाव है। वास्तव्यवस्की और वास्तव्य ने धार्मिकता

को धारणा की समस्या के रूप में देखा। पाप-भूति और परमात्मा मानवता के अधिकतम धर्म हैं। पशुता से मानवता की ओर बढ़नेवाले मनुष्य के विकास की मध्यम रचना में दोनों का जो संघर्ष है उसका दार्शनिक विवेचन जैसा हम लेखकों ने किया है, हिन्दी के किसी कथाकार ने नहीं किया है।

हमारे अतिशारी लेखकों के उपन्यासों को देखें तो और भी गिराव होना पड़ता है। भारत की वैदीय अन्तिम का इतिहास प्रस्तुत करनेवाला कोई भी स्पष्ट उपन्यास हमें नहीं मिला है। जो उपन्यास मिले गए हैं उनमें प्रेमचन्द के उपन्यासों को छोड़कर किसी में विद्यालय जनसमाज की आन्तरिक नहीं दिखाया गया है। यद्यपि की अन्तिम कुछ व्यक्तियों तक ही में सीमित रहती है। प्रेमचन्द उन कृपक लोगों के जीवन तक पहुँच पाए, जो हमारे देश की सबसे बड़ी सृष्टि है। पर इस परम्परा को विकसित करने-वाला परवर्ती लेखक एक भी नहीं हुआ।

राष्ट्रीय अन्तिम की दृष्टि से ही नहीं सामान्य जीवन की दृष्टि से भी देखा जाय तो हमारे उपन्यासों में निम्न वर्गों की विशेषकर कृपक-वर्ग की जो उपेक्षा हुई है वह अत्यन्त है। जिस देश की गम्भीर प्रतिष्ठित जनता कृपक वर्ग की है उसके उपन्यास साहित्य में उस वर्ग का सम्पूर्ण जीवन प्राप्त न हो तो वह निश्चय ही देश का शिथिल है। हमारे देश के निरन्तर जीवन से संघर्ष करते हुए बार-बार बाढ़ों प्रति वर्षाओं सूखियों अकालों और महामारियों का सामना करते हुए जीवन-यापन करनेवाले घरों के लोगों को जो स्थान मिला है, उससे अधिक वैयक्तिकों को और विद्वत् चिन्तवृत्ति के कुछ युवक-युवतियों को प्राप्त हुआ है। हम यह नहीं कह सकते कि कृपक या मजदूर वर्ग के चित्रण से ही कोई उपन्यास ग्रहपटा बनता है। विशिष्ट मनोवृत्तियों का गहरा अध्ययन भी उपन्यास को उत्कृष्ट बना सकता है। लेकिन सामाजिक उपन्यासों में समाज के वृद्ध धर्म की उपेक्षा करके विकृत नवम्ब वर्ग का ही प्रतिबिम्ब प्रस्तुत किया जाय तो वह अत्यन्त चिन्तनीय विषय बन जाता है। इस्फापी व्यभिचार और वैयक्तिक कुष्ठ समाज की सबसे बड़ी बातें नहीं हैं। पर हमारे सभी प्रकारों के अधिकतम उपन्यासों के प्रमुख विषय ये ही हैं। सामान्य दृष्टि से देखा जाय तो हमारे उपन्यास-साहित्य ने भारत के आम पुरुष और आम स्त्री को क्या स्थान दिया है? 'आम पुरुष' और 'आम स्त्री' का यहाँ तात्पर्य अधिक-वर्ग के स्त्री-पुरुषों से ही नहीं है सामान्य स्त्री-पुरुषों से है जो किसी भी वर्ग के होने पर भी कई बाह्य एवं आन्तरिक भिन्नताओं के बीच में भी प्रतिशत धर्मात्मा रखकर 'भारतीय' बने हुए हैं। क्या हमारी अधिकांश स्त्रियाँ सिद्धोपेन से इस्फापी करनेवाली हैं? क्या हमारे अधिकांश स्त्री-पुरुषों के जीवन का सबसे बड़ा धर्म व्यभिचार या वैयक्तिक कुष्ठ है? अनेकी समाज और उपन्यास में स्त्रियों के जो रूप मिलते हैं, हमारी तुलना करते हुए बर्बादिया ब्रूस्ट ने स्थापित किया है कि उपन्यास स्त्रियों के प्रति न ईमानदार रहता है, न स्वायत्त कर सकता है। ब्रूस्ट ने स्पष्ट कहा है 'अधिकांश स्त्रियाँ न व्यभिचारिणी होती हैं, न सिद्धोपेन से इस्फापी करनेवाली। उनकी दृष्टि में साधारण स्त्री अपने घर के ही कामों में डूबी हुई और अपने

बच्चों से उसकी हुई विज्ञापी पड़ती है।^१ अगर अंग्रेजी समाज की दृष्टा यह है तो हमारे भारतीय समाज की जिसमें स्त्रियों को समाज ने बहुत-कुछ नियन्त्रित कर रखा है और जिसमें स्त्रियाँ स्वयं अधिक संकोचशील हैं उसकी क्या दृष्टा होगी ? अगर हम भारत के किसी भी वर्ग की क्याप्राप्त साधारण नारी से पूछें कि उसके लिए जीवन का मतलब क्या रहा तो वह बीच में पड़कर मरनेवाले कण्ठ से बताएगी कि उसका योगा-कर्म हुआ वा पति से प्रथम भिन्न के अवसर पर वह उसे नाम से छिछक मयी भी सहेमियों ने उसका कसा मक्काक छड़ाया वा उसके पहले बेटे का जन्म कर्म हुआ वा दूसरी बेटी के लिए उसने कितने कष्ट सहे जे लड़ाई के समय बीड़ों के दाम कैसे प्राप्त-मान तक बढ़ कर से और अपनी प्यारी छोटी बहन की धकाल-मृत्यु के अवसर पर वह इतनी रोयी थी ! यह है भारत की साधारण नारी। इस साधारण नारी के प्रति हमारे उपन्यासकारों ने कितना म्याम किया ? और उची तरह हमारे साधारण पुरुष के जीवन को हमारे उपन्यास-साहित्य ने कितनी ईमानदारी से प्रतिबिम्बित किया है ? मानवता के पुकारी इस महादेश में बिस्व-साहित्य की उत्कृष्टतम रचनाओं की श्रेणी में आनेवाले ऐसे उपन्यास नहीं मिले जा सके हैं जो भारत के महामानव के पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन का अम्यारियक और भौतिक जीवन का बौद्धिक और मानसिक जीवन का परिचय दे सकें। भारत की आत्मा को प्रबुधित करनेवाले लेखक हमें कितने मिले हैं ? सगता है कि हमारे अधिकोष्ठ लेखकों से बढ़कर पर्यं एष बक ने भारत की आत्मा को समझा है। जब इस बिदेसी महिला के एक पात्र के मुँह से निकलता है कि 'भारत अपनी मिट्टी पर पैर रखनेवाले हर व्यक्ति को बदल देता।'^२ तब वह भारतीय संस्कृति का सज्जनाय-सा जगता है। भारतीयों के आचार-विचारों को सामाजिक परम्पराओं को और उसकी आत्मा को पर्यं एष बक के समान सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन से चिन्तित करनेवाले उपन्यासकार हिन्दी में शायद नहीं हैं। संस्कृति के सम्बन्ध में मापण दिये बिना ही पात्रों की सज्ज स्वामाजिक प्रवृत्तियों और शक्तों के द्वारा भारत की आत्मा को बक न प्रबुधित किया है।^३

अगाधता का अभाव

२३१ हिन्दी के उपन्यासों में जैसे विद्यालता का अभाव है उची तरह अगाधता का भी है। आड़े सामाजिक जीवन का अध्ययन हो आड़े व्यक्तिक जीवन का हमारे लेखकों ने सुबम दृष्टि से ब्रह्मात्मिक अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं समझी है। यूरोप के प्रारंभिक उपन्यासों में अगाध अध्ययन का अभाव है पर अजुनातम यूरोपीय

१ Woolf A Room of One's Own P 133-134

२. Come, My Beloved, P 72.

३ ऐसे भारतीय वर्ग के संज्ञ में बरिदा के शब्द १० २८ अस्तित्व के संज्ञ में नीलामणि के शब्द १० २२; युवज्य के संज्ञ में बरिदा के शब्द ५ ८७; वर्ग और विद्या के संज्ञ में बरिदा के शब्द ५ ८८।

उपन्यास का आधार ही गम्भीर अध्ययन है। समाज का धार्मिक अध्ययन और व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक अध्ययन अपने-अपने क्षेत्रों में ही पहुँचाने की सफलता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्ति की भूमि से भूमि तक जाकर और प्रवृत्तियों का विशेषण फेंक कराने की विशेषता है। अंग्रेजी में बुल्फ, हक्सले सारेण्ड मई विशेषण और डोरोथी रिचर्डसन के नाम स्मरणीय हैं। सभी उपन्यासों में व्यक्ति का इतना विशद विशेषण नहीं हुआ है पर उसमें वैज्ञानिक विषयों का सुरम्य एवं कलात्मक अध्ययन दृष्ट्य है। वैज्ञानिक मत्स्य व्यवसाय इत्यादि विषयों की खोजों के लिए अपने-अपने क्षेत्रों में उपन्यास लिखे जा चुके हैं जिनका वैज्ञानिक महत्त्व अतिसूक्ष्म है। इसके विपरीत हमारे उपन्यासों में अध्ययन का अभाव है। सांकेतिकता का अस्तित्व ही नहीं है। हमारे धार्मिक-काव्य मनोवैज्ञानिक उपन्यास (जैसे- जोशी और प्रबोध के) भावुकता के आधार पर ही जसे चलते हैं, वैज्ञानिक विशेषण के आधार पर नहीं।

किन्तु हमारी संभावनाएँ अधिक हैं। सभी के से सामाजिक उपन्यास फेंक के से मनोवैज्ञानिक उपन्यास और प्रबोध के से विशेषणालम्ब उपन्यास हिन्दी में निकले हैं। प्रत्येक बाप की एक कप में प्रवाहित हुई है। पर सीस-बालीस कपों में हमारे उपन्यास साहित्य में जो वैशिष्ट्य आया है वह कम महत्त्व का नहीं है। प्रत्येक बाप को विकसित करने पर हमारे समाज के अत्यन्त विद्वान् जमीर एवं अथवा अध्ययन उपस्थित किये जा सकते हैं।

पाँचवाँ अध्याय चरित्र चित्रण

१

चरित्र चित्रण का महत्त्व

मनुष्य को समझना और उसके सामाजिक जीवन एवं वैयक्तिक घन्ट-सत्ता की व्याख्या करना उपन्यास का ध्येय है। संपूर्ण मानवजाति में सामूहिक देशीय और वैयक्तिक विशेषताओं के कारण जो अनन्त वैविध्य है उसका अध्ययन सचमुच रोचक विषय है। मनुष्य चरित्र में सज्जता विषमता और विविधता न होती तो उसको समझना कितना ही सरल होता किन्तु तब मनुष्य इतना रोचक प्राणी भी न होता। सामाजिक तथा वैयक्तिक आधार पर इस वैविध्य का और वैविध्य के बीच की एकता का अध्ययन करना ही उपन्यास में चरित्र-चित्रण का ध्येय है।

द्विविध महत्त्व

२३२ व्यक्ति और समाज का पारस्परिक सघर्ष और सम्बन्ध है जीवन। व्यक्ति को सदा सामाजिक परिस्थितियों से सघर्ष करते रहना पड़ता है—यहाँ सघर्ष से तात्पर्य आर्थिक पर्याप्त के लिए परिस्थितियों के विरुद्ध होनेवाले सघर्ष से नहीं है मनुष्य के स्वतंत्र और स्वच्छन्द व्यक्तित्व में बाधा डालनेवाली सामाजिक परिस्थितियों के बीच में अपने व्यक्तित्व को बनाए रखने की संघर्ष प्रवृत्ति से ही है^१—किन्तु उस समाज से समझौता करके उसमें ही अपने जीवन को सफल बनाना पड़ता है। इस तरह उसका वैयक्तिक अस्तित्व एवं सामाजिक अस्तित्व दोनों का ही अपनापन महत्त्व है और उपन्यास में दोनों का अध्ययन आवश्यक है। मानव-जीवन में जो वैविध्य है उसका आधार व्यक्तित्व ही है और सामूहिकता या सामाजिकता का आधार किसी प्रकार की समझौता ही है।

तीन स्तरों के गुण

पूर्वसूचित संस्कृति तथा सामाजिक परिस्थितियों के कारण मनुष्य में जितने गुण संचित हैं उन्हें उनके प्रसार-क्षेत्र की विस्तृति के आधार पर तीन स्तरों में रखा जा सकता है

१. व्यक्ति के अनुसार व्यक्ति में वैयक्तिकी अथवा संस्कृति में जितने आसना-कर में जो गुण होते हैं वे परिस्थिति के अनुकूल परिचयन (Adaptation) द्वारा परिवर्तित अथवा विकसित होते हैं। इनमें प्रथम की वास्तविक तथा होने में उसे सहायक (पोषीय) कार उन्मत्त विरास

१ व्यक्तिगत

२ सामूहिक

३ मानवीय

२३३ (१) उपन्यास में व्यक्तिगत विशेषताओं का अध्ययन दो बातों के

लिए आवश्यक है—मनुष्य को समझने के लिए और बिम्ब-ग्रहण के लिए। साहित्य में हमें व्यक्तियों के द्वारा ही समाज को या सम्पूर्ण मानवता को समझने का सबसे अधिक मौक़ा मिलता है। जीवन के जो दृश्य उपस्थित किए जाते हैं उनके बिम्ब-ग्रहण के लिए व्यक्तिगत विशेषताओं का प्रदर्शन आवश्यक है। स्वभाव की भूमूर्त विशेषताएँ व्यक्ति का आधार पाकर साकार हो उठती हैं और सभी प्रयासवाली होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी विशेष धातुरिक सत्ता तो होती ही है उसकी बाह्य चेष्टाओं में भी विशेषता रहती है। बोधभाव का बंध कुछ विशेष सन्दर्भों का बहुत प्रयोग (सबुन ठकिया) चलने-फिरने उठने-बैठने की रीति इन सबसे वैयक्तिकता की पहचान होती है। सम्बन्धों द्वारा बिम्ब-ग्रहण करने में समर्थ दृश्य उपस्थित करने के लिए व्यक्ति की ऐसी विशेषताओं की भूर्त रूप में अभिव्यक्ति आवश्यक है। कलात्मक प्रभाव की दृष्टि से उपन्यास में वैयक्तिक विशेषताओं का विशेष महत्त्व होता है।

२३४ (२) किसी विशेष समाज व्यवस्था या विचार की जनता में विद्यमान सामान्य मुख उस समाज या जाति की संस्कृति के परिचायक होते हैं। जातीय विशेषताएँ एक ही जाति के विभिन्न घरों की एक छान बाँधती हैं, तो एक जाति की दूधरी जाति से प्रभाव भी कर दिखाती हैं। उपन्यास में समूह या जाति की छोटी-बड़ी सीमाएँ निर्धारित कर उनके अन्तर्गत जनता का अध्ययन किया जा सकता है और किया जाता है।^१ मनुष्य के ऐतिहासिक एवं समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से इन जातीय विशेषताओं का परिचय महत्त्वपूर्ण है।

२३५ (३) किन्तु साहित्य की मौलिक प्रेरणा व्यक्ति को समष्टि में जीवित कर देने और समष्टि को व्यक्ति में प्रकट करने की उत्कट अभिलाषा है। वैयक्तिक एवं जातीय विशेषताओं के कारण सवार में किताब ही लिखत हो फिर भी समस्त मानवता को एक छान बाँधनेवासी कुछ वैयक्तिक प्रवृत्तियाँ भी सदा काम करती रहती हैं। मानव-मात्र की ऐसी प्रवृत्तियों का अभिव्यक्ति ही बिम्ब-साहित्य की उत्कृष्टतम रचनाओं के सार स्थायी मुख्य का कारण है। जन्मजात प्रवृत्तियों के रूप में मनुष्य में रुढ़-मूल रहनेवासे प्रेम तथा क्रोध तोम ईर्ष्या आदि गुण-दोष किसी जाति की

होने से दूसरे को मध्यस्थता या निष्पक्षता (निष्ठा) प्राप्त सकते हैं या दूसरे को प्रतिस्पर्धा के कारण घण्टाघण्टा और प्रथम ही को पराजित करने से मध्यस्थता भी प्राप्त सकते हैं।^२ *Dialectics of Nature*, P. 282.

^१ समग्र, तब और मनुष्य में मनुष्यों का जीवन 'मोघान' में भारतीय दृष्टि का जीवन 'मोघा मोघा' और 'परती' दृष्टि में भारत का भारतीय जीवन 'होत उपन्यासों में कलाओं का जीवन आदि दृष्टि है।

विशेषता नहीं है। वे समस्त मानवजाति में न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान रहते हैं। ऐसे बेश-काबाठीठ बुरों से मुक्त पात्र सम्पूर्ण मानव-जाति को प्रभावित कर सकते हैं और साहित्य के साक्षरत मूल्य के हेतु दुष्प्रकार करते हैं। मानव-मुसल इन सहज प्रवृत्तियों के कारण ही कालिदास और वात्सीकि के पात्र भाव भी प्रभावशाली बने हुए हैं।

२३६ उपर्युक्त तीन अणुियों के बुरों के समावेश के कारण पात्रों के तीन छात्र या टाइप हो सकते हैं। १ वैयक्तिक टाइप जो अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण हमारे निकट-सम्पर्क में आता है और अपनी यथार्थता के कारण निरवसनीय होता है। २ सामूहिक टाइप जो अपनी जातीय विशेषताओं के कारण समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहता है। ३ मानवीय टाइप जो व्यक्ति और समाज के समस्त बान्धनों का उत्सव कर मानवता की एकता की घोषणा करता है।

यहाँ यह भी कहना आवश्यक है किसी पात्र को निश्चित सीमा में बाधकर किसी टाइप के अन्तर्गत मानना असम्भव है। इनमें एकाधिक टाइपों के कुछ भी एक ही पात्र में हो सकते हैं और ऐसा होना आवश्यक भी है। पूर्णतया यथार्थ होने के लिए पात्र को तीनों प्रकार की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करना आवश्यक है, क्योंकि जीवन में भी प्रत्येक व्यक्ति में उसकी अपनी वैयक्तिक विशेषताएँ होती हैं उसके समाज की विशेषताएँ समाहित रहती हैं और वह मानवीय बुरों से भी मुक्त रहता है। इसके विरुद्ध पात्र केवल वैयक्तिक रहें सामाजिक जीवन से और मानवता से असंबद्ध रहें तो उनका जीवन उन्हीं का जीवन रह जाएगा उनकी समस्याएँ उन्हींकी समस्याएँ रह जाएंगी। उनका सामाजिक या सार्वजनिक मूल्य निर्धारित करने पर विरोध ही होना पड़ेगा। अतः उपर्युक्त-कार की व्यक्ति का आचार सेने पर भी सामान्य का विचार रखना ही पड़ता है।^१

२

चरित्र चित्रण का प्रारम्भिक स्वरूप

एकांगी पात्र या समतलीय पात्र (Flat Characters)

२३७ व्यक्ति का विनाश करके जब पात्र को किसी तथ्य का प्रतिपादन या सिद्धान्त की व्याख्या करने को विवश किया जाता है तब वह स्वच्छन्द विकास का अवसर न पाकर एकांगी हो जाता है। आरम्भकालीन उपन्यासों में जीवन के यथार्थ चित्रण से अधिक जीवन के कुमार का ही विचार था। अतः उनमें जिन पात्रों की सृष्टि हुई है वे निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार सृष्ट हैं। हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों से लेकर प्रमथन तक के और प्रमथन के पश्चात् भी कई लेखकों के पात्र

1 Doubtless the novelist should select among the particular that which has an application to the general.

रहस्यमय है कि हमारे लिए उनको समझना ही कठिन हो जाता है। अगर पात्र-सृष्टि में ये लेखक अपने पूर्ववर्तियों से धाने बड़े हैं, तो केवल इस बात में कि इन्होंने सभी मानवीय दुर्बलताओं से रहित आदर्श पात्रों का सृजन नहीं किया है। कौशिक धीवास्तव धीर बाजपेयी के उपन्यासों में कुछ आदर्श पात्र भी मिलते हैं पर प्रभाव उग्र बतुरसेन मम्मयनाथ धारि के उपन्यास धर्मीयिक आदर्श पात्रों से रहित हैं। परन्तु केवल इसी कारण से पात्र यथार्थ नहीं बनते क्योंकि इनके सभी पात्र समाज की कुछ धर्मीयों धीर धर्माचार्यों को बिलाने के निमित्त ही निर्मित हैं। ये सब सबसे धीर प्रभावसाधी होते हुए भी एकांगी धीर प्रभावधारण हैं। व्यक्तित्व की व्यञ्जना के लिए जो सूक्ष्म रेखाएँ आवश्यक हैं समाज के प्रतिनिधित्व के लिए जिस निरपेक्ष समुत्तम धीर विद्याभता की आवश्यकता है समाज की चिरन्तन धनुषूतियों को अभिव्यक्ति करने के लिए जो उदात्त दर्शन बाधनीय है धीर मानवता के प्रति जो सहानुभूति अनुपेक्षणीय है उन सब से कौशिक प्रभाव धीवास्तव बाजपेयी उग्र बतुरसेन मम्मयनाथ धारि बहुत दूर हैं। इनकी सहानुभूति केवल मनुष्य के संवेद्यों के प्रति है यद्यपि उनके पात्रों को वे दुर्बलता के रूप में नहीं देखते। समाज के कर्मकर्म भागों से अवगत वे सदा उसके उत्पत्तिधीन पक्ष की अपेक्षा करते हैं। इनके पात्र हैं जो निश्चित रूप से टाइप ही पर किसी विशेष समाज के नहीं बल्कि कुछ विशेष पुरुषों के कुछ विशेष सिद्धान्तों के। पूर्ववर्ती उपन्यासकारों के पात्रों की अपेक्षा ये समाज से अधिक समन्वित हैं और यही उनके आधिक यथार्थ रूप का कारण है।

प्रेमचन्द के पात्र टाइप-मात्र हैं ?

२३६ प्रेमचन्द के पात्रों के सम्बन्ध में साधारणतः कहा जाता है कि वे सब टाइप हैं यद्यपि टाइप-मात्र हैं। एक लेखक का कहना है कि पात्र प्रेमचन्द के लिए समाज चित्रण के उपकरण-मात्र हैं एक पात्र के अध्ययन से समाज के उस वर्ग का पूरा ज्ञान मिल जाता है जिससे उसका जन्म हुआ है।^१ निस्सन्देह प्रेमचन्द के पात्र अपने-अपने वर्ग का प्रायः पूर्ण परिचय देते हैं—केवल उनके सुधारक कल्पित हैं, वास्तविक समाज के किसी वर्ग से धार्मिक संबन्धित नहीं हैं। निर्मला सुमन आदि हमारे समाज की पौरुष नारियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, बालपा धामोदर-प्रिया पर कर्तव्य-मरायणा इत्यादि हैं। होरी धीर उग्र कुछ भारतीय कृषक परिवार का यथार्थ रूप है। इसके अतिरिक्त बगीचदार, पट्टेदार, बकीस कलक्टर आदि समाज की सभी श्रेणियों के पात्रों को सामने लाकर प्रेमचन्द हमें संपूर्ण समाज में पर्यटन कराते हैं। पर क्या इतने से ही प्रेमचन्द के पात्रों के इतना समाप्त हो जाते हैं ? क्या सामाजिक टाइप बनने से बढ़कर उनका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है ?

१ A marked characteristic of Premchand's characters is that, like Dickens they are always types and not individuals like Thackeray's. They are merely plant tools for Premchand to portray a whole.

‘नहीं’ कहना असंभव है क्योंकि निर्मला और मनोराम भुमम और धान्ता सूरदास सुक्रिया और सुभाषी बासपा और रमागान होरी बनिया गोबर और भुनिया ऐसे मुख्य पात्र ही नहीं असंख्य और पात्र भी एक साथ पात्रों के सामने धारक चुगौती देते हुए बड़ा हो जाते हैं। इस तरह सामने प्रत्यक्ष हो जाना ही उनके व्यक्तित्व का सबसे प्रमाण है। तास्त्याम के ‘मुद्रा और धान्ति’ में एक बचल बालिका के रूप में धान्तेबानी मठाका के प्रथम परिचय का हृदय-मात्र पढ़ने से उसका रूप मन में ऐसा बस जाता है कि उसे भुसना असंभव हो जाता है। प्रेमचन्द के कई पात्र भी इससे कम नहीं हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों को पुराने पढ़कर केवल ‘निमज्जा’ में निर्मला और कल्याण का (पृ. ४-५) तथा कल्याण और उदयमानुभास का (पृ. ६-११) ‘यवन’ में बासपा और मानकी का (प्रथम दो अध्याय) ‘गोदान’ में होरी और बनिया का तथा गोबर और भुनिया का प्रथम परिचय देनेवाले हृदयों को ही पड़ा जाए तो भी इन पात्रों को भुसना असंभव हो जाएगा। अगर वे सामाजिक टाइप-मात्र होते तो प्रथम दर्शन में ही इतना प्रभाव नहीं होता। इस प्रभाव का कारण व्यक्तित्व नहीं तो क्या है? जैसे वास्तविक जीवन में हम लोगों से परिचित होकर एक मानसिक निष्कृष्टता से बच जाते हैं उसी तरह प्रेमचन्द के पात्रों से भी एक हार्दिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। क्रिकेस के पात्रों से ऐसा सम्बन्ध होना असंभव है इसलिए वे टाइप-मात्र हैं। तास्त्याम और प्रेमचन्द इस विषय में बहुत कुछ समान स्तर पर हैं। प्रेमचन्द के जो प्रसंग ऊपर उल्लिखित हैं, वे केवल कुछ चुने हुए उदाहरण ही हैं। इसी तरह अन्य पात्रों के सम्बन्ध में भी कितने ही प्रसंग उपलब्ध हैं जो पात्रों की व्यक्तियों के रूप में उपस्थित करते हैं।

फिर प्रेमचन्द के पात्रों के व्यक्तित्व पर सबेह क्यों? इस प्रश्न का उत्तर हमें प्रेमचन्द के पात्रों की हिन्दी और अन्य भाषाओं के उपन्यासों के कुछ सबसे पात्रों की तुलना करने पर मिलेगा। जैनेन्द्र, जोशी प्रमोद वास्त्यामवत्की तुर्बनेव तास्त्याम पलावेयर मोपासा बार्ज एलियट गार्सबर्गी ब्रूफ़, मारेस् डोरोसी जैसे उपन्यासकारों के तथा प्रेमचन्द के पात्रों के व्यक्तित्वों में बड़ा अन्तर है। उनकी तुलना में प्रेमचन्द ने पात्रों के मानसिक जगत् की ओर कम ध्यान दिया है। व्यक्ति के प्रभाव मानसिक व्यापारों तथा संकुच प्रतियोगिता का धुक्क विह्वलेण प्रेमचन्द ने नहीं किया है। उनके पात्रों का व्यक्तित्व उनकी वर्णगत विशेषताओं तथा सामान्य दृष्टि में दिखाई पड़नेवाली वैयक्तिक विशेषताओं में ही प्रायः समाप्त हो जाता है। जहाँ वे मानसिक व्यापारों की

society If you study one character thoroughly you know everything about the stratum from which it springs.

—Madan Gopal Premchand P 52.

भाषा में मन्दबुद्धि के वाक्यों की कहते हैं —प्रेमचन्द की वे चरित्र चरित्र, व्यक्तिगत या सामाजिक होते हैं। जमींदार किसान आदि में अपने रूप का साधारण विशेषताओं का आरोप रखा है। आधुनिक व्यक्ति-चित्रण-प्रणाली से वे दूर हैं।

—मन्दबुद्धि के वाक्यों की आधुनिक साहित्य १ १६

धोर जाते हैं, वही भी मेकल ऊपरी तह का ही स्तर कर पाते हैं। सकलता उनके पार्श्वों में कही भी नहीं पहुँची घत। उनको समझना अत्यन्त सरल है। तास्ताय के पात्र यद्यपि बाह्य रूप में प्रेमचन्द के पार्श्वों से मिलते हैं तथापि वे अपने अत्यन्त तीव्र आत्मिक से प्रकाशित अन्तर्लोक के कारण प्रेमचन्द के पार्श्वों से कुछ भिन्न हैं। तास्ताय दास्ता-यबस्की आदि दार्शनिक लेखकों से तथा हिन्दी में ही धीरे धीरे अग्रणी के मनोबैज्ञानिक लेखकों से पार्श्वों के मानसिक अंगत् को जो महत्त्व दिया है, वही उनके व्यक्तित्वों को उन्नत बनाता है।

व्यक्तिगत विशेषताओं को तीन श्रेणियों में (पनुच्छेद २ १-२१२) विभाजित कर उनका विवेचन कर देंगे तो इन उपन्यासकारों तथा प्रेमचन्द के पार्श्वों का अन्तर स्पष्ट होया।

प्रेमचन्द ने अपने पार्श्वों पर सामाजिक एवं मानवीय विशेषताओं का उची भाषा में आरोप किया है जिस भाषा में साधारणतः देखने में आता है। किन्तु सबसे व्यक्तित्व की सृष्टि करनेवाले उपन्यासकारों में सामाजिक तथा मानवीय विशेषताओं को भी वैयक्तिकता के स्तर पर आकर उनका अध्ययन किया है। उदाहरण के लिए तुर्गेनेव के 'रुहिन' ('रुहिन' में) मेकनोव ('असत भूमि' में) तथा बबारेव ('बाप-बेटे' में) को लें। ये तीनों पात्र लक्ष्मीन समाज के सुधारवादी उपरिष्कार (Superfluous) युवकों के प्रतिनिधि हैं। पर तुर्गेनेव ने सामाजिक उपरिष्कारता का जो अध्ययन किया है व्यक्तिगत स्तर पर किया। मेकल इस सामाजिक विशेषता का पार्श्वों के मनोवृत्ति में प्रक्षेपण (Projection) करता है—उसके बाद उसका ध्यान समाज के प्रति उतना नहीं जाता जितना व्यक्ति के प्रति। इस कारण से पार्श्वों का अन्तर्जप अधिक महत्त्व धारण कर लेता है। जबकि समाज केवल एक भूमि का आधार के समान रह जाता है लेकिन प्रेमचन्द यद्यपि अपने पार्श्वों पर सामाजिक विशेषताओं का आरोप करते हैं तो भी उन विशेषताओं का पार्श्वों के मानसिक अंगत् में प्रक्षेपण करके विवेचन नहीं करते। सुमन निमना होरी आदि का संबंध बाह्य जीवन से है। उनके मानसिक अंगत् के प्रति प्रेमचन्द का ध्यान अधिक नहीं। प्रेमचन्द के पार्श्वों की वैयक्तिकता के अधिक तीव्र न होने का एक कारण यही है।

आयः यह देखा जाता है कि सभी सबसे वैयक्तिक पात्र कुछ विषय पार्श्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रेमचन्द ने भी कुछ अपने पार्श्वों को कुछ पार्श्वों का प्रतिनिधि बनाया है पर वे भाव सामाजिक ही हैं। होरी भारतीय किसान है, निर्मला और सुमन परतन्त्र विषय वीकित नारियाँ हैं। पर व्यक्तित्ववादी उपन्यासों के पात्र सामाजिक विशेषताओं के प्रतिनिधि न होकर (सामाजिक विशेषताओं के प्रतिनिधि हों तो भी इन विशेषताओं का अध्ययन व्यक्तिगत स्तर पर ही किया जाता है, जैसे कि ऊपर दिखाया या चुका है) वैयक्तिक विशेषताओं अपना मानवीय (सांस्कृतिक) मनोवृत्तियों के प्रतिनिधि होते हैं। अन्ना करेनिना लताया (तास्ताय के 'पुनर्जन्म' में) नस्तास्या क्रिपिनोवना (दास्तायबस्की के 'महामूर्ख' में) प्रिम मिस्किन (महामूर्ख में) रस्कोमनिकोव ('घपराव और दण्ड' में) 'जी-जल-जी' ('स गिबराय्' में) गधाम बोवारी ('महाम

बोबारी' में) मानन मेस्का ('मानन लेस्का' में) एमीडा ('तंग दरवाजा' में) मात्तस मार्नर ('साइमस मार्नर' में) पाप मोरस ('बड़े धीर प्रमी' में) राजीव (कोपी के मुक्तिपत्र' में) पारसनाथ ('प्रत धीर छाया' में) सेखर ('सेसर' में) मुक्कन एव रेखा ('नरो के दीप' में) गुलाबिया ('मुक्कन के मुक्क' में) आदि सामाजिक छात्र में बने हुए पात्र नहीं हैं। उनका व्यक्तित्व मानवीय गुणों तथा मनोविकारों का व्यक्तियों में प्रत्येक करने से बने है। अन्तः अनियमित नैतिक विकार तथा अपनी नैतिक मान्यता के कारण मानसिक द्वन्द्व में पड़ती है। नतास्या में विनीतता के साथ आत्मविमान और आत्मपीड़न की प्रकृतियाँ हैं। नतास्या का विचार चरित्र मन रचन पर भी अपने उत्तर दायित्व की चिन्ता करनेवासी है। मिस्किन पतिन के प्रति दया से अभिभूत है। रस्कोन निकोब अपनी पाप करने की शक्ति की परीक्षा करके पक्षान्तरणवासी है। जॉन्स-जॉन्स पद्यता में देवत्व की ओर जाता हुआ छात्र है। यशम बोबारी और मानन मेस्का भोजन-निष्ठा की चरम सीमा तक पहुँची हुई स्त्रियाँ हैं। एमीडा प्रेम और ईश्वर के बीच के द्वन्द्व में पड़ी हुई है। सात्तस स्वार्थ से आत्मोत्थान की ओर प्रयास करता है। पाप नैतिक विकारों के बलत्व (Fixation) में पीड़ित है। राजीव में यह और आत्महमन तथा नकार में बिछोही हुई और स्वयं के दमन की प्रकृतियाँ सबसे हैं। रेखा काम विकार की तीव्रता में भी स्वार्थरहित है। गुलाबिया आधुनिक जीवन के विमान और आहम्वर की ओर अपार धाव से अग्रसर होती है। पर उससे उस शान्ति प्राप्त नहीं होती।

अन्त में ऐसे जीवन के खोजनेपत्र में अग्रसर होकर पुनः चरमता की ओर जाती है। इच्छाओं को स्वच्छन्द विचार की अनुमति देनेवाले नैतिकवादी जीवन पर यह एक तीव्र व्यंग्य है। प्रमचन्द के किसी अग्रगण्य में इस तरह की कोई मनोवृत्ति पात्र के व्यक्तित्व का मुख्य और एकमात्र आधार नहीं बनायी गयी है। इस तरह के मनो-विकारों के आधार पर निर्मित पात्र मन ही असाधारण और कभी-कभी अस्वाभाविक लगें तो भी उनमें सबसे वैयक्तिकता अवश्य रहती है। प्रमचन्द के पात्रों में व्यक्तित्व का ऐसा रूप नहीं मिलता।

पर क्या प्रमचन्द के पात्रों में अपनी व्यक्तित्व विशेषणाएँ नहीं हैं? क्या सुमन निर्मला मन्नालम आनपा हारी जनिया मोरर, भूमिया आर्षी-वैयक्तिकता से रहित हैं? बलुन इन सब पात्रों में सामाजिक व्यक्तित्वों (Social personality) के अतिरिक्त जो वैयक्तिक व्यक्तित्व (Individual personality) हैं, वे नगण्य नहीं हैं। किन्तु प्रमचन्द ने वैयक्तिक व्यक्तित्व को रूप देनेवाली विषय प्रकृतियों का अभावपूर्ण मानसिक बगल में प्रत्येक नहीं किया है और न उनका विश्लेषणपूर्ण अध्ययन हो किया है। हम किसी निश्चित परिचय के व्यक्ति के जिन जिन गुण-बोधों तथा मनोवृत्तियों से परिचित होते हैं उन सबको प्रमचन्द ने भी प्रकट किया है—उन सबका रूप में प्रकट किया है जिससे हमें यह प्रतीति होने लगती है कि हम पात्रों से सीधे परिचित होते हैं। यही कारण है कि प्रमचन्द के उपन्यासों को (उनके यथावकाशी अर्थों को) पढ़ते समय हमें लगता है कि हम जीवन से ही परिचित हो रहे हैं। इस प्रकार के व्यक्तित्व-विश्लेषण से विन्म-ग्रहण अधिक सुताध्य होता है। सबसे व्यक्तित्व के पात्रों का अध्ययन से हम एक

मानवोक्त में अपने-आपको छोड़कर उनसे शादालय पाते हैं, तो प्रमथन्द के पात्रों को अपना कम में लेकर उनसे सीखा सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

प्रमथन्द प्रायः मनुष्य की चतुर्धी हुई संवेदनाओं उत्कट भाव-इन्तों और व्यवहार की चलाव एवं व्यर्थभाव दशाओं से दूर रहते हैं। 'निर्मला' में लेखक ने निर्मला और मन्साराम के आन्तरिक द्वन्द्व का चित्रण करते हुए मनोव्यापारों का बीड़ा बहुत अध्ययन किया था परन्तु इस कार्य को वे किसी अन्य उपन्यास में धाये नहीं बढ़ा पाए। इसी आन्तरिक व्यक्तित्व की तीव्रता की कमी के कारण प्रमथन्द के पात्रों की वैयक्तिकता पर संदेह किया जाने लगा है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रमथन्द के पात्र अपने अपने वर्ग के प्रतिनिधि भी हैं, और काफी दूर तक व्यक्तिगत विशेषताओं से भी युक्त हैं। वे प्रोत्तोजोव इत्या एहरनबर्ग केरिन कतयेव धारि माधुनिक कवी कलाकारों के पात्रों से मिलते हैं। व्यक्ति की मानसिक छान्वियों को सुसंस्थान का प्रयत्न न करने पर भी इनके और प्रमथन्द के पात्र हमारे लिए उतने ही बराब बन जाते हैं। बित्तने कि हमारे अपने घर के अपने माँ-बाप और भाई-बहनें। इन पात्रों का निर्माण लेखकों ने नहीं किया है बल्कि वे स्वयं बने हैं। लेखकों ने केवल उनको बीच में लेकर उपन्यास में रख दिया है। होटी के सम्बन्ध में अगर प्रमथन्द दावा करें कि मैंने एक मौलिक पात्र की सृष्टि की है तो होटी हड़बड़ाकर उठ बैठेगा और बिस्मा उठेगा "सृष्टि आपने चाक की है, मैं तो स्वयम्भू ॥ आपने मेरा चित्र-मात्र उतारा है।"

३

कुछ व्यक्तिस्वपूर्ण पात्र

प्रमथन्द ने उपन्यास-साहित्य में जिस व्यक्तित्व की स्थापना की उसका क्रमशः विकास होता गया और हमारे मनोवैज्ञानिक उपन्यासों तक आते-आते प्रत्यक्ष सबल व्यक्तिस्वपूर्ण पात्रों का निर्माण होने लगा। इस बीच में कुछ व्यक्तिस्वपूर्ण पात्रों को लेकर उनका वैयक्तिक एवं सामाजिक मूल्य निर्धारित करना आवश्यक है।

अश्व के पात्र

२४० अश्व के 'मिली सीधारे' के बँधराव को छोड़कर और सभी पात्र व्यक्तिस्व रखते हैं। वे किसी वर्ग के निशिष्ट गुणों को दिखाने के ही उद्देश्य से निर्मित नहीं हैं, पर मानव-मात्र से भी उनका सम्बन्ध है। बोरों और कमबोरियों को सहानुभूति से देखते हुए अश्व ने प्रायः सभी पात्रों पर न्याय किया है। पीएण पात्रों की भी मानवीय भावना इतर-उतर जब जबर आती है, तब अश्व की सूत्रिका इमें सबमुच एक मानवलोके में से आती है। तनिबासे की बहन के प्रति आकृष्ट नेतन अपने मित्र को पिताता है।

तनिबासे के एक माँ है, बहन है और छोटे-छोटे भाई हैं। उसकी यह बहन

में देखा रहा हूँ कुछ बिनो से मुझमें बिभक्षुसी लेने लगी है। जब मैं अपने कमरे में बैठ मिठा करता हूँ तो वह खिड़की में धा जाती है। यह खिड़की एक जुला-सा झरोखा है इसमें न फिटाई है न सीलिंग—धूप तेज होने पर भी उसीमें बैठी रहती है।

मोटी कुस्म घोर पूहड़—इसे प्रेम करने को भी कोई घोर नहीं मिला। लेकिन अनन्त बिभ ही तो है।

घोर फिर बस्तर से प्रधान संपादक की बुझकियां सुनकर जब धाता हूँ और सही झरोखे में बैठी अपने मोटे होठों पर मीठी मस्मिन् मुस्कान लाकर वह मेरा स्वागत करती है तो अनन्त। मन हरा-सा हो जाता है। घोर संपादक महोदय की सीखी बातों से बिस पर पड़े बाब कुछ घर-से जाते हैं।^१

यहां मानव-सहस्र क्षोभल विकारों के साथ ही दोनों के व्यक्तित्व का कम से कम एक संघ स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। यहां हम एक कलाकार को देखते हैं जो हमें थोड़ा देना नहीं चाहता, मेस्मरेज करना नहीं चाहता, बल्कि मुझ जीवन में जुला देता है। 'मोटी कुस्म घोर पूहड़' लड़की के 'मोटे-मोटे होठों' पर भी 'मीठी मस्मिन् मुस्कान' धा सकती है। घोर वह एक पुरुष को धाकूट कर सकती है। जुला झरोखा तेज रूप—इसमें उस मोटी लड़की का धा बीटना—फिर होठों पर मुस्कान छाए इस प्रत्यक्ष बीखने समता है। यही नहीं उस मोठी लड़की का भीड़ हृदय भी बोझ ही क्षणों में प्रकट हो जाता है। घोर चेतन के विकारों को कितनी सूक्ष्म रेखा से लेखक जींचता है। उस मुस्कान से उसका मन 'हरा' नहीं होता 'हरा-सा' हो जाता है। घोर बिस के बाब 'कुछ घर-से' ही जाते हैं। बो-सीन छोटे-छोटे क्षणों से लेखक पार्श्वों को हमारे हृदय से मिला देता है। इन पार्श्वों का व्यक्तित्व तीव्र नहीं है पर उनका प्रभाव अस्वावी भी नहीं है।

सपत्न्या के मारज से ग्रस्त एक चेतन के मनोजगत् के मार्गों का विकास भी किया गया है। मनुष्य दुर्बल है नारी के प्रति पुरुष का आकर्षण स्वाभाविक है। अविच्छिन्न जगत् से बिबाह करने के बाब कई नारियों से चेतन का आकर्षण उसके संवित संस्कार से अथवा सामाजिक गन्धनों से नियंत्रित होता है। लेखक को मानसिक इन्द्र के चित्रण का अवसर मिलता है। पर अस्वामी न इस इन्द्र को प्रति एक पटुबाकर अस्वाभाविक बनाते हैं न हमारे मनोवैज्ञानिक सपत्न्याकारों के समान उनके विस्फेपण के लिए पृष्ठ के पृष्ठ लपटा देते हैं। लेखक मानसिक प्रवृत्तियों के बिसेपण की घोर न जाकर बो-सीन अस्पष्ट रेखाओं से संपूर्ण मार्गों को व्यंजित कर देता है। मीला गीण होने पर भी अपना व्यक्तित्व रखती है। बड़े मोसेपन से बीजा चेतन की सेवा घोर उसे छेड़-छाड़ करनेवासी वह बाबिका कह देती है कि 'मैं कभी बिबाह नहीं करूंगी'। यह सब बाबिध है उसके अन्तर की मुचती नहीं लगी है। फिर भी जब चेतन उसे पकड़कर धालिपन करता है तब वह भाग जाती है। उसका अचचेतन उसमें कुछ पलती देखता है।

‘गरम राख’ बड़ी-बड़ी आँखों आँखों में पापों का व्यक्तित्व इतना विकसित नहीं हुआ है। ‘गरम राख’ में सपासक मोपानदास कवि जातक पंडित बर्मदेव बेदासकार, साम्यवादी हरीश आदि केवस टाइट हैं। राखा और दुरो व्यक्तित्व रखती है, लेकिन उनके व्यक्तित्व भी अधिष्ठित हैं। निकोए प्रेम के चौखट के अन्दर उनके व्यक्तित्वों का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। ‘बड़ी-बड़ी आँखों’ के पाप पूर्णतया व्यक्तित्वरहित हैं।

उपसर्गकर भट्ट के पाप

२४१ उपसर्गकर भट्ट के ‘सागर, सहरे और मनुष्य’ में सामाजिक एवं व्यक्तिगत विवेकपरायों के सम्बन्ध से प्रायः सभी पाप पूर्ण हुए हैं। बरसोबा के मनुष्यों की यह कहानी उनके सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं को दिखाती है पर उससे अधिक विभिन्न पात्रों के मानसिक संस्कार को प्रकट करती है। इसके पात्रों का सामाजिक महत्त्व इसलिये है कि वे अपने वर्ग के जीवन को पूर्णतया प्रतिबिम्बित करते हैं। मातृसत्ता पर आधारित समाज में स्त्री और पुरुष का क्या स्थान है उनके पारस्परिक व्यवहारों का क्या रूप है इन सबके अध्ययन के कारण उपन्यास समाज-शास्त्र से कम महत्वपूर्ण नहीं है। रत्ना बंशी यक्षवन्त यणिक इन चार मुख्य पात्रों में से एक व्यक्त हुए हैं, वे यथार्थवाद की दृष्टि से बहुत सफल और उत्कृष्ट हैं। अपने अधिकारों की और आत्माभिमान की सेवा बिना रखनेवासी बड़ी बड़ी महत्वाकांक्षा से पूर्ण रत्ना प्राथमिक नागरिक सम्प्रदाय के उपरिष्कृत रूप में ही बड़ा हुआ माणिक परिधमी और निस्वार्थ प्रेमी नवार यक्षवन्त इन सबके अपने-अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व हैं। घर की मातृकर्म बड़ी क्लिष्टीकी मही मानती हर जगह अपना अधिकार बताती है पति (बल्कि पतिव्रता) को अपनी इच्छानुसार मचाती है। वह मातृसत्ता पर आधारित परिवार का केन्द्र है। उसके प्रभाव से और अन्य परिस्थितियों से रत्ना के व्यक्तित्व का विकास होता है। ग्रामीण सम्प्रदाय और नागरिक शिक्षा ने मिलकर उसको कुछ रूप दिया है एक और ग्रामीण बालिकाओं की कोमलता और उसके लिए जग सझाने की तैयार रखनेवाले यक्षवन्त से कोमल प्रेम—दूसरी ओर वह शिक्षित व्यक्तित्व जो बड़ी-बड़ी आकांक्षा रखता है, नागरिक जीवन की विनाशिता के लिए उत्कृष्ट रहता है और इस आकांक्षा की पूर्ति-मात्र के हेतु मिथ्यादम्बर से बने छे माणिक से विवाह चाहता है। इतना नरम इतना कोमल और इतना प्रभावशाली स्त्री-पात्र हिन्दी उपन्यास में आबाध और नहीं है। माणिक जो आबाध है रत्ना के प्रति आकृष्ट होता है पर उसपर धत्ताचार नहीं करता। उसमें भी विविध व्यक्तित्व है बिना संकोच के अपराध करने और फिर पछताने की प्रवृत्तियाँ हैं। पहली पत्नी बुर्बा को उसने घाघर पीकर पीटा था लेकिन उसके बीमार हो जाने पर जाना-बीना एक छोड़ बैठा था। उससे विवाह करने के बाद रत्ना भी उससे धत्ताचारों से तंग होकर घर भा जाती है बंशी उसे माणिक को छोड़ देने का उपदेश देती है फिर भी माणिक से उसका मन नहीं हटता माणिक के अनुमय-विरम से प्रेरित होकर वह फिर प्यारे साथ भाग जाती है। स्त्री-पुरुषों के द्वन्द्व और समझौते का वह चिरन्तन दृश्य है।

बहु माणिक के सुबले की प्रशंसा करती है। यह जानते हुए भी कि वह सुपर नहीं सकता। प्रशंसा-निराशा की इस घाँव मिचौनी का अभ्ययन हिन्दी के अधिक उपन्यासकारों ने नहीं किया है। यद्यपि मट्टूजी ने अवचेतन के विक्षेपण का प्रयास नहीं किया है तो भी इस उपन्यास के पात्र व्यक्तिगत मूर्ति के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। मानवता की उत्कृष्टा धीर बेबसी इन पात्रों में मूर्त रूप पाती है। मट्टूजी के दूसरे उपन्यास में नायिका शेफाली के मानसिक इन्तों का अधिक विक्षेपण किया गया है तो भी रत्ना के समान प्रभाव नहीं डालती। इसका कारण यही बात होता है कि रत्ना के व्यक्तित्व में अन्दर और बाहर का जसा समन्वय है वह शेफाली के व्यक्तित्व में नहीं है। नये मोड़ में लेबक कहीं भी विन्ध्य-ग्रहण के योग्य दृश्य उपस्थित नहीं करता यही उसके अयबाब बीसने का कारण है।

अंशल के कुछ पात्र

२४२ 'अड़ती धूप' और 'उत्का' भगवद्गोत्रों को द्वारा व्यक्तित्व का विकास—
विशेषकर ममता और मधु के—क्रमशः किया गया है। 'उत्का' में मधु का स्त्री-रूप क्रम से उद्भव होता जाता है और उसका ठेक उस समय बिचसी का सा हो जाता है जब वह अपनी बच्ची के सम्बन्ध में कहती है किर धाब मेरे जीवन-बारण का एक उत्सव है। मुझे अपनी सन्तान को पालना है 'उसे दुनिया से संघर्ष करना सिखाना है। जन्म से वह सामाजिक कसक के आवरण से ढंकी-ढंकी घायी लेकिन मैं जानती हूँ कि वह क्या है?—कैसी है—कहाँ से घायी है।' इतना बिगड़ करनेवासी सामाजिक कड़ियों से संघर्ष करते हुए अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की खोज करनेवासी यह मारी परम्परागत सृष्टि के बन्धनों से पृथक्ता मुक्त नहीं है यही उसकी स्वाभाविकता है। ईश्वर से अर्पणित निष्कम्भनाम पाकर भी वह उसपर विश्वास नहीं छोड़ सकती^१ यही उसका संस्कार है 'अड़ती धूप' और 'उत्का' की दोनों नायिकाओं के व्यक्तित्व विकास की विशेषता यह है कि दोनों में अपार आत्मशक्ति है पर यह शक्ति बाह्य प्रेरणा से ही विकसित होकर अपने अस्तित्व का परिचय देती है। चरित्र और मोहन ही इनको उद्भव बनानेवाले प्रेरक हैं। पुरुष के प्रथम से प्रवर्धित होने-वासी मारिनों के ये उदाहरण हैं। यद्भव के 'मधु' की मधु का व्यक्तित्व भी राजन की शक्ति पाकर विकसित होता है किन्तु मधु अधिक सबल लगती है क्योंकि जहाँ राजन भी विचलित हो जाता है वहाँ मधु स्वयं जगमग उठती है। राजन को साहस से कहता है 'मधु, मैं तुम्हें अपना 'बुका हूँ' मैं मानववादी व्यक्ति हूँ संसार का कोई भी प्रतिबन्ध मेरे मार्ग को अवरुद्ध नहीं कर सकता जिसे मैं ठीक समझता हूँ उसके मार्ग में यदि स्वयं भगवान भी आकर खड़े हो जायें तो मैं उन्हें भी पत्थर का टुकड़ा समझकर

१ अक्षय पृ. २११।

२ अक्षय पृ. १६।

ठुकरा बूंगा'।^१ यही कुछ दिन बाद मधु को अपना मे के सम्बन्ध में बुझा में पड़ जाता है। उस मधु की सज्जसता स्पष्ट दिखायी पड़ती है। 'निरिच्छा रहने का प्रयास करो राजन मुझमें फँसने से तुम्हारी साधना नष्ट हो जायगी।'^२ यही मधु और राजन की धार्मिकता एक-दूसरे की पूरक बनकर घाने बढ़ती है। जहाँ तक भावात्मक सत्ता का संबंध है मधु और राजन का अस्तित्व बहुत ही वास्तविक है किन्तु भावना की पृष्ठभूमि में विकसित होने के कारण ये पात्र मधु और राजन के समान ठोस घटन पर बड़े नहीं खड़े होते। राजन के उपन्यासों के मुख्य पात्र जगन् प्रकाश और मोहन वस्तुतः दूसरों पर प्रभाव डालने पर भी स्वी पात्रों से दुर्बल हैं और स्वयं लेखक के ही बन सके रहते हैं। इन्हें सफल पात्र कहना कठिन है। उनको लेखक ने विषय उद्देश्य से भावार्थ व्यक्तित्व ही दिये हैं। मोहन असाधारण है आन्तिकापी है पर इन रूपों में उसका विकास बहुत ही दुर्बल है। उसके आन्तिकापी जीवन में आन्तरिक व्यक्तित्व का सहयोग नहीं है (विरोध भी नहीं है)। वह जितना अधिक बोधता है उतना ही कम आन्तिकापी है। हिन्दी के कई उपन्यासकारों में न जाने कहाँ से यह भारखा आ गयी है कि आन्तिकापी पात्रों को बोधना अधिक चाहिए, कभी-कभी भाषण भी देना चाहिए। परन्तु बात सचमुच इसकी बिल्कुल विरुद्ध है। पात्र जितना बोधता है उतना उसमें आन्तरिक खोजलापन रहता है। आन्तिकापी पात्र का एक उत्कृष्ट उदाहरण है कैप्टन के 'वास्यकासीन तुल' का किरित। यह पात्र बोधता बहुत कम है लेकिन उसके अन्दर जो व्याप्तता है वह सर्वकर रूप में फुट निकलती है। उसकी तुलना में मोहन की बलहीनता स्पष्ट हो जायगी। सुर्वनेत्र के आन्ति के दृष्टिकोण उपरिष्णव (Superfluous) युवकों के समान मोहन में खोजलापन नहीं है फिर भी वह दुर्बल धारक है।

प्रेमचन्द के पात्रों के कुछ अनुमापी

२४३ प्रेमचन्द के पात्रों के सम्बन्ध में कुछ कहा गया है कि वे टाइप अधिक हैं, व्यक्ति कम वे व्यक्तित्व से रहित नहीं हैं पर उनके व्यक्तित्व का आन्तरिक पक्ष बलहीन है। इसी तरह से पात्रों का चित्रण कुछ परवर्ती उपन्यासों में भी प्राप्य है। उदाहरण के रूप में बलरत्न का 'मुनिया की छाती और 'बलरत्न राह' भयवती चरण बर्मा के 'तीन बर्ग' टेढ़े-मेढ़े रास्ते बाबूरी बाबू' नागार्जुन के 'रतिनाथ की बाबी' 'नयी पीढ़ी' धारक का 'जड़ी-बड़ी धार' लक्ष्मीनाथराय मास का 'बया का बोलता और साँप' धार उपन्यासों के पात्रों को से सकते हैं। ये सभी पात्र अपने अपने बर्ग के प्रतिनिधि हैं साथ ही उनके जो व्यक्तित्व हैं प्रेमचन्द के पात्रों के व्यक्तित्वों के समान ऊपरी सतह के हैं। इन सबका सामाजिक घनता वैयक्तिक रूप पूर्णत्व में नहीं है क्योंकि समस्याओं के विघ्नेषण के लिए जितना धारक है, उतना ही उनका विकास किया गया है।

सामाजिक दृष्टि से उनकी अपूर्णता तब स्पष्ट होगी जब हम कुछ ऐसे उपन्यासों के पात्रों से उनकी तुलना करें जो सामाजिक आचरणों की सेवा प्रस्तुत करते हैं। दोस्तोदोस्त के उपन्यासों में कबालों के जीवन का सर्वांगीण रूप मिलता है। आचरण-बारी (Novel of Manners) उपन्यासों का सबसे अच्छा उदाहरण पर्ल बक का 'अच्छी भूमि' (Good Earth) नामक उपन्यास है। चीनी कृषक के सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन का पूर्ण रूप इसमें मिलता है। पुत्र-व्रत जन्मोत्सव शादी-ब्याह मरण पूजा अर्चना धार्मिक विश्वास और अन्धविश्वास इन सबका विशेष विवरण दृष्टव्य है। भारत के ही पारिवारिक और सामाजिक आचरणों का अध्ययन पर्ल बक के 'आओ प्रिय' (Come, My Beloved) में हुआ है। यही प्रथा (पृ ८१ पृ १) स्नान का उप (पृ १३) सबसंस्कार (पृ २३) सर्पपूजा (पृ ३) आतिथ्यता (पृ २१ २२) कर्म पर विश्वास (पृ ८७) धार्मिक सहिष्णुता (पृ १ ६) प्रत्येक काम की हवा (पृ ११३) तमस्कार प्रथा (पृ १२४) आदि संकड़ों बातों पर प्रकाश पड़ता है। पात्रों के आचरण देशीय आचरण हैं उनके विचार देशीय विचार। अतः इन पात्रों को समझना भारत के समाज और संस्कृति को समझना है। प्रेमचन्द के पात्रों से भी हम भारत को बहुत कुछ समझ सकते हैं पर हिन्दी के अन्य उपन्यासकारों ने इस विषय में बहुत उपेक्षा की है।

४

व्यक्तिवादी उपन्यासों के पात्रों का व्यक्तित्व

आन्तरिक व्यक्तित्व

चरित्र-सृष्टि की कला का प्रौढ़तम रूप व्यक्तिवादी उपन्यासों में मिलता है जिनमें पात्रों के बाह्य रूप और आचरण के प्रत्यक्ष वचार्थ के परे मनुष्य की अन्तर्बुद्धियों को वचार्थ के रूप में स्वीकृत किया जाता है। उपन्यास में चरित्र-चित्रण के विकास का इतिहास यह स्पष्ट करता है कि अन्तर्निरीक्षण की परिपाटी कमरा विकसित होती आयी है। उपन्यास के अन्तर्निरीक्षण और मनोविश्लेषण का अध्ययन आमाजी अध्याय में किया जायगा। यहाँ अन्तर्मुखी दृष्टि के उपन्यासों के पात्रों के व्यक्तित्व-मात्र की चर्चा की जाती है।

२४४ यूरोप में अन्तीसवीं शती के उत्तरार्ध ने ऐसे कई उपन्यास रचे जो जीवन की वास्तविकता को अधिक गहराई में डूबकर, उस जीवन को प्रेरणा देनेवाली मानसिक शक्तियों का विश्लेषण करने लगे।—अंग्रेजी में जॉर्ज एलियट मेरिडिय कसी में तुर्पनैव वास्तव्यवस्की तात्स्थाय फेंच में फ्लावेयर, पाद्रे मोयोसा आदि के उपन्यासों का उल्लेख हो चुका है। इनमें फेंच के उपन्यास मन की विभिन्न प्रवृत्तियों से सम्बन्धित थे। कसी में वास्तव्यवस्की और तात्स्थाय ने मनोवैज्ञानिक से अधिक वास्तविक दृष्टि से चित्तवृत्तियों का विश्लेषण किया। पाप और पुण्य उनके विषय हैं, और पाप और

पुण्य का सम्बन्ध मन से अधिक धारणा से है। तुलनेय का मनोनिरीक्षण अधिक वैज्ञानिक है और वह परम्परा से विकसित होती मानेवासी मनोवृत्तियों के विकास की विज्ञानों को दिखाता है। अंधवी के मनस्त्व से सम्बन्धित उपन्यास बहुत कुछ मनो वैज्ञानिक हैं पर दर्शन का भी पुट उनमें है।^१ बीसवीं शती में अन्तर्निरीक्षण का आधार मनोविज्ञान ही हो गया और व्यक्तिवादी उपन्यासों का अपार विकास हुआ। इस की सामाजिक परिस्थिति इसके प्रतिद्वन्द्व की क्रिन्नु फ़ॉस और इंग्लैंड में व्यक्तिवादी उपन्यासों ने उपन्यास के लिए नयी दिशाएँ बूझ निकाली।

२४५ हिन्दी में व्यक्तिवादी उपन्यास का इतिहास केवल बीस वर्ष का है प्रभात 'सुनीता' से लेकर। 'सुनीता' के पश्चात् के व्यक्तिवादी उपन्यासों को अध्ययन की सुविधा के लिए दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम श्रेणी के उपन्यास पूर्णतया किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व से संबन्धित हैं जैसे 'सुखदा' 'विधवा' 'सन्दासी' 'प्रेम और छाया' 'निर्वासित' 'मुक्तिपथ' 'नदी के द्वीप' 'धन की लोभ' आदि। दूसरी श्रेणी के उपन्यासों में एक या अधिक पात्रों के व्यक्तित्व के विकास के साथ सामाजिक वातावरण भी प्रस्तुत किया गया है 'गिरली बीवारे' 'गरम राख' 'सितारों का घेरा' 'नये मोड़' 'गुनाहों का बंधन' आदि को इस श्रेणी में रख सकते हैं। वस्तुतः प्रथम श्रेणी के उपन्यासों को ही व्यक्तिवादी कह सकते हैं। दूसरी श्रेणी के उपन्यासों में यद्यपि कुछ सफल व्यक्तित्वों का निर्माण हुआ है तथापि उनका आधारभूत विषय कुछ सामाजिक प्रवृत्तियों का उद्घाटन ही रहा है। गिरली बीवारे 'गरम राख' 'सितारों का घेरा' 'गुनाहों का बंधन' इनमें प्रेम और विवाह, वैयक्तिक समस्या से बढ़कर सामाजिक समस्या बन जाते हैं। व्यक्ति के आन्तरिक संघर्ष से बढ़कर समाज के नियमों और बन्धनों के विरुद्ध व्यक्ति का संघर्ष ही इनमें प्रबल है।

हिन्दी के व्यक्तिवादी उपन्यासों की विशेषताएँ

२४६ जब हम पूर्णतया व्यक्तिवादी उपन्यासों के पात्रों के व्यक्तित्व को देखें प्रायः हम सबसे पात्रों की संख्या कम रखती हैं और दो-एक पात्रों को कुछ विशेष मनोवृत्तियों की विभिन्न दृष्टाव ही उपन्यास का विषय बन जाती हैं। विषय की विस्तारहीनता ही इन उपन्यासों के पात्रों के सबल व्यक्तित्व का प्रधान कारण है।

प्रायः व्यक्तिवादी उपन्यासों में व्यक्तियों के सर्वांगीण रूप का परिचय नहीं मिलता किसी एक विशेष मनोवृत्ति का ही मुख्य अध्ययन मिलता है। विशेषकर हिन्दी के व्यक्तिवादी उपन्यासों के पात्र प्रायः यौन-मनोवृत्ति की किसी तरह की विकृति से प्रभावित रहते हैं। इस बात की ओर अधिक लेखकों ने ध्यान नहीं दिया है।

२४७ जेम्स के 'सुनीता' का हरिप्रसन्न पहले स्त्रियों से विरक्त रहनेवासा है नैसर्गिक लैक्स की वासना उसमें सुप्त या दमित रहती है और सुनीता के साहचर्य

से वह बाधित हो जाती है। हरिप्रसन्न की परिवर्तित होनेवाली मनोवृत्तियों से चर्चण करते हुए भी उसके सर्वथा अनुकूल रहना और अनुकूल रहते हुए भी अपनी आत्मशक्ति से उसके अनिर्धारित भावों का सम्यक् करना इसमें सुनिश्चिता का व्यक्तित्व निहित है। जैन के अर्थ उपन्यासों के मुख्य पात्रों में व्यक्तित्व भी सेक्स की दृष्टि से प्रभावित है। योग-वृत्ति के बल या धृष्टि से ही उन सबके जीवन का रूप निर्णीत होता है। सुषरा कान्त के प्रेम में मुग्ध रहने पर भी जीवन में एक भ्रातृ प्रसन्नोप का अनुभव करती है। उसके जीवन की पराजय के दो कारण हैं। स्वभावतः स्त्री पुरुष में पुरुषत्व की उपासना करती है और फिर सुषरा का व्यक्तित्व शिक्षा के कारण काफी विकसित है। ऐसी स्त्री के ही उपासना भाविक के पालनेवाले एक कमचारी की चरवाली-माँ के रूप में अपने समस्त जीवन का व्यय कैसे कर सकती है? उसकी यह स्वाकांक्षा पूरे के भीतर सीमित नहीं रह सकती। सुषरा का व्यक्तित्व घर की दीवारों को तोड़कर बाहर जाने की महत्त्वाकांक्षा और परिवार के प्रति स्त्री का स्वाभाविक आकर्षण इन दोनों के बीच के चर्चण से होकर विकसित होता है। 'विषय में जितने सुबनमोहिनी के प्रति अपने आकर्षण को समित रखता है समित वासना से संचालित उसका जीवन क्षति की ओर चला जाता है और बिनाशकारी कार्यों में लग जाता है। 'अतीत' के जगत के जीवन को निर्धारित करनेवाली वस्तु उसकी अपनी दूर की महान के प्रति स्थूल आकर्षित है। जो वस्तु के कारण उसकी चित्तवृत्तियों को घसा चारु बना देती है। जैन के प्रायः सभी मुख्य पात्रों में इस तरह की मनोवृत्तियाँ काम करती हैं, और इसलिये उनके व्यक्तित्व असाधारण बन गये हैं।

२४८ जोशी के 'संन्यासी' 'प्रेत और छाया' 'निर्वासित' और 'मुक्तिपथ' में प्रत्येक के 'छिन्न' और 'नयी के द्वीप' में तथा डा. वैकराव के 'पथ की खोज' में भी निश्चित मनोवृत्तियों का विकास हुआ है। 'संन्यासी' और 'निर्वासित' में वही सेक्स की दृष्टि है जो पात्रों के मानसिक एवं सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है। 'प्रेत और छाया' में मनोवैज्ञानिक निर्देशन (संवेक्षण) की प्रेरक शक्ति से निर्धारित व्यक्ति जीवन सामाजिक परिस्थितियों में विकसित होता है। 'मुक्तिपथ' की समस्या इन सब उपन्यासों की तुलना में अधिक सीमित और वैयक्तिक है। प्रत्येक पान्थरिक मार्ग का विकास अधिक केन्द्रीकृत हुआ है। राजीव एक असाधारण आदर्श युवक है जो अपना सुनन्दा को आश्रय देकर अपने पास रखता है। उसका पहचानी व्यक्तित्व सुनन्दा में भी 'अह' का विकास करता है। वह बार-बार सुनन्दा को उसके व्यक्तित्व के प्रति संवेत करता है। परिणाम यह होता है कि सुनन्दा का व्यक्तित्व भी इतना विकसित होता है कि वह राजीव तक से सहायता लेने को हीन समझकर अपने ही भरोसे चली जाती है। सबल व्यक्ति के अग्रगत विकास का स्वाभाविक चित्रण है? उसे ही राजीव का आदर्शवाद जीवन की सीमा को पार कर जाता है। जोशी के पात्रों में राजीव और सुनन्दा को छोड़कर और सबका विकास गमाम में ही होता है। उन सबके जीवन के साथ कुछ सामाजिक समस्याएँ भी संबन्धित हैं। 'प्रेत और छाया' में समाज में वर्तमान वैयक्तिक अनेकिकता का कितने ही असाधारण है। 'अज्ञान का पत्नी' के

नायक का जीवन पूर्णतया इतना ही है। पात्र के व्यक्तित्व की तीव्रता उसकी अन्त-सत्ता के प्राविष्कार के कारण नहीं है बल्कि उसके समाज के अग्रणी अत्याचारों का निरीक्षण और विमर्श करने में है। समयबहुल्य ही उसके जीवन को धार्मिक बनाता है पर यह धार्मिकता हासिक नहीं है। केवल घटनाओं के अधिभूत होनेवाली एक घन सती है। व्यक्तिवादी उपन्यास के रूप में इसे जोसीजी की पराजय ही मानना पड़ेगा।

२४६. 'अज्ञेय के देखर' की 'बहाल का पक्षी' से इस बात में तुमना की जा सकती है कि उसमें भी एक व्यक्ति का त्रिमित सामाजिक परिस्थितियों के बीच ले जाया गया है। किन्तु अज्ञेय तो सामाजिक परिवेश को व्यक्तित्व के विकास में एक प्रेरक शक्ति के रूप में ही ग्रहण किया है। 'देखर' का मुख्य धार्यण समाज नहीं व्यक्ति है। अज्ञेय की व्यक्तित्व का क्रमशः विकास परिस्थितियों के कारण उसका अन्तरिक संघर्ष और संघर्ष से होकर चलते हुए, प्राविष्कारिक संघर्ष होता हुआ 'मह' यही 'देखर' की विशेषता है। 'अज्ञेय के बीच' में भी अज्ञेय पात्रों के व्यक्तित्वों के कुछ विशेष अंशों को लेते हैं। देखर की अपेक्षा उसका विषय सीमित है अतः उसके पात्रों के व्यक्तित्व भी अधिक संकुचित है। किन्तु जिस वैचारिक छेद का अन्वेष ले लिया है उसके प्रत्येक अंश को उन्होंने मार्मिक बना दिया है। 'देखा' इसकी सबसे सबसे पात्र है। अपने वैवाहिक जीवन से कुछ न पानेवाली देखा के भुवन के प्रति धार्यण में अज्ञेय साधारण उपन्यासों के प्रामाणिकता से बहुत ऊपर उठे हैं। जब देखर बाह्य संसार को छोड़कर देखा के मनो-व्यवस्था में प्रविष्ट हो जाता है और उसकी अन्तर्निवासना के उत्कट रूप की ओर संकेत करती है तब समझ में आता है कि यथार्थ व्यक्ति के बाहर नहीं अन्तर ही होता है। एक दिन की लैंगिक अनुभूति के लिए वह भुवन का चिर चर मानती है इसी लैंगिक अनुभूति के कारण अपने निरुपल जीवन को धार्मिक मानती है। भुवन को पूर्णतया मुक्त छोड़कर, और मुक्त छोड़ने के लिये भूल-हत्या तक करके वह सब उस अनुभूति के लिए उसका आभारी रहती है। जब वह बार-बार कहती है 'आइएम फुलफिल्ड भुवन' तब उसके अन्तर्करण जीवन में उस अनुभूति का महत्त्व ज्ञात होता है। वासना एक बर्बाद है, और जीवन का सबसे बड़ा धर्मार्थ है। उसकी तृप्ति मन की एक विशेष दशा पर अवलंबित रहती है भोग की मात्रा पर नहीं। यह मनोवैज्ञानिक सत्य ही नहीं धार्मिक सत्य भी है। देखा के मनोभोक में प्रविष्ट होकर देखर इसी सत्य की परीक्षा करती है। यह एक सार्वजनिक सत्य है। अतः बाह्य भोक की अपेक्षा करके एक संकुचित क्षेत्र में प्रविष्ट होकर पात्रों की अत्यधिक व्यक्तिवादी बनाकर भी अज्ञेय उनको सामान्य अनुभूति का विषय बना सके हैं।

२४७. डा. बेकराज के 'पन की खोज' को भी इसी श्रेणी में रख सकते हैं। यद्यपि उसमें कलात्मक दृष्टि से कुछ क्षमिता है। बन्धनाथ के चरित्र में एक दुर्लभ व्यक्ति का सफल चित्रण हुआ है। अन्तर में काम-वासना का प्राविष्कार है पर उसकी पूर्ति का मार्ग बूढ़ों का साहस नहीं है। देखा के धार्मिकसमर्पण पर भुवन पहले उसे टाकता है पर बाद में वह स्वयं देखा से मुक्त हो जाता है। यही अन्तर्निवासना के प्रति अधिक आग्रह है पर स्वयं धार्य नहीं बढ़ता। साधना कामोन्मत्तन से उसके पास

घाटी है। ठा वह स्वीकृत करने को तैयार है। पर यहाँ साधना—जो रक्षा का उभट्टा रूप है—पहले बाधना से पीड़ित होने पर भी पतन के पूर्व ही अपने-आपको संभाल लेती है और कहती है 'मुझे तुम्हें भँगा कहना ही सम्भव लगता है।' बन्ध की बाधना निवृत्तता से समित और मृत्यु रह जाती है। साधना अपनी बाधना को स्वयं हरा लेती है। डा देवराज भी सामाजिक पृष्ठभूमि से बहुत कुछ दूर रहकर पार्श्वों के मानसिक संसार का धनतोषण करते हैं।

कुछ यूरोपीय पात्र

२५१ व्यक्तिवादी उपन्यासों के पात्र व्यक्तित्व का वैज्ञानिक विस्लेषण के परित्याग देने हैं। यद्यपि उनकी सफलता इस बात पर निर्भर है कि उनमें व्यक्तित्व का निर्माण करनेवाले किसी मनोवाक्य को कितनी विश्वस्तता से यथार्थ का रूप दिया गया है। 'अन्ना करेनिना' में तात्स्थाय में बाधना के दो रूप दिखाए हैं। एक वह जो सचा अद्यतन का कारण बना रहता है और अपनी चरम सीमा में आत्मनाश का कारण बनता है। अन्ना में बाधना का यही रूप है। किर्टी में बाधना का वह विमर्श रूप है जो मानस का कारण है और सृजन का साधन है। पार्श्वों की वैयक्तिकता का कारण उनपर इन्हीं नामों का आरोप है यद्यपि अन्य कई कारणों से उपन्यास का सामाजिक महत्त्व भी कम नहीं है। 'पुनर्जीवन' (Resurrection) में नस्तस्यता की 'बहु वृत्ति' का चित्रण है जो उसके पतित होने के बाद उस पतित करनेवाले व्यक्ति की बचा को स्वीकृत करने से मना करती है। यातनाएं वह वह सकती है पर उस व्यक्ति को बचा स्वीकृत करके उससे विवाह नहीं कर सकती जिसने उसे पतित किया था। शान्ता यवस्की के सभी पात्र अपनी आन्तरिक तीव्रता और बाह्य शीर्षस्थ के कारण अनाचारण हैं। रस्कोनिकोव एक बनी बुद्धि का मारता है। केवल वह रक्षाने के लिए कि वह मार सकता है। भौतिक नैतिकता के नियमों का उल्लंघन कर अमानुषिक व्यक्तित्व प्राप्त कर सकता है। फिर उसके मन में होनेवाली तीव्र प्रतिक्रिया ही उपन्यास का विषय है। 'महामूर्ख' के ग्रिफ मित्रिकन में एक निष्कर्षक पर व्यावहारिक कार्यों में पर-चित्त होनेवाले बाधक-सुख व्यक्ति के और प्रेम करते हुए भी प्रेमी के सामाजिक पद का विचार कर उससे भावनाशील और स्वयं पतित होनेवाली एक नारी के मानसिक विकारों का चित्रण है। इन सबमें केवल पाप-पुण्य की दृष्टि से किसी एक मानसिक वृत्ति का विस्लेषण करते हैं। यद्यपि य मनोवैज्ञानिक ही नहीं सांघिक भी है।

केंच में 'आई' और 'मिडगाब्ल' इसी तरह के उपन्यास हैं। किन्तु धार्मिक केंच उपन्यासकारों के व्यक्तिवादी उपन्यासों के पार्श्वों में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ही विकारों का अध्ययन हुआ है। यानिय का 'मायमोविल व मापिन' में पुरुषों को सम करने की इच्छा एक स्त्री का जीवन है। एबी ग्रीनोव का 'मायम सेफा' ऐसी एक स्त्री का इतिहास है जो एक पार प्रेम करती है और दूसरी और ऐश्वर्यों के प्रति आकर्षित है। उसके कारण उसके पीछे पड़े हुए प्रेमी की संपत्ति का संचयन ही जाता है। अनुमोह के लिए अनुमोह—मुख के लिए ही मुख—दर्श के लिए ही दर्श—इसीमें

उसे धामन्य मिसता है। यह प्रकृति उसमें एक उन्माद की तरह है। पत्तावेयर की महाम बीमारी ऐद्वय ही नहीं काम मुक्ति भी चाहती है। इन उपन्यासों में व्यक्तित्व के विकास का आधार कोई एक मानसिक प्रकृति है जिसका पात्र में घसटारण रूप में विकास होता है। आन्ध्र बीर के 'तम दरवाजा' की एसीजा में भी उसके अपार प्रेम और नैतिकता के बीच का संघर्ष है। फ्रांसो मारिया के 'ओ ओ नया' में नायक ऐसा एक व्यक्ति है जो किसी भी दशा में अपना अनिर्वचित सम्पूर्ण जीवन नहीं छोड़ सकता पत्नी के मृत्यु-घट्ना पर होने पर भी। अंग्रेजी में प्राधुनिक लेखकों ने जो व्यक्तिवादी उपन्यास लिखे हैं, उनमें प्रायः व्यक्तित्व की रूप देनेवासे परिवेश का भी महत्व रहता है। फ्रांस्वर के 'ए कम बिच ए ब्यू' में प्रेम के परिस्थिति-जन्य विकास का चित्रण है। सारेन्स के 'लेडी वाटर्सी का प्रेमी' में एक युवती के काम-विकारों का परिणाम है जिसका पति युद्ध में जाकर शारीरिक रूप में विभिन्न और असक्त हो चुका है। 'बटे और प्रेमी' में अपनी रुचि के विपक्ष पति से विवाह करनेवाली एक स्त्री का प्रेम उसके पुत्र पर का टिकता है। माता के प्रेम का आशय बना हुआ पुत्र हर स्त्री में माता का ही रूप देखना चाहता है और पत्नी के रूप में किसीको अपना नहीं पाता।

उदाहरण बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। वहाँ हमारा ध्येय नहीं सिखाना है कि व्यक्तिवादी उपन्यासों में व्यक्ति का कौसा एकांगी किन्तु प्रभावपूर्ण रूप मिसता है। इन पाश्चात्य उपन्यासों के समान ही बंनेन्द्र बोधी अश्वेव और बैरदाय ने व्यक्ति के किसी एक मनोभाव को एक-एक उपन्यास में लिया है।

सबसता निर्बसता—वास्तविकता अवास्तविकता

२४२ वहाँ मनोभाव सार्वजनिक रहे हैं, वहाँ लेखकों को सफलता मिली है। वहाँ सार्वजनिकता का धर्म यह नहीं है कि वे मात्र उसी रूप और मात्रा में सार्वजनिक हैं जिस रूप और मात्रा में पात्रों में प्रस्तुत किए गए हैं। वस्तुतः इन उपन्यासों के पात्रों में जो मात्र-सीधता है वह सामान्य जीवन में देखना असम्भव है। वही एक कारण है कि मुनीठा जयन्त मुखरा जितेन भुवनमोहिनी बेसर, रेखा भुवन पौर मन्दिछोट, मोहन पारसनाथ जन्मनाथ सब कोई धर्मधार्य-से लगते हैं। इस अस्वाभाविकता का कारण बूढ़ने पर दी-तीन बार्ते स्पष्ट होती। प्रथम है इन पात्रों का एकांगीपन। व्यक्तिवादी उपन्यासकारों ने पात्रों की किसी एक मानसिक विशेषता पर ही ध्यान दिया है और अन्य अर्थों की उपेक्षा की है। अधुना रूप में विविध इन पात्रों को पूर्णत्व के मापदण्ड से मापने पर अस्वाभाविकता ही दिखाई पड़ेगी। किन्तु व्यक्तिवादी उपन्यासों के पात्रों का अन्य उपन्यासों के पात्रों की तुलना में मूर्खांकन करना अनुचित है। पात्र का सार्वांगीण अभ्ययन विद्यास ठो हो सकता है पर उसका अभाव नहीं। धात्र के बौद्धिक उत्थार में मनुष्य को नहराई से समझने की आवश्यकता है इसीलिए व्यक्तिवादी उपन्यासकार विद्यासता को छोड़कर अभावता की ओर जाता है। विशेषीकरण (Specialisation) अभावता के लिए अनिवार्य है। इसीलिए वह अपने आवश्यक अक्ष-भाव को लेकर और सबका तिरस्कार करता है। अतः लेखक

के प्रति हम ग्याम धर्मी कर सकते जब हम उसका दृष्टिकोण समझकर पार्श्वों के उसी धंध को देखने का प्रयत्न करें जिसे मेकअप दिखाना चाहता है। सदाहरण के लिए रेखा को नें। वह सजाधारण नापी है, बहुत कुछ अस्वाभाविक भी है पर उसकी वासना सत्य है। वह ब्रह्मत्व जीवन में परिणुप्त न होकर भुवन को एक दिन आत्मसमर्पण कर सन्तुष्ट होती है। वासना की तुल्यि धारीरिक मोम से नहीं भागसिक संतोष से होती है। भागसिक संतोष अनुभवी धीर अनुभाव्य व्यक्तियों पर भागसिक रहता है—यह एक परम सत्य है, धीर इसीको आत्मवाद जन्म-जन्मान्तर का संवन्ध मानता है। रेखा इसी सत्य की व्याख्या है। फिर भी वह सजाधारण क्यों ? इस सामान्य धीर साधारण सत्य को अज्ञेय में अत्यन्त प्रकाश बना दिया है। विचार जो सामान्य लोगों में साधारण रहता है, उसीको मेकअप ने पुटपाक कर बनीसूत कर दिया है। उसके अतिरिक्त रेखा में कुछ नहीं रहता। 'रेखाजी को भी साधारण स्त्री मानता था पर अब हैसता हूं उनका अनाचाररहित इमीमें है कि वह साधारणत्व का बरमो-त्कर्ष ॥ साधारण स्त्री की साधारण वासना अपने बरम रूप में उनमें बिद्यमान है।' १

अग्रभाष्य के ये सत्य रेखा की व्याख्या है रेखा की नहीं सभी उत्कृष्ट व्यक्तिवादी उपन्यासों के पात्रों की व्याख्या है। इन धर्मों के प्रकाश में देखें तो अज्ञेय कैप्टन जोड़ी दास्तावबस्की क्लावेयर, मारिवा बीर नारस धादि के पात्र बहुत कुछ स्पष्ट होंगे। एक प्रकार से इन सबके पात्र अतिरिक्त व्यंग्य-चित्र (Caricature cartoon) हैं ऐसे व्यंग्य-चित्र जिनके कुछ धन विशेष रूप में ध्यान आकृष्ट करने के लिए अनुपात में बढ़े दिखाए गए हैं। इससे चित्र अपनी पूर्णता न असाध्य होने पर भी उस अर्थ का सारथ अधिक स्पष्ट होता है।

जोड़ीजी के पात्र यद्यपि व्यक्तिगत की दृष्टि से बहुत सफल नहीं हैं २ तो भी उनका ध्येय उनमें कुछ विशेष कृतिशों का आरोप करना है। 'निर्वासित' का यहीप धीर 'सम्पासी' का गन्धविहोर उपरिप्लव (Superfluous) मुक है। मन्द ने यह सोचकर कि पढ़ाई से क्या लाभ उसे छोड़ दिया धीर एक-एक कर दो मुक्तियों से प्रेम किया। सबकी महम्मम्यता न उसे ही ऊपर बढती है न उसे समाज के लिए उपयोगी बनाती है। कल्कि इस 'मई' के सामने हो-हो अचलाधों को अपने जीवन का उत्सवे करना बड़ता है। वह किसी बन्धन में बंधना नहीं चाहता। धान्ति को पत्नीबन् रहते हुए भी समस विवाह करने में हिचकता हुया कहता है। "मैं अपने धनजान में यह महसूस कर रहा था कि मैं जिस तरह का निकम्मा असाधारिक धीर अनाधस्यक धारमी हूं—धंधजी मैं जिसे कहते हैं Superfluous man उस तरह के प्रादमी से कभी किसी भी प्रकार के बन्धन में बंधे रहना (चाहे वह बन्धन कैसा ही पवित्र धीर स्वर्गिक क्यों न हो) समस हो ही नहीं सकता।" ३ यह उत्तरवाचित्य हीनता से बड़कर 'मई'

१. करी के हीर ४ १२ ।

२. ईश्वर अनुभूति २४१ ।

३. सम्पासी ४० ४४३ ।

की उन्मत्तस्य मृति है जो बूझों से सेना ही नहीं जानती है, देना नहीं जानती। पर इससे उसे शान्ति भी नहीं मिलती। बयस्ती कहती है "भाप बड़े धाँकाटी है। भापका धाँकार हर बर्ष तक भागे बड़ा हुआ है। 'उसके कारण भापके जीवन में बसकर अधान्ति धीर बेचैनी छाई रहती होगी। इस धाँकाव से चाहते हैं कि जिस स्त्री से भापका सम्बन्ध हो वह पूर्ण रूप से भापकी होकर रहे उसका कुछ भी स्वतंत्र रूप से अपना कहने को न रहे। वह सब कुछ बिना किसी अधमंजस के भापके पैरों-तम समर्पित कर दे। पर यह 'धई' केबल उपरिष्कृत है क्योंकि उसे किसी उत्पन्न पर आस्था नहीं है वह उसके जीवन को बिछा नहीं देता उससे उसे सिधिल ही बनाता है। इसी तरह 'निर्वासित का महीप जो एक भावुक मुक्त धीर कवि है अपने में प्रतिभा धीर बल के होने पर भी जीवन में बिछल होता है। स्थिरता धीर दृढ़ता से रहित इस मुक्त की कवि-कल्पना प्रेम का त्याग कर एकदम 'सूगर्म की धाव' में आ जाती है। इसी भावुकता के कारण वह धाव ही उस लिखना छोड़ देता है। जैसे नीलिमा कहती है 'उसका कवि-हृदय धाववकता से अधिक अनुमृतिशील है' और 'यही उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता है और यही उसका बल भी है।' २ भावुकता उसे क्षान्तिकारी बनाती है, पर वह क्षान्तिकारी नहीं बन पाता। नन्द के समान ही वह धारमधोवन करता है। 'प्रगतिशील संस्कारों को पूरे तौर से अपनाने की चेष्टा करने पर भी बहुत संभव है मेरे भीतर मेरे अज्ञात में गहनशील सम्मता के संस्कार बहुत कुछ रह गए हैं। ३ तुम्हें क रविन नेवनीय और बजारोय से इसकी तुलना की जा सकती है। तीनों ऐसे उपरिष्कृत व्यक्ति हैं, जो बाहर से क्षान्ति काटी बिचारधारा के हैं पर प्रायोगिक क्षेत्र में जाने पर भयकर रूप में पराजित होते हैं। उनकी मानसिक संस्कृत परम्परा के बन्धन से छूट नहीं पाती। मध्यवर्गीय मुक्त की इस दुन्धालमक मनोबद्धा की ही जोड़ी में भी बिछाया है।

यहाँ हमारा ध्येय जोड़ी-बी के पात्रों के व्यक्तित्व का सामान्य रूप दिखाना ही था। इसी तरह अन्य उपन्यासों में भी उन्होंने व्यक्तित्व के किसी विशेष संघ को लेकर उसका विश्लेषण किया है विशेषण में संकलता कहाँ तक मिली है यह बूझी बात है। यह भी विचारणीय है कि इन पात्रों को जोड़ी-बी में जो बातावरण दिया है वह कहाँ तक उचित है।

व्यक्तिवादी उपन्यासों के पात्र और बातावरण

२५३ उपन्यास के बातावरण के सम्बन्ध में विचारणीय एक मुख्य विषय यह है कि क्या व्यक्तिवाद का प्राथम्य लेकर पात्रों का समाज से सम्बन्ध ठोड़ा जा सकता है? क्या उनका सामाजिक रूप गूँट दिया जाता है। हम में अज्ञेयजी ने एक

१ संख्यासी ५ ३८१।

२ निर्वासित पृ १।

३ निर्वासित पृ ३३।

आम के 'नदी के द्वीप' के सम्बन्ध में ऐसे एक प्रश्न के उत्तर में लिखा "एक पेड़ की हरी-भरी छायाओं को देखने के लिए क्या यह देखने की आवश्यकता है कि उसकी जड़ जमीन पर है कि नहीं?" धर्मयोगी का यह प्रश्न बहुत ही सार्थक और महत्त्वपूर्ण है और हिन्दी उपन्यासकार इसके प्रति ध्यान में तो उससे बहुत अधिक लाभ की संभावना है। इस प्रश्न का उत्तर बते हुए हम को बाँधे रहेंगे।

२२४ (१) हरी-भरी छायाओं का देखते हुए (या देखने के लिए) पेड़ की जड़ को देखने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु सर्वतः यह है कि सदा यह ध्यान रखा जाय कि ये छायाएँ किस वृक्ष की हैं और य हमारे चेहरे में हो सकती हैं कि नहीं। हिमात्म्य की उल्लङ्घितियों पर नारियल के रस-झलकों को देखकर घबरा बोम्बा के तटी पर आत्ममन्त्रियों को निहारकर मुब-मुब खोनेवाला लेखक शास्त्र का आत्ममन्त्र बन सकता है सफल उपन्यासकार नहीं। व्यक्तिवादी उपन्यास में समाज का चित्रण अनिवार्य नहीं है। पर व्यक्ति का समाज के अनुकूल होना आवश्यक है। अन्त्या मन्त्र को उन मानसिक तत्त्वों तक सीमित रहना चाहिए जो सामाजिक हों और पात्र के विषय सामाजिक आचरणों की पूर्ण उपेक्षा करनी चाहिए। आन्ते जीव ने 'लव बरबादा' में और फ्रांसी मारिया ने 'जो जो गया' में यही किया है। दोनों लेखक समाज को पूर्णतया छोड़कर व्यक्ति के भावजगत् में प्रविष्ट हो जाते हैं, जो सामाजिक धीरे समझानी है जो वैयक्तिक की सीमा के परे है। पात्र की पुष्टपुष्टि में भाव ही पात्र बनकर आते हैं। धर्म ने 'नदी के द्वीप' के उत्तरार्ध में समाज से पात्रों का सम्बन्ध तोड़ दिया है और एक भावलोक का सृजन करके हम सर्वत्र प्रविष्ट करने का सफल प्रयत्न किया है। हिन्दी के अन्य किसी लेखक को ऐसी सफलता नहीं मिली है। शायद ही कोई लेखक इस प्रवृत्ति की ओर उन्मुख हुआ हो।

किन्तु एक बात माननी पड़ती कि समाज की पूर्ण उपेक्षा करके पात्रों की मूर्त एवं यथार्थ रूप देना सहज कार्य नहीं है। नवा प्रेमचन्द के उपन्यास के यथार्थवादी भावों में पात्र विषय साकार रूप में प्रत्यक्ष होते हैं, उस रूप में धर्म के चेहरे या जोड़ी के पात्र आते हैं? प्रभाव ने आसते अवश्य हैं पर वह प्रभाव दूसरे प्रकार का है क्योंकि वह भावत्मक है। पात्रों की अन्तःसत्ता के आधार पर एक क्षण संसार रचकर उसीमें पात्रों को सुभा देना ऐसे व्यक्तिवादी उपन्यासों की सफलता है। यह प्रभाव नहीं होता है जहाँ लेखक समाज से पात्र का सम्बन्ध तोड़कर ऐसे एक भाव जगत् का सृजन कर जो यथार्थ होने पर भी यथार्थ जासित हो। जीव और मारिया के उपन्यासों में तथा 'नदी के द्वीप' के उत्तर भाग में ऐसे भावजगत् की रचना हुई है।

२२५ (२) पेड़ की हरी भरी छायाओं को देखने के लिए यह देखना अनिवार्य नहीं है कि उसकी जड़ जमीन पर है कि नहीं किन्तु जड़ को देखना निश्चित भी नहीं है, सर्वतः यह है कि जड़ और छायाएँ एक ही पेड़ की हों।

शास्त्र ने अन्त्या के अन्तर्लोक में प्रविष्ट होकर समाज की पूर्ण उपेक्षा नहीं की है। अन्त्या के अन्तर्लोक की सामाजिक एवं पारिवारिक दशा 'अन्त्या' में द्रष्टव्य है। 'पुनर्जीवन' (Resurrection) में भी आत्मचरित्र का महत्त्व कम नहीं है। दुर्लभ ने मेजरमो

रविन बबरोब इन तीनों उपरिभाष भुवकों का चारित्रिक विकास—को पुरुषः व्यक्ति-सम्बन्धी है—सामाजिक परिवेश में ही किया है। 'महाम बोघापी' में पमावेवर ने फ्रेंच समाज को छोड़कर मग-सास्त्र के बोधले में धाधय नहीं लिया था। थोरेस के 'बेटे और प्रेमी' में माता पुत्र और दो प्रेमिकाओं के मानसिक चरित्रांकन के साथ ही कनिज-नमिकों के जीवन का जो चित्र धारा है वह विद्यालय न होने पर भी कम महत्त्व का नहीं है। और सरिथोपम उपन्यासों में तो व्यक्ति और समाज को समान महत्त्व देकर बिदेसपसु किया गया है और दोनों एक-दूसरे को अधिक स्पष्ट अधिक समझ बनाने में सहायक हुए हैं। स्वर्ण वज्रय ने 'शेखर' में समाज की पूर्ण उपेक्षा नहीं की है। प्रथम स्पष्ट है कि व्यक्तिवादी उपन्यासों में समाज की उपेक्षा अनिवार्य नहीं है। किन्तु यह देवना धारणक है कि व्यक्ति एवं समाज के कर्णों का प्रकट करते समय दोनों के बीच का सम्बन्धन नष्ट न हो जिस समाज में पात्र जीवित रहें उसके अनुसार ही वे प्राचरण करें। जब पात्रों को सामाजिक पृष्ठभूमि में उपस्थित किया जाता है तब निस्सन्देह यह अनिवार्य हो जाता है कि समाज के सामान्य आचार-विचारों पर भी ध्यान रखा जाय। व्यक्तिवादी पात्रों के विकास के लिए समाज से मनमानी करने का अधिकार लेसक को नहीं है। मने हो वह समाज को पूर्णतः छोड़ दे। यही पर हमारे व्यक्तिवादी लेखकों ने हमारे समाज के प्रति भारी अपराध किया है। जैनेन्द्र यदि इस बात पर ध्यान रखते तो उनका श्रीकान्त हरिप्रसन्न की सब प्रकार की प्रसन्नता के लिए उसकी सेवा में अपनी पत्नी सुनीता को नहीं बचाता कान्त अपनी पत्नी मुखरा को मास के कमरे में नहीं रखता कुमार ('अपीठ' में) विदेश जाने के लिए बहाब पकड़ने अपनी कनिज कन्नी को प्राकृतिक त्वर धाए हुए जयन्त के साथ छोड़कर नहीं जाता। (कन्नी और जयन्त का पहले परिचय ही नहीं है। एक साधारण मित्र के साथ एक समानी सड़की छोड़कर जाता अचिन्त्य विषय नहीं है।) ये सब बातें भारत के किसी भी वर्ग के समाज में नहीं होती। फिर भी हमारे ये लेखक इस हठ से निबटते हैं कि हम इन सब पात्रों को भारतीय मानें। बोधीबी ने श्री 'मुक्तिपत्र' और 'सुबह के भूने' के प्रतिरिक्त अपने सभी उपन्यासों में व्यक्तियों को सामाजिक बातावरण में प्रस्तुत किया है पर वे दोनों का सम्बन्ध नहीं कर सके हैं। ('मुक्तिपत्र' और 'सुबह के भूने' में सामाजिक बातावरण के होने पर भी उन बातावरण को पात्रों से प्रत्यक्ष करके यौग मान सकते हैं। पात्रों के मनोजगत का अपना पृथक् अस्तित्व है पर अन्य उपन्यासों में पात्र और समाज अविच्छेद हैं।) व्यक्तिवाद और अनेतिकता भारतीय समाज में कम नहीं है मग कुटुम्बों में भी अनेक सन्तानों का जन्म होता है पर यूरोपियन फेशन का प्रेम का क्षिणापन (Flirtation) हमारे समाज में शायद अभी नहीं धारा है। सत्मा परिवार की तीन-तीन सड़कियों से महीप का प्रेम ('निर्वासित' में) धान्ति एवं जयन्ती से मन्त्रकिशोर का सम्बन्ध ('सम्पादी' में) पारसनाथ का धावे रजन से अधिक सड़कियों से (इनमें कुछ 'धीरों' भी हैं) प्रम धारि व्यक्तित्व-विकास के हेतु सामाजिक यथार्थ पर किए गए आघात हैं। स्वर्ण वज्रयों की रेखा को ही न। प्रथम उसके मानसिक संसार के अन्तर्गत जिस मायालोक का निर्माण करते हैं,

घरमें मुग्ध होकर बाह्य संसार को भूल जाते हैं। मातात्मक पृष्ठभूमि में रेखा सजीव पात्र है। किन्तु उसे समाज में जाते हुए धन्यमयी उचितानुचितता का ध्यान फिटना रहते हैं? रेखा सुबन और चन्द्रमाचन को कॉफी हाउसों में नदी के किनारों पर सहर के पार्कों में (बहु भी रात के बारह बजे!) बुलाने की क्या धारम्यता थी। नदी के तीरे के प्रथम कुछ अध्यायो में फ्रांस का ही बातावरण है। यहीं पर हमें कहना पड़ता है कि इरी गरी साक्षात् को बेकांत समय बड़ को न देखें तो भी यह ध्यान रहना पड़ता है। मेपिल और एफिकाट के पेड़ आरुध म नहीं होते। अतः उनकी बड़ ही नहीं छायाएँ भी आरुध म नहीं होती। अगर कोई सैकड़ उत्तरप्रदेश म मेपिल और एफिकाट के पेड़ों की छायाएँ ही देखे अथवा फ्रांस म नारिदस के पेड़ का धीरे ही देखे तो वह अस्मय असत्य होगा। यदि सामाजिक यथार्थों का चित्रण व्यक्तिवादी उपन्यासकार का वायित्व नहीं है तो समाज के अयथार्थ चित्रण का निराकरण अवश्य उसका दायित्व है।

व्यक्तिवादी उपन्यासों के परतंत्र पात्र

२५६ साधारण लोच जब बोलते हैं, तब दार्शनिक भाषा में नहीं बोलते और न वे डेस कार्नेपी की संस्था में चित्रित भाष्यवातावा के समान ही बोलते हैं। पात्रों का व्यक्तित्व और उनका जीवन दार्शनिक भाषण देने में नहीं है। अतः व्यक्तिवादी उपन्यासकार को सबल व्यक्तित्व के निर्माण के लिए भी विस्तृत दार्शनिक विवेचनों का और विचारपूर्वक भाषणों का आशय लेना स्तुत्य नहीं है। हिन्दी के अधिकतर व्यक्तिवादी उपन्यासों में सजे-सजे भाषणों अथवा विवेचनों के रूप में दार्शनिक मनो वैज्ञानिक अथवा सामाजिक तत्त्वों का निरूपण किया गया है। जैनेन्द्र के पात्र दार्शनिक हैं तो अनेक के पात्र मनोवैज्ञानिक हैं और बोधी के पात्र मनोवैज्ञानिक एवं सामाज-आलोचक।

हर सैकड़ का अपना एक दर्शन होता है, अपने कुछ विचार होते हैं जिनको प्रकट करना उपन्यास में अनिवार्य नहीं है, तो निषिद्ध भी नहीं है। बोला अपनी कोई क्लिप्तोपप्रेष प्रकट नहीं करते जीवन को प्रकट करना ही उनकी क्लिप्तोपप्रेष है। पर तामस्ताप और दास्तायवस्पी ने अपने दर्शनों को ही उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया है। दार्शनिक विचारों को अथवा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित करते समय पात्रों की स्वाभाविक पंक्ति में बाधा डालने की संभावना रहती है। विरोधकर उस समय जबकि वे विचार और सिद्धान्त स्वयं पात्रों के मुँह से ही निगल किये जाते हैं। सामाजिक पात्रों के आलोचनात्मक और सुधारात्मक उपदेशवाद और उद्गारा पात्रों के यथार्थ पर किये जानेवाले आघात का उल्लेख हो चुका है।^१ व्यक्तिवादी पात्रों के विवेचण में इसका अवसर अधिक रहता है। दण्डन और मनोविज्ञान उपन्यास में निषिद्ध नहीं है, बहुत कुछ आवश्यक है। व्यक्तिवादी उपन्यासों में अनिवार्य भी है।

हरिम बखरोब इन तीनों उपरिष्कृत युवकों का चारित्रिक विकास—जो पूर्णतः व्यक्ति-सम्बन्धी है—सामाजिक परिवेश में ही किया है। 'महाम बोवारी' में प्लासेयर ने फेंच समाज को छोड़कर मन-शास्त्र के भोसले में घाघर नहीं लिया था। भार्तेम क 'बेटे धीर प्रेमी' में माता पुत्र धीर दो प्रेमिकाओं के मानसिक चरित्रांकन के साथ ही खनिज-यमिकों के जीवन का जो चित्र धारा है वह विद्यालय न होने पर भी कम महत्त्व का नहीं है। धीर सखितोपम उपन्यासों में तो व्यक्ति धीर समाज को समान महत्त्व देकर बिहसेपलू किया गया है धीर दोनों एक-दूसरे को अधिक स्पष्ट अधिक सबल बनाने में सहायक हुए हैं। स्वयं धर्म ने 'बोवारी' में समाज की पूर्ण उपेक्षा नहीं की है। यद्यपि स्पष्ट है कि व्यक्तिवादी उपन्यासों में समाज की उपेक्षा अनिवार्य नहीं है। किन्तु यह देखना आवश्यक है कि व्यक्ति एवं समाज के रूपों का प्रकट करते समय दोनों के बीच का सन्तुलन मष्ट न हो जिस समाज में पात्र बीबित रहें उसके अनुसार ही वे व्यवहार करें। जब पात्रों को सामाजिक पृष्ठभूमि में उपरिष्ठ किया जाता है तब निस्सन्देह यह अनिवार्य हो जाता है कि समाज के सामान्य आचार-विचारों पर भी ध्यान रखा जाय। व्यक्तिवादी पात्रों के विकास के लिए समाज से अनमानी करने का अधिकार लेसक को नहीं है मने हो वह समाज को पूर्णतः छोड़ है। यही पर हमारे व्यक्तिवादी लेखकों ने हमारे समाज के प्रति धारी अपराध किया है। जैनेन्द्र यदि इस बात पर ध्यान रखते तो उनका श्रीकान्त हरिप्रसन्न की सब प्रकार की प्रसन्नता के लिए उसकी सवा में अपनी पत्नी सुनीता को नहीं अपनाता कान्त अपनी पत्नी सुबहा को साल के कमरे में नहीं रखता कुमार ('मपीठ' में) विदेश जाने के लिए जहाज पकड़ने अपनी कब्रिज जन्मी को आत्मिक उबर धाए हुए जयन्त के साथ छोड़कर नहीं जाता। (जन्मी धीर जयन्त का पड़ने परिचय ही नहीं है। एक साधारण मित्र के साथ एक सवानी लड़की छोड़कर जाना अनित्य विषय नहीं है।) ये सब बातें भारत के किसी भी वर्ग के समाज में नहीं होतीं। फिर भी हमारे ये लेखक इस दृष्टि से निश्चित हैं कि हम इन सब पात्रों को भारतीय मानें। जोड़ी-बी ने भी 'मुक्तिपथ' धीर 'सुबह के भूमे' के प्रतिरिक्त अपने सभी उपन्यासों में व्यक्तियों को सामाजिक वातावरण में प्रस्तुत किया है पर वे दोनों का सन्तुलन नहीं कर सके हैं। ('मुक्तिपथ' धीर 'सुबह के भूमे' में सामाजिक वातावरण के होने पर भी उन वातावरण को पात्रों से प्रत्यक्ष करके गैरग मान सकते हैं। पात्रों के मनोजन्म का अपना पृथक् अस्तित्व है पर अन्य उपन्यासों में पात्र धीर समाज अविच्छेद हैं।) व्यक्तिवाद धीर धर्मिकता भारतीय समाज में कम नहीं है मत्र कृदुम्बों में भी धर्म सन्तानों का जन्म होता है पर यूरोपियन फैशन का प्रेम का किनामपन (Flirtation) हमारे समाज में शायद अभी नहीं धारा है। सन्ता परिवार की सीन-सीन लड़कियों से महीप का प्रेम ('निर्वासित' में) सान्ति एवं जयन्ती से नन्दकिशोर का सम्बन्ध ('संन्यासी' में) पारसनाथ का धार्मिक दर्शन से धर्मिक लड़कियों से (इनमें कुछ 'धीरत' भी हैं) प्रेम धार्मिक व्यक्तित्व विकास के हेतु सामाजिक यथार्थ पर किए गए धावात हैं। स्वयं जयन्ती की रेखा को ही नें। धर्म्य उसके मानसिक संसार के अन्तर्गत जिस मायालोक का निर्माण करते हैं।

उसमें मुग्ध होकर बाह्य ससार को भूल जाते हैं। आवात्मक पृष्ठभूमि में ऐसा सजीव पात्र है। किन्तु उसे समाज में लाते हुए यज्ञमयी उचितानुचितत्व का ध्यान कितना रखते हैं? ऐसा भुवन धीरे-धीरे समाज को बाँधी हाथों में मरी क किनारों पर सड़क के पार्श्वों में (बड़े-सी रात के बारह बजे) घुमाने की क्या आवश्यकता थी। 'नदी के द्वीप' के प्रथम कुछ अध्यायों में प्रेस का ही वातावरण है। यही पर हम कहना पड़ता है कि हरी मरी छायाओं को देखते समय वह को न देखें तो भी यह ध्यान रखना पड़ता है। मेक्स और एमिकाट के पेड़ गायल में नहीं होते। अतः उनकी जड़ ही नहीं छायाएँ भी भारत में नहीं होती। अगर कोई लेखक उत्तरप्रदेश में मेक्स और एमिकाट के पेड़ों की छायाएँ ही देखे अपना हास्य व मारियल के पेड़ का सीप ही देखे तो वह असम्भव अस्तित्व होगा। यदि सामाजिक यथार्थों का चित्रण व्यक्तिवादी उपन्यासकार का दायित्व नहीं है तो समाज के प्रत्यक्ष चित्रण का निराकरण अवश्य उसका दायित्व है।

व्यक्तिवादी उपन्यासों के परस्पर पात्र

२५६ सामान्य लोग जब बोलते हैं, वह दार्शनिक भाषा में नहीं बोलते और न वे डेल कार्नेगी की संस्था में शिक्षित भाषणशास्त्राचार के समान ही बोलते हैं। पात्रों का व्यक्तित्व और उनका जीवन दार्शनिक भाषण देने में नहीं है। अतः व्यक्तिवादी उपन्यासकार को सबसे व्यक्तित्व के निर्माण के लिए भी विस्तृत दार्शनिक विवेचनों का और विचारपूर्ण भाषणों का आशय लेना स्तुत्य नहीं है। हिन्दी के प्रसिद्ध व्यक्तित्ववादी उपन्यासों में लगे-लगे भाषणों द्वारा विवेचनों के रूप में दार्शनिक मनो-वैज्ञानिक प्रभाव सामाजिक तत्त्वों का निरूपण किया गया है। जैनेन्द्र के पात्र दार्शनिक हैं तो प्रत्यक्ष के पात्र मनोवैज्ञानिक हैं और बीबी के पात्र मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आलोचक।

हर लेखक का अपना एक दर्शन होता है। अपने कुछ विचार होते हैं जिनको प्रकट करना उपन्यास में अनिवार्य नहीं है। तो निषिद्ध भी नहीं है। जोना अपनी कोई क्रियाशील प्रकट नहीं करते। जीवन को प्रकट करना ही उनकी क्रियाशीलता है। पर शास्त्राचार और शास्त्राचारकसी में अपने दर्शनों को ही उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया है। दार्शनिक विचारों को अपना मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित करके समय पात्रों की सामाजिक कठि में बाधा डालने की संभावना रहती है। विशेषकर उस समय जबकि ये विचार और सिद्धान्त स्वयं पात्रों के मुँह से ही निष्पन्न किये जाते हैं। सामाजिक पात्रों के आलोचनात्मक और शुभारम्भिक उपदेशवाद और तदुद्धार पात्रों के यथार्थ पर किये जानेवाले आघात का उल्लेख हो चुका है।^१ व्यक्तिवादी पात्रों के विस्तार में इसका अवसर अधिक रहता है। इसलिये मनोविज्ञान उपन्यास में निषिद्ध नहीं है बहुत कुछ आवश्यक है। व्यक्तिवादी उपन्यासों में अनिवार्य भी है।

पर वह जब परोक्ष रूप में न होकर प्रत्यक्ष विस्मेषण बन जाता है। तब पात्रों के वास्तविक अस्तित्व में संदेह होने लगता है। जब लेखक अपने विचारों को पात्रों पर भाव देता है और उनसे सब-सबे सेवधर दिसाता है तब पात्र लेखक का पिदृष्ट बन जाता है। वास्तविकता के प्रायः सभी मुख्य पात्र इस दोष के कारण ही अस्वाभाविक बनते हैं। हिन्दी में बोधी में यह दोष अत्यधिक माना में है। जैसे जैनेन्द्र और भज्जय भी इससे पूर्णतः मुक्त नहीं हैं। जैनेन्द्र ने प्रायः पात्रों के मानसिक द्वन्द्वों और विकारों का विस्मेषण उनके संभाषणों और प्रवृत्तियों में ही किया है। उनके संभाषण प्रायः अपने अन्वयार्थ तक ही सीमित न रहकर प्रायः आन्तरिक द्वन्द्वों को भी व्यक्त करते हैं। लेकिन कहीं-कहीं इस प्रयत्न में संभाषण अस्वाभाविक बन जाता है। पात्रों के अस्तित्व में ही उनका व्यक्तित्व समर्थन हो जाता है। उनपर लेखक के व्यक्तित्व का आरोप हो जाता है।^१

फिर भी जैनेन्द्र में यह दोष कम है। भज्जय 'सिखर' में भले ही मनोविज्ञान के सिद्धान्तों की व्याख्या के लिए पात्रों की संभाषण प्रवृत्तियों को दिखाते हो तो भी प्रत्यक्ष विस्मेषण से मुक्त रहते हैं। किन्तु 'जरी के डीप' में प्रायः पूरा बाधाघात और पत्र-व्यवहार ही भाषा का ऐसा एक रूप स्वीकृत करता है जो सामान्यतः कोई नहीं बोलता। अपार बाधनिकता और मनोविज्ञान कथोपकथन को घाटी बना देते हैं। किन्तु भज्जय ने इतनी कुसमता है कि वे वर्णन और मनोविज्ञान को पात्रों के व्यक्तित्व के अंग बनाने में बहुत कुछ सफल हुए हैं। फिर भी कुछ प्रसंग सामाजिक उपन्यासों के प्रकार प्रसंगों की सीमा तक पहुँच गये हैं।^२

अब बोधी के पात्रों को लें। आलोचकों ने उनके पात्रों पर दुर्बल होने का दोष लगाया था और बोधी ने पलावेयर, बन्हाक तास्तवाक वास्तविकता की धारि के दुर्बल पात्रों का उदाहरण देते हुए, इन दुर्बल पात्रों को अपने उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता बताया है।^३ पर यहाँ बोधीजी से एक पलटो हुई है। पात्र का दुर्बल होना और बात है और चरित्र-चित्रण का दुर्बल होना बिल्कुल और। वस्तुतः दुर्बल पात्र का भी चरित्र-चित्रण सबल हो सकता है और यह कार्य बड़े प्रयत्न से सिद्ध होता है। 'अपराध और दण्ड' और 'महामूर्ख' में वास्तविकता ने 'अराध बोधारी' में पलावेयर ने 'अन्ता करेनिना' और 'अजें सोनटा' में तास्तवाक ने और 'हैमसेट' और 'मैकबेथ' नाटकों में दोषसपिमार ने दुर्बल पात्रों का सबल चरित्रांकन किया था। पर बोधीजी के पात्र ही नहीं उनका चरित्र-चित्रण भी दुर्बल है और इस दुर्बलता का कारण पात्रों पर लेखक के अपने विचारों का आरोप करना है। उनका दावा है कि उनके पात्र स्वतन्त्र हैं वे सामाजिक समस्याओं को स्पष्ट करने के लिए नहीं हैं पर समस्याएं अपने

१. देखें—सुनीता पृ. २६१-२६२; सुक्या पृ. १२२-१२३।

२. देखें—पृ. १९—'पर वह बाहर की' --- 'सबसे पतला होता है।' पृ.

पृ. १२४—'ज्यार बिलाता है'--- '---' मैं दूर से।

३. साहित्य-विमल पृ. ६१-६२।

भाव ही था यही है।^१ लेकिन वस्तुतः वे पार्श्वों पर बहुत बड़ा झलते हैं समाज की कुत्सित वृत्तियों को दिखाने के लिए अपना किसी मनोवैज्ञानिक उत्पन्न के निरूपण के लिए। पार्श्वों के सामाजिक विचारों के सम्बन्ध में वे कहते हैं "मैं अपने उन पार्श्वों के विचारों के लिए अपने को उत्तरदायी नहीं समझता" यदि किसी दिन यह प्रमाणित हो जाय कि मेरे सभी क्या पार्श्वों के विचार मेरे ही अपने विचार हैं तो उस दिन मेरी कहानी कथा की सबसे बड़ी असफलता सिद्ध हो जायगी।^२ लेकिन यह सत्य है कि बोसीबी के पात्र कई स्वार्थों पर केवल कठपुतली रहकर एक पतली डोरी के द्वारा लेखक की इच्छा के अनुसार ही नाचते हैं। एक अनियेध्य उदाहरण दिया जा सकता है। निर्वासित में हिन्दी भाषा साहित्य और लेखकों की उत्कृष्टता और वर्तमान दुरवस्था पर डॉ. पूठों की जो चर्चा है^३ उसे सीधिए। वस्तुतः यह एक लेख-सा बन गया है। इसे पढ़ने के बाद बोसीबी के 'साहित्य चिन्तन' को पढ़ें तो शायद होवा कि पात्र लेखक की ही बाणी बोलते हैं कि नहीं। महीप के मन में बीसवीं शती के पूर्वार्ध के परिउत्क-काल का हिन्दी साहित्य संसार के अन्य साहित्यों से व्यष्ट है। यही विचार बोसी के निबन्धों में है।^४ अपने विचारों को पार्श्वों के मुँह से निकालते समय स्वाभाविक संभा-पण के स्वान में मेनकर-भाबी का उपयोग करने के कारण यह स्पष्ट प्रकट होता है कि वस्तुतः बोसी ही बोल रहे हैं। 'सन्ध्यावी' और 'निर्वासित' ये ही नहीं बाद में लिखित 'मुक्तिपथ' 'बहाल का पंजी' और 'सुबह के सुने' में भी दर्जनों ऐसे प्रसंग हैं जिनमें पात्र अपना व्यक्तित्व ही छोड़कर लेखक के विचारों को प्रकट करने के उपकरण-मात्र रह जाते हैं।^५ जहाँ वार्तालाप के द्वारा अपने विचारों को संभाषना बिभक्तुम प्रस-भव हो जाता है वहाँ लेखक किसी समा का विधान करके पात्र से भाषण बिता देते हैं।^६ इन सब भाषणों को पार्श्वों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अन्तर्गत मानना कठिन लगता है। 'बहाल का पंजी' का नामक तो पूर्णतया 'हिब मास्टर्स ब्याइज' का स्वपट्ट बनकर रह गया है—ऐसा स्वपट्ट जिसके पास कहने के लिए अपना कुछ भी नहीं रहता और जो 'मास्टर' के शब्दों की ही श्रृंखला है। एक प्रसंग से वार्तालाप का एक छोटा-सा पंख उदाहरण के रूप में यहाँ उद्धृत किया जाता है "मैं बुद्ध को सबभुष मानव-जाति के एक महामेता के रूप में मानता हूँ। उन्होंने शान्ति सहिष्ठा प्रेम और

१ निर्वासित भूमिका पृ ४।

२ निर्वासित भूमिका पृ ४।

३ निर्वासित पृ ३४-३६।

४ देखें—साहित्य-चिन्तन पृ ४१; देख-परवा पृ २०-२३; करीन्द्र रवीन्द्र के सम्बन्ध में 'बहाल का पंजी' और 'साहित्य-चिन्तन' में भाष विचार भी मिलनी हैं।

५ देखें—मुक्तिपथ पृ ११५-११६, ११८-११९, १२३-१२४, १२६-१२७, बहाल का पंजी पृ ४२-४६, १६-१७, १७६-१७८, १८०-१८२, १९१-१९२, १९४-१९८, २०१-२०२; सुबह के सुने, पृ १८०-१८२, १८६-१८७।

६ देखें—बहाल का पंजी, पृ १९६-१९७, २०१-२०२ तथा मुक्तिपथ पृ १८६-१८७।

समता का जो पाठ मानवजाति को अपूर्व तगन और धारचर्यजनक सचम के साथ पढ़ाया वह बहुत बड़ो चीज थी। उनके जन्म से लेकर आज तक प्रायः छई हजार वर्ष बीत चुके। यदि हमने सम्ये धरसे में मानवता ने उनके उस महासन्देश का एक कण भी सामूहिक जीवन में अपनाया होता तो पृथ्वी के रक्त-रहित इतिहास की समीचीन परम्परा में बहुत-से कासे पृष्ठों का कोई अस्तित्व ही न रह गया होता। पर वहाँ-वहाँ बौद्ध मत का प्रचार हुआ वहाँ मानवता ने केवल उसके बाहरी आचार और धार्मिक को अपनाने का होंग रहा और उसके सारसूत और प्राणवान धर्म को कुछ भी विधास प्रसार मूर्तियों उनकी राज के ऊपर स्थापित महास्तूपों और विराट् सिंहासों पर कुछे प्रवचनों के रूप में बड़ निश्चल और मृत बनाकर उसकी निष्प्रास पूजा करके बतम कर दिया।^१ ऐसे सर्वनों प्रसवों को हम एक निमित्त के लिए बोधीजी के बचन न मानकर (न मानना वस्तुतः असम्भव है) पात्रों के ही बचन मानें तो भी कहना पड़ेगा कि वहाँ बौद्धिक विचार और उनके मूर्तकप में नहीं प्रस्तुत किये गए हैं जो उपन्यास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। यही नहीं पात्रों के ये शुष्क वस्तुपरक होने के कारण पात्र के व्यक्तित्व पर एक बना आवरण डाल देते हैं, जिसे भेदकर पात्र के व्यक्तित्व का ज्ञान प्राप्त करना अर्धसम्भव हो जाता है।

५

लेखक और पात्र

पात्र पर लेखक के अधिकार की सीमा

२५७ ऊपर विविध प्रकारों के उपन्यासों के पात्रों के सम्बन्ध में जो विवेचन किया गया है उसको ध्यान में रखते हुए अब हम लेखक और पात्रों के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में भी थोड़ा विचार करें। विचारणीय बात यह है कि लेखक पात्रों पर कितना अधिकार रख सकता है। इस सम्बन्ध में जो मत हो सकते हैं। प्रथम यह है कि पात्र लेखक से पूर्णतया मुक्त रहना चाहिए, लेखक को केवल छटस निरीक्षक के रूप में उसकी प्रवृत्तियों से निरीक्षण सम्बन्ध ही रखना चाहिए। दूसरे मत के अनुसार पात्रों पर लेखक को पूर्ण अधिकार रखना चाहिए, उनको मनमानी करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। यद्यपि ये दोनों कथन प्रथम दृष्टि में विलक्षण विरोधी लगें तो भी वस्तुतः इनमें कोई तात्त्विक विरोध नहीं है। दोनों मतों के धर्म समझने से यह बात स्पष्ट हो जायगी। जो कलाकार यह मानते हैं कि पात्रों को लेखक से मुक्त रहना चाहिए, उनका सारान्त यही है कि लेखक अपने विचारों के प्रचार के लिए उनकी माध्यम न बनाये उनका जीवन वास्तविक जीवन के नियमों के अनुसार ही चले। अगर सार्थक यह कहें कि पात्र लेखक के नियन्त्रण से मुक्त रहकर उसे ही मन्त्रमुग्ध कर दें तो

उनका तात्पर्य यही है कि पात्र अपने नैसर्गिक जीवन की न कोर्से अपनी सहज प्रकृति के अनुसार ही प्रत्येक कार्य करें और लेखक उन पात्रों से तादात्म्य पाकर, उनकी प्रकृति प्रेरित क्रियाओं को देखकर मुग्ध हो जाए।^१ लेखक अपनी इच्छा के अनुसार कुछ पूर्वनिर्धारित सिद्धान्त बनाकर, उन सिद्धान्तों को प्रमाणित करने के लिए पात्रों की प्रवृत्तियों का संश्लेषण न करे। सही तरह पात्रों पर लेखक के अधिकार का समर्पण करने वालों का भी तात्पर्य यही है कि लेखक पात्रों पर पूरा नियन्त्रण रखकर उनके जीवन का सही तरह संश्लेषण करे जैसे वास्तविक जीवन चलता है। वास्तविक जीवन में कोई व्यक्ति पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं होता। फिर उपन्यास के पात्र क्यों स्वतंत्र रहें? पात्रों पर लेखक के अधिकार रखने का दूसरा अर्थ यह यही है कि उपन्यास में नाटकीयता मा जावे।^२ पात्रों को विन-विन विशेषताओं तथा विन-विन प्रवृत्तियों के प्रति लेखक पाठक को विशेष रूप से धाकपट कराना चाहता है। उनको विशेष रूप से प्रकट करने के लिए लेखक विनय है। लेखक ऐसा न करे तो उसका ध्येय ही निष्फल हो जायगा। किन्तु यहाँ भी स्मरण रखने की बात यह है कि लेखक पात्रों के साथ मनमानी नहीं कर सकता। पात्र के विविध क्रिया कलापों, धर्मों तथा विशेषताओं के सापेक्षिक महत्त्व को स्पष्टतया प्रकट करने के लिए ही वह विपर्यय का साधन ले सकता है। ऐसी दशा में विपर्यय बन्तुव विन में नहीं होता बल्कि उसके रथों में—जबका 'लाइट और शेड' (Light and Shade) में ही होता है। वास्तविकता के अपने पात्रों की कुछ व्यक्तिगत विशेषताओं को धृति की सीमा तक प्रकट कर प्रकाशित बना दिया है। किन्तु इससे यह प्रयोजन हुआ है कि पात्र की वे व्यक्तिगत विशेषताएँ अधिक स्पष्ट हो सकी हैं। हमें यही मानना पड़ता है कि लेखक पात्रों के प्रति अधिक ईमानदार रहा है क्योंकि इस विपर्यय से वह प्रत्येक पात्र की वैयक्तिक विशेषताओं (Personality traits) के प्रति पाठक का ध्यान धाकपट कर सका है। विपर्यय का साधन न लिया जाता तो वे विशेषताएँ अस्पष्ट ही रह जातीं और पाठक उन्हें समझने में असमर्थ रह जाता।

यदि पात्रों पर लेखक के अधिकार तथा लेखक से पात्रों की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि लेखक को अपने विचारों के प्रचार के लिए पात्रों के जीवन को असाधारणिक रूप नहीं देना चाहिए, उनके जीवन के साधारण पर

१. "A work is never beautiful unless it in some way escapes its author. If he paints himself without planning to, if his characters escape his control and impose their whims upon him. If the words maintain a certain independence under his pen, thus he does his best work."

—Sartre What is Literature? P 154

२. "Don't let your characters casually wander on the scene carefully motivate and prepare each entrance by these means dramatic intensity can be achieved."

—Hogarth The Technique of Novel Writing, P 99

ही अपने विचारों को रूप देना चाहिए, भवना यों कहा जा सकता है जीवन की स्वामाधिक प्रति से ही विचारों आशयों और भाव्यताओं का जन्म होना चाहिए, सिद्धांतों के संघों में हाककर पार्श्वों को टकसासी रूप नहीं देना चाहिए। इस सम्बन्ध में मार्क्स का यह कथन अत्यन्त समीचीन लगता है 'हम यथार्थ जीवित मनुष्यों से प्रारम्भ करते हैं और उनके यथार्थ जीवन-व्यापार के आधार पर ही उस जीवन-व्यापार के आभात्मक (भावसात्मक) प्रतिबिम्बों तथा प्रतिध्वनियों को सिद्ध करते हैं।'^१

इस दृष्टि से देखा जाय तो हमारे बहुत कम उपन्यासकार पार्श्वों के प्रति ईमानदार रहे हैं। जैसेकि ऊपर दिखाया जा चुका है।

पार्श्वों का प्रत्यक्ष प्रकटन

२५८ इस्यात्मक उपन्यासों के स्वरूप की विवेचना करते हुए स्पष्ट किया जा चुका है कि इस-विधान द्वारा पार्श्वों को मूर्त रूप में सामने आना कितना महत्वपूर्ण कार्य है।^२ इस सम्बन्ध में यहाँ दो-एक और बातें भी उल्लेखनीय हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि उपन्यास में पार्श्वों को मूर्तरूप में प्रकट करना आनन्दमय है। जैसे नाटक में पात्र साकार रंगमंच पर धाकर खड़ा होता है वही तरह उपन्यास के पात्र को पाठक के मानसिक रंगमंच पर साकार खड़ा करना उपन्यासकार की सफलता का सङ्केत है। जहाँ मेसक पाठक और पात्र के बीच बड़े पात्र की व्याख्या नहीं करता बल्कि पात्र को सामने उपस्थित करके मंच से हट जाता है, और इस तरह पात्र का सीधा परिचय प्राप्त करने के लिए पाठक को छोड़ देता है। जहाँ नाटकीयता पर मोल्यति तक पहुँचती है। इसके विरुद्ध मेसक पात्र का व्याख्याकार बन जाय तो पात्र को मूर्त होने का बख़्तर ही उपलब्ध नहीं होता। पात्र की मसाई-बुराई की व्याख्या करने से वह मूर्तरूप में प्रत्यक्ष नहीं होता। जैसेकि प्रसिद्ध कवी शार्डनिक ने कहा है "जैसे किसी व्यक्ति के वर्णन-भाष से उसके स्वरूप का परिचय नहीं मिलता वही प्रकार उसके सदसद गुणों के—जे कितने ही प्रशस्तिपुर्ण हों—अमूर्त वर्णन-भाष से उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का सजीव रूप से अपेक्षित नहीं होता। उसे (पात्र को) स्वतंत्र स्वरूप होकर अपनी मसाई-बुराई का परिचय देना चाहिए।"^३

व्यक्तित्व के प्रमाण के सम्बन्ध में यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि प्रायः कोई निश्चित गुण का दोष स्वामी प्रमाण का कारण नहीं होता। यह एक अनुभवसिद्ध

१ 'We set out from real, active men and on the basis of their real life process we demonstrate the development of the ideological and echoes of this life process.'

—Marx and Engels Literature and Art, P 11

२. देखें अनुच्छेद १४०-१४४।

३. Belinsky Selected Philosophical Works, P 189

सत्य है कि हम कभी-कभी अत्यन्त सुन्दर व्यक्तियों को देखकर भी बस्ती भूल जाते हैं किन्तु कुछ साधारण (न विशेष रूप से सुन्दर न कुदर) चेहरों को बस्ती भूल नहीं सकते। उसी तरह व्यक्तिगत में भी मसाले-बुराई प्रादि गुणों के परे कुछ विशेष-ताएं होती हैं जो स्थायी प्रभाव डालती हैं। और जिनका वर्णन सामान्य शब्दों द्वारा नहीं हो सकता। इनका परिचय और ज्ञान अत्यन्त अनुभव द्वारा ही हो सकता है। हम अपने किसी अत्यन्त परिचित व्यक्ति की व्यक्तिगत-विशेषताओं का पूरा वर्णन किसी तीसरे व्यक्ति के सामने करें तो वह तीसरा व्यक्ति हमारे समान उन व्यक्तिगत विशेषताओं को समझ नहीं सकेगा मने ही हमारी वर्णन की प्रतिभा बरन कोटि की हो। इसका कारण व्यक्तिगत की उपर्युक्त अस्पष्ट विशेषताएं ही हैं जो केवल अनुभव द्वारा ही समझी जा सकती हैं। ऐसी विशेषताओं को प्रकट करना उपन्यासकार के लिए सबसे कठिन कार्य है। इसीके लिए पात्र को पाठक के सामने छोड़कर लेखक को हट जाना पड़ता है। इसके बरने लेखक अपने परिचित पात्र के व्यक्तित्व की विशेषताओं का वर्णन-मात्र पाठक के सामने रखे तो पाठक उस पात्र के व्यक्तित्व का मूर्तरूप में अनुभव नहीं कर सकेगा। यही पात्र के अत्यन्तीकरण की समस्या भा जाती होती है। निम्न-साहित्य में अत्युन्नत स्थान पर प्रतिष्ठित उपन्यासों में अत्यन्तीकरण द्वारा ही पात्रों का परिचय दिया गया है।

अत्यन्तीकरण के दो मार्ग

२५१ तृतीय अध्याय में हृदय-उपस्थिति के जो दो मार्ग स्पष्ट किए गए हैं उनके द्वारा पात्रों को भी समीक्षक रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। उन दो मार्गों में पात्रों के सम्भावण प्रादि के द्वारा इस विधान करने की रीति को ही प्रतिक्रिया कलाकारों ने अपनाया है। केवल विवरण द्वारा पात्रों का मूर्तरूप उपस्थित करना और उनकी वैयक्तिक विशेषताओं को साकार प्रकट करना शुभ कार्य नहीं है। जैसे पहले-कहा था कुछ है, इस प्रणाली का सफल प्रयोग करनेवाले थोड़े कलाकार मार्गे प्रुप्त हैं। प्रुप्त का चरित्र चित्रण सबसे सफल जहाँ स्थानों पर हुआ है जहाँ वे विवरण द्वारा पात्रों का अत्यन्तीकरण करते हैं। एक दिन छोमे के पहले माठा के पुष्पन से संबंधित एक बालक का जो चित्र प्रुप्त ने प्रकट किया है वह अद्भुत बर्णन है। स्वतः और ओडेट के प्रेम के विकास तथा विनाश की विविध दृश्यों में उन दोनों के व्यवहारों का जो विवरण किया गया है वह भी इसी तरह का है। ('रिमेम्ब्रेंस' ऑफ़ 'मिस्टर'—भाग १ २)। प्रुप्त व्यक्तियों की उन छोटी-छोटी बातों पर भी ध्यान देते हैं जो उनके सूक्ष्म मनोभावों को प्रकट करते हैं। मराम स्वतः कुछ दिन अपनी पार्टियों के निर्मलपण वर्षों में अपने पति के नाम के पहले प्रकटित 'मोघे' के बरने धरोखी में 'मिस्टर' छपाती है, कुछ जोंकों के निर्मलपण वर्षों में वे मिशन के लिए छपाती है। इस तरह का एक कार्य पाकर कथा-नायक अपने-आपको भूल जाता

हैं और अपने पास को पैसा है वह सब इकट्ठा करके कुछ फूस मँगवाकर महाम स्नान को भेजता है। वह फिर अपने घर की पार्टियों के निर्माण में भी अपने पिता के नाम के पहले 'मिस्टर' छापवाना चाहता है।^१ इस तरह की छोटी-छोटी और साधारणतया उपेक्षित बातों के वर्णन द्वारा प्रूस्ट ने पात्रों को पूर्णतः चित्रित है। अन्य किसी उपन्यासकार में इतना व्यञ्जनात्मक विवरण नहीं मिलता। हक्स्ले डोरोथी रिचर्डसन आदि प्रपेची लेखकों के उपन्यासों में भी यन्-तन् कुछ प्रभावशाली विवरण मिलते हैं। एक उदाहरण देखिए

‘कैनी सोमन को मया कि अपनी आँखों में धाँसू भर था रहे हैं। वह बत्ती पिचक जाती थी बिरोधकर जब वह संगीत सुनती थी। जब उसमें कोई विकार होता था वह उसे बबाना नहीं जानती थी उसमें अपने-आपको खो देती थी। कितना सुन्दर था यह संगीत कितना सौकरामक फिर भी रिश को साँवना देनेवाला। वह अपने हृदय में एक तीव्र अनुभूति के प्रवाह का अनुभव करती थी जो उसके अस्तित्व की अटल उत्तमनों से होकर अचिराम बढ़ता जाता था। संगीत की मार्मिक ठास के अनुसार उसका धीरे भी विचलित होता था उसने अपने पति की याद की। संगीत की बाध से होकर उसकी याद उसे आई—प्यारे-प्यारे एरिक की जो दो घास पहले मर चुका था मर चुका था फिर भी धब जी बबान था। धाँसू बहने लगे उसने उन्हें पोंछा जाता।’^२

हिन्दी में प्रूस्ट के विवरणों के समान व्यञ्जना-शक्ति से पात्रों को स्पष्ट करने-वाले लेखक सामान्य ही हुए हैं। लेकिन प्रेमचन्द बगुरसेन रविश रावण जैनप्र आदि के उपन्यासों में कहीं-कहीं विवरणरूपक भाव मिलते हैं, जो व्यक्तित्व का पूर्ण चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

हिन्दी के और यूरोपीय भाषाओं के अधिकार उपन्यासकारों ने विवरण और सम्भावण के मिश्रण द्वारा ही पात्रों का प्रत्यक्षीकरण किया है। बेन आस्टिन से आज तक के प्रपेची के सामाजिक उपन्यासकारों ने और आधुनिक कवी उपन्यासकारों ने ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करने का प्रयत्न किया है। वास्तव के कुछ दृश्य अपने मार्मिक बने हैं कि वे पात्रों के सामने से ही नहीं हटते। ‘युद्ध और शान्ति’ में मठासा और सोफिया को पूर्णतया जानने के लिए उनका प्रथम परिचय ही पर्याप्त है। जब मठासा प्रथम-प्रथम हमारे सामने आती है तब उसका रूप देखिए

‘काली-काली आँखों और बड़े मूँड़वाली वह सीसी-सायी बिन्दाबिल लड़की जो जल्दी-जल्दी बीड़ते समय बोझ के नीचे हिलते हुए कंधों पीछे की ओर संवारे हुए बालों और गोटीबाल लम्बे बाँधिया और कुली लसीपरें पहने हुए पैरों के साथ सुन्दर भय रही थी उस आकर्षक बच्चा में थी जब लड़की बची नहीं रहती और बची लड़की

१ Remembrances of the Past, Vol 3 P 168

—(Chatto & Windus Edition)

२. Point Counter Point, P 30-31

मही बत पायी । पिता से झगपट भाग निकलकर वह माँ के पास बौझ गई और उसकी डाँट की परवाह किए बिना उसकी बोबी में अपना नाक-साव मुख छिपाकर खोर से हँस पड़ी । हँसते-हँसते ही वह अपनी गुड़िया के बारे में कुछ कह रही थी जो उसकी पेटिकोट के अन्दर उभरी दिखाई पड़ रही थी पर कुछ भी साफ-साफ नहीं सुनाई पड़ रहा था ।

देखो- मिमी— देखो मेरी गुड़िया' गतासा और कुछ नहीं बोस सकी । सब कुछ उसे प्रबल-सा तमासा लग रहा था । वह माँ की बोबी में छिप गई और खतमी खोर से हँसती रही कि वहाँ बैठे हुए सभी यहाँ तक कि उनके द्रिष्ट प्रतिनि तक हँस पड़े ।

'जबो भाय जबो अपनी सपत्तों लिए' माँ ने जोश का बहाना करते हुए उसे हटाने की कोशिश की । 'वह मेरी छोटी लड़की है उसने प्रतिनि से कहा । गतासा ने माँ की बोबी से मुह निकालकर हँसी के आँसुओं से भीये नयनों से उसकी ओर देखा और फिर मुह झिपा लिया ।"^१

गतासा की सारी क्रोममता और चंचलता इन दृश्यों में स्पष्ट प्रकट होती है । इस तरह के मार्मिक और प्रभावशाली दृश्यों से चरित्र-चित्रण करनेवाले उपन्यासकार हिन्दी में अधिक नहीं हुए हैं । प्रमचन्द के उपन्यासों में ऐसे दृश्यों की कमी नहीं है । निर्मला में उदयमानुषास और कल्याणी के कलह का प्रसंग गबन और पोदान के आर्थमिक दुरय धारि उत्कृष्ट उदाहरण हैं । पोदान की सफलता का एक मुख्य कारण सचीव दृश्यों द्वारा पात्रों को सच्चे मानवों के रूप में उपस्थित करना है । पोदार के भाग जाने के बाद फिर सीन आने पर चर का जो वातावरण है उसे प्रमचन्द ने बड़े मार्मिक ढंग से उतारा है ।

'द्वार सोता कुम्हू को उसका फाक टोप और कूटा पहनाकर राजा बना रही थी । बालक इन चीजों को पहनने से क्याशा हाव में लेकर खेलना पसन्द करता था । अन्दर गोबर और झुनिया में मान-मनीषन का अभिनय हो रहा था ।

झुनिया ने तिरस्कार-भरी आँखों से देखकर कहा 'मुझे साकर यहाँ बैठ दिमा आप परवेश की राह की फिर न खोज न खबर कि मरती है या बीती है । घाम भर के बाय अब बाकर तुम्हारी जीब टूटी है । मैं तो सोचती हूँ कि तुम मेरे पीछे-पीछे आ रहे हो और आप उड़े तो साथ भर के बाय भीगे । मरवों का विश्वास ही क्या कहीं कोई और तक सी होगी । सोचा होगा एक बाहर के लिए भी हो जाय ।

पोदार ने सफाई की 'झुनिया मैं भवमान को साथी देकर कहता हूँ जो मैंने कभी किसीकी ओर ताका थी । नाब और डर के मारे चर से भागा चकर, मगरठेरी बाब एक छन के लिए भी मन से न खतरती थी ।"^२

हेनरी जॉर्जों ने जीवन-सत्ता को समय का सापेक्षित और निरन्तर परिवर्तनशील माना है। उनके मत में जीवन-सत्ता एक तरल मापन है, जिसका प्रत्येक घंटा भूत में प्रसम्भित और भविष्य में प्रयेपित है।^१ इसका तात्पर्य यही है कि यद्यपि जीवन परिवर्तनशील है तथापि भूत वर्तमान और भविष्य में एक धारिण नैरन्तर्य है। अतः मनुष्य की परिवर्तनशील प्रकृति विसङ्कुल यांत्रिक नहीं है। पर मूलमधीन स्वतः-स्रुत जीवनोत्पन्न (Elian vital) है। मनुष्य के परिपूर्ण ज्ञान के लिए इस परिवर्तन पर ध्यान केन्द्रित करते हुए, उसके बाह्य और आन्तरिक तत्त्वों का सापेक्ष अध्ययन करना आवश्यक है और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में यही किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की सामान्य विशेषताएं

सब प्रकार के उपन्यासों में पात्रों का बोझ बहुत मनोवैज्ञानिक अध्ययन होता है। किन्तु प्रस्तुत अध्याय में हम उन्हीं उपन्यासों का विशेष अध्ययन करेंगे जिनमें लेखकों ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि अपनायी है। 'चरित्र-विमर्श' से सम्बन्धित अध्याय में हम उपन्यासों के पात्रों के व्यक्तित्व की चर्चा की जा चुकी है। अतः उनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन से बहुत कुछ पुनरावृत्ति की ही सम्भावना है। हिन्दी तथा यूरोपीय भाषाओं के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मनोविज्ञान उपन्यास के विषय और अल्प विज्ञान में कई मौखिक परिवर्तन आया है। सामान्य रूप में देखा जाए तो उपन्यास में मनोविज्ञान की मौखिक प्रवृत्तियां निम्नलिखित हैं।

२६१ विषय का सीमा-निर्धारण—उपन्यास में मनोविज्ञान के समावेश का प्रथम परिणाम उपन्यास के विषय की सीमा बाँटना। पात्रों की संख्या कम करने के कारण और उनकी कुछ विशिष्ट मनोवृत्तियों पर ध्यान केन्द्रित करने के कारण मनोवैज्ञानिक उपन्यास का विषय अत्यन्त सीमित रहता है। उसमें न वैयक्तिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का विवरण होता है न सामाजिक जीवन की विभिन्न समस्याओं का विवेचन। 'सुनीता' की उसके पूर्व के किसी उपन्यास से तुलना करने पर यह बात स्पष्ट होगी। विसङ्कुल सीमित एक विषय को ही धीरे-धीरे इस काफी बड़े उपन्यास में विस्तार दिया है। प्रायः सभी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में इसी तरह विषय सीमित रहते हैं।^२ चरित्रोपम उपन्यासों में विषय का आधिक्य तो होता है पर उसके कनेक्टर की तुलना में विषय की सीमा स्पष्ट होगी। उसके प्रत्येक भाग में जो विषय होता है, वह एकरस एवं सीमित ही होता है।

२६२ अभावता—मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में विषय के सीमित होने के कारण

१ — the invisible progress of the past, which grows into the future

—Henri Bergson, Quoted by Edel : "The Psychological Novel, P 28.

२ इसका अर्थ जोशी के उपन्यासों में विवशचित्त और चरित्र-वाङ्मय है; और इस कारण मनोपात्रों के कमिष्ठ विकास में रूचि भी ज्यादा है।

ससके प्रगाथ अध्ययन के लिए अवसर मिलता है। पात्र के व्यक्तित्व पर ही ध्यान केन्द्रित करने के कारण उसका प्रगाथ अध्ययन सम्भव हो जाता है। इससे भी प्रग्रे बढ़कर वही व्यक्तित्व के एक प्रथ-मात्र का प्रथवा किसी मनोमात्र-मात्र का विस्लेषण किया जाता है वही प्रगाथता और भी बढ़ जाती है। 'सुमीता' 'मरी के द्वीप' 'तग बरबादा' (ग्रान्ज बीर) 'ओ ओ गया' आदि ऐसे ही उपन्यास हैं।

२६३ वैयक्तिकता—मनोवैज्ञानिक उपन्यास प्रायः अव्यक्तिक वैयक्तिक होते हैं। व्यक्ति के घटनाओं का विस्लेषण उसका प्रिय विषय है। समाज में हस्त प्रयत्न विधिप्रति उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्तियों का भी उसमें व्यक्तित्व स्तर पर ही अध्ययन किया जाता है। सामाजिक जीवन की मूल प्रवृत्तियों को भी व्यक्ति पर आरोपित करने से ही वे पूर्ण रूप में सामने आ सकती हैं। और तभी उनका मूल विस्लेषण संभव है। यही इस व्यक्तित्व का मूल सिद्धान्त है। किन्तु वहाँ व्यक्तित्व इतना तीव्र होता है कि व्यक्ति पर आरोपित प्रवृत्तियों का सामाजिक महत्त्व विमुक्त-सा हो जाता है। वहाँ यह वैयक्तिकता इतिहासिक सिद्ध होती है। वास्तविकता के पात्र प्रति वैयक्तिकता के कारण सामान्य सहानुभूति के पात्र नहीं बन सकते। 'मरी के द्वीप' 'मुक्तिपथ' 'सुबह के भूते' आदि के पात्रों में भी वैयक्तिकता पात्रों की प्रभावशाली बना देती है।

२६४ आन्तरिकी पात्र—ध्यान के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के पात्र अधिकतर आन्तरिकी होते हैं। उनका अस्तित्व ही आन्तरिक होता है। उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति आन्तरिक सत्ता की विशेष प्रवृत्ति का बहिष्कुरण ही होती है। भेदक उनकी विविध क्रियाओं का वर्णन करते समय उनकी आन्तरिक प्रवृत्तियों की व्याख्या पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखता है। कहीं-कहीं आन्तरिक प्रवृत्तियों की व्याख्या पात्रों के आत्मविस्लेषण तक पहुँच जाता है।

२६५ नये मूल्यों की स्थापना—उपन्यास में सामाजिक जीवन की वस्तु निष्ठ व्याख्या की जो परिपाटी चलती आई उसे मनोवैज्ञान ने पूर्णतया बदल दिया है। यह नहीं कहा जा सकता कि मनोवैज्ञानिक उपन्यास में सामाजिक समस्याओं की ज़रूरत की बची है। किन्तु उन समस्याओं का विश्वास सामाजिक वृष्टमूर्ति से निष्कास कर व्यक्तित्व मानसिक वृष्टमूर्ति पर अध्ययन किया जाने लगा है। अन्य उपन्यासकार सामाजिक जीवन की विडम्बनाओं के कारणों को समाज में ही ढूँढ़ते थे। पर मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार प्रत्येक सामाजिक विडम्बना के मूल में कुछ व्यक्तित्व विशेषताओं के दर्शन करते हैं। उनके अनुसार जीवन का अध्ययन तभी पूर्ण होगा जब व्यक्ति की निम्न-निम्न अनुभूतियों बिकारों भावनाओं और आन्तरिकता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जाय। इस तरह व्यक्ति और समाज की नयी व्याख्या और नये मूल्यों की स्थापना मनोवैज्ञानिक उपन्यास की मौलिक प्रवृत्ति है।

२६६ पलायनवाद—मनोवैज्ञानिक उपन्यासों पर जितने दोष लगाये जाते हैं उनमें सबसे बड़ा विषय की सीमा तथा अपार वैयक्तिकता के कारण उत्पन्न पलायन-वृत्ति है। विस्तृत सामाजिक वातावरण को छोड़कर किसी व्यक्ति की मनोभूमि को अपने कार्य-क्षेत्र के रूप में स्वीकृत करनेवाले उपन्यासों में जीवन के विप्लव रूप

का प्रदर्शन सम्भव है। विशेषकर जब भौतिक विज्ञान के माध्यम से कुछ मनोवृत्तियों के सांकेतिक अभ्युपगम में लग जाता है तब नित्य-जीवन की समस्याएं उपेक्षित हो जाती हैं। यहन वैयक्तिक अनुभूतियों, कुण्ठाओं और विविधताओं के विस्मरण में सदा हुआ भौतिक सामान्य जीवन की प्रतिबिम्बित नहीं करता। वस्तुतः मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के विषय भी जीवन से ही लिए जाते हैं। लेकिन उन विषयों के जो रूप प्रस्तुत किये जाते हैं वे अपार वैयक्तिकता के कारण ठीक अनुभूतियाँ उत्पन्न करने पर भी उन अनुभूतियों को समष्टियुक्त रूप में उद्बुद्ध नहीं कर सकते। इस तरह पलायन-वृत्ति के दो रूप दिखाई पड़ते हैं। प्रथमतः मनोवैज्ञानिक उपन्यास वैयक्तिक समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करके सामाजिक समस्याओं की उपेक्षा करते हैं। दूसरी बात यह है कि अगर सामाजिक समस्याओं का विस्मरण किया जाय तो भी उन्हें वैयक्तिक बनाकर किया जाता है। इसके फलस्वरूप ऐसा लगता है कि ये मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार समस्याओं से पलायन करके अपने एक घन संसार में रम जाते हैं।

धार्मिक जीवन का एक विपादात्मक दर्शन ही इस प्रवृत्ति का कारण है। वह स्वयंभू एक विरोधाभास है कि इतने सामाजिक विकास और संघटन के होने पर भी मनुष्य जीवन में एक प्रकार के विघटन का अनुभव कर रहा है। किन्तु ही विविधता-कारक शक्तियाँ जीवन को निश्चिन्त और मानव-हृदय को व्यथित कर रही हैं। इस विघटन और निश्चिन्तता का अनुभव व्यक्ति को ही अधिक होता है। अतः धर्म का वैयक्तिक जीवन अत्यन्त संघर्षमय और बहुत कुछ विपादात्मक हो गया है। इसे समझने के प्रयत्न में ही मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार ने सामाजिक समस्याओं की उपेक्षा कर दी है और सामाजिक उत्तरदायित्वों से मूढ़ मोह लिया है।

२६७ सिल्स-विधान और शमी—मनोविस्मरण के कारण उपन्यास के भाव-क्षेत्र में जो नयी प्रवृत्तियाँ हुई हैं उनके अनुसंधान सिल्स-विधान की नयी प्रणालियों का भी उपयोग होने लगा है। मुख्य अनुभूतियों अस्पष्ट भावनाओं और धर्मों भाव इन्द्रों को साकार बनाने के लिए अभिव्यंजन की जरूरत शक्तियों से काम लेना पड़ता है। जब उपन्यास में मनोविज्ञान का समावेश होने लगा तब भौतिकों की अभिव्यंजना की शक्ति की विशेष चिन्ता करनी पड़ी। फलस्वरूप सिल्स और शमी क कई नये रूपों का आविष्कार हुआ। सामान्य रूप में कहा जाय तो मनोवैज्ञानिक उपन्यास की सिल्स-सम्बन्धी मुख्य प्रवृत्ति काव्यात्मकता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने विषयक प्ररचन (डिवाइन) माकान्विति समानुविधान (कम्पोजीशन) धारि पर ध्यान केन्द्रित करके उपन्यास को एक प्रकार का काव्य ही बना दिया। विषय और अभिव्यंजन की पारस्परिक अनुस्यूता पर मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने जितना ध्यान दिया है और किसीने नहीं दिया है। अतः उनके उपन्यासों में इतनी कलात्मक चारता या नयी है कि विषय और पात्रों के असाधारण होने पर भी पाठक कुछ समय के लिए अपने भावको भूलकर उनसे तादात्म्य प्राप्त कर लेता है।

२

मूल वृत्तियाँ

परिभाषा

२६८ फ्रायड के मतानुसार मनुष्य में क्षिप्ता या अनुभव के बिना ही बराबर परम्परा या वंशावृत्ति (Heredity) से कुछ आन्तरिक मूल वृत्तियाँ अस्तित्व में आती हैं। व्यक्ति के निर्माण में इन मूल वृत्तियों का विशेष महत्त्व होता है। किसी विषय पर व्यक्ति को कहता है वह उसके अस्तित्व से होकर प्रवृत्त होनेवाली इन मूल वृत्तियों से ही प्रेरित होकर करता है। उनके सभी व्यवहार और आचरण इन मूल वृत्तियों से प्रेरित हैं। अतः आचरण का स्वतन्त्र अनुभव से निर्णीत होता है। अथवा यों कहा जा सकता है कि प्रवृत्ति को मूल वृत्तियाँ बलि देती हैं, और अनुभव विधा। इन मूल वृत्तियों के अन्तर्गत प्रेम काम ग्रहण आदि सभी मानसिक वृत्तियाँ आ सकती हैं। लेकिन इन सबका विशेष अध्ययन करते फ्रायड ने माना है कि ये मूल वृत्तियाँ दो ही प्रकार की होती हैं।

मूल वृत्तियों का द्युत्पत्ति

२६९ प्रारम्भ में फ्रायड ने मनुष्य की सभी प्रवृत्तियों के आचरण के रूप में एक जीवन-वृत्ति या प्रेम-वृत्ति (Eros, or Life Instinct or Love-Instinct) को ही माना। इसीकी प्रेरणा से मनुष्य की सभी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। जीवन-वृत्ति का प्रथम और प्रधान प्रकट रूप लैंगिक आचरण है। बाद में फ्रायड ने 'काम-वृत्ति' (Libido) को सब तरह के शारीरिक सम्बन्धों का कारण माना और उसे 'जीवन-वृत्ति' का ही एक रूप बताया। जीवन-वृत्ति काम-वृत्ति के अतिरिक्त अन्य रूपों में भी प्रकट हो सकती है।

सन् १९१९ में फ्रायड ने 'मरण-वृत्ति' या 'मृणा-वृत्ति' (Thanatos or Death-Instinct or Hate-Instinct) का आविष्कार किया। अब उन्होंने मनुष्य के सभी प्रवृत्तियों के आचरण के रूप में 'जीवन-वृत्ति' और 'मरण-वृत्ति' को मान लिया। ये दोनों सब मनुष्य में क्रियाशील रहती हैं और मनुष्य को विभिन्न वृत्तियों की ओर खींचती रहती हैं। उनकी सभी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ जीवन-वृत्ति या प्रेम-वृत्ति से प्रेरित हैं और सभी विनाशकारी प्रवृत्तियाँ मरण-वृत्ति या मृणा-वृत्ति से। ये दोनों वृत्तियाँ प्रत्येक मनुष्य में एक साथ ही रहती हैं और उसके अस्तित्व में संतुलन उत्पन्न करती

१ "The energy of life instinct which finds its outlet in bringing people into close physical contact is called libido."

है। यद्यपि मनुष्य का तीव्र से तीव्र प्रेम भी ज़ुलूम से रहित नहीं होता।^१ उसी तरह मनुष्य जब सार्वभौमिक रहता है तब साथ ही साथ धार्मिक-धार्मिक भी रहता है। अर्थात् तीव्र सैविक प्रेम में प्रमी या प्रमिका से ज़ूर व्यवहार पाकर हृत्त होने की प्रवृत्ति (Masochism) और प्रमी या प्रमिका के प्रति ज़ूर व्यवहार करने की प्रवृत्ति (Sadism), प्रेम के साथ ही विद्यमान रहनेवाली ज़ुलूम-वृत्ति की दोहरी है।

प्रेम-वृत्ति और ज़ुलूम-वृत्ति अन्तर्मुखी या बहिर्मुखी हो सकती है। जिस व्यापार के द्वारा वे बाह्य वस्तु से व्यवहार अपने-आपसे प्राप्त होती हैं, उसे आसक्ति या अनु-रक्ति (Cathexis) कहते हैं। अन्तर्मुखी मूल वृत्ति का परिणाम 'धार्मिक' (Narcissistic cathexis) होता है और बहिर्मुखी का परासक्ति (Objective cathexis)।

मूल वृत्तियों की मात्राओं का अनुपात

विभिन्न व्यक्तियों में मूल वृत्तियों की मात्राएं भिन्न होती हैं पर उनके अनु-पात के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नियम होते हैं। ब्राउन ने निम्नलिखित समीकरणों (Equations) में इस बात को स्पष्ट किया है।

२७० समीकरण १ $A = L + M$ (बी म)

जहाँ A = आचरण L = जीवन-वृत्ति M = मरण-वृत्ति।

इस समीकरण के अनुसार 'आ' 'बी' और 'म' की सम्बन्धित रक्ति (Function) है। इसका तात्पर्य यही है कि 'आ' अथवा आचरण 'बी' अथवा जीवन-वृत्ति तथा 'म' अथवा मरण-वृत्ति के अनुपात में होता है।

यद्यपि जब 'बी' > 'म' होता है तब 'आ' रचनात्मक है और जब 'बी' < 'म' होता है तब 'आ' विनाशकारी है। अर्थात् जब जीवन-वृत्ति मरण-वृत्ति से बड़ी होती है तब आचरण रचनात्मक होता है और जब छोटी होती है तब आचरण विनाशकारी होता है। यद्यपि 'आ' का मूल्य निश्चित हो तो 'बी' और 'म' के मूल्य विपरीत अनुपातों में होंगे अर्थात् निश्चित मापन की प्रवृत्ति करनेवाले व्यक्ति की जीवन-वृत्ति (या प्रेम-वृत्ति) के बढ़ते मरण-वृत्ति (या ज़ुलूम-वृत्ति) का माप बढ़ता है और मरण-वृत्ति के बढ़ते जीवन-वृत्ति का माप बढ़ता है।^२

१ "Not even the most passionate love of a man for a woman is free from certain amount of hate or aggressivity"

—Brown Psychodynamics of Abnormal Behaviour P 159

२ Equation 1 B is a function of L and D $B = f(L, D)$

where B —Behaviour L —Life urge D —Death urge.

B is constructive when $L > D$ B is destructive when $L < D$

—Brown Psychodynamics of Abnormal Behaviour P 160:

२७१ समीकरण २ स्वा बी + प बी = नि और स्वा म + प म = नि ।

यहाँ स्वा बी = स्वासक्त जीवन-वृत्ति

प.बी = परासक्त जीवन-वृत्ति

स्वा म = स्वासक्त मरण-वृत्ति

प म = परासक्त मरण-वृत्ति ।

नि = निश्चित राशि (Constant)^१

इन समीकरणों से तात्पर्य यह निकलता है कि स्वासक्त तथा परासक्त जीवन-वृत्तियों के बीच के निश्चित वा स्वाधी होने से स्वासक्त जीवन-वृत्ति के बढ़ते परासक्त जीवन-वृत्ति घटती है और स्वासक्त जीवन-वृत्ति के घटते परासक्त जीवन-वृत्ति बढ़ती है । मरण-वृत्तियों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही समझना चाहिए ।

ऊपर मूल वृत्तियों का जो विवेचन किया गया है और जो समीकरण दिये गये हैं उनके आधार पर अब हम हिन्दी उपन्यासों के पात्रों की मूल वृत्तियों का अध्ययन करें तो बहुत-सी बातें स्पष्ट होंगी । यहाँ हमें अपने विषय की सीमा बाँधकर केवल मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को लेना पड़ रहा है क्योंकि प्रथम तो अन्य उपन्यासों में लेखकों का ध्येय मनोवैज्ञानिक विस्लेषण का नहीं रहा है अतः लेखक के हृत्पिच्छोष् को समझने के लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन की आवश्यकता नहीं है । दूसरे ऐसे उपन्यासों में जोड़ा-बहुत मनोविस्लेषण हो (क्योंकि जीवन का प्रतिबिम्ब होने से कोई उपन्यास पूर्णतया मनोविज्ञान से मुक्त न रहेगा) तो भी पात्रों का वैज्ञानिक रूप में विस्लेषण नहीं हुआ है । इन कारणों से हम इस अध्याय के अध्ययन को बहुत कुछ मनोवैज्ञानिक उपन्यासों तक ही सीमित रखेंगे ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में मूल वृत्तियाँ

२७२ वस्तुतः उपन्यास का कोई पात्र मूल वृत्तियों से पूर्णतया रहित नहीं हो सकता । लेकिन हिन्दी के उपन्यासों में मूल वृत्तियों के क्रमिक विकास की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है । जिन उपन्यासों में मूल वृत्तियों की बोझी-बहुत चर्चा हुई है उनमें भी केवल ऐकत-सम्बन्धी प्रवृत्तियों का ही विवेचन किया गया है । हिन्दी में 'चेहरा' ही एकमात्र उपन्यास है जिसमें मूल वृत्तियों के क्रमिक विकास का वैज्ञानिक

१ Equation 2. $O.L + N.L = C$ and $O.D + N.D = C$.

where O.L = Objective love-instinct

N.L = Narcissistic love instinct

O.D = Objective death-instinct

N.D = Narcissistic death instinct

C = Constant

—Brown Psychodynamics of Abnormal Behaviour P 160.

अध्ययन किया गया है। जैसे पहले ही कहा था चुका है। शब्द 'विषम और असम-विज्ञान में 'जी क्रिस्ताऊ' से बहुत प्रभावित है। इन दोनों में मूल वृत्तियों का जो विकास दिखाया गया है उसके अध्ययन से यह प्रभाव स्पष्ट होगा।

अक्षर और जी क्रिस्ताऊ तुलनात्मक अध्ययन—इन दोनों उपन्यासों की मूल वृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन के प्रसंग में मूल वृत्तियों के अतिरिक्त कुछ अन्य मनो-वैज्ञानिक तत्वों की भी तुलना करना उपयुक्त होगा क्योंकि ऐसी तुलना से 'सेक्टर' पर 'जी क्रिस्ताऊ' के प्रभाव के अधिक स्पष्ट होने की सम्भावना है।

२७३ सामान्यतः कहा जाय तो 'सेक्टर' और 'जी क्रिस्ताऊ' एक ही मनो-वैज्ञानिक तत्व के आधार पर लिखे गए हैं। दोनों उपन्यासों के नायक विज्ञानु हैं और समाज का अछा ज्ञान प्राप्त करके जीवन का नये ढंग से सुसंयोजन करनेवाले हैं। दोनों में नायकों की दृष्टि में जीवन का जो मुख्य है उसका सचा परम्परागत कड़ियों और सामाजिक बन्धनों से बँटके हुए आधारण दोनों की दृष्टि में जीवन का जो मुख्य है उसका निवेदन है। 'सेक्टर' और 'क्रिस्ताऊ' की मायगाथा सामान्य सामाजिक मान्यताओं से भिन्न है और यही उनके अचर्यमय जीवन का कारण है।

सेक्टर और जी क्रिस्ताऊ में अहम् भय सबसे इन तीन मूल वृत्तियों का क्रमबद्ध विकास समान रूप में दिखाया गया है। समानता इसकी है कि कहीं-कहीं 'सेक्टर' के भाष्य के भाष्य अनुवाद-से लगते हैं और यह सन्नेह होने लगता है कि 'सेक्टर' कहीं 'जी क्रिस्ताऊ' का अनुकरण तो नहीं है? कुछ सचाहरण देखें

२७४ अहम्—वास्तविकता में सेक्टर में 'अहम्' के विकास का प्रभाव भिन्नता है। जब कभी उसे कोई काम दिया जाता है तब वह उसे अविमान-अपी प्रसन्नता से करता है। माई के बीमार होने पर डॉक्टर बुलाने का भार स्वीकृत कर वह बड़ी प्रसन्नता से जाता है। क्रिस्ताऊ को माई की देखभाल करने का काम दिया जाता है तो वह बड़े आदमी के समान माने जाने के कारण अविमान करता है।^१

सेक्टर को सोचने से रोके जाने पर वह बड़ा होता चाहता है।^२ क्रिस्ताऊ को छपारत करने से रोके जाने पर वह भी बड़ा होकर सब कुछ अपनी इच्छानुसार करना चाहता है।^३

सेक्टर कान्नेट में छपारत करता है। जब इसके बारे में उसके पिता को रिपोर्ट भेजी जाती है तब उसका चाहत अहम् उसे कान्नेट छोड़ने की प्रेरणा देता है।^४ क्रिस्ताऊ

१ सेक्टर, भाग १ पृ० १ ।

२. He was proud of being treated as a man."

—Jean Christophe, Part I P 41

३ सेक्टर भाग १ पृ० ४२ ।

४ "His one idea was to grow up and be able to do as he liked"

—Jean Christophe, Part I P 42.

५ सेक्टर, भाग १ पृ० २४ २५ ।

भी स्नूम में गिराई करता है। और जब उसे दण्ड दिया जाता है तब वह झुंझकार से स्नूम छोड़ देता है।^१

रोखर भाई के पड़ते समय कबिता सुनकर कष्टन्य कर जाता है और मुताता है। लेकिन जब उसे पड़ने को कहा जाता है तब विद्रोह करता है और पढ़ने को तैयार नहीं होता।^२ जहाँ क्रिस्ताफ़े स्वयं वाचा बजाकर पाता है। उसकी संपीठ की प्रतिभा जान जब उस संपीठ की शिक्षा भी जाती है तब वह भी विद्रोह कर बैठता है और गान-बजाने से झुंझकार करता है।^३

ऊपर के प्रयोगों से स्पष्ट है कि रोखर और जहाँ क्रिस्ताफ़े के व्यक्तित्वों के विकास में कितनी समानता है। यद्यपि प्रयोगों में भी समानता द्रष्टव्य है।

२७५ भय—‘महम्’ के बाद ‘भय’ का स्वप्न आता है। अश्वय और रोम्या रोमाँ ने इसका भी क्रमिक विकास दिखाया है और दोनों के कुछ प्रयोग विनम्रम मिलते हैं। दोनों उपन्यासों में भय में उत्पन्न होनेवाले भय का स्वप्न का रूप दिया गया है। अन्तर इतना ही है कि अश्वय ने रोखर के भय के विकास का आरम्भ उस समय से माना है जब वह अनाथालय में मृत जानवरों को देखकर डर जाता है। “उस दिन के बाद उसे भयकर स्वप्न आने लगे रात को वह पीछ-पिछ उठता और कभी जाग कर यदि पाता कि कमरे में संघर्ष है तब तो वह झुंझकार एक नहीं भयंकर बापों से सबीन हो उठता एक से एक झुंझकार” * रोम्या रोमाँ ने क्रिस्ताफ़े के भय को इस तरह की घटना से अचानक उत्पन्न नहीं माना है। क्रिस्ताफ़े का भय अज्ञात रूप में बीरे बीरे विकसित होता है। जहाँ को देखकर ही वह डर जाता है। फिर वह भय उसके अन्दर ही क्रमशः विकसित होकर स्वप्नों का रूप धारण करता है। उस स्वप्न में दिखायी पड़नेवाले जानवर आदि वास्तविक जीवन में देखे हुए नहीं हैं। जीवन की छोटी-छोटी बातों से भी भय होता है वह उनका मन में घर कर लेता है व बाह्य विपर्यस्त बहुशकार में स्वप्न में प्रकट होती है। जहाँ क्रिस्ताफ़े के स्वप्नों का बाह्य आकार अधिक मुख्य नहीं है जहाँ उसका मानसिक आधार ठोस है। इसके बाद स्वप्नों का जो रूप रोमाँ ने दिखाया है वह अन्तर के स्वप्नों से मिलता-जुलता है। भयंकर झुंझकार जानवर क्रिस्ताफ़े के स्वप्नों में भी प्रकट होते हैं “जब धँबरे में रहस्यमय मृच्छा दिया हुआ देखकर डर जाता—जराबनी पत्थियाँ जो उसकी जान की तक म की और मरजते हुए मयानक जानवर” । * कभी-कभी स्वप्न में मृत जानवर भी पीछते हैं।^४

भय की चरम सीमा मरण का भय है। किन्तु जहाँ को मरण के प्रति भय के

१. Jean Christophe, Part I P 60.

२. रोखर, भय १ पृ १२१।

३. Jean Christophe, Part I, P 75-82.

४. रोखर, भय १ पृ १२१।

५. Jean Christophe Part I, P 62.

६. Jean Christophe Part I, P 65

या वह अपने पिता का उपासक था। किन्तु क्या इस उपासना के माय की दिया बरनी हुई यौन-वृत्ति मान सकते हैं? अगर सेखर ने ऐसा ही माना है तो उसके निष्कर्ष में सेखर को प्राप्त सफलता पर सन्देह होने लगता है। प्रायः जो बासब माता हैं वृथा कहता है और पिता पर आसक्त रहता है उसमें एक 'असुख प्रसि' (केमि नीनिटी कॉम्प्लेक्स) दिखाई पड़ती है।^१ लेकिन सेखर में कहीं भी यह प्रसि प्रकट नहीं हुई है। सेखर का पिता के प्रति उपासना का भाव भी 'आसक्ति' की सीमा तक नहीं पहुँचता। यत उसे अधिक रूप में मानना ही ठीक नहीं लगता। सेखर का वह 'उपासना' का भाव बाहर से उत्पन्न है। पिता के पद और कुटुम्ब में उसके स्थान को देखकर बालक में उसके प्रति उपासना का भाव उत्पन्न होता ही है। पिता के प्रति इस तरह भुक्तने की प्रवृत्ति को मनोविज्ञान में 'अमन प्रसि' या 'पुंस्त्व-हर्षण-प्रसि' (Castration Complex) कहा जाता है।^२ ज्ञात होता है कि सेखर में यही प्रसि काम कर रही है। उसकी यौनासक्ति माता के प्रति न होकर बहुत सरस्वती के प्रति सम्मुख होती है। यहाँ यह समझना चाहिए कि माता या बहन के प्रति इस तरह की आसक्ति किसी तरह के वापस करने में परिसुख हो यह बकरी नहीं है। व्यक्ति स्वयं इस आकर्षण को नहीं जानता फिर भी वह आकर्षण में पड़ जाता है। बहन के प्रति उसकी यह भावना इस बात से प्रकट है कि वह उसे 'सरस' नाम देकर उसे प्यार से अपने मन में बुझाने लगता है।^३ यह प्रवृत्ति कुछ आसक्तियों नहीं है। बस्तुतः सेखर की आसक्तियुक्त यौन-प्रवृत्तियों से अधिक सम्बन्धित नहीं है। वह सामान्य पुरुष के समान जियो से आकृष्ट होता ही है पर उसका धर्म इतना निश्चित है कि वह अपने मन को बचा रक्खता है। किन्ताऊँ और सेखर में अन्तर यही है कि किन्ताऊँ माता के प्रति सम्मुख होता है तो सेखर बहन के प्रति। पिताओं के प्रति उनके भाव पिताओं के व्यक्तित्व से प्रभावित हैं।

वास्तविक के पश्चात् सेखर और किन्ताऊँ कई त्रादिकियों से आकृष्ट होते हैं और सामान्य पुरुष के समान ही व्यवहार करते हैं। व्यवस्था की रक्षा में युवतियों के सामने उनको आहूत करनेवाली करामतों करना बालकों की सहज प्रवृत्ति है। जब वाँ किन्ताऊँ को पड़ोस की एक लड़की कायर कहती है, तब वह अपना साहस दिखाने के लिए बड़ी-बड़ी नीबों के ऊपर से कूदकर वापस हो जाता है। इसपर वह लड़की हँसती है तो उसका 'धर्म' जाग्रित होता है और वह उसे पीटकर भाग जाता है।^४ अबमय इसी तरह का एक हस्य सेखर में भी है। सेखर आर्या के सामने अपना साहस दिखाने के लिए एक पेड़ पर चढ़ता है और नीचे गिरकर वापस हो जाता है।^५

१ रीवर, भाग १ पृ० १२०।

२ Jastrow Freud, His Dream and Sex Theories P 201

३ Jastrow Freud His Dream and Sex Theories, P 201

४ रीवर, भाग १ पृ० ८२।

५ Jean Christophe Part I P 48-49

बद सारसा दृश्यपर हुईती है। तब वह स्पष्टकर यह प्रण करके जसा जाता है कि वह फिर कभी सारसा के पास नहीं जायगा।^१ क्रिस्ताळे और शेखर की इस प्रकृति को एक प्रकार की 'प्रदर्शन-वृत्ति' (Exhibitionism) कहा जा सकता है।

सहकर्मियों के प्रति आकर्षण का एक-एक प्रसंग और बेसिए जिसमें शेखर और क्रिस्ताळे प्रायः समान व्यवहार करते हैं। शान्ति से शेखर के तथा मित्रा से क्रिस्ताळे के मित्र के सन्दर्भों की तुलना की जाय। शेखर "अपसर उसकी धीरे बचकर अपने घर के एक घोर बड़ा होकर शान्ति की ओर देखा करता।" शान्ति कभी धीरे उठकर उसकी ओर देख लेती तो वह तत्काल वहाँ से हट जाता।^२ क्रिस्ताळे भी 'अपने घर के एक खंभे पर चढ़कर पड़ोस की मित्रा को देखता है और बत्ती ही उतर जाता है।'^३ इसके बाद शान्ति के बुझाने पर शेखर उसके पास जाता है तो मित्रा के बुझाने पर क्रिस्ताळे उसके घर जाता है। अंतर इतना ही है कि मित्रा शान्ति के समान बीमार नहीं है और उसके साथ उसकी माता भी क्रिस्ताळे से परिचित होती है। इसके बाद शेखर के शान्ति को कविता सुनाने और क्रिस्ताळे के मित्रा को संवीर सिखाने में तथा शान्ति के शेखर की सगुमियाँ पकड़कर अपनी ठोड़ी पर बसाने और मित्रा के अपना हाथ क्रिस्ताळे के होंठों पर बसाने में भी समानता है।^४

और एक प्रसंग का भी उल्लेख करके इस तुलना को समाप्त करना उचित होगा। शेखर का कुमार से तथा क्रिस्ताळे का मोटो से सौजन्यिक प्रेम भी तुलनीय है। शेखर कुमार को मित्र बना लेता है और उसकी बड़ी सहायता करता है। विपरीत यौन-भावना से निवृत्त वह प्रेम जूमा जूमी तक पहुँचता है। शेखर कुमार पर धिक्कार रखना चाहता है और उससे कहता है 'कुमार, यदि मेरे अतिरिक्त तुम और किसीके हुए तो मैं तुम्हारा गला भोंट दूँगा।'^५ क्रिस्ताळे की बात भी इससे भिन्न नहीं है। उनका कुम्भन का भावान प्रवान साधारण सीमा पार कर पनी हारा भी होता है। शेखर के समान ही क्रिस्ताळे मोटो से कहता है "सुना तुम मुझे सूनीन मुझे बोझा बोगे तो मैं तुम्हें कुत्ते की माँति मार दामूँगा" तुम्हें मेरे अतिरिक्त और किसीसे भी प्रेम करने नहीं दूँगा।^६

ऊपर के प्रसंगों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि मूल मानसिक वृत्तियों के विकास में शेखर और 'श्री क्रिस्ताळे' में कितनी समानता है। उद्बुध सभी प्रसंग उक्त उपन्यासों के प्रथम भाग से है। प्रथम भागों में शेखर और क्रिस्ताळे सामाजिक जीवन में प्रविष्ट होते हैं और सामाजिक वातावरण की धार्मिक स्थान मिलता है। भाष्य

१ शेखर भाग १ पृ १७२।

२ शेखर भाग १ पृ १६१।

३ Jean Christophe, Part I, P 246.

४ शेखर भाग १ पृ १६४ और श्री क्रिस्ताळे भाग १ पृ २५०-२५१।

५ शेखर भाग १ पृ २०६।

६ Jean Christophe, Part I P 209 and 211

घोर यूरोप के बाताबरण बहुत भिन्न है भ्रष्ट उपन्यासों में भी काफ़ी भ्रष्ट भा गया है। फिर भी दोनों भाषाओं की मौलिक प्रवृत्तियाँ बहुत कुछ समान ही रहती हैं। दोनों विद्वानों के रूप में प्रकट होते हैं। दोनों के चिन्तन का आधार वैयक्तिक दृष्टि से समाज का निरीक्षण है। साधारण लोग समाज की प्रवृत्तियों का जो मुख्य निर्धारित करते हैं उन सबका निपेय करके बेकार घोर विरहाके नये रूप से घोर बौद्धिक दृष्टिकोण से पुनर्नूयान करते हैं।

हिन्दी के कुछ उपन्यासों में मूल वृत्तियों का भ्रवत्व

व्यक्ति में परस्पर-विरोधी वृत्तियों का जो अस्तित्व है उसका उल्लेख किया जा चुका है। (धनु २९१)। जब हम वहाँ हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में इनका समावेश कहाँ तक हुआ है।

२७७ प्रथम प्रथम जेनेरल के कुछ उपन्यासों को लें। 'सुखरा' में सुखरा घोर कामत के पारस्परिक सम्बन्ध को लीविए। दोनों के प्रेम में कोई भी कमी नहीं है। विशेषकर कामत के व्यवहार ऐसे हैं कि लगता है वह पत्नी से बहुत प्रेम करता है उसे हर तरह की स्वतंत्रता देन को तैयार है और उसकी हर बात मानता है। वह सुखरा से बचता-सा ही ऐसा ज्ञात होता है। पर क्या समित होने के इस भाव में उसके प्रेम के प्रतिरिक्त कुछ नहीं है? सुखरा इस प्रश्न का उत्तर देती है 'मेरे स्वामी जब कभी मुझसे बात कहते बहुत भीमे कहते और इस प्रकार कहते मानो अपनी इच्छा का आरोप मुझपर बिनाकुल न करना चाहते हों इसी मिठास में तो उनका अधिक आर-मर्ब छिपा है। यह मिठास लेप है भीतर कठिन परपठा है। यह नहीं कहा जा सकता कि कामत सुखरा से प्रेम नहीं करता या उसे बचाना चाहता है। फिर भी यह स्पष्ट है उसे पूरा स्वतंत्रता दिते हुए भी उसके मन के अन्दर के स्तर में उसे बचाने की प्रवृत्ति निहित है। इसी तरह विवर्त में जब बितेन सुवनमोहिनी का दूरण कर लेता है और उसे कष्ट देता है तब भी उसका हृदय सुवनमोहिनी के प्रति प्रेम से बर्जित नहीं है। इन दोनों प्रथमों में मूल वृत्तियों का अन्तर्वेक संभव है।

२७८ समाजवादी जोषी के उपन्यासों में अन्तर्वेक के अधिक स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं। 'प्रेम और छाया' में बीजनाथ अपने पुत्र पारसनाथ से अपार दूरणा करने जाने व्यक्ति के रूप में ही प्रकट होता है और प्रायः सम्पूर्ण उपन्यास में उसका यही रूप दिखायी देता है। पारस भी यह यथार्थी तरह जानता है कि उसका पिता उससे दूरणा करता है।^१ अन्तिम इस दूरणा के अन्दर भी अपार प्रेम छिपा हुआ है क्योंकि उपन्यास के अन्त में स्पष्ट होता है। बीजनाथ स्वयं मानता है, 'क्योंकि मैं भीतर ही भीतर इतना अधिक चाहता था इसलिए तुमसे बेहतर

१. अध्याय ५ पृ. ११।

२. प्रेम और छाया ५ पृ. ११।

करता' । यहा प्रकृत्य जूना धीर प्रेम का है । 'पर्व की रानी' की निरंजना का व्यक्तित्व ही उसकी धर्मनिहित जीवन-वृत्ति' एवं 'मरण-वृत्ति' के संघर्ष का प्रतीक है । उसका प्रेम इतना तीव्र है कि वह अपनी सब कुछ पुरुष के सामने रखने को तैयार रहती है । साब-साब उसमें जो बिम्बसजारी धर्मिता है वह पुरुष को मोहित कर उसका सर्वनाश करने को प्रयत्नशील रहती है । वह इन्द्रमोहन को अपने सम्पूर्ण से अपमानित कर बाकनाड़ी के नीचे प्राण विसर्जन करने को विवश करती है, पर उसी समय उसके प्रति निरंजना का प्रेम भी अपनी चरम सीमा पर है ।

'जीवन-वृत्ति' और 'मरण-वृत्ति' (Eros and Thanatos) के द्रुवत्व का धार्मिक सुन्दर उदाहरण 'निर्वासित' के धीरज में मिलता है । उसकी आशा में भी निराशा है जीने में भी मरने की छाया है । वह स्वयं कहता है 'प्रेम की अनुसूति मेरे भीतर बिछनी धार्मिक प्रवण होती जाती है विषाद और मृत्यु की छाया भी उसी हव तक बनी और घबेरी होती जाती है ।^{१२} इन रचनात्मक तथा विनाशात्मक शक्तियों का अस्तित्व अन्य जीवियों में भी है । सृष्टि और विनाश प्रकृति की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं । प्रत्येक प्रकृति में 'प्रेम' (रचनात्मक शक्ति) तथा 'मरण' (विनाशात्मक शक्ति) के बीच में घट्ट सम्बन्ध स्थापित कर दिया है । बोसीबी ने विष्णु आदि जीवियों के सम्बन्ध में कहा है 'उन सब जीवों की अज्ञात वेतना निश्चय ही जानती होती कि उनके प्रेम का परिणाम विनाश है पर इस पूर्व अनुसूति के बावजूद वे प्रेम से नहीं बचता और इच्छापूर्वक उस निश्चित विनाश को स्वीकार करते हैं क्योंकि प्रजा-विस्तार के लिए वह आवश्यक है । प्रेम एक रोष है, पर वह सहज रोष है, जिसे प्रकृति ने जीवों के विनाश के लिए धार्मिक बनाया है ।^३

'निर्वासित' के महीप में तथा 'सन्वासी' के कन्दकिशोर में हिंसा-अहिंसा और दय-विदय की जो वृत्तियाँ हैं उनमें भी मूल वृत्तियों का द्रुवत्व देख सकते हैं । विशेषकर 'निर्वासित' में यही प्रकृत्य महीप के मानसिक द्वन्द्व का कारण है । कभी हिंसा-वृत्ति प्रबल रहती है और कभी अहिंसा-वृत्ति । ऐसे समयों में उसके आचरण भी क्रमशः विनाशकारी या रचनाकारी हो जाते हैं । यह धनुष्केर २७ में दिने पदे समीकरण का एक उदाहरण है ।

यह 'मुक्तिधन' के राजीव के व्यक्तित्व को भी । सुगीता के प्रति उसके मनो-भाव और आचरण में जो विरोधी प्रवृत्तियाँ काम कर रही हैं इतने की और इतने की । अत्यन्त संयुक्त व्यक्तित्व से युक्त वह युवक सुन्या के सामने विनम्र धर्म और कुत्र हो जाता है । 'बुरे व्यक्तियों के साथ वह अपने अन्तस्तर की समस्त बिरोधी शक्तियों को एकत्रित करके उनके हृदय में एक अज्ञात भय और सम्भ्रम का भाव

१. प्रेम और बाधा पृ. १०० ।

२. निर्वासित पृ. ५२ ।

३. निर्वासित, पृ. १५६ ।

संचालित करते में समर्थ होता था। पर इस ऐच्छिकी के आगे उसकी सारी शक्तियाँ स्थिर-मिल हो जाती थी और वह अपने को अत्यन्त क्षुद्र और वृणित समझने लगता था।^१ लेकिन इसी दम्यता-वृत्ति के साथ-साथ उसमें दमन-वृत्ति भी काम कर रही है और जो धीरे धीरे विकसित होती है। इसीका परिणाम है कि वह सुनन्दा से कोई सम्बन्ध न रखकर भी उसके व्यक्तित्व अपनी इच्छानुसार बढ़ना चाहता है। इसी कारण सुनन्दा जब समय तक उसे छोड़ जाती है जब उसका अपना व्यक्तित्व काफी सबल हो जाता है। राजीव के व्यक्तित्व की विशेषता यह है कि उसमें अपार शक्ति है। प्रारम्भिक दशा में उसकी सारी शक्ति अन्तर्मुखी रहती है अतः उसकी स्वाशक्ति भी अदृश है। उसकी मानसिक शक्तियों में सबसे-सा बलता रहता है। उसकी प्रबल वैभितकता स्पष्ट दिखायी पड़ती है। लेकिन जब वह इस शक्ति को बहिर्मुखी बनाकर सामाजिक कार्यों में लग जाता है तब उसका व्यक्तिगत व्यक्तित्व (Individual Personality) उतना सबल नहीं साट होता। अनुच्छेद २७१ का समीकरण इसे स्पष्ट करता है।

३

मानसिक कार्य-मयतियाँ (Mental Mechanisms)

२७२ मनुष्य की सभी क्रियाएँ कुछ मानसिक शक्तियों के द्वारा नियंत्रित होकर चलती हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मनुष्य हर एक काम बान-बूझकर करता है। वस्तुतः जो क्रियाएँ अनजान में ही की जाती हैं वे भी कुछ मानसिक क्रियाओं से प्रेरित ही रहती हैं। विशेषता केवल यही है कि प्रेरणा मन के अतन स्तर से नहीं आती एक अज्ञात अचेतन मन से आती है। अतः बाह्य क्रियाओं को नियंत्रित करनेवाली शक्तियों के रूप में अतन और अचेतन मानसिक क्रियाओं का विशेष महत्व है। इन मानसिक शक्तियों के क्रियाशील रूपों को 'मानसिक कार्य-मयतियाँ' (Mental Mechanisms) या 'मनोव्यापार' कहा जाता है। 'मनोव्यापार' धर्म-स्वसंज्ञित होते हैं और विभिन्न मानसिक शक्तियों से उत्पन्न होकर अचेतन द्वारा निर्णीत लक्ष्यों के प्रति उन्मुख होते हैं।^२

मुख्य मनोव्यापारों में आरोपण (Projection) तादात्म्यीकरण (Identification) स्थानान्तरिकरण (Transference) निषेध (Suggestion) दमन (Repression) उदासीकरण (Sublimation) वृत्ति (Rationalisation) बद्धत्व (Fixation) प्रत्यावर्तन (Regression) स्वप्न (Dream) आदि मुख्य हैं। हिन्दी उपन्यासों में यत्र-तत्र मनोव्यापारों से सम्बन्धित जो बातें आयी हैं, उनका अध्ययन करते समय यह बात याद रखनी चाहिए कि अधिकांश स्थानों पर लेखकों ने मनो-विश्लेषण के ज्येष्ठ से ऐसे प्रयोगों का निर्माण नहीं किया है बल्कि वे जीवन के विचरण

१. मुक्तिमय पृ. २१-२२।

२. Driver A Dictionary of Psychology P 163.

में समायास हो या गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि केवल इसाचन्द्र जोशी और धर्मेय ने कहीं-कहीं जान-बूझकर मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है। अन्य लेखक विशेष रूप से मनोविज्ञान को महत्व देते दिखायी नहीं देते यद्यपि उनके उपन्यासों में प्राप्य मनो-वैज्ञानिक तथ्यों में वैज्ञानिक दृष्टि का प्रभाव हो तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

हिन्दी उपन्यास में मनोव्यापार

१ मानसिक उदात्तीकरण (Psycho Sublimation)

२८० जब मनुष्य अपनी समस्त बिरोधी नैसर्गिक प्रवृत्तियों को दमित रखकर अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का पालन करने का प्रयत्न करता है तब दमित वासनायें किसी न किसी समाजानुमोदित नैसर्गिक रूप में प्रकट होती हैं। इस प्रवृत्ति को उदात्तीकरण कहते हैं। इस प्रकार विकसित होनेवाली प्रवृत्तियाँ समाजानुमोदित ही नहीं होती समाज-व्यत्यासकारी भी होती हैं। मानक-सम्यता का आधार मुख्यतया उदात्तीकरण है। भौतिक नैसर्गिक वासनाओं की विद्या बढसकर सामाजिक विकास को प्रेरणा देनेवाली बात यही है। किसी व्यक्ति का दमित प्रेम काव्य निर्माण की प्रेरणा बन सकता है। परपीड़न की प्रवृत्ति दमन से उदात्तीकृत होकर धारमपीड़न का रूप ले सकती है।^१ गांधीजी के अहिंसक-सत्य सत्य अहिंसा आदि कारण वास्तव-वादीय प्रयत्न सत्य आदि का दमित होकर उदात्तीकृत होना है।

२८१ जैनेन्द्र के उपन्यासों में—पहले हम यह ध्याये हैं कि 'स्वापन्न' 'परब' आदि के पात्रों के पात्रों को उदात्तीकरण के उदाहरण नहीं समझना चाहिए।^२ ऐसा मानने का कारण यही था कि उपन्यास को पढ़ने पर ऐसा नहीं लगता कि जैनेन्द्र ने इस मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का विश्लेषण करने के लिए मूलात् कटो सत्यजन आदि पात्रों का निर्माण किया है। कुछ पात्रों की स्वापना के लिए ही उन्होंने उन पात्रों की सृष्टि की है। यहाँ उस पूर्व यत्न को दूर रखकर 'स्वापन्न' और 'परब' में जो उदात्तीकरण है उनको हम क्याकि जीवन के प्रत्यक्ष आदर्श की प्रेरणा किसी न किसी तरह का उदात्तीकरण ही होती है। यद्यपि यहाँ हम यह मानते हुए भी कि जैनेन्द्र ने जान-बूझकर उदात्तीकरण के उदाहरण प्रस्तुत नहीं किये हैं उनके पात्रों के उदात्तीकरण का विश्लेषण करते हैं। 'परब' में कटो की स्वाभाविक प्रवृत्ति ही दमित होकर उदात्तीकृत होती है। जैनेन्द्र ने उसकी मानसिक प्रक्रियाओं की विविध दशाओं को स्पष्ट किया है। वह सत्यजन से विवाह नहीं कर सकती तो विवाह का ही विरोध करने लगती है। यह मानसिक प्रतिक्रिया की प्रथम दशा है। इस निष्क्रिय दशा के बाद दूसरी सक्रिय दशा आती है। यौन-जीवन में विफल होकर वह अपनी 'जीवन-शक्ति'

१ Based on—Brown The Psychodynamics of Abnormal Behaviour P 172 173

२ देखें अनुच्छेद २४५ की धार-विषयी।

(Eros) को दूसरी ओर लगाती है—घामीय भावक-वास्तविकार्थों को पढ़ने में। सामान्य दृष्टि से देखा जाए तो यह अत्यन्त अस्वाभाविक और असाधारण है, पर जिसकुछ अर्थमय नहीं है।

स्वायत्त की मृणास पत्रित होने पर भी एक घादर पात्र है। पत्रि म धनादर पाती हुई वह अपने विरोध-भाव को दबाती है। उसका विरोधी एवं अहंकारी स्वस्तिरव इसल स्फुट है कि वह अपने पति से अनाद-पाकर भी आई के घर जाने से इनकार कर देती है। यही स धुक होमेवासा उसका आत्मपीडन उपासीकरण का उदाहरण माना जा सकता है। समाज के बन्धनों को तोड़ने का प्रयत्न बिना किसी प्रति विरोध दिखाये बिना वह अपने-आपको पीडा देने लगती है। इसका पठन विनामिता के कारण नहीं होता। “वेत्तावृत्ति नहीं करने लगूंगी इसका विरवास है। जिसको उन दिया उसने पत्रा कंठे मिया का सफा है ?” उसके इन शब्दों से प्रकट है कि पठन में भी आत्मिक उदात्तता है।

२८२ इसाचन्द्र कोशी के उपन्यासों में—बोलीश्री के उपन्यास ‘मुक्तिपथ’ में उदात्तकरण का उत्तम उदाहरण है। उसके कथानक का आधार ही राजीव की मानसिक प्रवृत्तियों का उदात्तकरण है। राजीव के आन्तरिक की परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि उसे नैसर्गिक बन्धनों और विचारों को इतना पढ़ता है। इसके परिणामस्वरूप वह मुक्तता में आहूत होने पर भी उसे अपनी भावना की मृत्ति का उपकरण बनाना नहीं चाहता। इस आत्मदमन के दो परिणाम होत हैं। वह अपने लिए कोई सुख नहीं चाहता सब तरह के बन्धन छोड़ कर अपना जीवन अन्य के लिए समर्पित करना चाहता है। समाज-विरोधी भावना ही दमित होकर उदात्तता हो जाती है। दूसरी ओर उसका अन्तर्मुख भी उसकी प्रवृत्तियों को निमित्त करता है। उसकी दृष्टि में मनोवृत्ति की प्रतिविम्ब मुक्तता के प्रति होती है। वह स्वयं मौखिक मुक्तों में विरक्त है तो मुक्तता क्यों उन मुक्तों का अनुभव कर ? राजीव अपने स्वस्तिरव के अनाद में मुक्तता के अस्तिरव का अपना-आ अपना चाहता है। अन्तः पर उसका अन्तर्मुख की प्रवृत्ति है जिस वह स्वयं नहीं जानता। ऊपर से तो ऐसा लगता है कि वह मुक्तता को बहियों के बन्धन से निजानकर समाज के विरोध रूप में माना चाहता है। मुक्तता के प्रति राजीव के इस भाव को छोड़कर उसके अस्तिरव के अन्य अर्थों को भी तो हमें उदात्तकरण का उदाहरण मिलता।

‘नन्याश्री के अन्तर्मुख और ‘निर्वाचित’ के अर्थों के अर्थों की अन्त में उदात्तता हो पते हैं। दोनों का अपने-अपने आत्मभाव में ही अन्तः समाज की नैतना की मृत्ति का मान सरल नहीं होता। अन्तः से अन्तः सम्पन्न आहूत और अन्तः म विवाह करके भी अन्तर्मुख की मृत्ति नहीं पाता। अन्तः उसकी अन्तः अन्तः आत्मदृष्टि के लिए अन्तः मार्गों का अन्तर्मुख बनती है। अन्तः सारांश बनता है फिर देख-देखा करके जित जाता है। कई महकियों से आहूत अन्तः विरोध विवाह म कर करने से पहले आहूत की अन्तर्मुखी और फिर अन्तर्मुखी बन जाता

२८३ ओकर में—अन्तः के अन्तः का अन्तः भी

सहाहरण के रूप में लिया जा सकता है। देखर के वास्तविकता के विरोधी व्यक्तित्व के समाज विरोधी रूप को देखकर ने बिलकुल स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया है। वह अपनी अपार बुद्धि और दबित से जो कुछ करता है। शायद ही करता है। इस तरह निरन्तर धारण करनेवाला वही वास्तविकता में समाज की भलाई के सम्बन्ध में बम्बीर चिन्तन करने लगता है। और सक्रिय रूप में भी बहुत कुछ करता है। मानव-सहज काम-वृत्ति को भी वह दबा रखता है जिससे उसे और अधिक शक्ति प्राप्त होती है। इस तरह देखर का चरित्र भी सामान्य रूप में उदात्तीकृत हो गया है।

उपरोक्त उदाहरणों से एक बात यह स्पष्ट होगी कि हिन्दी के अधिकांश मनोवैज्ञानिक उपम्यासों में जो उदात्तीकृत धारण मिलता है उसकी मूल प्रेरणा नैतिक जीवन में परिस्थिति के कारण आनेवाली असंतुष्टि ही है। देखर-सम्बन्धी कुछ के प्रतिरिक्त जीवन के अन्य गैरपरमय पक्षों का बहुत कम अध्ययन किया गया है।

२ आरोपण (Projection)

२८४ सामान्यतः मनुष्य में अपने कर्तुणों को तथा अपने जीवन के इष्टित पक्षों को दूसरों की दृष्टि से छिपा रखने की प्रवृत्ति होती है। इसके साथ-साथ उसमें और एक बिचित्र प्रवृत्ति को बिजायी पड़ती है वह यह है कि समय-समय पर वह दूसरों में उन कर्तुणों के होने की कल्पना करता है। स्वयं (Ego) को जो-जो गुण (या दोष) अस्वीकार्य हैं उन सबको परिवर्तित वस्तुओं या व्यक्तियों पर आरोपित करने की इस प्रवृत्ति को 'आरोपण' या 'प्रोजेक्श' (Projection) कहा जाता है।^१ प्रत्येक मनुष्य में आरोपण-मनोभाव जोड़ा-बहुत होता ही है। 'तुम भी ऐसे ही हो' 'तुमने भी ऐसा किया था' ऐसे कथन जो प्रायः सुनने में आते हैं इसीके उदाहरण हैं। 'आरोपण' में यह आवश्यक नहीं है कि आरोपण करनेवाला व्यक्ति अपने मनोव्यापारों को जाने। प्रायः मही होता है कि वह स्वयं अपने दोषों को स्वीकार नहीं करता इसीलिए उसके मनबाने ही उसका अवचेतन दूसरों पर दोषारोपण करके समुष्ट हो जाता है।

२८५ प्रेत और छाया में—यहाँ हम उन उपम्यासों को खोजेंगे कि जिनमें पति स्वयं सम्पत् होकर पत्नी के चरित्र को सदा सम्बन्ध की दृष्टि से देखते हैं। जैसे जीवन में यह प्रवृत्ति आरोपण ही है किन्तु हमारे उपम्यासों में इसे मनोवैज्ञानिक रूप नहीं दिया गया है। प्रायः ऐसे प्रसंगों में लेखक का सहोदर केवल सामाजिक प्रत्याचारों को प्रकाश में लाना ही होता है। यहाँ केवल 'प्रेत और छाया' को जैसे जिसमें आरोपण स्पष्ट आया है।

प्रस्तुत उपम्यास में पारसनाथ का पिता बीजनाथ अपनी पत्नी पर यह साक्ष्य लगाता है कि वह कुमरता है और उसका उदात्तित गुण पारसनाथ वस्तुतः द्विगुणकर

१ Based on—Brown *The Psychodynamics of Abnormal Behaviour* P 175

चेष्ट का पुन है। इस दोषारोपण का मनोवैज्ञानिक कारण वृद्धों को ज्ञात होता कि ब्रह्म नाम स्वयं सम्पत् है। परन्तु वस्तुतः सती है। ब्रह्मनाम उसके योग्य नहीं है। ब्रह्मनाम में शब्दोपावस्था में यह हीनता-प्रतिफल उत्पन्न हो जाती है। पर उसका स्वत्व (ईश्वर) यह मानने को तैयार नहीं है कि वह स्वयं वृद्ध है और परन्तु साम्प्रदायिक है। इसीके परिणाम में वह परन्तु पर कर्त्तक समझता है। इस बहाने में शराब पीते हुए और भूखानी स्थितियों के पीछे पड़े हुए उसके आचरण में प्रकट करते हैं कि सम्पत्ता उसमें पहले ही थी। ये सब बातें उसके अपने ही शब्दों से स्पष्ट हो जाती हैं। “मैं मज्जी भाँति जानता था कि कुम्हारों की रक्त की एक-एक बूँद में सतीत्व की भावना बूट-बूटकर भरी हुई है। शायद इसीकी प्रतिक्रिया के फल से मेरे विद्वत् मन को यह विश्वास करने की इच्छा हुई कि वह शरीर असती है।”^१ ब्रह्मनाम के चेतन और अचेतन मन की यह द्वन्द्वमय कथा स्पष्ट तक नहीं रहती है और वही उसे धार्मिक जीवन के प्रति उत्सुक करती है। अन्त में वह रहस्य कुल जाता है और वह अपने आचरणों का वास्तविक कारण समझ सकता है।

३ निर्वेचन

२८६ कोई व्यक्ति परिस्थिति या किसीके विचार, वचन क्रिया आदि के कारण अपने मन में संज्ञात किसी कारण के आधार पर व्यवहार करे तो उस प्रवृत्ति को निर्वेचन (Suggestion) कहते हैं। जिस व्यक्ति में निर्वेचन की प्रतिक्रिया होती है वह अपनी विवेचना-शक्ति का उपयोग नहीं करता।^२ प्रत्येक व्यक्ति भ्रान्तिभावना में ही उसके अचेतन में सक्रिय होती है और व्यक्ति की प्रवृत्तियों को संज्ञात करती है। यह प्रत्येक व्यक्ति व्यक्ति में किसी तरह की निश्चित प्रतिक्रिया-प्रवृत्ति (Previous positive response tendency) निमित्त करती है और उसीके अनुसार वह किसी परिस्थिति में प्रवृत्त होता है।^३ निर्वेचन शक्ति भी विभिन्न प्रकारों की हो सकती है जैसे पूर्वग्रह सहजानुभूति अन्तर्विश्वास आदि। प्रायः वृद्धिपूर्ण विस्वास या धारणा (Erroneous belief) भी प्रवृत्ति-निर्वेचन करती है।^४

२८७ ‘प्रेत और छाया’ में—जैसे उल्लेख किया गया है, ‘प्रेत और छाया’ का नामक पारसनाथ नाटक में ही पिता से यह बात मिला है कि उसकी माता सती नहीं है और जिसे वह पिता कहता था वह वस्तुतः उसका पिता नहीं है।

१ प्रेत और छाया पृ २८२।

२. “Suggestion means the influencing of another's thought or action by certain stimuli in situation where the recipient does not use his critical judgment.”

—Young Personality and Problems of Adjustment, P 90.

३ McKinney Psychology of Personal Adjustment, P 89

४ McKinney Psychology of Personal Adjustment, P 92.

पिता की इस बात के सच न होने पर भी पारस उसपर विश्वास करता है और आन्तिमूलक विश्वास उसके सम्पूर्ण चरित्र को प्रभावित करता है। वह सोचता है कि उसकी माता सही नहीं है भव कोई स्त्री सही नहीं होती। उसका विवेक यहाँ काम नहीं करता। आन्त विश्वास के नीचे विवेक दब जाता है। जब उसमें यह विश्वास था जाता है कि स्त्रियाँ सब चरित्रहीन होती हैं तो वह अपने संपर्क में आनेवासी सभी स्त्रियों को पतित करने का प्रयत्न करता है। किसीसे न उसका पवित्र प्रेम है न भगिनी भावना। बात केवल यही है कि स्त्रियों का चरित्र संशय करने में उसे एक तरह का पाशविक ज़्यादा मिलता है। वह कहता है 'मेरा भ्रम विश्वास है कि संसार में केवल वे ही स्त्रियाँ सही-साध्वी होने का होंए रख सकती हैं जिन्हें या तो समाज के कड़े दण्डनों ने स्वेच्छाचरण का मौका नहीं दिया है या जिन्हें प्राप्त पुरुष प्राप्त नहीं हो पाये हैं। मैं अभी यह किसी साध्वी स्त्री के पीछे पड़ बाऊ तो देखूँ कि वह अपने सतीत्व को किस हद तक कायम रख सकती है।' वह कई उब एवं निम्न मोड़ी की स्त्रियों से सम्बन्ध स्थापित करता है। इन सम्बन्धों का विस्फेपण करते हुए जोड़ी-बी कहीं-कहीं अधिक जटिल मानसिक व्यापारों को भी स्पष्ट करते हैं। भुवोरिया की पत्नी मन्दिनी को जब तक सही-साध्वी समझता है उसे कर्षित करने की चेष्टा करता है और भगा न जाता है। लेकिन जब उसे ज्ञात हो जाता कि उसकी बहुत बेवफा है तब उसे विश्वास हो जाता है कि मन्दिनी भी जबानी में अपना चरित्र बेचती रही होगी। इस विश्वास के आ जाने पर मन्दिनी से उसकी दिलचस्पी नष्ट हो जाती है। स्पष्ट है कि पारस का ध्यान केवल सही-साध्वियों को पतित करने में है और इसका कारण उसकी अपनी माता के सम्बन्ध में हुई चारखा ही है जो बेटन में प्रकटित होकर अवचेतन में अमूर्त अन्व आरण्यों निमित्त करती है।

अन्त में जो परिवर्तन पारस में आता है उसका मनोवैज्ञानिक आधार अधिक इह ज्ञात नहीं होता। उसका पिता मरण के समय उसे बता देता है कि उसकी माता सही थी। इस समय उसके चरित्र में फिर परिवर्तन आ जाता है और वह अपनी पूर्व चारखाओं और उत्सर्जित प्रवृत्तियों को छोड़कर एक बेवफा से विवाह कर देता है, जिससे उसका सम्बन्ध था। प्रथम निर्दोश द्वारा यहाँ तक नियमित उसका जीवन अब एकदम बदल जाता है यह कुछ अस्वाभाविक-सा लगता है। ऐसा लगता कि यहाँ जोड़ीबी का ध्यान किसी मनोवैज्ञानिक तत्त्व से अधिक इस बात पर रहा है कि उपन्यास का अन्त भावसंवादी हो।

४ विस्थापन (Displacement)

एकदम किसी वस्तु भवना व्यक्ति के प्रति मन में उत्पन्न होनेवाला संवेग अपनी वृत्ति का उपाय न देखकर और किसी अनधिकारिक वस्तु भवना व्यक्ति के प्रति उन्मुक्त

हो जाय तो उस प्रकृति को 'विस्थापन' कहा जाता है।^१ प्रायः देखा जाता है कि कोई व्यक्ति जब पद के किसी व्यक्ति के प्रति क्रुपित हो तो क्रोध को प्रकट करने में असमर्थ होकर उसे सत्कार ही जाता है किन्तु अपने से निम्न स्तर के लोगों (जैसे घर के लोग पीकर भागि) पर सारा क्रोध उतार देता है। यही प्रकृति विस्थापन है। विस्थापन धन्ये मा बुरे भावों का हो सकता है।

एल्ड जेनेन्ड के बिगन^२ में जितेन का व्यक्तिकारी बनना उसकी हिंसा-वृत्ति के विस्थापन का परिणाम है। आर्थिक असमता के कारण वह एक धनी की पुत्री सुवन मोहिनी से बिबाह नहीं कर सकता। इसके परिणाम में उसके प्रति बिगन के मन में जो हिंसा-वृत्ति होती है वह अपनी स्वामाधिक रिश्ता में प्रवृत्त होने का अवसर न पाकर ट्रेन गिराना आदि हिंसक कार्यों का रूप धारण कर लेती है। सुवनमोहिनी को बुरा से जाना भी घमड़ी देना उसके प्रति जितेन को निराशाजनित हिंसा-वृत्ति का परिणाम है। यही हिंसा-वृत्ति बिगन बचकर अन्य विनाशकारी कार्यों में परिणत होती है।

मधुसूदार के विस्थापन का एक उदाहरण 'मुनाओं का देवता' में मिलता है। चण्डर जो मुना से प्रेम करता है मुषा के घोर किसी पुरुष से बिबाह हो जाने पर काम प्रकृति का पात्र बनता है। मुषा के प्रति उसका जो भावपूर्ण या वह सब पम्पी के प्रति हो जाता है जो उनके प्रेम के लिए सराबोर है। पम्पी की तस्फूर्ति उसे मानूँ कि न तो नष्ट बना ले जाती है। उसके मधुसूदार धर्मेण से ही सम्बन्धित है। जब उसे मगता है कि मुषा के प्रति उसका प्रेम केवल एक सनक ही।^३

४

अचेतन का अध्ययन

अचेतन मन का अध्ययन आन्ध्र के मनोवैज्ञानिक उपस्थास की सबसे महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। मनुष्य के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन बहुत कुछ उसके अचेतन से ही संभावित माना है। जैसे 'असम्पूर्ण' जीवन को अचेतन मन रूप देता है उसी प्रकार मन की प्रत्यक्ष प्रकृति को भी वह नियंत्रित करता है। व्यक्ति की कोई भी प्रकृति अचेतन ही होती है। हर एक प्रकृति अपने प्रकटन के पहले ही नियत (Determined) होती है। हमारे व्यक्तिगत बाह्य आचरण आन्ध्रिक संघर्ष अन्य व्यक्तियों के प्रति हमारी प्रतिक्रियाएँ आदि के पीछे अचेतन की कोई न कोई प्रवृत्ति होती है। अतः जीवन के सूक्ष्म और ठीक-ठीक ज्ञान के लिए अचेतन की प्रवृत्ति और प्रवृत्ति प्रेरणाओं का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

१ Dreyer A Dictionary of Psychology P 69

२ जेनेन्ड का जन्म १९१९ ई।

मन के तीन स्तर

२१० मन की चेतनावस्था और पुर्ण अचेतन अवस्था के बीच की दशाओं को मनोविज्ञान में तीन स्तरों में विभक्त किया है (१) इह या केवल-स्वत्व या प्राकृत स्वत्व (२) ईगो या स्वत्व धीर (३) सुपर ईगो या उपरि-स्वत्व या नैतिक स्वत्व । साधारण बय:प्राप्त व्यक्ति में ये तीनों प्रकृत रहते हैं ।

इह (Id) केवल-स्वत्व व्यक्ति की जीवन-वृत्ति धीर मरण-वृत्ति का केन्द्र होता है और उसकी समस्त रचनात्मक तथा विनाश्यात्मक प्रवृत्तियों को प्रेरणा देता है । यह अचेतन है विकारों वासनाओं और आचरण-वृत्तियों का आधार है और नैतिकता तथा तर्क से मुक्त है ।^१

ईगो (Ego) या स्वत्व बाह्य जीवन के अनुभव से मन में विकसित होनेवाला स्तर है और केवल-स्वत्व तथा बाह्य जीवन में समन्वय स्थापित करता है । यह केवल-स्वत्व के अनियमित आग्रहों को परिस्थिति के अनुसार नियमित करके लक्ष्य की ओर समुक्त करता है । यद्यपि यह परिवेश के अनुसार प्रवृत्तियों को नियमित करता है तथापि उसे नैतिकता का मौखिक ज्ञान नहीं रहता । उसका परीक्षण (Censoring) केवल परिस्थिति से समझौता करने के लिए है । केवल-स्वत्व वासना प्रेरित है तो स्वत्व अनुमति-प्रेरित ।^२

सुपर ईगो या उपरि-स्वत्व व्यक्ति का सामाजीकरण करनेवाली शक्ति है, और नैतिकता की मूल प्रेरणा । उसकी मुख्य प्रवृत्ति नैतिक एवं अनैतिक प्रवृत्तियों का अन्तर निर्धारित करना है । व्यक्ति में यह केवल-स्वत्व और स्वत्व के बाह्य ही विकसित होता है । मनुष्य के सभी प्रकार के आदर्शों को यही लक्ष्य देता है और उसे सामाजिक जीवन के लिए उपयुक्त बनाता है ।^३

हिन्दी उपन्यासों में यद्यपि चेतन और अचेतन की प्रवृत्तियों का काफ़ी अध्ययन किया गया है तथापि इस तरह वैज्ञानिक आधार पर मनोवृत्तियों को तीन श्रेणियों में विभाजित कर उनका विश्लेषण बहुत कम किया गया है । हमारे उपन्यासकारों की दृष्टि सूक्ष्म विश्लेषण की नहीं रही सामान्य रूप में अचेतन की प्रवृत्तियों का परिचय देने की ही रही । अतः हमे भी यहाँ प्रायः उसी दृष्टिकोण को अपनाकर सामान्य रूप में विवेचन करना पड़ रहा है ।

धौनेन्द्र में

२११ धौनेन्द्र के 'सुनीता' में अचेतन की प्रवृत्तियों का आभास मिलता है । हृदिप्रसन्न अपने विद्यार्थी-जीवन में तथा उसके बाद ज्ञानिकारी बनने पर धरम्य

१ Based on—Brown, *Psychodynamics of Abnormal Behaviour* P 163 and Jastrow *Freud His Dream and Sex Theories*, P 88.

२. Based on—Ibid

३ Based on—Ibid.

संयत धारण जीवन व्यतीत करता है। किन्तु यह सब उसके स्वत्व एवं उपरि-स्वत्व की प्रवृत्तियाँ हैं। काम-शक्ति या सिबिबो इतनी सरलता से बबनेवासी नहीं है। केवल स्वत्व में धारण शक्ति से काम करनेवासी काम-चेतना प्रस्फुटित होने के लिए धमसर की प्रतीक्षा में रहती है। और उसे यह धमसर तब मिलता है जब वह सुनीता के सम्पर्क में आता है। दोनों के परिचय से लेकर हरिप्रसन्न का सामयिक जीवन प्राकृत-स्वत्व तथा उपरि-स्वत्व के बीच के संघर्ष से अभिभूत रहता है। साधारण मुनितियों से प्राकृत न होनेवाला और विवाह की इच्छा न करनेवाला वह युवक सुनीता के प्रति प्राकृत हो जाता है। और उसके धनवाने ही यह धाकर्षण बढ़ता जाता है। धीरे-धीरे प्राकृत-स्वत्व प्रबल होता जाता है और चरम-सीमा में उपरि-स्वत्व का सामना करने लड़ा हो जाता है। सुनीता को बन में ले जाने और उसके मन होने का प्रसंग वस्तुतः प्राकृत-स्वत्व एवं उपरि-स्वत्व के संघर्ष का धमसर है। अब तक वो उपरि-स्वत्व उसके धारण पर बसा रहा था वह कुछ बलहीन हो जाता है। और सिबिबो की उत्तेजना से बाध रित प्राकृत-स्वत्व अपना बल दिखाता है। इसीका परिणाम है वह सुनीता को बाहों में कस लेता है और उसे पूर्णतया अपनाता चाहता है। लेकिन धीमे ही सुनीता में आत्म समर्पण है। उत्पन्न आघात से बाधरित उग्रि-स्वत्व पुनः प्रबल हो उठता है और हरि-प्रसन्न को मर्यादा की सीमा के धमसर निर्बन्धित रखता है। यद्यपि बनेन्द्र ने धमचेतन प्रवृत्तियों का उत्तेज नहीं किया है। तथापि हरिप्रसन्न की प्रवृत्तियों से ज्ञात होता है कि उसका जीवन अब और 'सुपर ईगो' का संघर्ष ही है। हरिप्रसन्न को नियमित करनेवासी धमिष्ठ तर्क-बुद्धि या चेतन मन नहीं है। किसी धमज्ञात धमिष्ठ से ही उसका मन बदन जाता है, धम उस धमिष्ठ को उपरि-स्वत्व धमका सुपर ईगो मानता ही उचित होता।

बनेन्द्र के 'कन्याणी' और 'व्यतीत' में भी धमचेतन की प्रवृत्तियों का धमधमन मिलता है। पर उनमें धमचेतन के विभिन्न स्तरों का स्पष्ट प्रकटन नहीं हुआ है। 'कन्याणी' में कन्याणी का संघर्ष चेतन और धमचेतन के बीच का लड़ा है। वह अपनी सम्पूर्ण चेतना से अपने पति का धमरागी के प्रति समर्पण भाव से रहना चाहती है। पर उसके धमचेतन में इतनी धमामिष्ठ और धमृप्ति है कि वह बार-बार प्रकट हो उठती है। उसके मन का ऊपरी स्तर परिस्थिति को देखकर उसके धमनुकूल रहने को उसे प्रेरित करता है। जब कन्याणी को उसका पति पीटता है, तब भी वह समझती है कि 'मैं निष्पाम नहीं हूँ' 'वो कुछ भी हो पति मुझे चाहते हैं।'^१ लेकिन कभी कभी उसके मन के धमसर रहनेवाले विद्रोह और आत्मनिम्मान के भाव ऊपरी स्तर पर धाकर बाह्य-प्रकटन का धमसर पाते हैं। प्रीतिष्ठ शुरू करने के पहले पति के सामने अपनी धमते बताने तथा कन्यािनी को मानपत्र देने के धमसर पर धीमटी मटनापर को देखने आते समय कन्याणी का यही रूप प्रकट होता है। उसका सम्पूर्ण जीवन इसी प्रकार के संघर्ष में बीतता है।

‘व्यतीत’ के जयन्त के जीवन-व्यापारों को समझने के लिए उसके प्रचलन की प्रवृत्तियों को धीरे ध्यान देना पड़ता है। उसकी अपनी धुर की बहुत धमिलता पर जो प्रभुत्व प्राप्त है वही प्रभाव रूप में उसके जीवन को रूप देती है। सामान्य पुरुष के समान उसकी काम-वृत्ति (सिजिबो) किसी अन्य सुखी के प्रति न उन्मुख होती और न वही वृत्ति ही पाती है। एक सम्पादक की पुत्री सुमिता उससे प्रेम करती है पर जयन्त में उसकी विशेष प्रतिक्रिया नहीं होती। वह कह देता है ‘मैं अपना हूँ सुमिता’। बन्नी से विवाह करने पर भी वह पूर्णतया उससे अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ सकता। इसका कारण वह स्वयं नहीं बता सकता। बन्नी से प्यार करते हुए भी उसे प्रसन्न करने के प्रयत्न में विफल होता है। यद्यपि वह सुहाय्यता मानने के लिए बन्नी को कम्पीर से जाता है तथापि उसके अचेतन में काम करने-वाली प्रभाव शक्ति के कारण दोनों के बीच का व्यवधान बढ़ता ही जाता है। अनिता के प्रति उसकी रक्त-आसक्ति ही इसका कारण है, और उसीकी सबल प्रवृत्ति के कारण उसका जीवन असामान्य और अध्यवस्थित हो जाता है। लेकिन यह सब अचेतन घटा में होता है। इसीलिए जयन्त प्रयत्न करने पर भी अपने और बन्नी के बीच के मानसिक व्यवधान को दूर करने में असमर्थ होता है।

ओरी में

२६२ अचेतन की प्रवृत्तियों का विस्मरण करनेवाले हिन्दी उपन्यासकारों में इसाबन्त ओरी का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ है। उनके प्रायः सभी उपन्यासों में मन के अनाम तल में अवस्थित सूक्ष्म वृत्तियों की व्याख्या की गयी है। उनकी अचेतनात्मक प्राथमिक रचनाओं में भी यह स्पष्ट है। ‘पर्व की रानी’ की निरंजना की मनोवृत्तियों को भीजिए। यद्यपि वह वेदवा-भुषी है तथापि जिस आतावरण में वह पनपी है उसके कारण उसकी प्रवृत्तियाँ समस्त रहती हैं। इस संयम को स्वत्व का ईगो का काम मानना होगा। उसकी नैतिकता उपरि-स्वत्व या सुपर ईगो की प्रेरणा से विकसित नहीं लगती क्योंकि उसमें परिस्थिति का अधिक महत्त्व रहता है। उसके नैतिक आचरणों की प्रेरणा के रूप में कोई उदात्त मानसिक नीतिवृत्ता नहीं है। आन्ने और के ‘संग दरवाजा’ की एमीजा से उसकी तुलना करने पर यह बात स्पष्ट होगी। एमीजा की नैतिकता का कारण परिस्थिति नहीं है यह केवल एक समन्वय वृत्ति (Adjustment) नहीं है जो ईगो से प्रेरित है। वैयक्तिक उपरि-स्वत्व या सुपर ईगो की पुनार ही उसे बेरोम से दूर करती है। इसके विरुद्ध निरंजना के प्राकृत-स्वत्व (इब) को कुछ समय तक स्वत्व (ईगो) नियंत्रित रखा है। पर अन्त में अत्यन्त प्रबल काम-वृत्ति से सम्बन्धित प्राकृत-स्वत्व की विजय होती है और वह वैयक्तिकता से निर्दिष्ट पथ से प्रवास करन लगती है।

‘सम्पादी’ और ‘निर्वासित’ में अचेतन का स्वल्प द्रष्टव्य व्यक्त नहीं हुआ है,

यद्यपि इतर-उपर उसके सम्बन्ध में कुछ संकेत मिलते हैं। 'संन्यासी' ने नन्दविश्वोर की प्रवृत्तियों को अधिक मात्रा में विकसित 'ग्रह' संघालित करता है किन्तु यह बिलकुल स्पष्ट है और इस मूल प्रेरणा को अचेतन की प्रवृत्ति के रूप में दिखाने में थोड़ीथी असमर्थ हुए हैं। 'निर्वासित' में नायक महीप से बढ़कर नीतिमा की मनो-वृत्तियों का विश्लेषण अधिक गहरा हुआ है। महीप और ठाकुर साहब के प्रति उसका भावपूर्ण जो समय-समय पर विविध दशाओं में है जो तरह की मनोवृत्तियों से प्रेरित है जो अचेतन के विविध स्तरों में उठती-गिरती रहती हैं। महीप के प्रति वह भावुक है पर उसे जन और ऐश्वर्य का मोह भी है। अतः वह कभी महीप की ओर अधिक झुकी हुई है तो कभी ठाकुर साहब की ओर। परन्तु महीप की ओर भावुक होते समय उसके मन के एक अज्ञात भाग में ऐश्वर्य-मोह भी काम करता रहता है। उसी तरह महीप से सम्बन्ध तोड़ने का निश्चय करने पर भी उसके प्रति भावपूर्ण अचेतन में बना रहता है। नीतिमा का यह अन्तर्वन्द एक प्रसंग में विशेष रूप से स्पष्ट हुआ है। सामान्य दृष्टि से देखा जाय तो चाय में चीनी के अधिक होने के कारण नीतिमा का माता से बिगड़कर महीप के साथ भाव जाना बिलकुल अस्वाभाविक लगेगा। लेकिन वस्तुतः यहाँ मूल प्रेरणा यह छोटी-सी बटमा नहीं है महीप के प्रति नीतिमा का भावपूर्ण है जो उसके अचेतन में बना हुआ है। इसी तरह वह महीप के साथ स्टेयन बाकर, फिर वर लौटने का आग्रह प्रकट करती है तो वह भी अचेतन की प्रेरणा से ही करती है। इस तरह भाव जाने से इनकार करनेवासी नीतिमा जब पुलिस की तलाशी के अवसर पर महीप को अपना हृदयक कहती है, तो उसकी अचमत्ता अधिक आश्चर्य का विषय बन जाती है। पर यहाँ भी अचेतन की प्रवृत्ति के आचार पर उसकी व्याख्या सरल हो जाती है। थोड़ी के उपन्यासों के अचेतन की प्रवृत्तियों के विश्लेषण के प्रसंगों में चायद यही सर्वोत्कृष्ट है क्योंकि यहाँ लेखक ने सीधे मनोवृत्तियों की व्याख्या न करके आचरणों के संकेत से अन्तर्वन्द को स्पष्ट कर दिया है।

'मुक्तिपत्र' में व्यक्तिगत की स्वतन्त्रता की दृष्टि से राजीव का चरित्र प्रमुख है जो व्यक्तिगत के अध्ययन की दृष्टि से सुनम्बा का चरित्र अधिक महत्वपूर्ण है। लेखक ने इस बात के प्रति संकेत किया है कि राजीव की कुण्ठित भावनाएँ ही उसके आदर्श-मुक्त विकास का कारण हैं। इसके अधिक विकास का लेखा भी लेखक ने प्रस्तुत किया है। लेकिन राजीव की मानसिक प्रतिक्रियाओं से बढ़कर सुनम्बा पर उसका प्रभाव और सुनम्बा की उन्नत मानसिक प्रतिक्रियाएँ अधिक महत्व की हो जाती हैं। विशेषकर अचेतन की क्रियाओं की दृष्टि से सुनम्बा का आर्थिक विकास सूक्ष्म रेखाओं द्वारा किया गया है।

सुनम्बा प्रथम-प्रथम समाज के बच्चों में बकरी हुई, उसके नियमों का पूर्णतया पालन करती हुई एक सान्त्व भद्र मुबती के रूप में सामने आती है। लेकिन उसके प्रधान मानस में छिपी हुई विनयारी राजीव की प्रेरणा से प्रभावित हो उठती है। उसके भीतर एक अपार शक्ति है जो उस समय प्रकट हो जाती है जब उसके सामने राजीव अपने-आपको बिलकुल सुख समझने लगता है (पृ. २२)। इसके साथ

उसका विकास अचेतन में छिपी हुई एक अद्भुत शक्ति के अधिक विकास का वैज्ञानिक अभ्यसन है। यद्यपि वह सामाजिक बन्धनों को मानती है तो भी यह स्पष्ट है कि उसके अचेतन में उन बन्धनों को तोड़कर एक विद्यालय क्षेत्र के स्वच्छन्द वातावरण में विचारण करने का विमोह-मग्न भाव ही छिपा हुआ है। इस भाव को वह स्वयं नहीं जानती भले ही अपनी मनुनिहित शक्ति को किसी समय जानती थी। इसीलिए वह कहती है 'भाव जिन संकष्टों मोह-बन्धनों में मैं बँध चुकी हूँ वे अत्यन्त सजु होने पर भी मेरे लिए बन्ध से भी अधिक हड़ और भट्ट हैं। मैं भाव छटपटाऊँ भाव फिर पटकूँ वे सब टूट नहीं सकते।' सुनम्बा के अन्दर छिपी हुई शक्ति को पत्नीय पहचानता है और सुनम्बा को भी उससे अवगत कराता है 'तुमने कुछ कर्म उपायों से अपने मनवान ही में अपने भीतर की उस आदिम अग्नि को मिट्टी से ढका रखा है, जिसकी प्रबल बृहत्तर सत्ता को जीवनोपयोगी भाँच पहुँचा सकती है। संकीर्ण पारिवारिक घेरे को वह प्रबल भाँच अन्त में झुनसाकर ही छोड़ेगी और जितना ही अधिक उस परिवार का घेरा बड़ता जायगा वह भाँच भी एक बरह सिमटी न रहकर फैलती चली जायगी।' सुनम्बा के बिना जाने उसके अचेतन में निहित इस अत्युत्तम शक्ति का विकसित होना ही 'सुप्तिम' का विषय है।

बोसी के 'प्रेम और छाया' के प्रेम और छायाएँ स्वयं अचेतन की वे प्रकृतियाँ हैं जो पारसनाथ के विभिन्न व्यवहारों को प्रेरणा देती हैं। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि एक निर्देशन (Suggestion) के कारण पारस के अचेतन में स्व-सृजित होनेवाला भ्रान्त विस्वास ही उसके जीवन की दिशा निर्णीत करता है।^{१३} यही नहीं उसके तथा अन्य पार्श्वों की प्रायः सभी प्रकृतियाँ अचेतन से ही प्रेरित हैं। यहाँ तक कि नन्दिनी को चित्र बनाती है जगमें भी उसके अचेतन की अनुसृतियाँ ही रेखाओं का रूप धारण करती हैं।^{१४} नन्दिनी और पारस के बीच प्रेम-सम्बन्ध के होने पर भी दोनों में एक अज्ञात व्यवसायी और उदासी छाती रहती है जिसके वास्तविक रूप का ज्ञान उन दोनों के संवेत मन को नहीं है।^{१५} यही उदासी दोनों के अचेतन में रहनेवाली इस प्रेमहीनता की सूचक है जो बाद में स्पष्ट रूप में प्रकट होकर दोनों को अलग करती है। इस तरह कई प्रसंगों में अकेल नै अचेतन की प्रकृतियों का उत्पादन किया है।

२३३ बोसी के अचेतन-विस्फोट की अलङ्घ्यता—यद्यपि इलाचन्द्र बोसी के उपन्यासों में अचेतन की प्रकृतियों का विस्तृत अभ्यसन है तो भी उनका विस्फोट पुरुषोत्तम वैज्ञानिक नहीं हुआ है। जहाँ तक अचेतन का प्रश्न है, बोसी ने उसे प्रकट करने के ढंग में एक बड़ी यत्नशील की है। यह कुटिलो प्रकार से हुई है।

१ सुप्तिम इ १२।

२ सुप्तिम इ १२०।

३ देखें अनुसूचक इ २८२, २८३।

४ प्रेम और छाया इ २१२, २।

५ प्रेम और छाया इ २१४।

पहली बात यह है कि बोधी ने सभी उपन्यासों में अपने ही चरित्रों में सभी मनोवृत्तियों की व्याख्या कर दी है जो उपन्यासों में निपिष्ट नहीं है तो भी कमा की दृष्टि से देखने से प्रत्यक्ष एक स्पष्टता है। उपन्यासकार की मुख्यता धर्मोत्तम मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को पूर्ण रूप में उपस्थित करने में है इसके बदले वह सिद्धान्तों की व्याख्या करने बैठ जाय तो उपन्यास की वास्तविकता गूँथ हो जाती है। बोधी ने इस बात पर अधिक ध्यान नहीं दिया है। विशेषकर 'प्रेत और छाया' में ऐसी व्याख्याएं दी गयी हैं कि सिद्ध के लिए अत्यन्त बाधक सिद्ध हुई हैं। पारसनाथ की मनोवृत्तियों की विस्तृत विवेचना^१ प्रभावशाली रूप में विस्तृत हो जाती है। अन्य कई प्रसंगों में भी^२ सीधी व्याख्या करने के बदले सिद्धान्तों को जीवन का रूप दिया जाता तो अधिक सुन्दर होता। उदाहरण के लिए एक व्याख्यात्मक प्रसंग देखिए यदि वह अपने अवचेतन मन से उस बड़ता का कारण खोजता तो शीघ्र उठता। उसका अचेतन मन अपने-आपको अपने के लिए बँसे पहुँचे ही से तैयार बैठा था।^३ चेतन और अचेतन की इतनी सीधी व्याख्या प्रभावशाली थी। 'मुक्तिपथ' में राबीव द्वारा सुनन्दा के अचेतन की व्याख्या^४ और 'जिप्सी' में ईसा मसीह के मरण से सम्बन्धित व्याख्याएं^५ यदि भी ऐसे ही उदाहरण हैं।

दूसरी प्रकार की व्याख्या कमा की दृष्टि से ही नहीं विज्ञान की दृष्टि से भी हानिकारक साबित होती है। कई स्थानों पर बोधी के पात्र स्वयं अपने अचेतन की व्याख्या करते हैं। 'प्रेत और छाया' का विभाग ऐसा है कि उसके आरम्भ से अन्त तक के निकट तक पारस की प्रवृत्तियाँ अचेतन की प्रेरणा से ही चलती हैं। किन्तु बीच-बीच में वह स्वयं उस अचेतन की व्याख्या करता रहता है। एक प्रसंग में वह घोषणा है 'मैं वास्तव में कोई बाह्यी शक्ति मेरे विरुद्ध पर्याप्त रखती नहीं जाती है या मेरी मारकीय धारणा के ही भीतर ऐसी कोई प्रजाति विकसित करती है, जो मर्कट की तरह अनोखे प्रयोगों और भ्रान्तियों के जाल बुनती रहती है?'^६ अपने इस सन्देह के समाधान के रूप में वह अचेतन प्रवृत्तियों को ही अपनी प्रेरणा समझकर घोषणा है 'उन्हीं जालों में बहुत-सी मस्तिष्क फँसकर रह गयी हैं जिनका उत्पन्न हुए सारे सुख दुःख क्षणिकों की तरह मृत अवस्था में जाने में गड़के रहने के लिए मीने छोड़ दिया है।'^७ क्या किसी व्यक्ति द्वारा अपने अचेतन का ऐसा ज्ञान सम्भव है? इसी तरह मर्कट भी अपनी प्रवृत्तियों की मूल प्रेरणा के सम्बन्ध में कहती है, 'जब हमारी

१. प्रेत और छाया अध्याय ६, ७, ८।

२. प्रेत और छाया ६ १५१, १७ १२५, १७३, ११६।

३. प्रेत और छाया ६ १११।

४. मुक्तिपथ ६ ११७।

५. जिप्सी अध्याय २८ १६।

६. प्रेत और छाया ६ १८८।

७. प्रेत और छाया ६ १८८।

धाबिक क्षुब्धति चरम सीमा को पहुँच गयी थीर मुझे होटल के जीवन को ऊपरी तौर से धपमाने की बाध्य होता पड़ा तो मेरे भीतर मेरे अनुमान में नरक ने अपना बाण फँसाणा शुरू कर दिया।" १ यहाँ यह प्रश्न उठता है कि व्यक्ति अपनी जिन प्रवृत्तियों तथा प्रेरणाओं को जानता है वे अचेतन की कैसे हो सकती हैं ? फ्रायड ने स्पष्ट भाषों में कहा है कि अचेतन की प्रेरणा से उत्पन्न बाह्य संकेत—जाने अचेतन से प्रेरित बाह्य प्रवृत्तियाँ—व्यक्ति के लिए पञ्चाक्षर रहती हैं। २ हाँ फ्रायड ने माना है कि परिस्थिति की अनुकूलता से अचेतन प्रवृत्तियाँ सचेतन हो सकती हैं ३ लेकिन ऐसी दशा में क्यों ही अचेतन-व्यापार अचेतन के स्तर पर या जाता है तब अचेतन प्रेरित प्रवृत्तियाँ भी समाप्त हो जाती हैं। ४ किन्तु बोसीजी के उपन्यासों में बात बिलकुल उलटी है। पारस की अचेतन प्रेरित प्रवृत्तियाँ जलती हैं ५ रहती हैं और बीच-बीच में वह उनकी व्याख्या भी करता जाता है। यवरी के प्रसंग में यद्यपि वह कहती है कि 'तब इस बात का पता मुझे नहीं था पर बाबू यह बात मेरे धाये स्पष्ट हो रही है' ६ तो भी वह कहने के बाव भी उसकी प्रवृत्तियाँ प्रायः अचेतन की प्रेरणा से ही जलती हैं। चरों की 'रानी' में निरंजना की दशा भी ऐसी ही है वह कहती है 'मुझे ऐसा लगता है, कभी-कभी मुझे वह अनुभव होता है जैसा है कि मेरे मन के मूल केन्द्र के ऊपर बहुत-सी विविध-विविध संस्कारों के स्तर एक के ऊपर एक इस चित्त-चित्ते से धके हुए हैं और उनमें से प्रत्येक स्तर के तत्त्व किसी दूसरे तत्त्वों से मेल नहीं खाते। इन सब स्तरों के नीचे मेरा मूल भाव बचकर बस ही बचा पड़ा है।' ७ इस तरह मन के अनाहतम स्तर का विस्लेषण करनेवाली निरंजना की प्रवृत्तियाँ भी अचेतन से संभावित हैं। वस्तुतः पात्र स्वयं अपना मनोविस्लेषण नहीं कर सकते मनोवैज्ञानिक ही कर सकता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार व्याख्या कर सकता है पर केवल सजीव मूर्त जिनों द्वारा। किन्तु बोसी के पात्र अपने ही अचेतन की व्याख्या कर बैठते हैं। ऐसी प्रतीति होती है कि कोई बुद्धिहीन डाक्टर की अपेक्षा न करके स्वयं

१ मेघ और ज्ञाना पृ. १६७-१६८।

२ "Always and everywhere the meaning of the symptoms is unknown to the sufferer... these symptoms are derived from unconscious mental processes which can however under various favourable conditions become conscious."

—Freud Introductory Lectures on Psycho-analysis, P 235

३ "Symptoms are not produced by conscious processes as soon as the unconscious processes involved are made conscious the symptoms must vanish."

—Freud Introductory Lectures on Psycho-analysis, P 236.

४ मेघ और ज्ञाना पृ. १६८।

५ चरों की रानी, पृ. १८।

अपने हृदय की सत्य-क्रिया कर रहा हो !

२१४ जैनेन्द्र के उपन्यास इस तरह की स्व-सत्य-क्रिया से बहुत कुछ मुक्त हैं। हरिप्रसन्न कस्याणी मिलेन धारि की प्रवृत्तियों का ही जैनेन्द्र ने दिखाया है। उन्होंने न स्वयं अचेतन की व्याख्या की है और न पात्रों से कहा है। वे उसी प्रकार पात्रों को हमारे सामने लाकर खड़ा कर देते हैं जैसे फेंच उपन्यासकार भारिया ने 'बो बो दया' में प्रूट ने 'मृतकाम पर्यवेक्षण' के कई भागों में किया गया है। अथवा सारेण्ड ओरोपी जैसे संज्ञा-मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में किया है। विशेष उदाहरण के रूप में प्रूट के उपन्यास में स्वयं और ओरेट के प्रेम के विकास और ह्रास के प्रसंग तथा भारिया के उपन्यास में इरीन के मरण के समय हेर्ब की उपेक्षा के प्रसंग का उल्लेख किया जा सकता है। प्रथम प्रसंग में स्वयं और ओरेट एक-दूसरे के निकट आने का निरन्तर प्रयत्न करते हुए भी अचेतन की किसी प्रेरणा से दूर होते जाते हैं। प्रूट ने केवल उनके बाह्य व्यापारों को और चेतन मन की प्रवृत्तियों को प्रकट किया है। हेर्ब अपनी पत्नी के मरण के समय उसके पास रहने की प्रतिज्ञा करके भी उस प्रतिज्ञा के पालन का प्रयत्न करते हुए भी उसे छोड़कर जाता जाता है। यही भारिया ने उसके अचेतन का विश्लेषण नहीं किया है बल्कि उससे प्रेरित बाह्य प्रवृत्तियों को तथा उन प्रवृत्तियों का समर्थन करनेवाले चेतन तात्त्विक विचारों को प्रकट किया है। उसकी उत्कण्ठि बाहर जाने के मिलने बहाने उपस्थित करती है। उनसे लगता है कि वह जाना नहीं चाहता पर यह भी व्यक्त होता है कि उसका अचेतन ही उसे बाहर खींच लिए जाता है। सारेण्ड के 'बेठे और प्रेमी' के पास सारेण्ड के कई सदस्यों से प्रेम करने का प्रयत्न करने पर भी विफल हो जाने में भी अचेतन की ही प्रवृत्ति है जो बड़ी सूक्ष्मता से व्यक्त की गयी है। अचेतन का ऐसा वैज्ञानिक अध्ययन बोधी के उपन्यासों में नहीं मिलता।

अन्त में

२१५ 'खेहर' और 'नदी के द्वीप' में अचेतन का विशेष अध्ययन नहीं किया गया है किन्तु अन्त में मन-तन्त्र बाह्य चेष्टाओं और संभाषणों में अन्तर्प्रवृत्तियों की जो व्यंजना की है वह कला की दृष्टि से उत्कृष्ट बनी है। विशेषकर 'खेहर' में यह बात उल्लेखनीय है। शशि सरस्वती शारदा धारि के प्रति खेहर के आकर्षण का स्वरूप दिखाते हुए मेलाक ने सूक्ष्म अचेतन भावों को भी प्रकट किया है। खेहर शशि के माथे पर सोटे से मारकर, फिर उसके आते समय उसी सोटे में उसके लिए पानी रख देता है। यह छोटी-सी बटमा स्पष्ट प्रकट करती है कि उसके अचेतन में शशि के प्रति केवा भाव है। खेहर के जीवन में ऐसी एक दशा आ जाती है जब उसकी बहुत उसके लिए 'सरस्वती' न रहकर 'बहन' बन जाती है और फिर 'सरस' बन जाती है। यह परिवर्तन अत्यन्त महत्वपूर्ण है और खेहर के मनजाने ही उसके अचेतन में

उसके सभी आचरण वासना-प्रेरित हैं। अन्य जो बहनें विकृत-चित्त नहीं हैं, क्योंकि उनमें श्रेष्ठ अपने सचेत नैतिक स्वत्व या सुपर ईश्वर की प्रेरणा से वासना को दबा सेती है और एतिस अचेतन में अवस्थित वासना को पहचान कर ब्याहिक जीवन में प्रविष्ट हो जाती है। अंग्रेजी के अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के उपन्यासों में भी ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं पर यहाँ चित्त-विकृति के अध्ययन का स्वल्प दिखाने के लिए यही एक पर्याप्त है।

हिन्दी उपन्यासों के जिन पात्रों का चरित्र उल्टा किया गया है उनमें भी ऐसे कुछे व्यक्ति हैं। सुनवा बैबाहिक जीवन से संतुष्ट होकर ही राजनीति के क्षेत्र में घाती है। वस्तुतः उसका अचेतन मन संतुष्ट वासना की पूर्ति के लिए ही व्याकुल है। किन्तु चेतन मन से वह इसे स्वीकार नहीं करती। राजनीति में प्रविष्ट होकर भी वह जब काम के प्रति आकृष्ट होती है तब यह स्पष्ट होता है कि उसकी वासना को अचेतन में रहती है, पति से संतुष्टि का मार्ग न पाकर और बूझती और तृप्ति का मार्ग ढूँढ़ती है। लेकिन उसका चेतन मन उसे सामाजिक नियमों तथा कृत्यों के पालन की प्रेरणा देता है। इसीलिए काम के प्रति आकृष्ट होकर भी वह अनैतिक पथ से प्रयाण नहीं करती। 'अच्छीत' का अन्त अचेतन से अनिता के प्रति आसक्त रहता है पर इस अनैतिक प्रवृत्ति को उसका चेतन मन स्वीकार नहीं करता। परिणाम यह होता है कि बैबाहिक जीवन को सफल बनाने के उसके सारे सचेत प्रयत्न विफल हो जाते हैं। निर्वासित के महीप में भी अचेतन की अनैतिकता और चेतन मन की आदर्शगुच्छता दिखाई देती है लेकिन यहाँ विजय आदर्श की ही होती है। वासना तब जाती है और महीप अहिंसारमक अन्ति की ओर उन्मुख होता है। 'मुक्तिपथ' का राजीव व्यक्ति-विभाजन (Division of personality) का अच्छा उदाहरण है। सुनवा के प्रति उसका आकर्षण वस्तुतः समित वासना से ही प्रेरित है किन्तु यह वासना अन्तः के स्तर से ऊपर नहीं उठती। उसका चेतन मन उसे आदर्शवादी बना देता है। राजीव के आदर्श के अन्तर बिना हुआ वासनारमक आकर्षण इस बात से प्रकट है कि वह सुनवा को अपने अधिकार में रखना और उसपर अपने व्यक्तित्व का प्रभाव डालना चाहता है। क्षेत्र में भी अचेतन में अवस्थित काम-वासना और उसके बाह्य आदर्श बार बार प्रकट होते हैं। उपर्युक्त सभी पात्रों को असाधारण बनानेवासी जीव यही कुछ व्यक्ति हैं और इसी-के कारण वे विकृत-चित्त बने हुए हैं।

२६८ विविष्ट-चित्त—(साइकोटिक) पात्रों के उदाहरण हिन्दी के मनो-वैज्ञानिक उपन्यासों में बहुत कम मिलते हैं। 'मुनाहों का पैसा' का बर्टी ही यामक एकमात्र प्राप्ति उदाहरण है। बर्टी की चित्त-विविष्टि का कारण काम असुक्ति ही है। बैबाहिक जीवन से गुल न पाकर वह पायस-सा हो जाता है।

२६९ मन्त्र चित्त (Mentally defective)—पात्रों के दो अच्छे उदाहरण 'पिरती बीमार' का चेतन और 'पथ की खोज' का चन्द्रमाम हैं। दोनों की मानसिक बलहीनता का मूल कारण संतुष्ट वासना है। वैसे पहले दोनों में अच्छी प्रतिभा है। चेतन समीप और अभिनय में कुशल है, ती चन्द्रमाम प्रतिभावाली कवि है। अपनी

यसि के अनुसार पत्नियाँ न पाने से धीर ग्रन्थ युवतियों पर अनुकूल-भासक्ति के कारण दोनों के मन में निरन्तर संघर्ष चलता रहता है, जो उन्हें अत्यन्त निर्बल बनाकर ही छोड़ता है। बेतन की संगीत धीर माटक की प्रतिमा गृह हो जाती है किसी भी काम में उसका मन नहीं लगता। बन्धनाथ का चित्त-वैरैल्य दूसरे प्रकार का है उसको पत्नी सुसीमा उसकी प्रतिमा को नहीं समझती यही बन्ध की मानसिक अस्वस्थता का कारण है। साथ-साथ वह साधना को जिसपर वह भासक्त है नहीं पाता। इन दो प्रकार की प्रवृत्तियों के कारण वह सेक्स-बीजन में पराजित हो जाता है। वैद्यनाथ जाने पर भी उसे तृप्ति नहीं मिलती। इसके बाद उसका मानसिक वैरैल्य इतना बढ़ जाता है कि वह साधना के कहे अनुसार साधा से विवाह कर लेता है धीर साधना के उसके प्रति धीर उसके साधना के प्रति आकाङ्क्ष होने पर भी प्रेम-निवेदन नहीं कर सकता।

३०० असांसारिक चित्तवृत्ति (Anti-social mentality) — के पाशों के रूप में हरिप्रसन्न चित्त धीर पारसनाथ के नाम लिए जा सकते हैं। हरिप्रसन्न धीर चित्त दोनों काम-अनुचित के कारण विनाशकारी प्रवृत्तियों में लगे अत्यन्तकारी बन जाते हैं। पारसनाथ अपनी माता के चरित्र के सम्बन्ध में प्रमित विश्वास के कारण स्त्रियों का उदात्त मंग करने की सभाब-विरोधी प्रवृत्ति में लगे जाता है। इन तीन पाशों के साथ सुखसा महीप धीर अग्रज के नाम भी लिये जा सकते हैं, जो प्रथमतः विकृत-चित्त के होने पर भी अन्त में विनाशकारी या हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ अपनाकर असांसारिक हो जाते हैं।

हिन्दी उपन्यासों में अहम् धीर आत्मोत्सर्ग

३१ हमारे मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के पाशों के व्यक्तित्वों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि अधिकांश पुरुष पाशों में 'अहम्' असाधारण रूप में प्रबुद्ध रहता है जबकि अधिकांश स्त्रियाँ आत्मोत्सर्ग के लिए तैयार रहती हैं। हरिप्रसन्न चित्त साब अग्रज मन्त्रिभोर, राजीव खेहर सुबन धारि ऐसे पात्र हैं जिनके व्यक्तित्वों का सबसे बड़ा अंश 'अहम्' है। हरिप्रसन्न चित्त साब खेहर धारि को अत्यन्तकारी अग्रज विरोधी बनानेवाली वस्तु उनके 'अहम्' ही है। धीर यही 'अहम्' है जो हरिप्रसन्न चित्त साब अग्रज मन्त्रिभोर, राजीव खेहर धीर सुबन में विद्यमान रहकर उनके सामने यथाक्रम सुनीता सुबनमोहिनी सुखसा अनिता आदि सुनम्बा असि तथा रेखा-नीरामों को झुका देता है। इनमें प्रायः सभी स्त्रियाँ इन पुरुषों के किसी आग्रह या आग्रह के सामने आत्मसमर्पण करने को तैयार बिलामी पड़ती हैं। हरिप्रसन्न के सामने सुनीता विमम्बरा होकर अपना-आपको समर्पण करती है तो चित्त के पैर धूमकर धीर 'कटे वृष की नाई उसकी छाती पर सिर टेककर' सुबनमोहिनी निवेदन करती है 'मुझे सबकुछ मार क्यों नहीं हो हो चित्त ?' करती तो है चित्त छोड़े मुझे मार दो। टेक से अपने को न मारो। ' सुखसा

आत्मसमर्पण न करने पर भी कुछ दिन आत्मिकारी सास के कमरे में रहती है और उसके चले जाने पर अपने पति को भी छोड़कर भागके जाती है। बयन्त का 'आई' बन्नी के समस्त गुणों के बिना छोड़कर जाता है। वह कहता है कि "बन्नी अतिरमणीया थी इससे मेरे लिए जैसे तिरस्करणीया बन बैठी। माननी थी इसलिए अपमाननीया हो गयी। अन्यायिनी थी इससे दण्डनीया बन गयी। ठेकी थी इसलिए धीकी बनाना आसब मेरे लिए आवश्यक हो गया।" १ बयन्त के सामने अनिता जिसपर वह आसक्त है आत्मसमर्पण करती है उसी तरह जैसे सुनीता और सुब्रमोहिनी करती हैं। लेकिन हरिप्रसन्न के समान ही वह अनिता को स्वीकृत नहीं करता क्योंकि उसका समर्पण वैयक्तिक नहीं है। इच्छित (Willed) है। 'उपन्यासी' के नन्दकिशोर के बहुभाव का परिचय बयन्ती के शब्दों से ही मिलता है। आप बड़े झूठकारी हैं। 'इस झूठभाव से जाहते हैं कि जिस स्त्री से आपका सम्बन्ध हो वह पूर्ण रूप से आपकी होकर रहे। वह सब कुछ बिना किसी असमर्थता के आपके पैरों तक समर्पित कर दे।" २ इस झूठकार के सामने अनिता आत्मसमर्पण कर आत्मार्थ सहती है पर बयन्ती छोड़कर के आत्महत्या कर लेती है। खेजर के सामने अनिता सब कुछ समर्पित कर देती है पर खेजर अपने उदात्त आदर्श में उससे अनैतिक सम्बन्ध नहीं रखता दोनों मित्रवत् या भाई-बहनों के समान हो जाते हैं। 'मुक्तिपथ' का राजीव अपने स्वयं व्यक्तित्व का प्रभाव सुनत्वा पर डालना चाहता है, पर सुनत्वा स्वयं अपने व्यक्तित्व को विकसित करके और राजीव से अपने प्रेम का प्रतिदान न पाकर उससे दूर हो जाती है। 'पथ की खोज' के चन्द्रनाथ और साधना की दशा इससे कुछ भिन्न है। वही साधना चन्द्रनाथ से प्रेम-याचना करती है पर जब वह उसके पास जाता है तब उस अनैतिक प्रवृत्ति से हटकर उसे भाई बना लेती है। 'नदी के तीरे' में सुब्रम के प्रति रेखा और पीरु आकृष्ट होती है। रेखा का समर्पण बहुधा समर्पण नहीं है क्योंकि सुब्रम हैं अपनी काम-सिद्धि की पूर्ति करके वह अपने जीवन को सार्थक समझती है और फिर सुब्रम से ही दूर हो जाती है।

इन उपन्यासों के मुख्य-पात्रों में इसरी एक श्रेणी के कुछ व्यक्ति भी मिलते हैं, जो स्वतन्त्र और कुछ भाग्य हैं। 'सुनीता' का श्रीकान्त 'भुवना' का कान्त 'विमर्श' का नरेन्द्र आदि इसी प्रकार के पात्र हैं। ये अपनी पत्नियों पर अपने स्वत्व का आरोपण नहीं करते अपनी इच्छाओं और सुविधाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करने को उन्हें विवश नहीं करती। ये पात्र आसब तत्कालीन समाज के स्त्री-स्वातन्त्र्य-सम्बन्धी विचारों से प्रभावित हैं। श्रीकान्त अपनी पत्नी को अपने मित्र हरिप्रसन्न के निराशा-यय जीवन को बदलने के लिए, उसकी सब प्रकार की सेवा करने का आदेश देता है। यही नहीं दोनों को घर में छोड़कर कुछ कहीं दूरे पर जमा जाता है। इस तरह

सुगीठा और हरिप्रसन्न को स्वच्छन्द मिलन के अवसर बहुत मिलते हैं। सुखरा' का कान्त इससे धाने बढ़ा हुआ है और वह अपनी पत्नी को कई दिनों तक भान के कमरे में रखता है। 'विधत्' का नरेश भी अपनी पत्नी को बिछोने से मिलने-जुलने के लिए काफ़ी अवसर देता है। इन उपन्यासों के कथानक ही स्त्रियों की पथियों द्वारा इस प्रकार दिया गया स्वातन्त्र्य है जिसके कारण व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध में संघर्ष उत्पन्न होता है। उत्कालीन समाज में स्त्री-स्वातन्त्र्य की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण है, किन्तु जैनेन्द्र के उपन्यासों में इसके मर्यादात्मक को विस्तार के बरसे मान्यता से काम लिया गया है। श्रीकान्त कान्त और नरेश जैसे पति धायक ही हमारे समाज में मिलेंगे।

हिन्दी उपन्यासों में क्रान्तिकारी और-विद्रोही व्यक्तित्व

१२ हमारे कई मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में क्रान्तिकारी प्रवृत्ति विद्रोही व्यक्तियों का अध्ययन किया गया है। जैनेन्द्र के पात्रों में हरिप्रसन्न साहू और बिछोने बोधी के 'निर्वासित' का महीप वसुपात्र के 'बाबा कामरेड' का हरीश आदि को पूर्णतः या अंशतः क्रान्तिकारी या विद्रोही के रूप में चित्रित किया गया है। किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो यह कहना पड़ेगा कि इन सबमें क्रान्तिकारियों का संकल्प और चिन्तन नहीं है और न वे विराट् देश-क्रान्ति का उन्मूलन आदर्श ही दिखाते हैं। कुछ पात्रों को विद्रोही कहना ही अधिक उचित लगता है।

इन क्रान्तिकारियों के व्यक्तित्वों का विचार किया जाय तो बात होना कि उनका क्रान्तिकारी रूप अत्यन्त पूर्ण है। इनमें हरीश को छोड़कर किसीने समाज की आर्थिक नैतिक प्रवृत्ति राजनीतिक परिस्थितियों के आधारों से प्रेरणा नहीं ली। प्रायः समोका विद्रोह वैयक्तिक विकारों के दमन के कारण होनेवाली वैयक्तिक कृच्छ्र है। बिछोने हरिप्रसन्न साहू हरीश आदि की सबसे बड़ी कमबोरी स्त्री है। क्रान्तिकारियों के इस रूप को दिखाना उसे ही उपन्यास साहित्य में एक क्रान्ति हो पर ये क्रान्तिकारी कहाँ तक क्रान्तिकारी हुए हैं यह बात निर्दिष्ट नहीं है। संसार के सभी क्रान्तिकारी चिन्तक हुए हैं, पर इनमें किसी पात्र में चिन्तन नहीं है। अमर बेचारा मकानों को धाम लाना और कुछ टूटने मराना ही क्रान्ति है तो बात ही भिन्न है। पर सच्चे अर्थ में तो क्रान्तिकारी होता है, उसमें चिन्तन होता है संकल्प होता है कर्मव्यवस्था होती है। पर जैनेन्द्र बोधी और वसुपात्र के क्रान्तिकारियों का संकल्प उच्छ्वस्यता तक ही सीमित रह जाता है। उनकी कर्मव्यवस्था की परम सीमा धारमपीठन द्वारा मुक्तिपथों की सहानुभूति प्राप्त करने में है। हरिप्रसन्न क्रान्तिकारी होने के बरसे इधर-उधर भटकनेवाला कोई पात्रल हो जाता बिछोने टूट मिराने के बरसे गया में बहने का प्रयत्न करके किसी तरह बच जाता अत्यन्त युद्ध में जाने के बरसे सड़मारों के

१. बाबा कामरेड मनोवैज्ञानिक नहीं है। फिर भी हम यहाँ उसकी चर्चा क्योंकि वह अति-उत्तरी व्यक्तित्व का अध्ययन करनेवाला उपन्यास माना जाता है।

किसी दल में मर्ती होकर चार-पांच धीरखों धीरबच्चों को मार डालता तो भी न उपन्यासों में बिसेप कोई कमी जाती धीर न भेदक के मनोविज्ञान या पात्रों के व्यक्तित्व में कोई अन्तर आता। महीप की बात भी भिन्न नहीं है। हरीश का जीवन क्लान्ति से अधिक सम्बन्ध रखता है। फिर भी उसमें क्लान्तिकारियों की मानसिक बिसेपताएँ कम मिलती हैं। क्लान्तिकारिता के रगिन भेदकों के बिद्वद् हृत्प्रियन्त नाम भिन्न हरीश धीर महीप रोमाण्टिक बिरोही ही रह जाते हैं।

इन पुरुषों के सम्पर्क में आनेवासी स्त्रियों में कुछ कष्टना से प्रोत्प्रेत हैं। वे एक-एक पुरुष को क्लान्तिकारी होने या आत्मपीडन करते देख छाड़ी-बम्पर उतारने को तैयार हो जाती हैं (जैसे 'सुनीता' में सुनीता धीर 'दादा कुमारेड' में डॉन) या आत्म समर्पण कर देती हैं (जैसे 'अमरीश' में अनिता)। 'मुत्तिपन' के अहिंसात्मक क्लान्ति के समर्थक राबीय के सामने सुनन्दा भी आत्मसमर्पण करती है किन्तु राबीय उस स्वीकृत नहीं करता। इसमें किसी भी स्त्री में ऐसी छत्ति नहीं है, जिससे इन पुरुषों को उनकी पन विगमिष्ठ गति की सूचना देकर उनको ठीक रास्ते पर ला सकें।

हरीश के अतिरिक्त अन्य क्लान्तिकारियों के जीवन सार्वजनिक जीवन से सम्बन्ध न रखने के तथा अत्यधिक अंत्यिक होने के कारण भी अपने क्लान्तिकारी स्वस्व को बँटते हैं।

इन सबकी तुलना में अज्ञेय द्वारा विकसित सखर का बिरोही व्यक्तित्व बहुत सफल हुआ है। सखर के वाक्चक्रास में ही उसमें बिरोही के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। परिस्थितियों से तथा परम्परागत आचार-विचारों से बिरोह करते हुए सखर की वाक्चक्रासीन प्रकृतियाँ बस्तुतः इच्छित (Willed) नहीं हैं, इसीलिए वे स्वाभाविक हैं। वाक्चक्रास में ही सखर के मन में नियम शासन धीर दमन के बिद्वद् को भाव दन बान में सत्पन्न होते हैं वे क्रमशः विकसित होकर उसके व्यक्तित्व को रूप देते हैं। सखर का जीवन भी सामाजिक देखीय क्लान्ति से बिसेप सम्बन्ध नहीं रखता मरन्तु जहाँ तक क्लान्तिकारी व्यक्तित्व के बिसेपण की समस्या है अज्ञेय बहुत सफल हुए हैं।

व्यक्तित्व का पूर्णत्व जैनेन्द्र में जेस्टास्ट ?

डा. रैमराज ने जैनेन्द्र के उपन्यासों के मनोविज्ञानिक तत्त्वों की चर्चा करते हुए 'सुनीता' 'रवाकपन' धीर 'अम्याली' में जेस्टास्ट मनोविज्ञान का प्रमाण देखा है। उन्होंने यह बात तो मानी है कि जैनेन्द्र ने बान-बुझकर जेस्टास्ट मनोविज्ञान को नहीं अपनाया है धीर वैज्ञानिक ढंग से उसका उपयोग नहीं किया है।^१ फिर भी उनका मत है कि जैनेन्द्र में जेस्टास्ट मनोविज्ञान के सार-तत्त्व बिद्यमान हैं। डा. रैमराज के इस मत से सहमत होना कठिन है क्योंकि उनकी व्याख्याओं में कुछ सीमिक त्रुटियाँ आ गई हैं। इस बिषय की बिबेचना करने के पहले हमें समझना होगा कि

वेस्टास्ट क्या है :

३०३ प्राधुनिक मनोविज्ञान व्यक्ति के अध्ययन के लिए उसकी विशेषताओं के धाकार या ढाँचे को एकसाथ लेना आवश्यक समझता है। व्यक्ति स्वयं वैयक्तिक विशेषताओं का समुच्चय ढाँचा या धाकार (वेस्टास्ट) है।^१ ये विशेषताएँ व्यक्ति की परिवेश से निर्धारित जीव-शास्त्रीय गठन के अनुसार विकसित होती हैं। यद्यपि व्यक्ति को समझने के लिए 'परिवेश और व्यक्ति' का नहीं 'परिवेश के बिना व्यक्ति' का भी नहीं 'परिवेश में व्यक्ति' का अध्ययन करना चाहिए।^२ प्रसिद्ध वेस्टास्ट मनोवैज्ञानिक कोह्लर ने सम्पूर्ण परिस्थितियों के प्रभाव से वस्तु (या व्यक्ति) में घटनेवाली वृत्तियों प्रवृत्तियों के अध्ययन को ही वेस्टास्ट मनोविज्ञान कहा है।^३ इस तरह व्यक्ति की प्रत्येक विशेषता और इसलिये उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व सामाजिक-मनोवैज्ञानिक-जीव शास्त्रीय हो जाता है। क्या जेनेन्ड ने अपने किसी उपन्यास में जान-बूझकर या अनजान में व्यक्तित्व का ऐसा चित्रण किया है जिससे हमें ज्ञात हो कि व्यक्तित्व परिवेश में विकसित होता है और परिवेश से प्रभावित है? जैसे प्रत्येक सामाजिक उपन्यास में परिवेश में ही व्यक्ति-जीवन का विकास होता है। पर क्या जेनेन्ड ने पारिवेशिक प्रभाव का विशेष रूप से सबसे वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया है? हमें समझता है कि जेनेन्ड ने परिवेश पर विशेष ध्यान नहीं दिया है। इसी लिये उनके पात्र सभी पात्र कुछ अस्वाभाविक-से लगते हैं। और सामाजिक समझ के परे हैं। क्या कट्टी सुनीटा कस्याणी सुबबा अपस्त जितन धारि के जीवन का विकास परिवेश के अनुसार स्वाभाविक रूप में होता है? वस्तुतः इन सब पात्रों के व्यक्तित्व इतने प्रबल हो गए हैं कि वे परिवेश के घटीत लगते हैं। जेनेन्ड के पात्र न परिवेश से संघर्ष करते हैं न परिवेश के अनुकूल होकर चलते हैं। उनमें परिवेश

१ "Personality is to be understood as a pattern or Gestalt of personality traits."

—Brown Psychodynamics of Abnormal Behaviour P 145

२ "We must consider not an organism versus an environment, nor the organism and the environment but rather an organism in an environment."

—Ibid P 145

Koffka also remarks that "the field in which the organism works is to be studied completely"

—See, Koffka Principles of Gestalt Psychology P 67

३ "Whenever a process becomes dynamically distributed and arranges itself in accordance with the constellation of determining circumstances in its entire field, that process belongs in the realm of Gestalt Psychology"

—Kohler Quoted by Katz Gestalt Psychology P 9

की विवशताओं से मुक्त होकर जीने की प्रसाधारण विशेषता है। जैनेन्द्र के यज्ञानु प्रपासक भी सुनीता के नम्रता-प्रदर्शन को स्वाभाविक मानते हैं। इसमें संदेह है। मनुष्य की प्रसाधारण (Abnormal) प्रवृत्तियों को मनोविज्ञान स्पष्ट कर सकता है किन्तु प्रस्वाभाविक (Unnatural) प्रवृत्तियों की व्याख्या किसी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के द्वारा नहीं की जा सकती है। सुनीता का नम्रता प्रदर्शन कला का अपनी पत्नी सुखरा को कई दिनों तक जास के कमरे में रक्खा कुमार का अपनी कठिन बन्दी को बिना तनिक भी शोच-विचार किए जयन्त के साथ छोड़ जाना यदि बाटें प्रसाधारण नहीं प्रस्वाभाविक हैं। इन प्रवृत्तियों के सामने मनोविज्ञान के समस्त सिद्धान्तों को मौन रहना पड़ेगा। जैनेन्द्र ने परिवार में विकसित होनेवाले स्वाभाविक व्यक्तित्व का विशेष वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया है। यहाँ उनके पात्रों में जेस्टाल्ट का अन्वेषण करना अर्थ है।

१०४ जेस्टाल्ट मनोविज्ञान का दूसरा सिद्धान्त यह है कि व्यक्तित्व को योजनीय पूर्णता के रूप में ही देखा जा सकता है। वह उसके विभिन्न अंशों का योग-भाग नहीं है। उससे बढ़कर एक पूर्णता उसमें रहती है। इसी योजनीय पूर्ण अाकलन को जेस्टाल्ट (Gestalten) कहते हैं और इसके कारण अंशों में एक एकता स्थापित हो जाती है। इस एकता के कारण पूर्ण आकार के किसी अंग में होनेवाले परिवर्तन का प्रभाव दूसरे अंशों पर भी पड़ता है। इसका तात्पर्य यही है कि व्यक्तित्व एक पूर्ण इकाई है और उसके अंगों पर पड़नेवाला प्रभाव सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

इस सिद्धान्त के आचार पर जैनेन्द्र के पात्रों का विक्षेपण करते समय हमें पहले-पहल देखना पड़ेगा कि जैनेन्द्र ने अपने पात्रों के पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकट किया है या नहीं। पूर्ण व्यक्तित्व में अंशों के स्वतन्त्रता का तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध का रूप निश्चित करना जेस्टाल्ट के अध्ययन के लिए आवश्यक है।^१ किन्तु जैनेन्द्र के उपन्यासों में हम प्रायः देखते हैं कि व्यक्तित्व कभी अपनी पूर्णता में प्रकट नहीं किया

१ "All modern theories are inclined to look on the organism as a super-summative whole, or as a whole which is something more than the sum of its parts. By a super-summative whole we mean an organized totality in which change in any of the parts effects changes in all parts. Such totalities are technically known as Gestalten." —Brown Psychodynamics of Abnormal Behavior P 146.

Also—Katz Gestalt Psychology P 3 § and 49

२. 'To apply Gestalt category means to find out which parts of nature belong as parts to functional wholes, to discover their positions in their wholes, their degree of relative independence.'

—Koffka : Gestalt Psychology P 22.

मया है। उनमें व्यक्तित्व की एक-एक विशेषता (Trait) की ही विवेचना की गई है। प्रत्येक उनके पात्रों में जेस्टास्ट बूझने की आवश्यकता नहीं है। उसी उपन्यास में जेस्टास्ट बूझना सार्थक होगा जिसमें व्यक्तित्व पूर्ण रूप में न हो तो कम से कम विस्तृत रूप में धीरे धीरे विचारों वचनों पर उसका अध्ययन किया गया हो।

६०५ अब हम डा. बेबरन द्वारा प्रस्तुत उदाहरणों पर भी कुछ विचार करें। 'कस्याणी' से उन्होंने जो सम्बन्ध उदाहरण दिया है उसके प्राक्कम भागों की ही हम में

“इस वस्तु का कोई कुछ परस्पर संबंध प्रसम्बद्ध नहीं है।” ‘व्यक्ति और परिस्थिति से दो भिन्न सत्ताएँ नहीं हैं।’ ‘व्यक्ति परिस्थिति का फल है और परिस्थितियों का निर्माण भी व्यक्ति ही करता है।’ ‘भीतर का बाहर के साथ नाता अवश्य है। कर्म-सम्भावना प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष के साथ बाह्य साधन के संयोग से बनती है।’ ‘इस प्रति कोई भी एकांगी नहीं है और किसीका कोई प्रत्यक्ष स्वत्व नहीं है।’ इन उदाहरणों में मनुष्य के अन्दर-बाहर के पारस्परिक सम्बन्ध का उल्लेख अवश्य है। पर प्रश्न यह है कि क्या कस्याणी का व्यक्तित्व—मानसिक व्यक्तित्व—एक जेस्टास्ट या पैटर्न (Pattern) के रूप में सामने आता है? सम्पूर्ण उपन्यास में विकसित कस्याणी का चरित्र ही पूर्णतः एक नहीं पड़ता है। ‘वस्तु का कोई कुछ परस्पर संबंध प्रसम्बद्ध नहीं है’ कहना जेस्टास्ट मनोविज्ञान नहीं है। अर्थों के पारस्परिक सम्बन्ध का विस्लेषण करना ही जेस्टास्ट मनोविज्ञान है। उसी तरह ‘व्यक्ति और परिस्थितियों से दो भिन्न सत्ताएँ नहीं हैं’ अथवा ‘व्यक्ति परिस्थिति का फल है’ या फिर ‘भीतर बाहर के साथ नाता अवश्य है’ कहने से व्यक्तित्व का कोई प्रकार या जेस्टास्ट नहीं उपस्थित होता। कस्याणी अपनी मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियों के सहारे परिस्थिति की जटिलताओं को सुलझाने का प्रयत्न करती हुई अपने सम्पूर्ण अस्तित्व का परिचय न देती। जब उसका व्यक्तित्व ही एकमात्र और अपूर्ण है तब योगातीत पूर्णता का प्रश्न ही कहाँ उठता है?

‘रमागपत्र’ में से भी डा. बेबरन ने ‘एक उदाहरण’ दिया है। उदाहरण की चर्चा करने से पहले यह कहना अवश्य नहीं होना कि इन तरह ‘एक उदाहरण’ से जेस्टास्ट का अध्ययन नहीं हो सकता। सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ही एक पैटर्न के रूप में लेना पड़ेगा और उसके विभिन्न अर्थों के पारस्परिक सम्बन्ध का आचार विधान पड़ना। यही नहीं व्यक्तित्व का क्रमिक विकास परिणाम में ही होना चाहिए। क्या बर्नेट ने मृणाल के व्यक्तित्व को सम्पूर्णता की है? क्या परिणाम में स्वामाजिक रूप में विकसित होते हुए उसके जीवन का स्वरूप दिखाया है? वास्तविक बात तो यह है कि ‘रमागपत्र’ में बर्नेट का ध्येय मृणाल के व्यक्तित्व का अध्ययन ही नहीं है भारतीय समाज में स्त्री की पराधीनता और विषमता को प्रकट करना है। इस सामाजिक

समस्या के बिन्दुबिन्दु के लिए जेनेत्र ने मृणाल के खरिज की एक ही विधिपटा को लिया है—उसकी प्रसामान्य आत्महिंसा की प्रवृत्ति को जिसके सामने उसकी वादनाएँ मर जाती हैं (मृणाल का पतन वादना के कारण नहीं होता) उसका विवेक मर जाता है। मृणाल के जीवन को रूप देनेवासी जीवन यह आत्महिंसा-वृत्ति है जिसके विकास की परिस्थिति को नहीं विद्याया गया है। जेनेत्र ने यह आत्महिंसा-वृत्ति भारतीय साम्प्रदायिक रमली की उदात्तता तथा उसके जीवन की निष्कृष्टता को विद्याने के लिए मृणाल पर आरोपित की है। किसी पात्र पर कोई गुण या दोष आरोपित करने का अधिकार लेखक को है। पर जेस्टास्ट मनोविज्ञान में उसका पारिवेशिक (Environmental) प्राचार होता चाहिए। मृणाल की आत्महिंसा वृत्ति परिवेश पर आधारित नहीं है। उसकी आन्तरिक मनोवृत्ति से प्रेरित है।

यह डा. देवराज द्वारा उद्धृत प्रसंग को लें।^१ इस प्रसंग में मृणाल गंदी गलियों का जीवन छोड़ देने से इनकार करती है। सबके अन्दर परमात्मा के दर्शन करती है। सब अमर परमात्मा है। अतः कहीं भी हो उसका जीवन ठीक है। यहाँ भी हमें कहना पड़ेगा कि सब जगह ईश्वर की ईश्वरता या सब कुछ को समान देखना जेस्टास्ट मनोविज्ञान नहीं है। प्रश्न यह है कि इससे क्या पात्र की मनोवृत्तियों का एक पैटर्न मिलता है? वस्तुतः यह जेनेत्र का एक दार्शनिक धारणा ही है।

सुनीता में भी मृणाल की ही आत्महिंसा-वृत्ति है। जेनेत्र ने सुनीता के नष्टता प्रवर्धन के प्रसंग में जीवन की किसी वास्तविक दशा का मनोवैज्ञानिक बिन्दुबिन्दु नहीं किया है। बल्कि एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (मन को बन्धक देनेवाली घटना से मन-परिवर्तन होता) को स्पष्ट करने के लिए ही जीवन के इस सन्दर्भ की सृष्टि की है। यहाँ भी जेनेत्र ने न जीवन के विभिन्न क्षणों को या जीवन की बोनातीत पूर्णता को विद्याया है। न जीवन के पारिवेशिक प्रभाव से विकसित होनेवाले रूप को। ऊपर उल्लिखित किसी प्रसंग में—या किसी पात्र में—जेस्टास्ट मनोविज्ञान के अनुसार उपस्थित सूक्ष्म इन्फि नहीं है। जिसके द्वारा पात्र परिवेश का निरीक्षण कर समस्याओं को सुलझाने के मार्गों का आविष्कार करे। कोहलर के प्रयोग के सिद्धांतों में जैसे आसपास उपस्थित वस्तुओं के उपयोग से अपनी समस्या हल करने के मार्ग का आविष्कार किया^२। उस प्रकार जेनेत्र का कोई पात्र नहीं करता। सबको अपने-अपने अन्दर से ही कुछ विभिन्न प्रेरणाएँ मिलती हैं जैसे सुनीता को नष्टता-प्रवर्धन का।

डा. देवराज ने जो उद्धरण दिए हैं वे केवल उनके प्रसंगों तक ही सीमित हैं। व्यक्ति के आचार (पैटर्न या जेस्टास्ट) बनाने में वे उपयोगी नहीं देखते। प्रायः वे उद्धरण जो विरोधी सत्ताओं के मिशन को ही सूचित करते हैं। 'सुनीता' में बर और

१. डा. देवराज आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान पृ. ११४-११५।

२. See, Contemporary Schools of Psychology by Woodworth.

डा. देवराज ने भी इस प्रयोग का विस्तृत बखान किया है—आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान पृ. १५२-१५३।

बाहर के समन्वय 'स्थायपत्र' में भलाई-बुराई की एकता तथा 'अस्वाणी' में भीतर और बाहर के मिलन का आराम दिखाया गया है। पर इन सब प्रसंगों के सम्बन्ध में कहना होया कि घर और बाहर को या भीतर और बाहर को या भलाई और बुराई को एक कहने से जीवन या व्यक्तित्व के किसी अंश का कोई आकार (वेस्टास्ट) नहीं मिलता। वेस्टास्ट हो नहीं अनेक अंशों के सम्मिलन से बनता है। यही नहीं अंशों के योग से प्रतीत एक पूर्णता भी उसमें रहती है। जो विरोधी सत्ताओं का सामंजस्य नहीं सम्पूर्ण व्यक्तित्व-विशेषताओं (Personality traits) की योगातीत पूर्णता की (Super-synthetic whole) ही वेस्टास्ट मनोविज्ञान सिद्ध करता है। जैनेन्द्र के उपन्यास में ऐसे वेस्टास्ट का अध्ययन नहीं मिलता।

जैनेन्द्र का सम्पूर्णतावाद क्या है ?

३०६ जैनेन्द्र के उपन्यासों में जिस सम्पूर्णतावाद का आभास मिलता है वह वस्तुतः क्या है ? जैनेन्द्र ने सम्पूर्णता की बर्णना की है तो वह जीवन की सम्पूर्णता की है व्यक्तित्व की योगातीत पूर्णता की नहीं। पात्र प्रायः जैनेन्द्र के विचारों को ही प्रकट करते हैं। जैनेन्द्र तथा उनके पात्रों का विचार यह है कि जीवन को उसकी सम्पूर्णता में देखना चाहिए, उसकी भलाई-बुराई, पाप-गुण्य सत्-असत् सबको समन्वित रूप में देखना चाहिए। यहाँ कोई मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं है बल्कि जैनेन्द्र का जीवन दर्शन है। डा. देवराज ने दिन-दिन प्रसंगों की बर्णना की है इन सबमें मनोवैज्ञानिक से बढ़कर दार्शनिक विचार अधिक मिलते हैं। जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में दर्शन और मनोविज्ञान का समुच्च मिश्रण किया है जो कहीं स्वाभाविक और प्रभावितपूर्ण है तो कहीं अस्वाभाविक और असम्भाव्य। कहीं मनोविज्ञान पुष्ट कीजता है तो कहीं दर्शन। उपयुक्त सभी प्रसंगों में जैनेन्द्र का दार्शनिक दृष्टिकोण ही प्रकट है। पाप और पुण्य सत् और असत् मनोविज्ञान के नहीं दर्शन के विषय हैं। इन परस्पर-विरोधी सत्ताओं के समन्वित रूप को स्वीकृत करने की बर्णना करते समय जैनेन्द्र का ध्यान धारमा पर ही रहता है, मन पर नहीं। जैनेन्द्र का यह दार्शनिक समन्वयवाद ही उनका सम्पूर्णतावाद है। 'मुचरार' के एक प्रसंग से जिसमें वे जीवन को उसके पूरुष में देखना चाहते हैं यह दार्शनिक सम्पूर्णतावाद अधिक स्पष्ट होया। अधिक सही अर्थों में कहें तो वे यथार्थ जीवन के पूर्णत्व को भी स्वीकृत नहीं करते उसे पूर्णता से कुछ निम्न श्रेणी का ही मानते हैं। पूर्णता केवल मनुष्य का देवत्व है। उसे प्राप्त करने की बर्णना करते हुए काम कहता है "आधमी में जो है उस सबका भाव स्वीकार नहीं करेंगे तो उसे हस्त ही करेंगे महान न बनाएंगे। आधमी में से कुछ अलग-थलग काटकर उसको पूरा नहीं किया जा सकता। काटना न होगा बल्कि कुछ जोड़ना होगा।" स्पष्ट है कि यहाँ

१ डा. देवराज ने 'वेस्टास्ट मनोविज्ञान' का अनुवाद 'सम्पूर्णतावादी मनोविज्ञान' किया है जो आभार है। 'अन्तर मनोविज्ञान' अधिक उचित लगता है।

व्यक्तित्व के पूर्णत्व की वर्षा धीरे-धीरे काटकर क्षिप्त-धिया करने का निषेध नहीं है जैसे वेस्टास्ट मनोविज्ञान में होता है। यहाँ भी जेनेश का जीवन-वर्धन है। वे जीवन से कुछ थोड़कर मनुष्य को देवता बनाने का उपाय बताते हैं। धीरे-धीरे देवता बनाना मनोविज्ञान का कार्य नहीं वर्धन का कार्य है। उनके ग्रन्थ उपन्यासों में भी व्यक्तित्व की सम्पूर्णता की यही जीवन की सम्पूर्णता की ही व्याख्या हुई है। धीरे-धीरे वह शार्पनिक दृष्टि से हुई है।

६

उपन्यास में यौन-मनोविज्ञान

(Sex Psychology in the Novel)

३०७ सेक्स जीवन का सबसे बचस्प किन्तु सबसे पवित्र सत्य है। अमादि काम से मनुष्य की धार्मिक तथा बाह्य प्रवृत्तियों को कम देती आनेवासी काम-वासन जीवन की भुल प्रेरणा है, तो मनुष्य को पशुता से ऊपर उठने में बाधा देनेवासी सबसे बड़ी शक्ति भी है। संसार भर के बर्म वर्धन धीरे-धीरे मानव-व्याप्त में उसका एक विशेष स्थान है। सेक्स सब देशों धीरे-धीरे भाषाओं में साहित्य की अनन्त धीरे-धीरे चिरन्तन प्रेरणा रही है।

किसी भी भाषा के साहित्य का अध्ययन करें तो ज्ञात होगा कि उसके रचनात्मक साहित्य का अधिकांश स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण एवं सम्बन्ध पर आधारित है। विशेषकर कथा-साहित्य में तो यही एक विषय है जिसकी किसी भाषा के किसी भी लेखक ने उपेक्षा नहीं की है। इतना सर्वकाशीन सर्वविशील धीरे-धीरे सर्वव्यापी होने पर भी उपन्यास साहित्य में सेक्स का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अभी हास का विषय है। इसमें सन्देह नहीं सदिकों पहले बुकानिबो ने 'केकामेरी' में धीरे-धीरे मारब्रेट मेचाएर ने 'हैप्पि-मेरी' में सेक्स-सम्बन्धी कई साधारण धीरे-धीरे असाधारण बातों का विश्लेषण किया। इन दोनों कथा-ग्रन्थों में यौन-मनोवृत्तियों से सम्बन्धित कई सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों की वर्षा आई है जिससे ज्ञात होता है कि इन लेखकों ने मनुष्य का कितना अभाव ज्ञान प्राप्त किया था। हमारे 'महामारत' जैसे ग्रन्थों में भी कहीं-कहीं सेक्स-सम्बन्धी मनोभावों का अन्वेषण अध्ययन मिलता है। लेकिन कथा-साहित्य में वैज्ञानिक प्रणालियों के आधार पर यौन-वृत्तियों का अध्ययन हास ही का विषय है। विशेषकर हिन्दी के उपन्यास साहित्य में यौन-वृत्तियों का वैज्ञानिक अध्ययन अभी पिछले दो दशकों में ही हुआ है क्योंकि हमारे उपन्यास-साहित्य में मनोविज्ञान का प्रतिष्ठापन हुए बीस वर्ष से अधिक नहीं हुआ है। हमें इस परिच्छेद में यही बताना है कि यत बीस वर्षों में हमारे उपन्यास साहित्य में सेक्स के वैज्ञानिक अध्ययन का रूप क्या रहा है। इसके पहले के कई अनुच्छेदों में प्रसंग-सेक्स-सम्बन्धी कई प्रवृत्तियों का उल्लेख हो चुका है। यत यहाँ सामान्य रूप से एक सर्वेक्षण (सर्वे) करना पर्याप्त होगा।

यहाँ तक हिन्दी के यौन-मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की सम्बन्ध है, उनमें

काम-समृद्धि या कुष्ट ही ऐसा एक विषय है जिसके अध्ययन में हमारे सेलकों में अपनी सारी प्रतिभा का उपयोग किया है। यह कहना प्रतिशयोक्ति नहीं होती कि अगर हम हिन्दी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की यौन-सम्बन्धी कुष्टा-भाषा का अध्ययन करें तो हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास साहित्य का अध्ययन करीब-करीब पूर्ण हो जायगा।

काम-समृद्धि या कुष्टा (Sexual Frustration)

३०८ कुष्टा कई प्रकार से हो सकती है। उच्च तथ्य की अप्राप्ति सामाजिक बन्धनों के कारण अपनी इच्छाओं की पूर्ति सामान्य जीवन में असंभव सहमर्ग पति या पत्नी की अलक्ष्यतादि कुष्टा के साधारण कारण होते हैं। इनमें सामान्य जीवन की पराजय से उत्पन्न कुष्टा बहुत ही महत्वपूर्ण है और हमारे उपन्यासों में उसीका सबसे अधिक विस्तारण हुआ है।

कुष्ठित बला में व्यक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि उसमें एक असन्तोषजनक एवं व्यथतापूर्ण बेकारिक तनावनी (Emotional tension) पा जाती है। उस अवस्था में व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ ऐसा रूप धारण कर लेती हैं जिससे यह बेकारिक तनावनी कम हो सके।^१

समृद्धि या कुष्टा की प्रतिक्रियाएँ चार प्रकार की हो सकती हैं १ इच्छा पूर्ति का तीव्र प्रयत्न २ बहिर्गता की स्वीकृति और निष्क्रियता ३ विनाशकारी या आत्महत्या प्रवृत्तियाँ एवं ४ परिस्थिति से समझौता। हमारे मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में ये सब प्रवृत्तियाँ उपलब्ध हैं।

३०९ इच्छा-पूर्ति का तीव्र प्रयत्न साधारणतः देखा जाता है कि कुष्ठित व्यक्ति अगर निराश और निर्बल न हो तो अधिक उस्ताह से अपनी इच्छा-पूर्ति का प्रयत्न करता है। संभव है इस तरह का प्रयत्न करते समय उसके मार्ग उपाय और उपकरण कुछ बदल जायें।^२ जैब के प्रसिद्ध उपन्यासकार फ्रांसेयर का उपन्यास 'महाम बोबारी' इसी मनोवृत्ति के साधारण पर लिखा हुआ है। महाम बोबारी के सामान्य-जीवन में उसकी वासना पूर्ण नहीं होती। कुष्ठित वासना को मुक्ति देने का प्रयत्न में वह एक को छोड़कर दूसरे और दूसरे को छोड़कर तीसरे पुरुष का चरण करती है। एबी प्रीबाल्ट के 'मानस सेका' की भाविका की वासना जैविक नहीं है वह और तरह के सुक-सोप और ऐश्वर्य चाहती है। इस वासना के कुष्ठित होने पर वह सब कुछ कर लिए तैयार हो जाती है। अपना तथा अपने प्रेमी का सर्वनाश करके भी बिलासमय जीवन बिताता उसका ध्येय बन जाता है। थोलोथोब के 'थोम' उपन्यासों में दरिया अपने पति के मुँह में जले जाने पर अपनी वासना की पूर्ति के उपाय ढूँढ़ती फिरती है कई पुरुषों से जो जोड़े दिन की कुट्टी में घाम में घाबें सम्बन्ध जोड़ती है। यहाँ

१ Page Abnormal Psychology P 33

२ Page Abnormal Psychology P 33

Jung Two Essays in Analytical Psychology § 254

तक कि वह अपने समुद्र तक को बंध में करने का प्रयत्न करती है। इसी उपन्यास की घबसीमीया की धन्युष्ट वासना की प्रतिक्रिया कुछ भिन्न है। वह घेगर पर—केवल घेगर पर—घातक हो जाती है। उसकी प्राप्ति के निमित्त सब कुछ सहने के लिए वह तैयार है। सर्वस्व छोड़कर वह घेगर के साथ भाग जाती है। उसे केवल घेगर चाहिए। परिस्थिति की विवधता से उत्पन्न काम-धन्युष्टि की संवर्धनमय प्रतिक्रिया का सर्वोत्तम उदाहरण डॉ. एच. जारेन्स के 'मेडी बटर्सी' में मिलता है। युवती मेडी बटर्सी का पति सार्वीरिक रूप में पूर्णतया धन्युष्ट और मयोम्य होकर मृद से लौटता है और अपनी इस बधा को जानकर पत्नी को और किसीसे प्रेम करने की अनुमति दे देता है। किन्तु उस कुलीन युवती का यह 'इसके लिए तैयार नहीं होता। पर वासना भी बलहीन नहीं है। यह और वासना के संवर्धन में वासना धीरे-धीरे विजित होती है और वह एक नीकर के प्रति आकृष्ट होती है। उसके मानसिक संवर्धन का विवरण जारेन्स की रचनाओं के सर्वोत्कृष्ट भागों में एक है।

हिन्दी के उपन्यासों में 'नबी के द्वीप' और 'विरटी बीबारे' वासना-मूर्ति के प्रयत्न में तीन व्यक्तियों के चरित्र प्रस्तुत करते हैं। 'नबी के द्वीप' की रचना को अपने पति से संतुष्टि नहीं पाती अत्यन्त विचलित हो जाती है। धन्युष्ट वासना से जनित यह विह्वलता तभी कुछ कम होती है जब वह सुवन के प्रति आकृष्ट होती है। अन्त में वह आत्मसमर्पण कर—एक निमित्त की चरम अनुमूर्ति प्राप्त कर—सुवन से अपनी आमार मानती है। इस लक्षिक अनुमूर्ति के कारण ही वह अपने जीवन को सार्वक मानने लगती है। 'विरटी बीबारे' में चेतन भी मनोनुकूल पत्नी न पाकर कई स्त्रियों के प्रति उन्मुख होता है। उसकी वासना इतनी प्रबल है कि उसे उन स्त्रियों की उन्नत धन्युष्ट सामाजिक स्थिति तक की चिन्ता नहीं रहती। सुनीता का हृत्प्रचलन भी अपनी धन्युष्ट वासना की उत्तेजना से सुनीता के प्रति आकृष्ट होता है। किन्तु सुनीता का अप्रवाधित आत्मसमर्पण उसे बल देता है। इनके विरिक्त 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ 'पुनाही ना देवता' की पत्नी और बन्धु भावि भी पारम्परिक रक्षा में अपनी वासना-मूर्ति के उपकरण बूझते रहते हैं। पर सभी अन्त में संभलकर स्वाभाविक जीवन की ओर आ जाते हैं। यह बात भी स्मरणीय है। पारसनाथ की प्रेरणा समित वासना नहीं स्वाभाविक रूप में उसमें संज्ञात समित वासना है।

३१० बलहीनता की स्वीकृति और निष्क्रियता—जब कृत्रिम व्यक्ति अपनी इच्छा-मूर्ति का सक्रिय प्रयत्न नहीं करता तब उसकी बधा विलकुल छलटी हो सकती है। वह अपनी असमर्थता और बलहीनता को स्वीकृत कर निष्क्रिय हो जाता है और बिना प्रतिरोध के सब कुछ सह लेता है। यह एक प्रकार से व्यक्तित्व-हमन (Regressive Restoration of Persona) है।^१

तास्त्वाय के 'अन्ना करेनिना' की नायिका अन्ना करेनिना और सोलोवोव के

'होत अपभ्रंशों की मत्तास्या के जीवन इसके घराहरण हैं। घना जो अपने पति के प्रति विमर्शपूर्ण निष्क्रिय रहती है और पति के मुख्य व्यक्तियों में वह बीज नहीं पाती जिसकी उसे आवश्यकता है। बरान्स्की पर मुग्ध हो जाती है। बरान्स्की उसपर काम देता है लेकिन वह प्रेम का प्रथम मघा रूप जाता है। घना स विमर्श हो जाती है। अब घना के लिए कोई रास्ता नहीं रहता। वह अपनी पराजय स्वीकृत कर लेती है। निष्क्रिय जीवन से भी शान्ति न पाकर वह मानवासी के पीछे अपने प्राण छोड़ देती है। मत्तास्या की कथा अधिक करणामयक है क्योंकि वह घना के ममान घम्य पुन्य में प्रायद नहीं खोजती। एक गरीब कुटुम्ब में अपनी हुई वह छोटी लड़की अपने पति प्रेम्बर को सर्वस्व मानकर पूजती है। अपने कर्मों का पालन करने के साथ वह अपने अधिकारों को भी सुरक्षित रखना चाहती है। प्रेमर उससे प्रेम करता है और चाहता है कि उनके प्रतिरिक्त और किसीको न चाहें। लेकिन वह कभी वह पक्षी की घस्तीनिया को देख उनका 'सिर फिर बायवा। बार-बार चलावती देनी हुई मत्तास्या अपार मानसिक' बेदना का अनुभव करती है। घस्तीनिया के पास जाकर वह भीख मांगती है, पर घस्तीनिया तनिक भी दया दिखाने को तयार नहीं है। 'जो कुछ भी हो तुम मुझे दया की आशा मत रखो। हम दोनों ऐसी ही हैं। जब मुझे कुछ होगा तुम्हें कुछ होगी जब तुम्हें कुछ होगा मुझे कुछ होगी। अब प्रेमर मरा हो गया है। इस बार बरबरार रहूँगी कि हाथ से किमल न जाय। परा वस मू तुम क्या करोगी?' परावित और निराशा मत्तास्या भ्रष्ट-हत्या कर बीमार हो जाती है और बीम ही मर जाती है। हो सकता है मत्तास्या की यह प्रवृत्ति दमित आसना के कारण न होकर, घातपीडन के कारण होनी हो घमना मानसिक से बढ़कर घातपीडन की प्रवृत्ति के कारण होनेवाली हो। इन्हीं तरह की पराजय-वृत्ति तुर्पनेव के बजाये और मैत्रमोह में भी मिलनी है, जो जानना की दबा-बर उस देश-निर्माण काय में आते हैं पर घम्य में परावित हाकर मर जाते हैं। बी एच सारेम्स के 'अटे और प्रेमी' के पास मारण का जीवन परावित है क्योंकि माता के प्रति दण्ड घातक के कारण वह किसी लड़की से प्रेम नहीं कर सकता। अपनी इस दुबसता को जानकर वह बीमार मात्रा को घसीम लेकर मार डालता है फिर भी उसकी पीन-आसना आसक्ति नहीं होती।

हिन्दी में जीवन के अपभ्रंशों में यह पराजय-वृत्ति अधिक मिलती है। 'त्यागपत्र' की मर्यादा घम-आसना को ही नहीं हृदय के सभी विकारों को दमिद कर बिबि की दिहम्बनाओं को उपचाय सहन को तैयार हो जाती है। उनका यह मनोभाव निश्चित ही परिस्थिति-प्रति नहीं है व्यक्तिगत कुन्टा से उत्पन्न है। 'मुकुटा' की मुनदा पति के प्रेम में मुक्त रहने पर भी मानसिक कुन्टा से प्रसन्न होकर व्याकुल हो जाती है। माता के मुक्त स्वच्छन्द चरित्र से मुग्ध होना पर भी वह कृतव्य-बोध के कारण उस और प्रवृत्त नहीं होती। परिणाम यह होता है कि वह पति को दानकर

मामके में जा रहती है और मर जाती है। 'अपतीत' के अन्त की काम-अशुक्ति का कारण अपनी दूर की बहुत धनिता पर उसकी रुग्ण भावना है। प्रथम दृष्टा में ही वह पराजय स्वीकृत कर लेता है अन्धे नम्बर पाने पर भी वी ए के बाव पढ़ाई बन्द कर साधारण नौकरी करने समता है। जीवन की उच्च आकांक्षाएं एकदम बह जाती हैं। अपने प्रति सुमिता का प्रेम देखकर वह पराजित मन से कहता है 'मैं अपना हूँ सुमिता।' इसके बाद भी उसकी प्रवृत्तियाँ इस अशुक्ति से प्रभावित रहती हैं। इसीलिए विवाह हो जाने पर वह अमल करके भी अपनी को प्रसन्न नहीं कर सकता।

३११ बिनाशकारी या आक्रामक प्रवृत्तियाँ—काम-अशुक्ति की तीसरी प्रतिक्रिया व्यक्ति का अपनी क्षमताओं को किसी प्रकार की आक्रामक और बिनाशकारी प्रवृत्तियों में लगाना है।^१ अपनी काम-अशुक्ति के कारण व्यक्ति में दूसरों को भी किसी तरह व्यक्ति करने की मनोवृत्ति आ जाती है। दूसरों को भी काम-अशुक्ति से पीड़ित करने का साधन या उसकी सुविधा न हो तो और किसी प्रकार की व्यापार देने का साधन भी हो सकता है। जिस भई सिकन्दर के 'तीन बहनें' में तीन बहनों का पिता अपने दौलत-जीवन में पराजित होकर यही चाहता है कि बेटियों का भी विवाह न हो। उनकी यह आन्तरिक अभिमाया जिसे बाह्य रूप में वह स्वीकृत नहीं करता व्यक्तिगत क्रुद्धा से ही उत्पन्न है। सारेन्स के 'छोटे और प्रेमी' की मिस्त्रि मोरस भी अपने पुत्र का विवाह नहीं चाहती। किन्तु वहाँ बेटा पाल मोरस भी माता के प्रति रुग्ण भावना रखता है। माता की आक्रामक प्रवृत्ति इस बात से स्पष्ट है कि पाल बिन लड़कियों है प्रेम करने का प्रयत्न करता है उन सबको मिस्त्रि मोरस अशुभ्य बताने पुत्र की दृष्टि में गिरा देती है।

सेखर सचि के प्रति और राजीव ('मुक्तिपथ' में) सुनन्दा के प्रति जो व्यवहार करते हैं उनको दमित वासनाधर्मित आक्रामक प्रवृत्तियों के उदाहरण के रूप में दिया जा सकता है। स्वयं अपनी वासना को दमित रखनेवाला सेखर सचि से प्यार करते हुए भी उसके प्रति क्या मा सहानुभूति नहीं दिखाता। जब उसकी यह अचिरी बहुत सेखर पर अपनी आसक्ति के कारण पति द्वारा परित्यक्त होकर उसके पास आ जाती है तब वह उसे अपने 'आह' की सृष्टि का साधन-मात्र बनाकर विलकृत निर्मम व्यवहार करता है। सेखर का ही दूसरा रूप है 'मुक्तिपथ' का राजीव जो अपने पर आसक्त सुनन्दा के प्रति कोरी निर्ममता से व्यवहार करता है। इन दोनों उदाहरणों में दमित वासना के समय की प्रतिक्रिया के रूप में कृत्रिम व्यक्ति व्यक्तियों की वासना को भी दमित देखना चाहते हैं। यह प्रतिक्रिया भी काम-अशुभ्य है। इसके विरुद्ध 'सुनीता' के हरिप्रसन्न और धिबर्त के जितेन जैसे पात्रों से काम-अशुक्ति से दमित आक्रामक प्रवृत्ति अस्तिकारिता का रूप कारण कर लेती है। इसी प्रकार का समाज-अशुक्ति का अभाव सुनीता के नेत्रजीव और मजारीव में तथा 'बाबा कामदेव' एवं 'देवप्रोही' के पात्रों में भी मिलता है। पर इनके सम्मुख में यह कहना कठिन है कि उनका

कमन्ति मात्र काम-धनसुक्ति से उत्पन्न है। अथवा बीच-बीच में छपर घानेवासी बाघना अभिनिर्वाह का विरोध करनेवासी छक्ति है।

इस परिस्थिति से समझीता—काम-धनसुक्ति या कुष्ठ की बीबी प्रति धिया यह है कि व्यक्ति अपनी सीमाओं तथा परिस्थिति की विवशताओं को पहचानकर उनसे समझीता कर लेता है। और परिस्थिति से संघर्ष करने के बरसे उसके धनुस्त्र होकर पीने लगता है।^१ वस्तुतः यह जीवन में सर्वसाधारण प्रवृत्ति है किन्तु उपन्यास में इसको अधिक महत्त्व नहीं दिया गया है। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि विवशताओं को बिना प्रतिरोध के स्वीकृत कर अपने-आपको उनके धनुस्त्र बदमने वाले व्यक्ति के जीवन में संघर्ष न होने के कारण अधिक रोचकता नहीं होगी जो उपन्यास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। उपन्यास में नाटकीयता लाने के प्रयास में लेखक की इस निष्क्रियता की प्रायः उपेक्षा की गई है। उसे ही परिस्थिति से संघर्ष करना ही मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति हो और वहीं जीवन के विकास का कारण हो तथापि वह अपने-आपको परिस्थिति के अनुसार बहुत कुछ बदल भी लेता है और इस तरह जीवन से समझीता भी कर लेता है। विशेष रूप में स्त्री में यह गुण पाया जाता है। भारत की नारी तो अपने सम्पूर्ण जीवन को समझीते की नींव पर ही निर्मित करती है।

मोपासा के 'एक स्त्री का जीवन' (ऊन बी) मरिसो मारिया के 'जो जो गया' (Ce qui était perdu) 'काले देवता' (Les Anges noirs) आदि उपन्यासों में स्त्री की इस मनोवृत्ति का मार्मिक विश्लेषण मिलता है। मोपासा के उपन्यास की नायिका प्रेममूर्ख होकर जिस दुबक से बिबाह करती है उसे बिबाह के पश्चात् ठीक तरह समझ पाती है। उस और स्वार्थी व्यक्ति से प्रेम करना असम्भव हो जाता है। किन्तु उसकी मानुस्त्र की मूख उसे पति के निकट लाती है। एक पुत्री को पाकर वह पति से बिबल जाती है। एक बार पुत्री के बहुत बीमार होने पर उसे यह चिन्ता होती है कि वह मर जाय तो क्या होगा। फिर वह पति से सम्पर्क रखकर एक पुत्र को जन्म देती है और पति से हमेशा के लिए बिबल जाती है। यहाँ हम ऐसी एक नारी को देखते हैं जो परिस्थिति से संघर्ष नहीं करती बिबोह नहीं करती बल्कि जीवन ने उसे जो कुछ दिया है उसीको स्वीकृत कर उससे गुप्त होने का प्रयत्न करती है। उसका समझीते का मनोभाव अन्त में दूसरे प्रसंग में भी प्रकट होता है। उसका पुत्र एक बेव्या के मोह में पड़कर अपना सर्वनाश करता रहता है। माता इसका विरोध करती है पर बेव्या के मरण के समय उससे पुत्र का बिबाह कराकर उसकी सम्मान को बच बना लेती है। मोपासा ने इन प्रसंगों में उसके मन में जो संघर्ष होता है उसका मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। मारिया के 'जो जो गया' की नायिका इरीन और 'काले देवता' के मरीसो के चरित्र भी इसी तरह समझीते के स्वभाव को स्पष्ट करते हैं। कबल बन के लिए बिबाह करनेवाले पति की पितामह इरीन कभी नहीं करती। उसकी काम धनसुक्ति उसे अपना अमानि तो देती है पर वह बिबोह नहीं करती। एक कुलीन

सुखी के समान जीवन व्यतीत करती है। मभीरु विषयता के कारण अपने इच्छित पुरुष को छोड़कर एक अवस्था से विवाह कर लेती है। एक पुरुष से प्रेम करते हुए भी वह पति के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करती है और अपने-आपको पति का अच्छी मानती है क्योंकि उसकी जीवन-नीति का पार लगानेवाला नहीं है।

हिन्दी के कई छपन्यासों में भी इस समझौते की प्रवृत्ति को स्वाम मिला है। 'नारी के दीप' में रेखा पहले दण्ड-पूति के लिए प्रयत्नशील रहती है। उसकी समित बासना उत्तेजित होने पर तभी शांत होती है जब सुबन से उसका सम्बन्ध होता है। किन्तु इसके पश्चात् ? रेखा वैसी अत्यधिक भावुक स्त्री के लिए उस पुरुष का विनाश के पक्ष में इशारा देना असम्भव कार्य है जिसने उसे एक लैंगिक अनुभूति प्रदान कर उसके जीवन को सार्थक बनाया। धन वह दूसरा विवाह करती है यहाँ से उसका जीवन भावुकता का संश्लेषण नहीं है। धर्म के बाव ही प्रशान्त नवरचना है। वह नहीं कहा जा सकता कि नया साम्य-जीवन उसे धामन्य देता है। वह सुबन को लिखती है "मह नया है सुबन ? बरछों में भीमती होमन्त्र कहाँ, उसके नया धर्म के ? अब अपने महीने से भीमती रमेकचन्द्र कहाँ—उसके भी नया धर्म है ? मैं इतना ही समझ पाती हूँ कि मेरे लिए यह समूचा भीमतीत्व मिथ्या है कि मैं तुम्हारी हूँ केवल तुम्हारी तुम्हारी ही हुई हूँ और किसीकी कभी नहीं न कभी हो सकती। तुम्ही मेरे धर्म हो तुम्हारे ही स्पर्श 'सकल मम देह-मन बीणा मम बाने' तो फिर उसके नये वैवाहिक जीवन के अनुसिद्ध रूप का नया धर्म है ? वह क्या केवल होय है ? यहाँ पर हम जीवन का समन्वययोग्य रूप देखते हैं। रेखा का वह विवाह जीवन से एक समझौता है।

डा. वेबर का 'पथ की खोज' का चन्द्रनाथ साधना के प्रति अपने धार्मिक धार्यण नियंत्रण करते हुए परिस्थिति से समझौते का प्रयत्न करता है। हो सकता है साधना के अपने प्रति धार्यण को मानते हुए भी उसका उसे प्राप्त करने का प्रयत्न न करना उसकी मानसिक दुर्बलता के ही कारण हो पर परिणाम यही होता है कि वह परिस्थिति के अनुकूल होकर जीवन बिताता है। इसके लिए उसे कम प्रयत्न नहीं करना पड़ता। अनुसन्ध-वासना से उत्पन्न मानसिक तनावनी (मिष्टस टेन्शन) को कम करने के लिए वेस्मालन की धारण लेन पर भी उसे शान्ति नहीं मिलती। प्राप्ता से विवाह करके जीवन को स्वाभाविक गति देने का प्रयास समझौते का पुनः प्रयत्न है।

'मिरती बीबारे' के चेतन का जीवन प्रायः शान्त तक काम-बासना या निबिडो को संतुष्ट करने के साधनों की खोज का इतिहास है। बीच-बीच में चेतन उन्मूलन बासना को हटाने बाँधकर सामाजिक भर्षा का पालन करता है। उसका न चाहने पर भी जन्मा से विवाह करना अपनी ही बासना से तब बर के लोगों से समझौते का परिणामक है। विवाहोपरान्त भी वह जन्मा को अपनी रुचि के अनुकूल बनाकर उसीमे अपनी पृष्ठि का साधन बूझता है। किन्तु प्रबल बासना उसके नियंत्रण के परे

है और वह कई स्त्रियों के प्रति आकृष्ट होता है। अन्त में उसे एक बँधराब के बिचारों-से यह विश्वास होता है कि समझौते के बिना जीवन का और कोई उपाय नहीं है और वह फिर एक बार अन्धा के प्रति आकृष्ट होता है।

‘कस्माएँ’ और ‘सुखदा’ की गामिकाएँ भी अपने जीवन को समझौते का आधार लेकर ही सहा बना लेती हैं। अभिनव रुचियों से युक्त सुशिक्षित बनी कन्या कस्माएँ या भस्तरानी से विवाह करके भयंकर निराशा का अनुभव करती है फिर भी किसी तरह उसी जीवन को सहा बना लेती है। पति उसपर पर पुरुष-सम्बन्ध का बोझ नपाया है पीटा है। कुछ दिनों तक धकेले बन्ध कर रखता है धाम रास्ते पर झूठे से मारता है फिर भी वह सब सहन करती है और पति से बिरोह करने की बात तक नहीं सोचती। वहाँ यह बात स्मरणीय है कि यह समझौता काम-असुक्ति द्वारा उत्पन्न मानसिक तनावनी को कम करने के निमित्त नहीं है केवल सामाजिक दृष्टि से पारिवारिक जीवन को व्यवस्थित रूप देने के लिए है। सुखदा की मानसिक तनावनी अधिक उत्पन्न है। पारिवारिक जीवन की सुशुचित सीमा के अन्दर ही समा रहने में असमर्थ उसकी मानसिक क्षमता घट निकलती है। वह अन्तिकारी बन तथा उसके प्रवर्तक साम से सम्बन्ध रखने लगती है। लेकिन इससे भी उसके स्नेह भाव को संतोष नहीं मिलता। वह घर की दुबंसा बेच घर की ओर मुड़ती है। इस तरह स्वाभाविक जीवन से सम्बन्ध करने का उसका प्रयत्न अधिक सफल नहीं माना जा सकता क्योंकि वह फिर पति को छोड़कर भागके जाती जाती है। यहाँ सुखदा जीवन-समझौते का प्रयत्न तो करती है पर इसमें कई बिम्ब उपस्थित होते हैं।

काम-असुक्ति या कृष्ठा से सम्बन्धित कुछ सामान्य बातें

११३ मनोविज्ञान ने यह बात स्थापित कर दी है कि काम-असुक्ति प्रायः ‘चित्त-विकृति’ का कारण बनती है।^१ ऊपर के प्रकरणों में हम देख चुके हैं कि हमारा मनोविज्ञानिक उपस्थापनों के अधिकतर पात्र कृष्ठा से उत्पन्न चित्त-विकृति से पीड़ित और प्रायः असाधारण और कभी-कभी अस्वाभाविक हैं। विकृत चित्त व्यक्तियों दिव्याई पड़नेवाला दुःख और सर्वप्रथम व्यक्तित्व भी उनमें प्राप्य है। कभी-कभी कृष्ठा के परिणामस्वरूप कृष्ण व्यक्तियों के व्यक्तित्व उजासीकृत होकर कुछ उन्नत स्तरों के गुणों की प्राप्ति कर लेते हैं। खेद नन्धकिशोर महीप राजीव भादि इसके उदाहरण देख चुके हैं। असुक्ति के कारण कृष्ण काम-असुक्ति का अन्ध विश्वासों में उन्मूढ होना इन उपस्थापनों के प्रायः सभी अन्तिकारी पात्रों की प्रवृत्ति है कभी-कभी कृष्ठा व्यक्ति की मानसिक पीड़ा का कारण बनकर उसे पूर्णतया तिरा और घातक बना लेती है। नैराश की शरम सीमा में अस्वस्थ होकर मरस को बरत

१ वहाँ ‘चित्त-विकृति’ शब्द विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त किया जा रहा है और चित्त विविध चित्त-मन्दा असाभाविकता आदि को भी इसके अन्तर्गत गणना आदि।

करना भी असम्भव नहीं है। शांत होता है सुखदा कस्याही भावि का दयनीय भग्न इसी तरह होता है।

यूरोपीय उपन्यास में सेक्स से सम्बन्धित कुछ बातें

ऊपर हिन्दी एवं वास्तव्य उपन्यासों में प्राप्त सेक्स की कुछ प्रवृत्तियों की चर्चा हम कर आए हैं। इनके अतिरिक्त यूरोपीय मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में भी मनोविज्ञान से सम्बन्धित जो निश्चित बातें मिलती हैं उनका भी यहाँ संक्षेप में अध्ययन करना उचित होगा। विशेषकर कुछ विशेष लेखकों तथा कुछ विशेष प्रवृत्तियों का विवेचन हिन्दी उपन्यासों के मूल्यांकन में भी सहायक हो सकता है।

११४ डो वरम दिवार्ड—विभिन्न व्यक्तियों में वासना विभिन्न मात्राओं में विकसित होती है। पैत्रागविकी तथा परिवेश से प्रस्फुटित एवं परिचायित वासनात्मक मनोवृत्तियाँ अपनी चरम सीमा में अनियंत्रित उन्मुखता तक पहुँच सकती हैं या दूसरी ओर नैतिक धारणाओं के बन्धनों को स्वीकृत कर एक प्रकार की भावुकता का रूप भी धारण कर सकती हैं। प्रथम के उदाहरण के रूप में महाम बोबारी और नाना को तथा दूसरे के उदाहरण के रूप में 'ऊन बी' की नायिका तथा एनीडा को ले सकते हैं। पलावेयर की महाम बोबारी और बोला की नाना में वासना इतनी प्रबल है कि उन्हें न अपनी भलाई की चिन्ता रहती है न दूसरों की न समाज की। वे स्वयं पतित होती जाती हैं और जो उनके सम्पर्क में आती हैं उन सबको भी विनाश की ओर ले जाती हैं। नाना को कुटुम्ब के कुटुम्ब नष्ट करने में अपार क्षाम्ब मिलता है। महाम बोबारी तथा नाना दोनों में वासना की तीव्रता के साथ दूसरी ओर एक बात दिखाई देती है वह उनकी चर्चता है। दोनों अनुभूतियों की चरम दशा में अपने-आपको भूल जाती हैं तो अपनी वासना-भूति में तनिक भी कमी रह जाय तो अभीर हो उठती हैं। यहाँ जो बात हमें याद रखनी है, वह यह है कि पलावेयर और बोला ने वासना को एक नीच वृत्ति या पाशविकता के रूप में नहीं देखा है किन्तु मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी के रूप में ही देखा है। अतः उन्होंने एम्मा बोबारी और नाना के प्रति अपार सहानुभूति भी दिखायी है। विद्वान्-साहित्य में इतने कुतूहल पात्र धारण और कहीं नहीं मिलेंगे पर और कहीं ऐसे दयनीय पात्र भी नहीं मिलेंगे जिनपर लेखकों ने इतनी सहानुभूति और भवता दिखाई हो।

इसके विरुद्ध मोपासा के 'ऊन बी' की नायिका तथा बीच के 'तय बरबाबा' की एनीडा को भीषण। ये दोनों वासना को दबाती हैं। 'ऊन बी' की नायिका उसी युक्त से विवाह करती है, जिस वह माखों से अधिक चाहती है। पर धीमे ही उसके दुर्गुणों को देख उससे विरक्त हो जाती है। उसका नैतिक धारण उसे पति से दूर रखता है पर मातृत्व की नाममा पति की ओर नीच से जुड़ा है। इस मानसिक संघर्ष का मार्मिक चित्र मोपासा ने उपस्थित किया है। एनीडा केवल इस कारण से विरक्त हो नहीं करती कि वह अपनी अपार भावुकता के कारण माखिन के एक वाक्य से प्रभावित हो जाती है जो यह कहता है कि—

सम्पुष्ट करके ही स्वर्ग के तंग दरवाजे से उस पार जा सकते हैं। यही अन्तर्जात वासना तथा नैतिक आदर्श का समर्थ मिश्रण है जो एनीका को इतिवृत्त करके मरण की धोर से बाता है।

ऊपर की दोनों दशाओं के बीच की एक अवस्था वास्तविकता की 'महामूर्ख' की मस्तास्ता प्रतिक्रियाओं की है जो अपनी वासना में अपनी ही प्राप्ति देती है किन्तु उससे अपने प्रिय प्रिय मित्रजन को बचाने का उत्तम प्रयत्न करती रहती है। इन उपन्यासों में मनुष्य की अमाधि वासना और अनन्त आदर्श के बीच की इन्द्रात्मक संघर्ष व्यक्त किया गया है वह सम्पूर्ण मानवता की चिरन्तन समस्या है और यही इन उपन्यासों का महत्त्व है।

३१५. मूस्ट केस और समय—मार्से मूस्ट ने काम-वृत्ति के जो रूप दिखाए हैं उनपर समय का प्रभाव विचारणीय विषय है। पानों की प्रेम-सम्बन्धी भावनाओं और व्यवहारों में अवस्था के अनुसार जो अन्तर आता है उसका मूस्ट के समान सूक्ष्म विवेचन करनेवाला उपन्यासकार और कोई नहीं हुआ है। 'सूतकास पर्ववैक्षण' के नायक का वास्तविकता में गिस्बर्ट स्न के प्रति प्रेम भक्ति ही ज्ञात नहीं होता यद्यपि उसकी मूल प्रेरणा अचेतन में स्थित काम-वासना ही है। वह गिस्बर्ट से अत्यधिक आवेष्टपूर्ण प्रेम चाहता है। इस प्रेम में एक प्रकार का आवेष्ट है उन्माद है पर वह चिरन्तन नहीं है। गिस्बर्ट जब उससे मिलने हो जाती है तो वह पहल बहुत ही व्यक्त होता है पर शीघ्र ही उसे भूल जाता है। समय हृदय की हर चोट पर पड़ी समाकर उसे सुखा देता है। प्रेम की छुरी दशा नीचनारम्भ के प्रेम की है। इस अवस्था में हर युवक को हर युवती परी-सी लगती है।—'धीरे-धीरे कुम्हरी रम्या'—हर युवती को हर युवक सुन्दर लगता है। यही दशा मूस्ट के नायक की है जो वास्तविक दुःख में कई लड़कियों से परिचित होकर एक अज्ञात आश्चर्यमय रहस्यपूर्ण धान-क का अनुभव करता है। विवेचनकर एन्वेटिन से उसका प्रेम वैचारिक तीव्रता की चरम सीमा तक पहुँचता है। इस आवेष्टमय प्रेम का ही रूप आवेष्ट के प्रति स्न में देख सकते हैं।

प्रेम के स्वरूप के सम्बन्ध में मूस्ट ने जो नियम निर्धारित किए हैं। विवाह के पूर्व बिना युवक-युवतियों में अत्यधिक आश्चर्यमय प्रेम होता है। उनका प्रेम विवाह के बाद कम होने लगता है और कभी-कभी पारस्परिक दृष्टि की सीमा तक पहुँच जाता है। स्न छोटे से अपार प्रेम करता है। उसके लिए सब कुछ करने को तैयार रहता है पर विवाह हो जाने पर धीरे-धीरे वह अनुभव करने लगता है कि उसने यमल स्त्री से विवाह किया है और छोटे-छोटे उसके लिए योग्य नहीं है। मूस्ट का दूसरा नियम यह है कि सन्नेह अनिश्चितता और आकांक्षा प्रेम में आवेष्ट का पोषण करती है। जब पुरुष या स्त्री में अपनी प्रेमिका या प्रेमी की प्राप्ति सम्भवि रहती है यद्यपि एक का दूसरे की अविद्वत्ता का सम्बन्ध रहता है तब प्रेम का आवेष्ट चरमान्त होता है। आवेष्ट और स्न के प्रेम की विविध दशाओं में मूस्ट ने इसे स्पष्ट किया है। जब तक छोटे स्न के बंध नहीं आती उसका प्रेम अत्यन्त तीव्र दशा में रहता है पर जब

वह उससे प्रेम करने लगती है। तब स्वर्ग के प्रेम की तीव्रता भट्ट हो जाती है। लेकिन चीम ही थोड़े कोर्बेट के प्रति आकृष्ट होती है, तो स्वर्ग का प्रेम पूर्वाधिक तीव्र हो उठता है। अपनी प्रेमिका को ग्रन्थ पुरख के प्रति आकृष्ट देखकर उसमें जो ईर्ष्या होती है वह थोड़े को प्राप्त करने के लिए उसे अधिक प्रेरणा देती है। इसी तरह कथानायक मी एस्तेटीन के भूत और अभिष्य की चिन्ता कर ईर्ष्या करता है जिससे उसके हृदय की भावनाएं अधिक तीव्रता पकड़ती हैं। प्रूस्ट ने इन बातों का सत्यन्त सूक्ष्म विवरण किया है।

३१६ प्रेम और आवेष्ट—प्रेम और आवेष्ट का पारस्परिक सम्बन्ध कई यूरोपीय सपन्यासों में प्रकट किया गया है। पुरुष का आवेष्ट तथा स्त्री के विकारों को उल्लिखित करता है। ई एम फास्टर के 'बिड़कीवाला कमरा' (ए कम बिग ए ब्यू) नामक सपन्यास का विषय यही है। इसमें नायिका सूफी के प्रेम के दो रूप दिखाए गए हैं। सेसिल से उसके विवाह का निश्चय हो चुका है। दोनों कुलीन व्यक्तियों के समान समझित और स्निग्ध व्यवहार करते हैं। यह प्रेम विकाररहित और निर्जीव है। इसके विरुद्ध सूफी से मार्ब का प्रेम बहुत ही आवेष्टपूर्ण होने के कारण सूफी के विकारों को भी जागरित करनेवाला है। एक-एक कुम्भन के वर्णन में फास्टर ने दोनों का अन्तर दिखा दिया है।

मर्बी के किनारे घूमती हुई सूफी एक बगीचे में पा जाती है। बातावरण उत्तम है। असावधानी के कारण अचानक वह गिर पड़ती है और चीम ही उठ खड़ी होकर चारों ओर के अनुपम सी-वर्ब के प्रति ध्यान केरती है।

'उसकी आंखें खुलकर जाग ने खुलकर देखा : एक निमिष के लिए उसको लगा कि वह स्वर्ग से गिर पड़ी है। उसने देखा कि उसके मुख पर ध्यान की धामा फैली हुई है और फूलों के झरझोर से उसके कपड़ों पर भीली लहरें उठ रही हैं। उसने जल्दी घाने बढ़कर उसे बुल लिया।'

सूफी को न बोलने का अवसर मिलता है न समझने का। पर इस आवेष्टमय कुम्भन से वह प्रभावित हो तो कोई आवेष्ट की बात नहीं। इसकी तुलना में सेसिल के प्रथम कुम्भन का वर्णन बेधिए। बातावरण उससे मिलता-जुलता ही है। सेसिल और सूफी भुम रहे हैं।

"सूफी मैं तुमसे एक चीज मांगना चाहता हूं जो अब तक मैंने नहीं मांगी है।

उमके मंथीर सख्त सुनकर वह धीमे बढ़कर उसके पास गई।

'क्या है सेसिल ?

'जो आज तक नहीं मांगी उस दिन भी नहीं, जब तुमने मुझसे प्यारी करने को पजी हुई थी ?

'हूँ।

'अब तक मैंने तुम्हें नहीं चुमा है।'

बहु यह सुनकर लाल-लाल हो गयी मागो उसके कहने का डंभ ठीक नहीं था ।
'नहीं नहीं किया था ।

तब मैं तुम्हारा खुम्बन करूँ ?'

'धन्यवाद कर लो सेसिल । तुम पहले ही कर सकते थे । मैं क्या तुमपर मरत पड़ती ?

उसने बड़े व्यावहारिक ढंग से अपना बूट हटा दिया ।''^१

इसके बाद वह खुम्बन करता है पर उसे ज्ञात होता है कि वह पराजय थी । इस निर्जीव प्रेम से स्त्री कितनी निराश होती यह फास्टर् ने बिखा दिया है । यह एक ऐसा पुरुष है जो मित्र बनने सोच्य है पति बनने नहीं । लुसी चार्ज से 'नहीं-नहीं' करके भी बारबार उसके बंध में हो जाती है और उसके पुरुषत्व के लिए उसका भार बढ़ाती है ।

इसी प्रकार का एक प्रसंग 'बुद्ध और धाम्पि' में भी पाया है । जब गतास्ता बोरिस से और धाम्पि निकोलास से मिलती है तब प्रथम बोड़ी का मिलन धाम्प और निर्जीव है प्रत्येक उसका पराजित होना निश्चित ज्ञात होता है । इसके विरुद्ध क्रोध और धाम्प की धांधली से भरा सोनिया और निकोलास का खुम्बन उनको सदा के लिए बांध देता कोई धातुधर्म की बात नहीं है । इसी प्रकार सोमोखोव के 'चोन' उपन्यासों में गतास्ता के प्रथम प्रेम और प्रथमीनिया के धातुधर्म प्रेम की भी तुलना की गयी है । यद्यपि ये उपन्यास मनोवैज्ञानिक नहीं हैं, तो भी उनका मनोवैज्ञानिक आधार कम कम नहीं है । इन प्रसंगों की यहाँ चर्चा करने में हमारा ध्येय यूरोपीय उपन्यासों के सेक्स-सम्बन्धी विस्लेषण की प्रभावता को दिखाना ही है । ऐसे प्रसंग अन्य कई उपन्यासों में भी मिलते हैं, सबका उल्लेख यहाँ संभव है ।

३१७ - विरक्त यौन-आचार, प्रकृति-विरक्त काम और प्रगल्भ-मन—हिन्दी (और अन्य भारतीय भाषाओं) के उपन्यासों की तुलना में यूरोपीय उपन्यासों की एक विशेषता यह है कि उनमें सेक्स-सम्बन्धी भावों की अधिक लुमी चर्चा की जाती है प्रत्येक और विरक्त सम्बन्धों का भी विस्लेषण किया जाता है । प्राधुनिक यूरोपीय उपन्यास में सैंगिक जीवन के सभी पहलुओं का—बहु जाह्न प्राकृतिक हों या प्रकृति विरक्त—कलात्मक ढंग से और बहानात्मक सूक्ष्मता से विस्लेषण करने की प्रवृत्ति मिलती है । अधिकतर उपन्यासकारों ने पूर्ण गमना और प्रसन्नता तक पहुँचाए बिना और प्रथम भावि मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों का आधार लेकर यौन-जीवन को कला का विषय बना दिया है ।

स्त्री-पुरुष के सामान्य स्वाभाविक गति के धातुधर्म के धातुधर्म काम-वासना के कई विरक्त रूप भी होते हैं । सैंगिक धातुधर्म प्रवृत्ति और समान-विरोधी रूप में प्रकट होनेवाले सैंगिक व्यवहार भावि इनमें मुख्य हैं । यूरोपीय उपन्यासों में इन सबकी संकुलता का विस्लेषण किया गया है ।

सर्लैंगिक प्रेम की चर्चा फ्रॉय के कई उपन्यासों में की गई है। रोम्या रोमों के 'बी बिस्ताफे' में बिस्ताफे और धोटो के बीच जो आकर्षण विकसित होता है, उसकी चर्चा हम कर आए हैं।^१ फ्रूस्ट और बीर के उपन्यासों में सर्लैंगिक प्रेम का बिस्तृत एवं सूक्ष्म अध्ययन है। फ्रूस्ट के 'मुलकास परवेकस' के 'साथेम और मोमोट' नामक भाग में स्वयं सम्मोन का बहुत कुछ गन्म बिचल हुआ है। इस अप्राकृतिक प्रवृत्ति का ब्रह्मा निक कारण फ्रूस्ट ने दिखाया है। प्रत्येक पुरुष और स्त्री में पुरुषत्व और स्त्रीत्व बिभिन्न मात्राओं में होते हैं यही सर्लैंगिक आसक्ति का कारण है। फ्रूस्ट का एक प्रसव बैल्लिए

"मराम बबुबर्ट सबमुब एक पुरुष बी। यह बात उतने महत्व की नहीं है कि वह सदा ही पुरुष बी या उस समय जब मैंने उसे देखा पुरुष के रूप में विकसित हो रही बी। क्योंकि सच्ची बात दोनों में कोई भी हो—बिधेपकर बूसरी बात ही सच हो—तो हमें यहाँ प्रकृति के ऐसे एक हार्मिक आसक्त्य भरे सत्य की चर्चा करनी पड़ रही है जो मनुष्य वर्ग की पुष्प वर्ग से समता को प्रमासित करता है। इस तरह के बीच बिज्ञान पर आचारित अध्ययन फ्रूस्ट ने कई जगह मिलते हैं। धान्ने बीर के 'बिनीबियेव' की नामिका बिनीबियेव अपने क्लास में पढ़नेवासी एक बहुवी सड़की के प्रति प्रकृति बिद्वत् काम-वृत्ति का प्रकटन करती है। जब उसके मा-बाप इस बात को जानकर उसे डांटते हैं तो वह अपनी स्वतन्त्रता की बोपणा करने के लिए पारिवारिक डाक्टर के पास आकर प्रार्थना करती है कि वह उस रमिणी बना दे। बीर के 'सोटी टक्काची' नामक उपन्यास में जाबे नामक एक बालक कुछ बोरी करता है। एबबर्ज नामक पुरुष जो उसे चोरी करके पकड़ लेता है उसपर आसक्त हो जाता है और उसका प्रेम क्लमथ विकसित होता जाता है। अरिड जर्नल उपन्यासकार नामस मान के 'बेनिस में एक मरण' नामक छोटे-से उपन्यास में एक बूढ़ की कथा है जो एक बालक के प्रति अपने मन में उत्पन्न प्रेम का दमन करते हुए मरता है।

प्रकृति-बिद्वत् काम का बूसरा रूप धगम्म व्यक्तियों पर आसक्ति है। यद्यपि हमारे उपन्यास-साहित्य में कुसिष्ठ से कुसिष्ठ विषयों की निरावृत्त चर्चाएँ मिलती हैं तथापि माठा बहुत आदि के प्रति पुरुष की लैंगिक आसक्ति का उल्लेख तक करने की बूझता हमारे किसी लेखक को नहीं हुई है। धायर हमारी मानसिक संस्कृति ही इसका कारण है। धगम्म-जमन से सम्मन्विष्ठ हिन्दी का एक ही उपन्यास जो हमारे देखने में आया आरकाप्रसाद का हास में प्रकाशित 'बेरे के बाहर' है जो अल्पकाल में ही बहुत बदनाम हो चुका है और कई स्थानों पर सरकारी निरोध धाजा का पाव बन चुका है। इसमें कुमार नामक युवक के अपनी अचोरी बहुत नीर के प्रति प्रेम की कथा है। लेखक ने इस प्रेम को धागे बढ़ाते हुए कहीं-कहीं धरणीलता (?) की जरम सीमा तक पहुँचा दिया है। किन्तु इस उपन्यास के सुखों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। लेखक ने इसमें हृदय के आर्थों का बिध ईमासचारी से बिचल किया है और मनोमाधों

को व्यञ्जित करनेवाली छोटी-छोटी क्रियाओं का जिस सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया है वे शायद ही हिन्दी के अन्य किसी उपन्यासकार में मिलेगा। लेखक सामाजिक मोक्षपर्य पर भी कुछ ध्यान रखता तो शायद हिन्दी में जीव या मूस्ट का कोई सप्रु संस्करण उपस्थित कर सकता। इसके प्रतिरिक्त हिन्दी में अग्रगण्य-मनन का विस्तेरण करनेवाले उपन्यास नहीं के बराबर हैं।

किन्तु यूरोपीय साहित्य में यह अत्यन्त ग्रीक उपन्यासों का विषय है। डी एच कारेन्स के बड़े धीरे प्रदी' में पात्र मोरल धीरे उसकी माता का पारस्परिक आकर्षण इतिवृत्त प्रन्वि का उदाहरण है। यद्यपि उनका सम्बन्ध शारीरिक दृष्टि से पति-माली का नहीं है तो भी मानसिक दृष्टि से बहुत कुछ साम्य-भाव का ही है। एक बार पात्र माता को पुमाने ले जाता है धीरे चाय घास में बहुत रुच करता है। इस प्रसंग की उनकी बातचीत उनके पारस्परिक सम्बन्ध को प्रकट करती है।

"यह मत समझे कि मुझे यह पसन्द है" वह मांस का टुकड़ा खाते हुए बोली "मैं इसे पसन्द नहीं करती मुझे वस्तुतः यह पसन्द नहीं। तुम समझ लो कि तुम्हारे पीछे बरबाद हो गए।"

"मेरे पंखों की तुम चिन्ता न करो" वह बोला "धीरे मूस आगो में अपनी प्रमिका के साथ झुमने निकला हू।

धीरे एक प्रसंग में पात्र माता से कहता है "एक घाबरी की मां मुझ क्यों नहीं हो सकती? वह किसलिए बूढ़ी होती है? तुम किसलिए बूढ़ी हो?"^१

अने ही ये दोनों जान-बूझकर पाप की धोर नहीं जा रहे हों तो भी यह निश्चित है कि अचेतन में अवस्थित काम-शक्ति ही उनकी पारस्परिक आसक्ति का कारण है।

अग्रगण्य-मनन से सम्बन्धित दो विश्वप्रसिद्ध अर्मन उपन्यासों का भी उल्लेख यहाँ अवश्य नहीं है। प्रथम नामस मान का 'पवित्र पापों' (द्वि होली सिनर) है। इसकी नायिका की मां बहूभा अपने पति से छान्ता न पाने से एक घाब बिधप से सम्बन्ध जोन्कर दो कुड़बे बच्चों को जन्म देती है—एक बालक विनिविद बूछरी बालिका विविता। बच्चा प्राप्त होने पर वे दोनों एक-दूसरे पर आसक्त हो जाते हैं। उनके एक पुत्र उत्पन्न होता है। इस पाप के बाद विनिविद तीर्थ यात्रा के लिए जाता जाता है पुत्र भी धीरे कहीं भेजा जाता है। कुछ वर्षों के बाद पुत्र उस देश पर विजय प्राप्त कर अपनी ही माता से विवाह करता है। उनके दो बच्चे पैदा होते हैं। इसके बाद एक्स को जानकर वह संन्यास के लिए जाता जाता है बाद में पोप बनाया जाता है। नामस मान ने इस धर्म-अनौर्ध्वानिक कथा को कुछ वास्तविक भी बना दिया है। यहाँ दो बातें उल्लेखनीय हैं। इस कथा में जो धार्मिक सम्बन्ध हुए हैं, वे प्रायः संयोग से धीरे मनमान में हुए हैं, अतः उन्हें मनोवैज्ञानिक रूप नहीं मिलता। बूछरी बाद यह

१. Sons and Lovers, P 294

२. Sons and Lovers, P 296.

है कि वामन मान यहाँ पाप और पुण्य की ही विवेचना करना चाहते हैं और पाप से पुण्य की ओर जानेवाले एक व्यक्ति का चरित्र उपस्थित करते हैं। और एक वर्त्मन उपन्यासकार योहान राबेनर का 'जीने की विधि' अधिक मनोवैज्ञानिक है। इसकी विषयात्मिका विषयका पुनर्निर्माण के लिए विवेचन गया है कई प्रेमियों से सम्बन्ध रखती है। जब पुनर्निर्माण होता है तब उसे भी वह अपना प्रेमी बना लेती है। कुछ वर्षों के इस रहस्य-सम्बन्ध के बाद वह मुझ एक मक्की से विवाह कर लेता है। इसपर कुपित माता उनके जीवन को विनष्ट करने का प्रयत्न करती है। अन्त में जब वह बच का प्रयोग कर पुनर्निर्माण से फिर सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है पुनर्निर्माण से उसे मार जाता है।

इस प्रकार के वैज्ञानिक जीवन की विविधियों का विश्लेषण आधुनिक यूरोपीय उपन्यास की विशेषता है। यहाँ ही इनसे कुछ मानसिक प्रभावों पर तथा कुछ मनो-वैज्ञानिक एवं जन्तुवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर प्रकाश पड़ता हो तो भी सामाजिक दृष्टि से इनका मुख्य सन्देश है। व्यक्तिगत का भी पूरा अध्ययन इनमें नहीं मिलता अतः इनसे मनुष्य को व्यक्ति रूप में समझना भी असम्भव है। हिन्दी में जब तक ऐसे उपन्यासों की रचना नहीं हुई है। हमारी मानसिक संस्कृति तथा सामाजिक आदर्श ही इसके कारस ब्रत होते हैं।

७

हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की कुछ बसहोनताएँ

प्रस्तुत अध्ययन में जो विवेचन किया गया है उससे स्पष्ट होता कि हिन्दी में पर्याप्त मात्रा में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना हुई है। परन्तु उनमें कई कमियाँ भी रह गई हैं।

३१८ विषय की दृष्टि से देखा जाए तो हमारे मनोवैज्ञानिक उपन्यास का सबसे बड़ा दोष अस्वाभाविकता है। शुनीता से लेकर आब तक जितने उपन्यास प्रकाशित हुए हैं उन सबमें कोई बहुत कल्पित घटनाएँ घटनाएँ मिलती हैं। कहीं कहीं यह कल्पना रोमांस की सीमा तक पहुँच जाती है जो मनोवैज्ञानिक उपन्यास की वैज्ञानिकता के लिए हानिकारक है। हर प्रकार का विज्ञान सत्य का समर्थन सत्य का समर्थण और सत्य का परीक्षण करता है। यहाँ वैज्ञानिक सत्य की ओर से बहुत भी मुँह मोड़ लेता है यहाँ वह अपने वास्तव का पालन नहीं कर सकता। हिन्दी के अधिकांश उपन्यासों में जीवन के बचावों के प्रति धार्मिक ध्यान नहीं दिया गया है। प्रायः सब के कथानक कुछ विभिन्न घटनाओं से भरे रहते हैं जिसका हम जगह-जगह पर उल्लेख कर चुके हैं। वैज्ञानिक जोड़ी भारतीय या वैज्ञानिक कोई भी इस दोष से मुक्त नहीं है। जोड़ी की कल्पना तो इतनी ऊँची उड़ान भरती है कि उनके उपन्यासों को पढ़ते समय

कभी-कभी 'धलीबाबा धीर बासीस बोर' 'बम्बकान्ता' और 'बम्बकान्ता सन्तति' की याद आती है। 'प्रथ धीर छाया' में मंजरी का होटल जीवन और उसमें पुरुषों का व्यवहार मुजीरिया और नन्दिनी के पारस्परिक व्यवहार, मुजीरिया के घर में न रहते समय नन्दिनी और पारसनाथ के व्यवहार आदि एक अच्छे रोमांस के लिए उपयुक्त विषय हैं। 'बहादुर का पंछी' में बटनार्थ मिश्रा ही सम्भव है। वह घनत में एक 'भानु मती की पिछरी' है जिसमें समाज की सभी कुत्सित कृतियों के नमूने प्राप्त किए गए हैं। बोधीबी के अन्य उपन्यास भी इन दोष से मुक्त नहीं हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों की भी सुनीता कट्टो मृणाल कल्याण जयन्त भिरेण आदि के व्यवहारों को यन्त्र की कसौटी पर कपने पर उनका मुख्य मंदिर हो जाता है। केवल अज्ञेय के उपन्यासों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि उनके पात्रों के व्यवहार साधारण होने पर भी अस्वाभाविक नहीं हैं। अज्ञेय ने प्रायः किसी भाव पर पाठक का ध्यान केन्द्रित करने के लिए, और उसे तीव्रतम रूप में प्रकट करने के लिए अतिरंजन से काम लिया है। यह अतिरंजन अधिक हानिकारक नहीं हुआ है—बल्कि कहीं-कहीं उपयोगी भी हुआ है।

जीवन में विषमता साधारणता तथा असामंजस्य कम नहीं होने। अतः उपन्यास में इन सबका विरोध नहीं है। किन्तु यह कहना सही घुस होगी कि जीवन में विषमता साधारणता और असामंजस्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। लेकिन हमारे मनोवैज्ञानिक उपन्यास में इन सबके अतिरिक्त विशेष कुछ नहीं मिलता। उनके अधिकतर सम्भव और प्रसंग साधारण और कभी-कभी अस्वाभाविक भी हैं। प्रश्न उठता है कि क्या मनोविज्ञान साधारणता का विरोध नहीं कर सकता? क्या मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में साधारण परिस्थिति में साधारण व्यक्तियों के साधारण व्यवहारों और मनोभावों का अध्ययन नहीं किया जा सकता है? निश्चित ही किया जा सकता है किन्तु हमारे किन्ते उपन्यासकारों ने इसका प्रयास किया है?

११६. जब लेखक को मनोभावों का विरोध करना पड़ता है तब विषय की सीमित बनावट किसी एक भाव पर आधारित रहना उपयोगी होना। इससे मनोभाव का विकास अधिक सुगम हो जाता है जैसे 'सुनीता' 'मुक्तिपथ' आदि में। किन्तु हमारे कई उपन्यासकारों ने विषयवस्तु के प्रति ध्यान नहीं दिया है। जैनेन्द्र के 'बसंती' और 'विगत' की बटनार्थों को एक-एक मुख में बाँधकर उनमें हृदय सम्बन्ध माना कठिन है। इनके कथानक मुख्यतः एक-एक व्यक्ति से सम्बन्धित हैं फिर उनमें अभी तरह की एकाग्रता नहीं है जो 'सुनीता' और 'मुक्तिपथ' में है। बोधीबी के 'बहादुर का पंछी' में यह दोष सबसे अधिक है। यह तरह की विषयवस्तु-निहीनता के कारण उपन्यास में पात्रों के भावों के क्रमिक विकास का अवसर नहीं मिलता और न उन मनोभावों के सूक्ष्म और प्रगाढ़ अध्ययन की सुविधा ही।

हमारे मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की दूसरी बलाहीनता यह है कि उनमें मनोभावों

को मृत रूप में प्रकट करने के बरसे सेलकों ने स्वयं उनका बिस्सेपण किया है या पात्रों से ही कराया है। बोरीजी के उपन्यासों में यह शेष सबसे अधिक है जिसकी चर्चा हम कर पाए हैं।^१

३२ तीसरा उल्लेखनीय शेष सेलक के अपने विचारों का निरावृत्त प्रकटन है। साधारणतया सामाजिक उपन्यासों में विचारों पकनेवासे इस शेष से हमारे मनो-वैज्ञानिक उपन्यास भी मुक्त नहीं हैं। बस कसा ही अमूर्त रूप में सिद्धान्तों के प्रति पात्रों का बिरोधी है। फिर विज्ञान का आचार भी लेकर चलनेवाले उपन्यास में यह अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होता है। पात्रों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का निरीक्षण परीक्षण और बिस्सेपण करने के बरसे सेलक कतपर अपने विचार लाव दे तो वह कार्य वैज्ञानिक प्रत्यासी के अक्षर्यत नहीं माना जायगा। हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में यह शेष दो रूपों में आया है। इसाचन्द्र बोरी के उपन्यासों में समाज नीति से सम्बन्धित है तथा उनमें नैतिक विचारों का आधिक्य है। इन विचारों को पात्रों के लम्बे-लम्बे भाषणों द्वारा प्रकट करके मनोविस्सेपण को बहुत ही दुर्बल बनाया गया है। अज्ञेय के 'सेखर' में सेखर के एष्टीमानम कसब की स्थापना से लेकर उच्चनीतिक तथा समाज धार्मिक विचारों का प्रवर्तन है किन्तु अज्ञेय ने नीरस वापसों से उपन्यास को अधिक बोझिल नहीं बनाया है। इस शेष का दूसरा रूप वार्त्तिक विचारों के रूप में है जो बनेन्द्र के उपन्यासों में प्रचुरता में है। बनेन्द्र के सभी प्रमुख पात्र कोई न कोई वार्त्तिक तत्त्व लिए जीवित रहते हैं। और यही वार्त्तिक तत्त्व मुनीठा बट्टो मुणाल आदि पात्रों के आदर्श रूप का कारण है। बीच-बीच में जीवन के सिद्धान्तों की गम्भीर विवेचना करना बनेन्द्र की साधारण प्रवृत्ति है। किन्तु इस विवेचना से पात्रों का मनो-वैज्ञानिक अध्ययन कमजोर हो जाता है, क्योंकि ये वार्त्तिक सिद्धान्त और विचार वस्तुतः बनेन्द्र के ही मस्तिष्क की उपज हैं।

३२१ और एक शेष जो इन उपन्यासों में मिलता है वह अभाव वैज्ञानिक अध्ययन की कमी है। पात्र के सूक्ष्म से सूक्ष्म अध्ययन से ही मनोवैज्ञानिक उपन्यास सफल हो सकता है। व्यक्तियों के विविध संकुल भावों का तथा मानसिक प्रक्रियाओं का विवेक निरीक्षण अज्ञेय के प्रतिरिक्त और किसी उपन्यासकार में नहीं है। अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में विशेषकर 'नही के दीप' में हृदय के निःशब्द भाव स्पर्शनों को जो बाणी की है वह अद्वितीय है। 'सेखर' में भी इस बात में वे काफी सफल हुए हैं। पर अन्य उपन्यासकारों ने इस विषय के प्रति अनास्था ही विचार्य है।

एक बात से यह स्पष्ट होगी। प्रुस्ट के उपन्यास को पढ़ते समय प्रतीत होता है कि प्रत्येक व्यक्ति में धनेक व्यक्ति रहते हैं। दो पात्रों में सम्मापण हो तो उस घबरा में ऐसा प्रतीत होता है कि दो नहीं कई व्यक्ति मौल रहे हैं। उदाहरण के लिए माग जीमिए 'अ' और 'ब' के बीच बातचीत हो रही है। जब वस्तुतः 'अ' और 'ब' दो बोलते ही हैं। पर दोनों में कई व्यक्तित्व प्रकट होते हैं। जैसे

‘घ’ का वह रूप जो वस्तुतः उद्यत है ।

‘घ’ अपने-आपको जैसा देखता है वह रूप

‘घ’ अपने को ‘ब’ के सामने जैसा प्रकट करना चाहता है वह रूप

‘घ’ को ‘ब’ जिस रूप में देखता है वह रूप

‘घ’ का वह रूप जिसे वह यह जानकर स्वीकृत करता है कि ‘ब’ मुझे क्या समझता है ।

इसी तरह ‘ब’ के भी कई रूप प्रकट होते हैं । सम्भाषण के प्रसंग में इस प्रकार कई ‘घ’ और कई ‘ब’ बोलते हैं । यह निश्चित है प्रेम्बर के सभी पात्रों में व्यक्तित्व के ऐसे सभी संकुल रूप नहीं मिलते । लेकिन साधारणतया उनके पात्रों में दुहरे तिहरे व्यक्तित्व मिलते हैं । स्नान और ओडेट के प्रेम के प्रसंग में यह बहुत स्पष्ट है । दोनों एक-दूसरे के सामने जो रूप प्रकट करते हैं दोनों एक-दूसरे को क्या समझते हैं और दोनों वस्तुतः क्या हैं ? इन सबका परिचय हमें मिल जाता है । विभिन्न व्यक्तियों की उपस्थिति में उनके पारस्परिक भावों में वास्तव या जाता है । माण्ड्या का ‘जो जो गया’ में हेर्ब का व्यक्तित्व भी इसी प्रकार संकुल है ।

हिन्दी के किसी मनोवैज्ञानिक उपन्यास में व्यक्तित्व की ऐसी संकुलता की ओर ध्यान ही नहीं दिया गया है । हमारे अधिकांश पात्र एक-एक व्यक्तित्व विशेषता (Personality trait) का प्रतिनिधित्व करते हैं, यद्यपि संकुलता के अभाव में जीवन से कुछ दूर हो जाते हैं । इसी तरह प्रत्येक पुरुष और स्त्री में विभिन्न भावार्थों में जो पुंस्वत्व और स्त्रीत्व निहित रहते हैं उनको भी हिन्दी उपन्यासकारों ने नहीं देखा है । हमारे उपन्यासों के व्यक्तित्व की संकुलता वस्तुतः व्यक्तित्व में नहीं है उनकी अगम्य अप्रमाणी तथा विविध बलभावधर्मों में है ।

छातर्षा मध्याम यथार्थ, आदर्श और इनसे संबंधित वाद

१

यथार्थ और आदर्श

३२२ कथा और उपन्यास यद्यपि कल्पना की सृष्टि हैं तो भी उनके सबसे सत्य निहित रहता है। कभी-कभी इनमें प्रतिपादित सत्य हमारे इन्द्रियानुभूत सत्वों का भी परिक्रमण कर जाता है। इस कारण से जीवन को समझने में कथा और उपन्यास अत्यन्त उपयोगी हैं।

“कथा (साहित्य) सत्य की बड़ी बहन है जब तक किसी एक व्यक्ति के एक कथा नहीं कही तब तक संसार में किसीने न जाना कि सत्य क्या है।”

क्रिप्पिंग के ये शब्द उपन्यास के एक महान एष अनिवार्य गुण की ओर संकेत करते हैं। उपन्यास संसार के (जीवन के) सत्य को स्पष्ट कर दिखाता है। ऐसे सत्य को जो साधारण दृष्टि में धनबेसा रह जाता है। उपन्यासकार अपनी सबग दृष्टि से जीवन को देखता है, अपने चेतन हृदय से जीवन के सत्य की अनुभूति करता है। उन अनुभूतियों को प्रभावशाली वाणी में व्यक्त करता है। वही कथा वा उपन्यास प्रभावशाली और प्रसन्नतादायक हो सकता है जो सत्य के निकट हो। वह सिद्धान्त बहुत पुराने काल में ही मान्य था।^१ और आज सत्य ही उपन्यास का आधार है। चाहे वह सत्य किसी रूप में हो।

उपन्यास का सत्य

३२३ वैज्ञानिक सत्य और औपन्यासिक सत्य में बहुत बड़ा अंतर होता है। यथार्थ और यथार्थवाद सत्वों का धर्म प्राप्त हो सत्वों में किया जा सकता है। वस्तु-स्थिति के यथार्थ को उसी रूप में प्रकट करने की सामान्यतः यथार्थवाद कहा जाता है। दूसरे धर्म में वस्तु या विषय के यथार्थ न होने पर भी उसे इस ढंग से प्रकट करना कि वह यथार्थ ज्ञात हो यथार्थवाद है।^२ सत्य नहीं सत्य का आभास

१ Fiction is truth's elder sister No one in the world know what truth was till some one told a story

—Rudyard Kipling, Quoted in Art and Practice of Fiction P 29

२. “Ficta voluptatis causa sint proxima veris”—Horace.

३ “Depicting things as they are or as they appear is the commoner sense of realism. Realism in the other sense is the art of

उपन्यास में (और अन्य कथाओं में भी) सत्य है। उपन्यास में वर्णित विषय विभिन्न हो भौतिक सत्य से दूर हो तो भी उससे सत्य का आभास हो और वह किसी प्रकार सत्य का ही प्रभाव उत्पन्न करे, तो वह असत्य भी सत्य है। इसके विरुद्ध जीवन का कोई सत्य अपने वास्तविक रूप में उपन्यास का विषय बनकर भी अपना पूरा प्रभाव न डाल सके तो वह सत्य भी असत्य माना जायगा। सत्य का विवेचन करते हुए कलाकार की दृष्टि वस्तु की सत्यता पर नहीं रखती वस्तु द्वारा उत्पन्न प्रभाव की सत्यता पर रखती है। इस प्रभाव की पूर्णता की रक्षा के लिए उपन्यासकार को प्रायः सत्य के रूप को बदलना भी पड़ता है।

१२४ सत्य के विपर्यय के कारण—इस तरह सत्य के रूप को परिवर्तित करने के कई कारण होते हैं। प्रथम तो उपन्यासकार अपनी प्रतिबिम्ब-शक्ति की परिमिति के कारण सत्य को उसी रूप में प्रतिबिम्बित करने में ही असमर्थ रहता है। अगर कोई कलाकार अपनी ओर से कुछ न कुछ केवल वस्तु का यथार्थ रूप छठारने का प्रयत्न करे तो उसे सदा पूर्णत्व के नीचे ही रहना पड़ेगा। ऐसी रक्षा में प्रतिबिम्ब का धूम्र बिंदु के मध्य से बट जाता है।

दूसरी बात अधिक महत्वपूर्ण है। जैसे वास्तव में कहा है 'कला एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म रूप में अनुभूत अनुभूतियाँ इतने स्पष्ट रूप में सायी जाती हैं कि वे अर्थों की भी अनुभूति के योग्य बन सकें।'^१ वस्तु के वास्तविक रूप के विषय का सर्वोच्च विचार-भाव नहीं है बल्कि वास्तविक वस्तु को प्रभाव उत्पन्न करती है वह प्रभाव विषय द्वारा उपस्थित करता है। प्रायः समाज या किसी व्यक्ति का कोई एक कलाकार को प्रभावित करता है, लेकिन वही एक अन्यो को प्रभावित नहीं करता। कलाकार अपने विषय द्वारा वही प्रभाव दूसरों पर उत्पन्न करना चाहता है, जो स्वयं वस्तु, कलाकार पर उत्पन्न करता है। यथित की भाषा में कहें तो वस्तु, कलाकार प्रतिबिम्ब पाठक इनका संबंध बँधेगा

वस्तु कलाकार प्रतिबिम्ब पाठक

वस्तु किसी व्यक्ति पर जो प्रभाव उत्पन्न करता है वही प्रभाव अपने विषय द्वारा उत्पन्न करना कलाकार का ध्येय नहीं रहता बल्कि वह अपने मन पर

making anything that may be imagined to look real, it may even make the impossible seem possible.

—Baker The History of the English Novel, Part VII, P 330.

{ Artistic (and also scientific) creation is such mental activity as brings dimly perceived feelings (or thoughts) to such a degree of clearness that these feelings (or thoughts) are transmitted to other people

—Tolstoy Essay on Art, compiled in 'What is Art & Essays on Art' P 51

देता है। जबकि आदर्शवाद वस्तु के व्यक्त सत्य को न मानकर, उस व्यक्त सत्य के परे उपस्थित उसकी आदर्शमय (Ideal) सत्ता को वास्तविक मानता है। प्लेटो काण्ट, हीगल, हेगल आदि आदर्शवादियों के अनुसार हमारा व्यक्त सत्य वास्तविक सत्य नहीं है। इसके विरुद्ध महार्थवादी इसी व्यक्त सत्य को वास्तविक मानता है। उसके अतिरिक्त उससे परे किसी अन्य पूर्ण एवं अनन्त सत्ता की कल्पना उस सहा नहीं है।

महार्थवाद इस संसार को इसके जीवन को और जीवन के समस्त वर्गों को महार्थ मानकर उनको समझने का प्रयत्न करता है। इसे समझने के सतत प्रयत्न से ही महार्थवादी कला बन्म लेती है। पर आदर्शवादी इन सबको अपूर्ण मानकर एक पूर्णता की ओर उन्मुख रहता है। आदर्शवादी दर्शन का यह सिद्धान्त आदर्शवादी कला का भी आधार है।

सामान्यतः माना जाता है कि महार्थवाद ही मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। आदर्शवाद एक तरह का विलम्बाचार है जो मानव के धर्म तक के संश्लिष्ट भाग का निषेध करता है।^१ आदर्शवाद की आधार-भित्ति भी महार्थवाद ही है। अपनी या सामाजिक मान्यताओं के अनुसार महार्थों का खोली-विभाजन कर स्वीकृति या निषेध करना आदर्शवाद है।^२

उपन्यास जीवन का ज्ञान है। और जीवन का ज्ञान संश्लिष्ट करने में महार्थवादी और आदर्शवादी के दृष्टिकोण बिलकुल भिन्न हैं। महार्थवादी समझता है कि वास्तविक ज्ञान तभी प्राप्य है जब वस्तु ज्ञाता से स्वतंत्र हो और आदर्शवादी का सिद्धान्त है कि वस्तु-ज्ञाता से पूर्णतः स्वतंत्र हो तो ज्ञान असंभव है। इन दोनों में किस दृष्टिकोण से उपन्यास उत्कृष्टता पाता है और विभिन्न उपन्यासकारों ने किसको किस रूप में ग्रहण किया है यही हमारी चर्चा का विषय है। पहले ही हमें मानना पड़गा कि इन दोनों बातों की अपनी-अपनी सीमाएँ हैं और उपन्यास में धाकर उनके रूप में भी हार्ड निक रूप से बहुत कुछ मिलाटा या सफाई है क्योंकि आदर्शवाद के सिद्धान्त प्रसूत रूप में ही रहते हैं, जबकि उपन्यासकार को इन सिद्धान्तों को मूर्त रूप देकर उपस्थित करना पड़ता है।

महार्थवाद की सीमाएँ

३२८ मनुष्य की ज्ञान-साधना की शक्तियाँ स्वयं परिमित होती हैं। यतः

१. "It is generally assumed by idealists no less than realists that realism is natural attitude of man, that idealism appears only as the result of sophistication or a malicious criticism of human knowledge."

—Urban Beyond Realism and Idealism P 40.

२. "Idealism starts from a basis of realistic vision but deliberately selects and rejects from the plethora of facts"

—H. Read Art & Society P 249

वह वास्तविक सत्य का ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। यथार्थ का ज्ञान अपने-आप नहीं होता ज्ञान के लिए मनुष्य को अपनी बुद्धि एवं मन को भी प्रवृत्त करना पड़ता है। जब मनुष्य की बुद्धि एवं मन ज्ञान-प्राप्ति के उपादान बनते हैं, तब वस्तु के वास्तविक अध्ययन कदा तक संभाव्य है? निश्चित ही यात्रा तक मनुष्य ने जो ज्ञान राशि संभित की है वह पूर्ण नहीं उसका बहुत कुछ विकास अभी बाकी है। किन्तु इस अपूर्णता के कारण यथार्थवाद का विरुद्धकार नहीं किया जाता। हमारा संबंधित ज्ञान कितना भी अपूर्ण हो उसमें कितनी ही त्रुटियाँ हों हमें उसीके आधार पर धार्य भी सत्य को ढूँढना है। यद्यपि हमारा पूर्वसंबंधित ज्ञान ही सत्य के समस्त ज्ञानार्जन की नींव छहरता है।

यहाँ तक कहा जा सकता है यथार्थवादी वस्तु के पूर्ण और वास्तविक रूप को उसी तरह ज्ञान में उतारनेवाला नहीं है। 'आधुनिक यथार्थवादी केवल यथार्थ का प्रतिबिम्ब करनेवाला नहीं है। वह यथार्थ से प्रेम करता है और उस प्रेम को स्वीकृत करता है और यही उसे सत्य बनाता है। वह सत्य इसलिए है कि वह यथार्थ के रूप का उसी तरह अनुसरण करने के बल पर अपने दृष्टानुसार वस्तुओं का पुनर्चित्रण करता है। वह संसार को अच्छ-बुरा करके उन चीजों का उपयोग कर निर्माण करता है जैसे कोई वास्तविक चीज़ की ईंटों से भवन निर्माण करता है। वह सज्जन करता है।^१ यथार्थवादी धार्य इस तरह का सज्जन न करे तो कलाकार न बनेगा और धार्य ऐसा सज्जन करे तो उसे तथ्यों से बहुत कुछ दूरी पड़ता है। यथार्थ से प्रेम करना संसार के अच्छ-बुरा करके उनसे अपने दृष्टानुसार रूप का निर्माण करना इन सब प्रवृत्तियों से उनका धार्य उसका आदर्श ही मुख्यतया काम करता है। पर यह भी स्मरणीय है कि धार्य सत्य का धार्य धार्य नियंत्रित रहे, वह यथार्थ की सीमाओं के बाहर ही रहे तो ऐसा धार्य यथार्थ का विरोधी नहीं हो सकता।

यथार्थ को उसके पूर्णत्व में बनाए रखने के लिए और एक बात भी बाधक है। सत्य बुद्धि का विषय है और बुद्धि द्वारा उसका अध्ययन विज्ञान है। बुद्धि द्वारा विवेचित सत्यों को अनुभूति के क्षेत्र में लानेवाली नींव कहा है।^२ केवल यथार्थ या कुछ यथार्थ जैसे बुद्धि को प्रभावित करता है उसी तरह अनुभूति को नहीं प्रभावित करता। उस यथार्थ के एक ऐसे रूप का निर्माण करना पड़ता है जो अनुभूति-क्षेत्र में सम्मिलित हो। विज्ञान से सम्पन्न सत्य को कला का रूप देने में यथार्थवाद की बहुत सफलता रहती है।

१ "The error of realism has been to believe that the real reveals itself to contemplation, and that consequently one could draw an impartial picture of it. How could that be possible since the very perception is partial..?" —Sartre What is Literature P 44

२. Bourdoun Contemporary Studies, P 177

३ Sec —Tolstoy What is Art & Essays on Art, P 277

आदर्श आदर्शवाद और उनकी सीमाएं

३२६ आदर्श व्यक्ति सत्य से परे एक अभ्यस्त अस्तित्व है जिसकी कल्पना और जिसको प्राप्त करने का आग्रह और प्रयत्न मनुष्य करता आया है। जब मनुष्य संसार में स्पष्ट दिखाई पड़नेवाले प्रत्येक सुन्दर वस्तु का विनाश होते देखता है तब उसपर विरवास को बैठना अस्वाभाविक नहीं है। सुबह को अपनी रंगीन सौरभ दिखाते और मोहक सुगंध फैलाते हुए बिमलेबामा गुलाब का फूल शाम को झड़ जाता है रात के घबरे में जगमग करते तारे सुबह के जामल प्रकाश में ही लुप्त हो जाते हैं प्रातःकालीन आकाश का मोहक रक्त-रंग धीमे धीमे नष्ट हो जाता है पौष्पवर्षीय अनिल सुन्दरी युवती का मौन्य कुछ साशों में डबने लगता है इन सबको देखता हुआ मनुष्य इनके मौन्य पर अधिवास करे तो यह आश्चर्य की बात नहीं है। चिन्ताहीन मनुष्य इस अस्वास्थी मौन्य के पीछे एक स्थायी मौन्य-सत्ता का अन्वेषण करे तो वह सही है। वह हम जीवन में जो कुछ सुन्दर या असुन्दर है सबको नजर समझकर हमसे परे एक अनन्तर मत्त बुद्ध निकालने का प्रयत्न करता है। आदर्शवादी के अनुसार हम विश्व की प्रकृति ऐसी है कि इसमें सबसे जलद और सबसे मूल्यवान् वस्तुओं का विरस्तन विकाम करना चाहिए या समय-वर्ष के साथ-साथ अधिकाधिक प्रवाह और विस्तृत रूप में विकाम करना चाहिए।

निस्सन्देह जीवन का अधिकाधिक विकास साहित्य का ध्येय है अतः आदर्शवाद उसका प्रतिपादक है। पर इस आदर्शवाद की पक्षि सिमा तक होती यह भी सोचने की बात है। जैसे जैसे निराशावादी को भी मानना पड़ा कि जीवन में बहुत कुछ विकास हुआ है और होता रहता है। कम से कम कुछ क्षेत्रों में मनुष्य में वैयक्तिक एवं सामाजिक रूप में कई शोध हैं—नीच वृत्तियाँ और पाक्षिक विकार। पर इनके बीच में हम यथार्थ से भी इनकार नहीं कर सकते कि इसी मानव में एक उज्ज्वल स्फुलित प्रसूति होकर बच्चों के निरन्तर परिधम से अठ-अठ पीढ़ियों के संघर्ष से कई देशों में कई जातियों के कई संस्कृतियों के आचान प्रदान से अधिकाधिक उज्ज्वल होता आया है और आने भी होता रहेगा। इस तरह अपार परिधम से आज तक प्राप्त ज्ञान शक्ति का और बौद्धिक मानसिक आध्यात्मिक सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में हुए अम-वृद्ध विकास का निषेध नहीं किया जा सकता। इन सब विकासों को जीवन का आदर्श मानें तो अलङ्घ्य यथार्थवादी तथा आदर्शवादी भी रहेगा क्योंकि न के जीवन के यथार्थ होने के कारण यथार्थवादी इनकी अपेक्षा नहीं कर सकता। वस्तुतः आज तक जो विकास हुआ है वह यथार्थ है अतः यथार्थवादी का विषय है।

३ "By Idealism I understand the doctrine that the nature of the universe is such that those characteristics which are highest and most valuable must either be manifested eternally or must be manifested in greater and greater intensity and in a wider and wider extent as time goes on"

—Urban Beyond Realism & Idealism.

धामे निश्चित ही बिकास होया उस बिकास का मार्ग विज्ञाना और वह यन्त्र साध करना धारस्यवादी का कर्तव्य है । यही धारस्यवादी के यथ-विगमित होने की सम्भावना रहती है । धामे का मार्ग निर्धारित करने के लिए कमाकार को भूत और वर्तमान की यतिविधियों का धीरे-धीरे मनुष्य की अस्तिमो एवं सीमाओं का अध्ययन करना होया । धाम तक जो बिकास हुआ है उसीके आधार पर जीवन को धामे बढ़ाया जा सकता है । जो धारस्यवादी मूल और वर्तमान के जीवन का अध्ययन नये बिना—यथार्थवादी बने बिना—कहीं बिहुर से कोई धारस्य जीवन भाकर जीवन पर लागने का प्रयत्न करे, तो उसे विफल होना पड़ेगा । और धाम तक बिकास किन-किन लोगों में हुआ है ?

नैतिकता के क्षेत्र में धारस्यवाद ने कोई महत्वपूर्ण देन दी है यह बहुत सदिग्ध है । कितने ही बर्गों ने सैकड़ों बर्गों तक—बस्कि सैकड़ों बर्गों तक—मानवता के उद्धार का प्रयत्न किया । पर क्या हम धाम निश्चित रूप में कह सकते हैं कि मनुष्य उत्तरोत्तर एक उन्नततर नैतिक संस्कृति की ओर चलता आ रहा है ? मानवता का इतिहास कहता है नहीं । गुण-बोध मनुष्य में सदा सञ्च रहे हैं । अर्थात् सदा ही और समय के अनुसार इनके अनु-त में अन्तर आता होया—पर यह नहीं कह सकते कि कुछ बढ़ते ही आये हैं और बोध बढ़ते ही आये हैं । महाभारत कास से लेकर इस नू-कितवर युग तक अभिचार बंध नहीं हुआ है । धम और धम ईर्ष्या और क्रोध सोम और मोह मद और मात्सर्य का इतिहास पृथक् भूखसाबद्ध रहा है । 'नहि वेराणि सम्मन्ति दीर्घकालवृत्तान्यपि' सुविष्टिर क ईन सत्त्वों का सञ्च प्रमाण बीसवीं सती का पूर्वार्ध दो बार से चुका है । 'परिजाताय भावुना विनाशाय च दुष्कृता बर्ग भस्वा पनार्थाय सम्मन्वयि युगे युगे भगवान् न जन्म सेने पर भी ससार नैतिक क्षेत्र में धामे नहीं बढ़ा । भगवान् कुछ नहीं कर सके । सामाजिक नियमों और धार्मिक बन्धनों से कुछ नहीं हुआ । जब कभी बर्ग ने धामे भाकर मनुष्य को आर्थिक सुख के लिए बंध किया तो प्रकृति ने बिरोध किया । इसीलिए प्रत्येक बर्ग ने किसी न किसी समय होंग का रूप धारण किया । धम की धमसाया में हमारा विवर्धना पसली रही है । ऐसी बसा नैतिकता के क्षेत्र में धारस्यवाद का क्या मुख्य हो सकता है ? यथार्थवादी जीवन के ह-गथा के प्रति धार्मिक मूककर उनका निगम नहीं करना । वह जो देखता है कि बर्ग और ईश्वर ने मनुष्य को एक ओर अत्यास दिया है तो दूसरी ओर पतन भी दिया है । एक ओर एका का संवेग दिया है तो दूसरी ओर माई माई का गथा काटने की प्रेरणा भी दी है । वह जीवन के उन पथिक कूट-मूल तत्त्वों का अध्ययन और विवेचन करता है जो बर्ग ईश्वर नीति नियम गदापात्र सबको पुनीती बंध हुए मानव के धाम से धाम तक बने रहते हैं । जब जीवन के मुखार में हम सफल नहीं हुए हैं तो एक बार उस जीवन का विचार अध्ययन नान न बिना बाध ? न अध्ययन यथार्थवादी के लिए ही नहीं धारस्यवादी के लिए भी गाय-गर्भ है क्योंकि यथार्थ की नींव पर ही धारस्य को बड़ा करना पड़ता है और यथार्थ को धारस्य बनाने में ही हमकी सफलता है ।

विष्णु धामे और माहित्य में विग अभिगम धारस्य का धारी प्रचार हुआ

है वह एक तरह का रोमांटिक आदर्शवाद है जिसमें एक धारम्य उदात्त जीवन की कल्पना और उसे प्राप्त करने के उपदेश-भाव को आदर्शवाद मानकर उसे बहुत सीमित कर दिया गया है। यही आदर्शवाद केवल उपदेशवाद बनकर रह जाता है। जीवन के उन्नयन में उपदेशवाद का अधिक महत्व नहीं है। कला में उपदेशवाद निरूपयोगी ही नहीं कभी-कभी हानिकारक भी है।

यद्यपि वास्तविक जीवन में मनुष्य उस सम्पूर्णता की ओर जा रहा है जिसका वह स्वप्न देखता है जिसका वह उपदेश देता फिरता है और जिसके सम्बन्ध में उसने डेर के डेर धम्म रचे-रचाए हैं ? अगर जा रहा है तो साहित्य में उसका चित्रण मघार्थ वाद है। अगर नहीं जा रहा है तो उस सम्पूर्णता की कल्पना और साहित्य में उसका चित्रण झोंक है इकोनला है। यद्यपि आज तक के और आज के जीवन का अध्ययन कर—उसको यदि बेनेवारी दृष्टियों को पहचानकर उनकी पूर्णता के धम्म साध्य धारवाओं को ही उपस्थास में (और धम्म साहित्यिक विचारों में भी) स्थान दिया जा सकता है। मघार्थ होने की संभावना में ही आदर्श की सार्थकता है। यही मघार्थवादी दृष्टिकोण है।

३३० मघार्थ का आदर्श—जीवन की प्रगति और उन्नति के लिए यह आदर्शक नहीं है कि साहित्य में आदर्श जीवन के सखण दिखाए जाएं और उनको अपनाने का उपदेश दिया जाए। ऐसा उपदेशवाद रचनात्मक कला में न केवल निरूपयोगी होता है अपितु कला की दृष्टि से संघातक भी होता है क्योंकि उपदेश अपने आपमें अनुसूति-प्रधान नहीं होता जबकि अनुसूति कला का अभिवार्य धर्म है।

किसी व्यक्ति के सर्वोत्कृष्ट गुणों से प्रेरित होने-भाव से हम उससे निकटत्व का अनुभव नहीं करते जैसे ही वह हमारी अज्ञा और बाहर का पात्र हो सके। जो आदमी थितना अधिक उत्कृष्ट होता है वह उतना हमसे दूर होता है, हमारी समझ के बाहर होता है। इसके विरुद्ध देखा जाता है कि हम ऐसे व्यक्तियों से अधिक निकटता का अनुभव करते हैं जिनमें मानव-सह्य दुर्बलताएं काफी मिलती हैं। यह एक आदर्श की बात है—किन्तु मनोवैज्ञानिक सत्य है कि किसी व्यक्ति से हम स्नेह करने लगते हैं तो उसका कारण उस व्यक्ति के उत्कृष्ट गुण नहीं होते बल्कि यही कारण होता है कि वह हमारी समझ से परे नहीं है वह अपनी साधारणता और दुर्बलता से समन्वित होकर भी हमारे निकट (मानसिक रूप में) है। मघार्थवादी उपस्थासकार मानव की ऐसी सह्य साधारणता से हमें अवगत कराता है जिससे हम उसके निमित्त पात्रों के और मानव-भाव के निकट आते हैं जन्मे सहानुभूति प्रकट करते हैं। इस तरह मघार्थवाद पाठक की मानसिक उदात्तता का प्रेरक है और यही मघार्थवाद का आदर्श है।

मनुष्य में दृष्टियां होती हैं, बसहीनताएं होती हैं। दृष्टियां और बसहीनताएं मानव जीवन के मघार्थ हैं मनुष्य के ही विशेष धर्म हैं। मघार्थवादी उन दृष्टियों और बसहीनताओं को पहचानता है उनके मुख्य विवेचन को अपने चित्र की सार्थकता समझता है। यह एक आदर्श जीवन का चित्र प्रस्तुत नहीं करता क्योंकि यह मनुष्य

की बौद्धिक शक्तियों पर धनस्वाधन नहीं करता। यह कदापि यह नहीं मान सकता कि मनुष्य बेवकूफी के कारण गिरता है। यथार्थ ठीक रास्ता न जानने के कारण पथ विवर्धित होता है। उसका हृदय विवर्धित है कि मनुष्य स्वयं जानते हुए ही पथित होता है। ठीक रास्ता जानकर भी पथित रास्ते से जाता है। यह देखता है कि मनुष्य जो धर्म पाली और पियवक्क होता है स्वार्थसोप होकर भाई-भारे के समस्त सम्बन्धों को तोड़ देता है और भाई-भाई का पत्ता काटता है। पाश्चात्तिक धर्मधार्य करता है यह सब नाशानी या अज्ञान के कारण नहीं करता अपने ईश्वर और वर्ण के कारण करता है अपने काम और मोह के कारण स्वार्थ और विवर्धित के कारण करता है। अतः इन सबके सम्बन्ध में सङ्कल्प देते से यथार्थ धार्य जीवन का नमूना प्रस्तुत करने से कोई काम नहीं होता। इसके विरुद्ध मानवता को समझने से मनुष्य के अधिक निकट जाने की संभावना है अतः यथार्थधार्य मानवता की सहज कृतियों को समझकर, मनुष्य को मनुष्य के निकट जाने का प्रयत्न करता है। यही प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के यथार्थधार्य मार्गों में किया है। यही नाबार्धुन और देणु कर रहे हैं। और यही यूरोपीय साहित्य के विस्मयिकायत यथार्थधारियों ने किया है।

इससे भी एक कथम जाने बढ़कर यथार्थ का निरीक्षण करनेवाले प्रकृति धारियों ने यही निष्कर्ष निकाला है कि किसी भी तरह मनुष्य की प्राकृतिक पाश्चात्तिक कृतियाँ (यौन-विकार धारि) मुक्त नहीं होती नहीं हो सकती। अतः वे यथार्थ के विवरण से भी मनुष्य के जन्मन का प्रयत्न नहीं करते। उनकी कला का ध्येय मनुष्य को विस्मयित कर समझने तक में आकर समाप्त हो जाता है।

सृष्टिकोण के अनुसार विभिन्न वाद

३३१ यथार्थ और धार्य की प्रतिष्ठा करते हुए उपन्यास रचना करनेवाले लेखकों के दृष्टिकोण के अनुसार जो विभिन्न वाद प्रचलित हुए हैं वे निम्नलिखित हैं

१ धार्यवाद

- | | | |
|-------------|---|--|
| २ यथार्थवाद | { | धार्यसौन्ध्य यथार्थवाद
यथार्थवाद (सामाजिक यथार्थवाद)
धार्मिकनारात्मक यथार्थवाद
प्रकृतिवाद
नग्नतावाद (उपवाद)
यौनवैज्ञानिक यथार्थवाद (यथार्थ यथार्थवाद)
समाजवादी यथार्थवाद |
|-------------|---|--|

हिन्दी में या किसी विशेष यूरोपीय भाषा के उपन्यास साहित्य में इन सबका विकास नहीं हुआ है। वेदकाल के अनुसार जिन-जिन धार्यों का विकास हुआ उनकी धार्य रचना करते हैं।

है वह एक तरह का रोमान्टिक धार्मिकवाद है जिसमें एक अत्यन्त उदात्त जीवन की कल्पना धीरे-धीरे प्राप्त करने के उपदेश-मात्र को धार्मिकवाद मानकर उसे बहुत सीमित कर दिया गया है। यहाँ धार्मिकवाद केवल उपदेशवाद बनकर रह जाता है। जीवन के उन्माद में उपदेशवाद का अधिक महत्त्व नहीं है। कला में उपदेशवाद निरूपयोगी ही नहीं कभी-कभी हानिकारक भी है।

क्या वास्तविक जीवन में मनुष्य उस सम्पूर्णता की ओर जा रहा है जिसका वह स्वप्न देखता है जिसका वह उपदेश देता फिरता है धीरे-धीरे जिसके सम्बन्ध में उसने डेर के डेर प्रश्न पूछे रचाए हैं? अगर जा रहा है तो साहित्य में उसका चित्रण यथार्थ बाद है। अगर नहीं जा रहा है तो उस सम्पूर्णता की कल्पना धीरे-धीरे साहित्य में उसका चित्रण होव है इकीपना है। यथार्थ धार्मिकवाद के धीरे-धीरे जीवन का अध्ययन कर—उसको प्रति देनेवाली दृष्टियों को पहचानकर उनकी पहुँच के अन्दर के सिद्धांत धार्मिकों को ही उपस्थापित में (धीरे-धीरे साहित्यिक विचारों में भी) स्थान दिया जा सकता है। यथार्थ होने की संभावना में ही धार्मिक की सार्थकता है। यही यथार्थवादी दृष्टिकोण है।

३३० यथार्थ का धार्मिक—जीवन की प्रगति धीरे-धीरे उन्नति के लिए यह धार्मिक नहीं है कि साहित्य में धार्मिक जीवन के नए चित्रण बचाए जाएं धीरे-धीरे उनकी प्रगति का उपदेश दिया जाय। ऐसा उपदेशवाद रचनात्मक कला में न केवल निरूपयोगी होता है अपितु कला की दृष्टि से संघातक भी होता है क्योंकि उपदेश अपने आपमें अनुमति प्रदान नहीं होता जबकि अनुमति कला का अनिवार्य अंग है।

किसी व्यक्ति के सर्वोत्कृष्ट गुणों से प्रेरित होने-मात्र से हम उससे निकटत्व का अनुभव नहीं करते बल्कि उसे ही वह हमारी मर्यादा और धार्मिक का पात्र हो सके। जो धार्मिक जितना अधिक उदात्त होता है वह उतना हमसे दूर होता है, हमारी समझ के बाहर होता है। इसके विरुद्ध देखा जाता है कि हम ऐसे व्यक्तियों से अधिक निकटता का अनुभव करते हैं जिनमें मानव-सहज दुर्बलताएँ काफी मिलती हैं। यह एक धार्मिक की बात है—किन्तु मनोवैज्ञानिक सत्य है कि किसी व्यक्ति से हम स्नेह करने लगते हैं तो उसका कारण उस व्यक्ति के उत्कृष्ट गुण नहीं होते बल्कि वही कारण होता है कि वह हमारी समझ से परे नहीं है वह अपनी साधारणता और दुर्बलता से सम्बन्धित होकर भी हमारे निकट (मानसिक रूप में) है। यथार्थवादी उपस्थापक मानव की ऐसी सहज साधारणता से हमें प्रभावित करता है जिससे हम उसके निमित्त पात्रों के धीरे-धीरे मानव-मात्र के निकट आते हैं उनके सहानुभूति प्रकट करते हैं। इस तरह यथार्थवाद पाठक की मानसिक उदात्तता का प्रेरक है धीरे-धीरे यथार्थवाद का धार्मिक है।

मनुष्य में नुटियाँ होती हैं बलहीनताएँ होती हैं। नुटियाँ धीरे-धीरे बलहीनताएँ मानव जीवन के यथार्थ हैं मनुष्य के ही विशेष अंग हैं। यथार्थवादी उन नुटियों और बलहीनताओं को पहचानता है उनके सुख चित्रण को अपने चित्र की सार्थकता समझता है। यह एक धार्मिक जीवन का चित्र प्रस्तुत नहीं करता क्योंकि यह मनुष्य

नी बौद्धिक शक्तियों पर अभिश्वास नहीं करता। वह कदापि यह नहीं मान सकता कि मनुष्य बेबकूफी के कारण मिरता है। धनवा ठीक रास्ता न जानने के कारण पथ भ्रमणित होता है। उसका हक विश्वास है कि मनुष्य स्वयं जानते हुए ही पथित होता है। प्रिक रास्ता जानकर भी गलत रास्ते से जाता है। वह देखता है कि मनुष्य को व्यक्ति बारी धीर पियस्कड़ होता है। स्वार्थलोलुप होकर भाईभारे के समस्त धम्पनों को तोड़ देता है। धीर भाई-भाई का गसा काटता है। पाण्डित्य धत्याचार करता है। यह सब नाशानी या अज्ञान के कारण नहीं करता। अपने र्जम धीर र्व के कारण करता है। अपने काम धीर मोह के कारण स्वार्थ धीर बिलासिता के कारण करता है। अतः इन सबके सम्बन्ध में सक्षुपदेश देने से अथवा धारधर्ष जीवन का नमूना प्रस्तुत करने से कोई लाभ नहीं होता। इसके विरुद्ध मानवता को समझने से मनुष्य के व्यक्ति निकट आने की संभावना है। अतः यथार्थवादी मानवता की सहज वृत्तियों को समझकर मनुष्य को मनुष्य के निकट जाने का प्रयत्न करता है। यही प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के यथार्थवादी नामों में किया है। यही नाथार्थून धीर रेणु कर रहे हैं। धीर यही यूरोपीय साहित्य के विरुद्धिस्मात यथार्थवाधियों ने किया है।

इससे भी एक कदम आगे बढ़कर समाज का निरीक्षण करनेवाले प्रकृति वाधियों ने यही निष्कर्ष निकाला है कि किसी भी तरह मनुष्य की प्राकृतिक पाण्डित्य वृत्तियाँ (मौल-विकार आदि) लुप्त नहीं होतीं नहीं हो सकतीं। अतः वे यथार्थ के विमरण से भी मनुष्य के उन्नयन का प्रयत्न नहीं करते। उनकी कसा का ध्येय मनुष्य को विरिष्ट कर समझने तक में आकर समाप्त हो जाता है।

दृष्टिकोण के अनुसार विभिन्न वाद

३३१ यथार्थ धीर धारधर्ष की प्रतिष्ठा करते हुए उपभ्वास रचना करनेवाले लेखकों के दृष्टिकोण के अनुसार दो विभिन्न वाद प्रचलित हुए हैं वे निम्नलिखित हैं

१ धारधर्षवाद

- | | | |
|-------------|---|--|
| २ यथार्थवाद | { | <p>आवर्ण्यगुल यथार्थवाद</p> <p>यथार्थवाद (सामाधिक यथार्थवाद)</p> <p>ग्रामोन्नयनात्मक यथार्थवाद</p> <p>प्रकृतिवाद</p> <p>गम्भतावाद (उधवाद)</p> <p>मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद (यथार्थ यथार्थवाद)</p> <p>समाजवादी यथार्थवाद</p> |
|-------------|---|--|

हिन्दी में या किसी विशेष यूरोपीय भाषा में उपभ्वास साहित्य में इन सबका विकास नहीं हुआ है। देसकाम के अनुसार विम-विम वाधों का विकास हुआ। उनकी धन वर्धा करेंगे।

ठीक या गलत का निर्णय नहीं किया जाता जो हो उसे उसी तरह स्वीकृत किया जाता है। प्रेमचन्दों ने एक बंस की कई पीढ़ियों की जो कहानी लिखी है वह समाज-शास्त्र और इतिहास है पर इसको उपन्यास बनानेवासी बीच पात्रों और परिस्थितियों के साथ लेखक का सामाजिक संलग्न है जो किसी समाज शास्त्रकार या ऐतिहासिक में नहीं होता। प्रेमचन्द में इस सामाजिकता की कमी नहीं है पर वे इतिहासकार या समाजशास्त्रकार के समान दृष्टि नहीं रख पाते। वे समाज की भसाइयों और बुराइयों को देखते हैं देखते ही नहीं उनमें परिवर्तन लाने की उत्कट इच्छा भी करते हैं। तुर्गेनिय मोर्फी^१ और प्रेमचन्दों से नहीं वे भिन्न हैं।

प्रेमचन्द के इस दृष्टिकोण का कारण ईइसे हुए कुछ घातकों ने उन्हें आदर्शवादी कहा है^२ औरों ने व्यावहारिक आदर्शवादी^३ और अन्यो ने सुधारवादी^४ के रूप में अपने-आपको आदर्शोन्मुख आदर्शवादी मानते हैं और आदर्शोन्मुख आदर्शवाद का समर्थन करते हैं।^५ फिर भी इस आदर्शवादी दृष्टिकोण के बावजूद वे समाज का जो रूप और व्यक्ति का जो चरित्र प्रस्तुत करते हैं उन्हें प्रस्तुत करने का डंभ आदर्शवादी का है। माया और खोसी निरीक्षण और विवेचन निश्चित ही आदर्शवादी है। परिस्थितियों और पात्रों को धीरे के सामने उपस्थित कर देने में हिन्दी के बहुत कम कलाकार प्रेमचन्द के निकट पहुँचे हैं। वे पात्रों के बाह्य रूपों का ही नहीं उनके हृदय का उनके हृदय मनोभाव का जो सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं यह वे आदर्शवादी डंभ से ही करते हैं। मते ही वे पात्र और उनके मनोभाव प्रेमचन्द की नैतिक और सामाजिक भावनाओं के आधार पर नज़र हो। इतने से उनका आदर्शवाद समाप्त हो जाता है। इस आदर्शवादी चित्रण और प्रतिपादन से प्रेमचन्द जो सिद्ध करना चाहते हैं वह आदर्श है। विषय का चुनाव विषय-निरीक्षण का दृष्टिकोण जीवन का मूल्यांकन इन सबमें वे आदर्शवादी ही हैं। विषय की दृष्टि से उनका आदर्शवाद निम्नलिखित बातों में देख सकते हैं

३३५ (क) जिन बुराइयों को समाज के धमिनाप के रूप में और जिन समस्याओं को समाज की उन्नति में बाधक के रूप में प्रेमचन्द देखते हैं उनको सुधारने या सुसज्जने का मार्ग उन्होंने बताया है। समाजान मुख्य कथा की समस्या के साथ ही मिला होता है जैसे 'प्रतिज्ञा' में विधवाधर्म-स्वायत्ता 'सेवासदन' में सेवासदन की स्थापना 'प्रेमाश्रम' में आश्रम की स्थापना 'कर्मभूमि' में धर्मरक्षण द्वारा बनारस के

१ गोर्की का मां आदर्शवादी है। क्लां कोमा गोर्कीयन और आदमोव की ही वचनों की धारि है। साय प्रेमचन्द और 'आदर्शवाद' के नाम भी लिखे जा सकते हैं।

२ मन्मथलाल वाजपेयी : आधुनिक साहित्य पृ. १९८।

३ कलाधर्मप्रसाद का विमर्श प्रेमचन्द की उपन्यास कला पृ. १९।

४ 'Premchand was a reformer first and an artist next'

—Madan Gopal Premchand P 45.

५ 'उपन्यास' टीनक सिन्हा, 'कुछ विचार और साहित्य के बदले' में संकलित।

। सुचार, सुबधा का मन्दिर प्रवेश-आन्वोसन प्रादि 'रम्यमि' में सुरदास के देश प्रेम काम प्रादि। कहीं-कहीं मुख्य कथा से मिलन कथानक में सुचार का मार्ग बनाया जाता है जैसे 'निर्मला' में निर्मला की सोकान्त कथा की तुलना में उसकी बहन के आदर्श आत्मस्य-जीवन की कथा।

३३६ (ख) प्रेमचन्द जीवन के सर्वांगीण रूप को नहीं उन्हीं मामों को लेते हैं इनमें सुचार की आनन्दकथा हो भले ही पात्रों की बचार्थ बनाने के लिए मुख्य कथानक से सब कुछ छुट्टाई जायी गयी हो। (धीरे-धीरे भी उनका समाज-चित्रण प्रति निस्तुत है।)

३३७ (ग) जीवन की पराजितियों को भी प्रेमचन्द नग्न बचार्थ के रूप में ही देखता है। जहाँ-जहाँ प्रसन्नता के धाने की समोचना है वहाँ प्रेमचन्द बड़ी सतर्कता अपनी प्रतिभा का उपयोग करते हैं। 'सेवासदन' में बालमछी के चित्र में भी हम एक पवित्रता एवं प्रसन्नता देख सकते हैं वहाँ जाकर भी चरमोच्छिन्न पाप का शिकारी ही बनता प्रेम का पुनारी बनता है और आने बसकर आन्ता का उद्धार करता है। 'आत्मकथा' की लीली हरिसेवक की रबेसी के रूप में हमारी बुराई का पाप नहीं बनती तोरमा भी माता के रूप में ब्रह्मा का ही पात्र बनती है। 'बचन' की बोहरा त्याग और सहानुभूति की मूर्ति बनकर आती है उसके गंगा में वह जाने में उसका रक्षा-सहायिनी भी चुन जाता है। इस तरह प्रेमचन्द हर अपहृष्ट कृतिछत्ता से बचने का और एक प्रसन्निक छत्र और सीढ़ी बनाने का प्रयत्न करते हैं। बचन के इन सबों में प्रेमचन्द का आदर्श प्रकट होता है "बचार्थ का रूप अत्यन्त मर्यादित होता है और यदि न बचार्थ ही को आदर्श मान लें तो संसार नरक-सुख हो जाय। हमारी दृष्टि मन की बसताओं पर न पड़नी चाहिए बल्कि दुर्बलताओं में भी सत्य और सुन्दर की खोज करनी चाहिए।" यही प्रेमचन्द का आदर्श है। बचार्थों का मूँह पर मूँह सामना करने की क्षिति प्रेमचन्द में नहीं है। कृतिछत्ता से वे डरते-से या कम से कम संकुचाने-से गते हैं अतः उनके संपूर्ण साहित्य में एक भद्रता और शिष्टता है। दुर्बलताओं के क्षेत्र में भी 'सत्य' और 'सुन्दर' की खोज निकालने के लिए ही उन्होंने आदर्शों की बापना की है वेस्माओं में भी मानवात्मा के बर्चन क्रिय है।

३३८ (घ) बचार्थवादी जीवन के सत्यों को सत्य के रूप में स्वीकृत करता उनकी भलाई-बुराई की व्याख्या नहीं करता और न उनको अपूर्ण मानकर एक पूर्णता का स्वप्न ही देखता है। जीवन को अपूर्ण मानना ही आत्मोन्नति की दृष्टि से देखना ही आदर्शवादी की प्रवृत्ति है। प्रेमचन्द ने अपने सबसे अधिक बचार्थवादी उपन्यास 'मोक्षान्त' में भी यही किया है। वे इसमें भले ही सुचारबाद या उपदेशबाद तक नहीं पहुँचते तो भी यह निश्चय है कि होरी के जीवन से प्रेमचन्द स्वयं सम्पुष्ट नहीं हैं। बमीदार पट्टेदार, छाहकार और नागरिक पात्रों के जीवन के प्रति प्रेमचन्द प्रसन्न बुराई ही रखते हैं। इस सहानुभूति और बुराई के कारण उपदेश और सुचार होने पर भी 'मोक्षान्त' का दृष्टिकोण आदर्शवादी का ही है।

ठीक या मजदूर का निर्णय नहीं किया जाता जो हो उसे उसी तरह स्वीकृत किया जाता है। वास्तवर्षी ने एक बंध की कई पीढ़ियों की जो कहानी लिखी है वह समाज-शास्त्र और इतिहास है पर इसको उपन्यास बनानेवाली भीषण पाशों और परिस्थितियों के साथ लेखक का सामाजिक संबन्ध है, जो किसी समाज शास्त्रकार या ऐतिहासिक में नहीं होता। प्रेमचन्द में इस सामाजिकता की कमी नहीं है, पर वे इतिहासकार या समाजशास्त्रकार के समान तटस्थ नहीं रह पाते। वे समाज की मजहदों और बुराइयों को देखते हैं देखते ही नहीं उनमें परिवर्तन लाने की उत्कट इच्छा भी करते हैं। तुर्गनिये गोर्की^१ और वास्तवर्षी से नहीं वे भिन्न हैं।

प्रेमचन्द के इस दृष्टिकोण का कारण कईसे हुए कुछ आलोचकों ने उन्हें आदर्शवादी कहा है,^२ औरों ने व्यावहारिक आदर्शवादी^३ और धर्मों ने सुधारवादी^४ वे स्वयं अपने-आपको आदर्शोन्मुख आदर्शवादी मानते हैं और आदर्शोन्मुख आदर्शवाद का समर्थन करते हैं।^५ फिर भी इस आदर्शवादी दृष्टिकोण के बावजूद वे समाज का जो रूप और व्यक्ति का जो चरित्र प्रस्तुत करते हैं उन्हें प्रस्तुत करने का ढंग आदर्शवादी का है। माया और बेबी निरीक्षण और विवेचन निश्चित ही आदर्शवादी है। परिस्थितियाँ और पाशों को धीरे-धीरे सामने उपस्थित कर देने में हिन्दी के बहुत कम कमाकार प्रेमचन्द के निकट पहुँचे हैं। वे पाशों के बाह्य रूपों का ही नहीं उनके हर छद्म का उनके हर मनोभाव का जो सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं यह वे आदर्शवादी ढंग से ही करते हैं मने ही वे पाश और उनके मनोभाव प्रेमचन्द की नैतिक और सामाजिक मान्यताओं के आधार पर गठित हों। इतने से उनका आदर्शवाद समाप्त हो जाता है इस आदर्शवादी विषय और प्रतिपादन से प्रेमचन्द को सिद्ध करना चाहते हैं वह आदर्श है। विषय का चुनाव विषय-निरीक्षण का दृष्टिकोण जीवन का मूल्यांकन इन सबमें वे आदर्शवादी ही हैं। विषय की दृष्टि से उनका आदर्शवाद निम्नलिखित बातों में देखा सकते हैं

३३५ (क) जिन बुराइयों को समाज के अविचार के रूप में और जिन समस्याओं को समाज की उन्नति में बाधक के रूप में प्रेमचन्द देखते हैं उनको सुधारने या सुलझाने का मार्ग उन्होंने बताया है। समाजगत मुख्य कथा की समस्या के साथ ही मिला होता है जैसे 'प्रतिज्ञा' में विषवाधम-स्थापना 'सेवासदन' में सेवासदन की स्थापना 'प्रेमाश्रम' में आश्रम की स्थापना 'कर्मभूमि' में अमरकान्त द्वारा चमार गाँव

१ गोर्की का 'मा' आदर्शवादी है। जहाँ कोमा गोर्बोव' और 'अदमनोव' की ही कथा की जाती है; साथ 'मैमन' और 'बख्शक' के नाम भी लिखे जा सकते हैं।

२. मन्दुतारे बाबूजी : साप्ताहिक साहित्य पृ. १२८।

३. बलाचनप्रसाद का 'हिम' प्रेमचन्द की उपन्यास कला पृ. २३।

४. 'Premchand was a reformer first and an artist next'

—Madan Gopal Premchand P 45

५. 'उपन्यास' सीरीज लेख 'कुछ विचार' और 'साहित्य के बदले' में संक्षिप्त।

का सुधार सुखरा का मन्दिर प्रबन्ध-धाम्नीलन बादि 'यंगमुनि' में सुरदास के देश प्रेम के काम बादि। कहीं-कहीं मुख्य कथा से भिन्न कथानक में सुधार का मार्ग बनाया जाता है जैसे 'निर्मला' में निर्मला की शोकान्त कथा की तुलना में उसकी बहम के धार्ष्ट्य धाम्नीलन की कथा।

३३६ (ब) प्रेमचन्द जीवन के सर्वांगीण रूप को नहीं उन्ही भावों को सेते हैं जिनमें सुधार की आवश्यकता हो भले ही पात्रों को यथार्थ बनाने के लिए मुख्य कथानक से असंबद्ध कुछ बटवाए जायीं गयीं हों। (धीर फिर भी उनका समाज-चित्रण प्रति बिलुप्त है।)

३३७ (ग) जीवन की संश्लेषिता को भी प्रेमचन्द नम्र यथार्थ के रूप में नहीं देखते। जहाँ-जहाँ ध्वनीलता के भावों की संभावना है वहाँ प्रेमचन्द बड़ी सतर्कता से अपनी प्रतिभा का उपयोग करते हैं। 'सेवासदन' में राजमन्त्री के निज में भी हम एक पवित्रता एवं श्रद्धा देख सकते हैं वहाँ जाकर भी सदासिंह पाप का शिकारी नहीं बनता प्रेम का पुनारी बनता है धीर अपने बसकर धाम्नी का उद्धार करता है। 'कायाकल्प' की भीमी हरिसेवक की रसेली के रूप में हमारी दुष्टा का पाप नहीं बनती मनोरमा भी माता के रूप में भद्रा का ही पाप बनती है। 'यवन' की जोड़ू तयाय धीर सहानुभूति की मूर्ति बनकर जाती है उसके यंत्र में वह जाने में उसका रक्षा-सहा यानिभ्य भी बुन जाता है। इस तरह प्रेमचन्द हर अपहृतिवता से बचने का धीर एक पक्षीकिक सार धीर सीधे देखने का प्रयत्न करते हैं। चक्रवर्त के इन चर्यों में प्रेमचन्द का धार्ष्ट्य प्रकट होता है 'यथार्थ का कम धारण्य व्यक्त होता है धीर यदि हम यथार्थ ही को धारण्य नाम में तो संसार नरक-सुख हो जाय। हमारी दृष्टि मन की दुर्बलताओं पर न पड़नी चाहिए बल्कि दुर्बलताओं में भी सत्य धीर सुन्दर की खोज करनी चाहिए।' यही प्रेमचन्द का धार्ष्ट्य है। यथार्थों का यह हर मुँह सामना करने की शक्ति प्रेमचन्द में नहीं है। कृतिवता से वे डरते-ने या कम से कम सकुचाने-से मगते हैं घट उनके सपूर्ण साहित्य में एक भद्रता धीर छिपता है। दुर्बलताओं के बीच में भी 'सत्य' धीर 'सुन्दर' की खोज निकालने के लिए ही उन्होंने धार्ष्ट्यों की स्थापना की है वेस्वार्थों में भी मानवात्मा के वर्तन किये हैं।

३३८ (घ) यथार्थवादी जीवन के सत्य को सत्य के रूप में स्वीकृत करता है, उनकी समाई-बुराई की व्याख्या नहीं करता धीर न उनकी अपूर्ण मानकर एक पूर्णता का स्वप्न ही देखता है। जीवन को अपूर्ण मानना ही आलोचना की दृष्टि से देखना ही धार्ष्ट्यवादी की प्रकृति है। प्रेमचन्द ने अपने सबसे अधिक यथार्थवादी उपन्यास 'मोक्ष' में भी यही किया है। वे हममें भले ही सुधारवाद या उपदेशवाद तक नहीं पहुँचते तो भी वह निश्चय है कि होरी के जीवन से प्रेमचन्द स्वयं सन्तुष्ट नहीं हैं। अभीष्ट पट्टेदार, साहूकार धीर नागरिक पात्रों के जीवन के प्रति प्रेमचन्द प्रसन्न हुआ ही रहते हैं। इस सहानुभूति धीर दुष्टा के कारण उपदेश धीर सुधार न होने पर भी 'मोक्ष' का दृष्टिकोण धार्ष्ट्यवादी का ही है।

२६६ प्रेमचन्द की कमहीनताएँ—स्पष्ट है कि प्रेमचन्द वस्तुतः धारमा में
 धार्मिकवादी हैं। उनका धार्मिकभाव जहाँ सुधारक बना है वहाँ मबाब को अधिक बड़ा
 मया है। धार्मिक प्रायः सुनिश्चित विचार के परिणाम नहीं है धत कोमल धीर
 निरर्थक-मे लगते हैं। इन धार्मिकों को प्रेमचन्द ने जिस सीढ़ी में प्रवृत्त किया है वह
 प्रचारात्मक उपदेश की सीढ़ी है। बड़ा प्रश्नों का विरोधपक्ष करने या उनको मूर्त
 रूप देने के बरसे केवल चर्क-बाजों से या भाषणों से व्यक्त किया गया है वहाँ
 उपन्यास की सबसे कमजोर कड़ियाँ मिलती हैं। यह धार्मिकभाव यथार्थ में बाधक
 है ही धीर दो-एक बातें भी हैं जो प्रेमचन्द के उपन्यासों के यथार्थ को धापाव
 पहुँचाती हैं। इनमें उपयोग की बटनाएँ, घटनाओं की जटिलता रोमान्टिक रूपना
 धीर धार्मिककृता से अधिक भावुकता मुख्य बात है। 'निर्मला' में उपयमानुनाल
 का पत्नी से भगवान् करके बाहर निकलने पर मर्दान्द द्वारा माघ जाना चोताराम के
 अपनी बीरता की डीप हाँकते समय ही साप का घाना धादि 'रसभूमि' में सुकिया का
 माँ से भयङ्कर निकलने पर धमिकावट देवता विनयमोहन धीर बीरपालसिंह का
 निमन बलाक का उसी जगह की तबादला होना बड़ा सुकिया बिजब से मिस सके
 बिनय के देम से निकल भागते समय ही बलाक की घोट से किमीका दब जाना धीर
 सोवों का बिडोह करना धादि यवन मरमानाब की चुँगी में ही लौकरी मिलना वहाँ
 से स्पमा उठा लाया जा सकता है रतन का कगल के लिए उ सी स्पमा उसीको
 देता—वह भी ठीक छः ही स्पमा—फिर उसका बलकृता पहुँचने के बाद की किठनी
 ही बटनाएँ से सब बिलकुल संयोग की है धीर कबल कबा को धावे बढ़ाने के निवे
 हैं। घटनाओं की जटिलता में कर्मभूमि 'रसभूमि' कायाकर्म' धीर 'यवन' को
 बहुत ही बोझिल बना दिया है। इन चारों उपन्यासों में—धीर कुछ कम मात्रा में
 अन्य उपन्यासों में—कई घटाबाण्ड बटनाएँ भी हैं जो कोरी भावुकता के कारण
 बटनी हैं। सभी उपन्यासों में घानेबासी हत्याएँ धीर धात्महत्याएँ कबा को प्रभाव
 शाली बनाने के सस्ते उपाय हैं। निर्मला धीर होरी की धोकावट मृत्युओं को इन
 मान ही त पर इने मानना पड़ता कि 'बरदान' में कमलाचरस का दुग से दूधकर मरना
 'प्रविष्टा' में बमरकुमार का धीर 'वेनासदन' में कृष्णचन्द का मया में दूध मरना
 'प्रेमाधम' में मायवी की धात्महत्या बीसला की हत्या मनोहर की धात्महत्या
 जानसकर की मया में दूधकर धात्महत्या निर्मला में उपयमानुनाल की हत्या 'काया-
 कर्म' में चक्रवर का मरण धीर उसके पिता की धात्महत्या धादिया के दुल से
 मर जाना 'रसभूमि' में एकसाब ही सूरदास का पोली से मरना विनय धीर सुकिया
 की धात्महत्याएँ धीर सुकिया की मा का कुछ से मरना 'यवन' में मोहरा का मया में
 जह जाना इतनी हत्याएँ करने समय प्रेमचन्द ने धीनित्य धीर धनीनित्य का विचार
 नहीं किया। इसी तरह धार्मिकों को उपन्यासी बनाने की प्रथा भी केवल भावुकता है।

प्रमचन्द धीर कुछ यूरोपीय उपन्यासकारों का यथार्थभाव
 ३४० प्रमचन्द को कभी उपन्यासकारों से विशेषकर तात्तत्ताय से प्रेरणा

मिली थी किन्तु तात्सत्य की अन्तर्बद्धता धीर पार्श्वों के इन्हीं के विक्षेपण की बलता प्रमत्त में नहीं है। जहाँ तक यथार्थवादी धर्म का सम्बन्ध है प्रेमचन्द की तुलना तात्सत्य गोर्की और बीसवीं सदी के स्त्री उपन्यासकारों से की जा सकती है। विचित्रता पार्श्वों के अन्तर्बद्धों के सुप्त विक्षेपण से बचकर बाह्य चेष्टाओं और परिस्थितियों को मूर्त रूप में प्रकट करने की जो प्रवृत्ति सोमोबोव फ्रेडन और अन्य धार्मिक स्त्री उपन्यासकारों में है वही प्रेमचन्द में भी है। बीसवीं सदी के कथ और अंग्रेजी उपन्यासकारों में जो विक्षेपणप्रवृत्ति प्रबल है उससे प्रेमचन्द दूर है। प्राथमिक और पारिवारिक जीवन की साधारण अनुभूति को आकृष्ट करनेवाले प्रसंगों का समावेश जैसे स्त्री उपन्यासों में किया जाता है वैसे ही डिक्सेन्स बैकरे जेन आस्टिन और मेरिय एडवर्थ ने किया था। डिक्सेन्स और बैकरे ने बोड़ी-बहुत आलोचना की दृष्टि भी थी जेन आस्टिन इससे भी मुक्त थी और समाज की विकासोन्मुख प्रवृत्तियों के प्रकटन को छोड़कर समाज और पारिवारिक जीवन के अन्य पार्श्वों के निरूपण में बहुत-कुछ वर्तमान स्त्री उपन्यासकारों के समान यथार्थवादी थी। प्रेमचन्द की धर्मिता भी इन सबकी सीमियों से बहुत-कुछ मिलती है।

किन्तु विषय और दृष्टिकोण के आधार पर भी युरोपीय उपन्यासकारों से प्रेमचन्द की तुलना करें तो प्रेमचन्द डिक्सेन्स के सबसे निकट जाते होते हैं। उनमें बीसवीं सदी के यूरोपीय उपन्यासकारों की तटस्थता नहीं है बीसवीं सदी के फ्रेंच और अंग्रेजी उपन्यासकारों के विक्षेपण की प्रवृत्ति नहीं है स्त्री उपन्यासकारों की यथार्थ के विकास की चेतना नहीं है। तात्सत्य की दार्शनिकता तुर्गेनोव की निरपेक्षता ह्यूपो और दास्तावोवस्की की अन्तर्बद्धता वे सब उनमें प्रामाण्य हैं। इसके विरुद्ध डिक्सेन्स के प्रायः सभी कुछ उनमें मिलते हैं।

प्रेमचन्द और डिक्सेन्स का दृष्टिकोण ही कुछ यथार्थवादी का नहीं है आलोचनात्मक यथार्थवादी का है। दोनों ही समाज की पवित्र परबलित दृष्टि निम्नवर्ग्य जनता के कष्टों से अवगत थे उसके प्रति अपार सहानुभूति रखते थे उसके सुधार के लिए अत्यन्त आकुल थे। अपने-अपने समाजोन्मुख समाज में जो-जो बुराईयाँ थीं अत्याचार वे उन सबको दोनों प्रकाश में लाए। दोनों ने दिखाया कि समाज में पाप कैसे पकते हैं, पापविष्ठा अनुपपन्न की दृष्टि कैसे करती है भलाई एवं सुधारना से सम्बन्ध व्यक्तियों को जीवन में किन्ना कष्ट भोगना पड़ता है। दोनों ने उपन्यास पर उपन्यास इसी नतिकतावादी दृष्टिकोण से लिखे। पर नतिकता का विवरण करनेवाले इन उपन्यासों में तात्सत्य दास्तावोवस्की ह्यूपो आदि के समान पाप-गुण्य का विवेचन नहीं है। इन तीनों लेखकों ने (धीरे कुछ अंश तक धनातोके फ्रांस में भी) व्यक्ति एवं समाज को पतन की ओर ले जानेवाली बाह्य वृत्तियों को मानवात्मा को अमिषत करनेवासी शारदत समस्याओं के रूप में देखा। यतः इनके उपन्यासों में दृष्टियाँ तत्कालीन समाज की समस्याएँ नहीं हैं जैसेकि प्रेमचन्द या डिक्सेन्स के उपन्यासों में पर मानवता के ही चिरन्तन प्रश्न हैं। इसीलिए इनके उपन्यासों में पाप-गुण्य का सर्वत्र घोर मानसिक दृष्टि के रूप में प्रकट हुआ है। अन्तःकर्मिणा मस्तास्या छिन्नपनोवना रस्कीलनिकोव वा-वस-वा आदि के मानसिक दृष्टि में लेखकों ने इसी पाप-गुण्य के

शास्त्रत इन्द्र को प्रकट किया है। इसी कारण भाव की दृष्टि से देखे जाएं तो इनके उपन्यास बहुत कुछ काव्यमय लगते हैं। प्रेमचन्द इनसे बिलकुल भिन्न हैं। उन्होंने मर्माह-भुर्राह का अध्ययन सामाजिक स्तर पर ही किया है। पाप उनके लिए सामाजिक व्यवहार और अभिजात है। उनके उपन्यासों में वहाँ इन्द्र और सूर्य हैं वहाँ भी व्यक्ति के घन्तर्कमत् की संकुल वृत्तियों का विस्लेषण नहीं मिलता। निर्मला मन्साराम बाबूपा बाबू कुछ पात्रों में अवश्य मानसिक इन्द्र का विस्लेषण किया गया है पर इनके इन्द्र भी किसी मौलिक नैतिक समस्या के रूप में नहीं हैं, केवल सामाजिक व्यवहार पारिवारिक परिस्थिति के अनुकूल जीवन में समझौता (Adjustment) करने के प्रयत्न से बनित हैं। 'निर्मला' में सामाजिक एवं पारिवारिक बाधाकरण को बहुत कुछ उपेक्षित करके और तोड़ाराम मन्साराम एवं निर्मला के मानसिक व्यापारों तक ही विषय को सीमित रखकर एक उदात्त व्यक्तिवादी उपन्यास की रचना की जा सकती थी। पर तब लेखक भारतीय समाज के और अभिजात मनमैन विवाह के भयंकर परिणामों को दिखाने में असमर्थ होता। पर वस्तुतः प्रेमचन्द का ध्येय सामाजिक या भ्रष्ट उन्होंने अपने पात्रों को व्यक्तिवादी न बनाने से अपने घसीष्ट कार्य की सिद्धि की है।

समाज के वास्तविक रूप की प्रकाश में लाने तथा उसकी सत्-असत् वृत्तियों को निराकृत कर दिखाने के ध्येय से रचित उपन्यासों का वस्तु प्रबोधन या बटना प्रबोधन होना स्वाभाविक है। प्रेमचन्द और डिकेन्स के सभी उपन्यासों में बटनाओं का प्राबल्य समाज के विस्तृत बाधाकरण को यथार्थ रूप में प्रदर्शित करने में और संकड़ों समस्याओं को सामने लाने में सहायक हुआ है। किन्तु इस बटनाधिक्य के कारण व्यक्तियों के धार्मिक यथार्थों को प्रकट करने के लिए पर्याप्त अवसर नहीं पाये हैं। शास्त्रताय शास्त्रात्मकता बाबू के उपन्यासों में व्यक्ति का जो गहन अध्ययन हुआ है, वह प्रेमचन्द में अप्राप्य ही है। इसके विरुद्ध विभिन्न सामाजिक स्तरों एवं प्रकारों के संकड़ों व्यक्तियों को सामने लाकर प्रेमचन्द ने तत्कालीन भारतीय समाज के प्रायः सम्पूर्ण रूप का परिचय दिया है। डिकेन्स ने भी इसी तरह इंग्लैंड के समाज की विभिन्न भिन्न श्रेणियों के व्यक्तियों का सामान्य अध्ययन प्रस्तुत किया है। दोनों का ध्येय पात्र का नहीं पात्रों का अध्ययन करना है। और ये पात्र भी प्रायः लेखक के किसी ध्येय की सिद्धि व्यवहार सिद्धांत के स्थापन के लिए निर्मित होने के कारण बहुत कुछ अपूर्ण एवं एकांगी रह गये हैं। इन पात्रों को समतलीय (Flat) कहा जा सकता है। पर इन लेखकों ने अपने सीमित दृष्टिकोण से परिमित क्षेत्र में जिन पात्रों का निर्माण किया है वे यथार्थ-से लगते हैं। यद्यपि वे पात्रों की धार्मिक भावनाओं का विस्लेषण नहीं करते तो भी उन भावनाओं को बाह्य वृत्तियों द्वारा व्यक्त करने में काफी सफल हुए हैं। कला की दृष्टि से प्रेमचन्द और डिकेन्स निस्सन्देह अपने-अपने समय के सर्वश्रेष्ठ कलाकार थे लेकिन यथार्थवाद के परकालीन सर्वांगीण विकास की तुलना में प्रेमचन्द और डिकेन्स का यथार्थवाद एकांगी तथा सीमित ही है।

३४१ 'बोदान' में यथार्थवाद—'बोदान' में प्रेमचन्द सुचारुवाद से पूर्णतया

धीर धारणबाद से बहुत कुछ मुक्त हैं। जीवन के कटु से कटु अनुभवों ने उन्हें धारणों और उपदेशों के बोझसेपन से बचयत कर दिया था और उन्हें जात हो गया था कि सतकृष्ट उपन्यास-सूक्त के लिए धारणों जीवन की परिकल्पना उतनी आवश्यक नहीं है जितना यथार्थ जीवन का अध्ययन तथा विश्लेषण। उनके इसी मानसिक परिवर्तन का परिणाम है 'गोदान'। महा प्रेमचन्द प्रत्यक्ष आत्मोचना तथा उपदेशों से प्रायः मुक्त होकर मोर्फी के बहुत निकट पहुंच गए हैं। बिबि की निम्नलिखिताधी धीर समान के आत्माचारों से जीवन-भर संघर्ष करता हुआ होरी बीरे-बीरे परिशील होकर झुकता जाता है। उठने के उसके सारे प्रयत्न बेकार जाते हैं। आखिर समान पूरी निर्ममता से उसे बर्बाद ही भेठा है। फिर भी प्रेमचन्द यहाँ उसकी रक्षा करने की आवश्यकता नहीं समझते। अपने अन्य उपन्यासों में इस बलिष्ठ बर्ष के उच्चार की जो आनुष्ठा उन्होंने दिखायी है वह 'गोदान' में सुप्तप्राय है। होरी के जीवन के चित्रण में प्रेमचन्द ने मोर्फी के समान ही बड़ी निरपेक्षता से सन्त तक निर्बाह किया है। लेकिन जहाँ प्रेमचन्द ने धर्मीधार, पदपेधार, साहूकार धारि की बलभोगुपता एवं निर्वय आत्माचारों को प्रकट किया है वहाँ उनका चित्रोही मन बल उठा है। धीर ने पूर्ण निरपेक्षता का पालन नहीं कर पाए हैं। यहीं उनका धारणबादी रूप स्पष्ट हुआ है। जात होता है कि प्रेमचन्द का साहित्यिक जीवन सामाजिक यथार्थवाद को प्राप्त करने का सतत प्रयत्न कर रहा है। 'गोदान' में वे उसे पाते-पाते रह गए हैं। फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि 'गोदान' हमारा सबसे अधिक यथार्थवादी उपन्यास है। धीर धारण तक धीर कोई उपन्यासकार उसका प्रतिक्लमस नहीं कर सका है। केवल रेणु कुछ विषयों में ठनिक घाने वह सके हैं।

प्रेमचन्द के परवर्ती धारणों-मुख यथार्थवादी

इधर प्रेमचन्द के परवर्ती उपन्यासकारों में भी तीव्र आत्मोचना करनेवाले उपवादियों को और दो-एक मनोविश्लेषकों को छोड़कर धर्मीका यथार्थवाद धारणों-मुख है, चाहे उनका यथार्थवाद कुछ यथार्थवाद हो या आत्मोचनात्मक चाहे मनोवैज्ञानिक हो या धीर किसी प्रकार का।

जैन्य के उपन्यासों में यह धारणवाद धारणिकता लिए हुए पात्रों के उदात्तीकरण (Sublimation) के रूप में जाता है। धुनीता का नग्नता-प्रदर्शन हर्षितन की मोहान्वता दूर करता है 'परल' में कट्टे और बिहारी अपने मनोवर्धित जीवन को न पाकर, देश-सेवा का महान कार्य करने लगते हैं। इसके बाद के उपन्यासों में जैन्य ने धारणवाद को पूर्णतया छोड़ दिया है।

बृन्दावतमान बर्मा के सामाजिक और ऐतिहासिक सभी उपन्यास धारणों-मुख यथार्थवादी हैं। 'मयन' में बड़े प्रया से होनेवाली कठिनाइयों को दिखाते हुए बर बनुषों के साहस से प्राये बढ़कर बिबाह करने का धारण प्रस्तुत किया गया है। 'कुण्डली-बर्मा' का प्रथित पूना को अयोध्या बर से बचाता है। धीर स्वयं उससे बिबाह कर लेता है। बर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक परिस्थितियों और बटमाधोंका

जीवन में होनेवाली प्रक्रियाएँ और विकृतिवाँ यथार्थ के बराबर पर लगी हैं। वासना की तुष्टि उन्मुक्त अनुभवों से नहीं होती। भारती और प्रत्येक ने जो धार्ष्ण्य प्रस्तुत किए हैं वे पार्श्व पर लेखक द्वारा लगे गए धार्ष्ण्य नहीं हैं, पार्श्वों के ही अनुभवों और विवेकपूर्ण चिन्तन के परिणाम हैं। 'गुनाहों का देवता' की पम्मी और 'मिरती बीबारे' का चेतन समझ जाते हैं कि वासना की तुष्टि के लिए इधर-उधर भटकते रहने से कोई फायदा नहीं होता। अनुभव के यथार्थ उन्हें जीवन के तथ्यों से प्रभावित करते हैं। पम्मी स्वयं वैवाहिक जीवन की ओर लौटती है, तो चेतन वैवाहिक से वास्तविक जीवन की बातें सुनकर अपनी परिणीता और परित्यक्ता पत्नी बन्हा पर फिर मुग्ध हो जाता है। यथार्थ जीवन पर आधारित होने के कारण ये धार्ष्ण्य अस्वाभाविक नहीं लगते। जीवन के ही क्रमिक विकास-से लगते हैं।

हिन्दी के धार्ष्ण्यवाद की कमजोरी

३४३ 'मिरती बीबारे' और 'गुनाहों का देवता' में जो बुध्दित्व और क्रम विकसित धार्ष्ण्यवाद है वह प्रायः हिन्दी के और किसी उपन्यास में नहीं है। जीवन की परिस्थितियों और कठु अनुभवों से संघर्ष करते हुए मनुष्य का क्रमिक विकास ही वास्तविक धार्ष्ण्य है। इसका अभाव हिन्दी उपन्यास में सर्वोच्च दिखाई पड़ता है। वास्तविकता के नाटक रस्कोलनिकोव का अन्त सामान्य जीवन के लिए उपयोगी नहीं है पर बुद्धिमा को मारने का प्रयत्न करने के बाद उसकी जो मानसिक प्रतिक्रिया होती है वह जीवन के एक महान धार्ष्ण्य की ओर संकेत करती है। पाप-पुण्य का वह द्वन्द्व ही वस्तुतः धार्ष्ण्य का विकास करता है। यहाँ पाप के द्वारा ही जीवन के सत्त्वों का जो धार्ष्ण्यकार होता है वह 'मिरती बीबारे' और 'गुनाहों का देवता' में तो हुआ है लेकिन हिन्दी के अन्य उपन्यासों में नहीं। हमारे उपन्यासकार प्रायः जीवन की समस्याओं को और पार्श्वों की कठिनाइयों को ऊपर से देखते हैं और जैसे कम से विघ्नित प्रदेशों की भूखी जनता को बाधुमान द्वारा भोजन-सामग्री वगैरह की बाँटी है उसी तरह ऊपर से बने-बनाए धार्ष्ण्यों के डेरों की वर्षा करते हैं। प्रत्यक्ष तर्क के धार्ष्ण्य इस तरह के हैं और बाह्य के धार्ष्ण्य उपन्यासकार प्रत्यक्ष से ऊपर नहीं उठ सके हैं।

३४४ धार्ष्ण्यवाद के पूर्वग्रहों के कारण इन लेखकों के यथार्थ के विस्फेपण में भी एक विधेय दृष्टिकोण रहता है जीवन को भण्डाई और चुपई में बाँटने का गायों चरों और सियारों को छांटने का। उनका धार्ष्ण्यवाद कठिनायी है। यतः उनका जीवन-विधेय एक निश्चित परिपाटी के अनुसार चलता है। भण्डाई और चुपई की निश्चित करने का इनका आधार भी निश्चय नहीं है। धार्मिक और नैतिक धार्ष्ण्य बाद ना जो उपदेष्टावादी और सुधारवादी रूप है उसीको उपन्यास में भी धार्ष्ण्यवाद के रूप में प्रपन्नाया गया है। वे लेखक जीवन को सत् और असत् का निर्णय उसी मानक के समान करते हैं जिसके अनुसार 'यह ठीक है और वह गलत है' क्योंकि हमारे मास्टर साहब ने ऐसा ही कहा है' या ऐसा करना चाहिए, वैसा नहीं करना चाहिए, क्योंकि हमारे मास्टर साहब ने ऐसा ही कहा है। परम्परागत परिपाटियों के

मार्क्सवाद से मुक्त होकर, स्वकीय चिन्तन से जीवन का निरूपण कर मार्क्सवाद की स्थापना करनेवाला उपन्यासकार हिम्मी में नहीं हुआ है। मार्क्सवादी को चिन्तक होना चाहिए, पर हमारा कोई मार्क्सवादी चिन्तक नहीं हुआ है। अतः उनका मार्क्सवाद सब वस्तुतः एक नहीं पहुँच पाया है।

३

मार्क्सवाद सामाजिक यथार्थवाद

३४३ मार्क्सों की श्रृंखलाएँ निर्मित करना और जीवन के कुत्सित घसों की आलोचना करना अधिक कठिन कार्य नहीं है। लेकिन जीवन और समाज से पूर्ण तथा सटस्य रहकर उनके वास्तविक रूप को उपन्यास में उतार रचना सहज कार्य नहीं है। प्रायः जीवन के प्रमुखों की आकांक्षा से प्रेरित लेखक मार्क्सवादी बन जाते हैं और उनका मार्क्सवाद ब्यार्थमय होकर मार्क्सोंनुसार यथार्थवाद का या समाजवादी यथार्थवाद का रूप धारण कर जाता है। आलोचना की दृष्टि से सिद्धनेवाले लेखक आलोचनात्मक यथार्थवादी या मजहबवादी बन जाते हैं। इन दोनों से भिन्न सटस्य दृष्टि से बिन उपन्यासों की रचना की जाती है। वे तीन श्रेणियों के होते हैं (१) मनोवैज्ञानिक (२) प्रकृतिवादी और (३) सामाजिक यथार्थवादी। इन तीनों में लेखक का ध्येय अध्ययन और अभिव्यक्ति के प्रतिफल कुछ नहीं रहता। लेखक को अपनी व्यक्तिगत अभिव्यक्ति का समन करना पड़ता है और अपनी पूर्वग्रहीत मान्यताओं को दूर रखकर जीवन का निरीक्षण करना पड़ता है। यहाँ हम सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासों के यथार्थवाद का निरूपण करेंगे प्रकृतिवादी और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का अध्ययन बाद में किया जायगा।

बस्तुतः सामाजिक यथार्थवादियों की समस्या हर साहित्य में कम रही है क्योंकि अधिकांश लेखक अपने कुछ पूर्वग्रहीत धारणाओं के आधार पर और घटने किसी दृष्टिकोण से ही लिख कर लेते हैं। हम अध्ययन की बुद्धि के लिए प्रपञ्च में बेगल और ग्रासबर्गी क्रॉस से बास्काफ और फ्लावेयर और कसी से तुर्मेन्ब लेखक इत्यादि धारणाओं और सोसोसोय को नें और हिम्मी के उपन्यासों के साथ उनका अध्ययन करें।

३४६ समाज के विस्तृत वातावरण में व्यक्तियों को यथाय रूप में लाकर कड़ा करनेवाले उपन्यास हैं 'टेड मेडे रास्ते' 'मेसा ग्रावेल' और 'थरती परिक्रमा'। 'टेडे मेडे रास्ते' में कमानक की अस्वामाधिकारिता कुछ है, एक ही परिवार के चार

१ सामाजिक यथार्थवाद (Social Realism) और समाजवादी यथार्थवाद (Socialist Realism) दोनों सितकृत भिन्न हैं। समाजवादी यथार्थवाद में समाजवाद की धार प्रकाश करने वाले एक समाज की गतिविधियों का निरीक्षण रहता है और वह ऐसे समाज की स्थापना को प्रोत्साहन देता है—एक तरह से वह आदर्शवाद ही है। पर सामाजिक यथार्थवादी यह ऐसा ध्येय नहीं होता।

व्यक्तियों का कार विभिन्न मर्तों और संस्कृतियों का समर्पक होना समोप की बात-सी है। इसको और बो-एक अस्वाभाविक घटनाओं को छोड़ दें तो 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' भारत के मध्यमवर्गीय युवकों में जैसी हुई मानसिक अस्थिरता और अचलता का समार्क बिजला है। सन् १९३३ के समय में भारतीय समाज की बच्चा बहुत ही अचल-सी और यह पापीकी के सत्पाप-ह-आन्दोलन के पुनराचरण के आसपास का समय था। राज नीति की यह अस्थिरता समाज में भी थी। विभिन्न पार्टियाँ निश्चित नहीं कर पा रही थी कि कौन-सा मार्ग सही है कौन-सा नहीं। पार्टी के सदस्य बहुत कुछ का तो पार्टी के आदर्शों से अनभिज्ञ थे या उनको जानने पर भी ठीक तरह उनका पालन नहीं करते थे। जमींदार लोग अपने अधिमान और सुरक्षा दोनों की एकसाथ रक्षा के लिए विवश थे 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' का बाताबरस नहीं है और यह बाताबरस ही उसका मुख्य विषय भी है। पश्चिम समानाध सिवायी ब्रिटिश शासन में अपने वर्ग की सुरक्षित समझकर सरकार के विरुद्ध होनेवाले हर आन्दोलन का विरोध करते हैं। पर वे स्वयं बड़े अधिमानी हैं और समझते हैं कि सरकार का अस्तित्व हम जमींदारों के कारण है। उनके पुत्र बयानाध काप्रेसी समानाध साम्यवादों और प्रमानाध आन्तिकारी हो जाते हैं तो पश्चिमी समता के सभी बच्चों को तोड़कर उन्हें घर से निकाल देने में नहीं हिचकते। साम-साध अपने कुल और की रक्षा के लिए बेत जानेवाले बयानाध की पत्नी और बच्चों को अपने आधय में रक्षता चाहते हैं और प्रमानाध के मुसबिर बनकर दूसरों के आधे झुटने को पसन्द नहीं करते। बेटों की बच्चा विविध है बयानाध को देख के लिए बड़े-बड़े त्वाय करता है नगर-काप्रेस के समापति न जाने जाने से काप्रेस छोड़ देता है। साम्यवादी समानाध पुमिस के आतक से डरकर देस छोड़ देता है और आन्तिकारी मुसबिरी के लिए तैयार होकर फिर विचार बदल देता है और अपनी प्रमिद्धा के हाथ में बिध छोड़कर जीवरयाग करता है। बर्माजी की सबसे बड़ी संकल्पता इस बात में है कि वे इन सबका बिबल करते समय किसी इन के हृदि कोग को नहीं घपनाते किनी पूर्ववृहीत आदर्श के मापदण्ड से पात्रों को नहीं नापते। जहाँ कहीं किनी आदर्श या मिष्ठान्त का समर्पन या विरोध किया गया है वह पात्रों के मुँह में कराया गया है और वह पात्रों की प्रवृत्ति के अनुकूल भी कराया है। डा-रामविनाम धर्मा ने कितने ही ऐसे उदाहरणों का उल्लेख करके बर्माजी की कड़ी धार्मिक-बना की है? जो मजसुध बर्माजी के मुँह से निकलते तो बचकर प्रतिक्रियावादी समझे जा सकते हैं। किन्ती के अन्ध अतिबाध उपन्यासकार अपने मर्तों को कुछ पात्रों पर लाद देते हैं। प्रायः सभी आधयवादी पात्रों के मठ सेवक के अपने मठ होते हैं। इसी तरह 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' के पात्रों में भी हम बर्माजी के मठ झूटने सगें तो सेवक के प्रति अगाध आभा। इतने विभिन्न धर्मों की अर्था करने हुए भी समके पारस्परिक संबंधों को दिखाने हुए भी बर्माजी किसीका पक्ष नहीं लेती थीकते। विरपेक्षा की हृदि में यह एक उत्तम उपार्थवादी उपन्यास है। इसका एहरनवर्ग ने 'आधी' में इसी तकनीक

से यथार्थवाद को उच्चतम सिद्धांत तक पहुँचाया है। विभिन्न राष्ट्रों के मुण्ड-रोपों को दिखाने या किसी देश की नीति का समर्थन या विरोध करने के लिए वे प्राकृत नहीं हैं। पार्श्वों को अपने-अपने मत प्रकट करने की स्वतंत्रता छोड़ दिया जाता है। सभी जनता को स्वयं की अपनी दृष्टि से एक दृष्टि से और जर्मन दृष्टि से देखा गया है। पर एहरनबर्ग की अपनी कोई दृष्टि नहीं है। 'ऐसे मेरे रास्ते' में भी पार्श्वों को भ्रष्ट करने अपने से पुस्तकता भ्रष्ट कर रहा है। कहीं ऊपर जबरदस्ती से अपने मतों का आरोप नहीं किया है। इसका विद्वत् रागेय राखन में सीधा-साधा रास्ता में जो सीधा-साधा रास्ता दिखाया है वह भ्रष्टाचार के विचारों से स्वतंत्र नहीं है। किसी एक मार्ग को ठीक बताने के लिए भ्रष्टाचार को कुछ विचारधाराओं का समर्थन करना पड़ता है और वह निरपेक्ष नहीं रह पाता। रागेय राखन भारतीय धार्ष्णीय प्रस्तुत कर पाए हैं। कलात्मक दृष्टि से उनके सम्बन्धित हृदय यथार्थवादी हैं पर उनके दृष्टिकोण पर व्यक्तिगत विचारों का प्रभाव प्रबल है।

मध्यमवर्गीय वर्गों में अपनी निष्पक्षता के कारण पार्श्वों को यथार्थ बनाया है पर 'ऐसे मेरे रास्ते' को तत्कालीन सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रतिनिधि के रूप में देखें तो ज्ञात होता कि वर्गों ने एक महान् यथार्थ की उपेक्षा की है ऐसे यथार्थ की जो समाज की जान बा। जैसे सन् १९३२-३३ के धासपास काँग्रेस में मत-मतान्तरों के होने पर भी उसमें अधिक विचित्रता नहीं धामी थी जिसके कारण वह बिलकुल दुर्बल और धार्ष्णीय ज्ञात हो जैसेकि वर्गों ने दिखाया है। दूसरी पार्टियों की भी यही दशा थी। पार्टियाँ कितनी ही विचित्र रही हों उनमें कितने ही मत-मतान्तर रहे हों सबके रास्ते भिन्न-भिन्न रहे हों पर सबमें 'स्वतंत्रता प्राप्ति' की एक अद्वय्य धर्म-साया थी जो सब दुर्बलताओं पर विजय पाकर काम कर रही थी। जनता मुझे और प्रसन्न रही हो पर उसमें स्वतंत्रता का प्रसीम धार्ष्णीय या स्वाधीनता के लिए जान लड़ा देने का साहस बा। ऐसा न होता तो धास भारत का इतिहास ही कुछ और होता। इस महान् जन-व्यक्ति की उपेक्षा वर्गों ने की है पर रागेय राखन ने इसे पहचाना है। भारत के राष्ट्रीय धान्वात्म का इतिहास प्रस्तुत करनेवाला कोई भी उपन्यास इस जन-व्यक्ति की उपेक्षा करे तो वह उनके यथार्थवाद में एक बड़ा कर्त्तक माना जायगा। इसी कारण से तुर्गेनिय के उपन्यासों की विधायक 'पिता और पुत्र' की अन्तिमवादी धार्ष्णीयों ने कड़ी धार्ष्णीयता की थी। तुर्गेनिय के 'रवि' के रवि में 'मसत भूमि' के मेजबान में और 'पिता और पुत्र' के बजारोप में अन्तिमकारियों के केवल उपरिष्कार (Superfluities) व्यक्तित्व का चित्रण किया। वे सभी पात्र धार्ष्णीयवादी के अन्तिम के दृष्टिकोण या मूबार के समर्थक थे। पर वे अपने परम्परागत शीर्षस्थ पर विजय नहीं प्राप्त कर पाये और जीवन में पराजित हुए। बजारोप सत्तुनि के सभी कथनों को तोड़ने के प्रयत्न में नास्तिवादी (Nihilist) बन जाता है। जीवन के सभी मौलिक तत्त्वों तक का निषेध करता है पर अन्त में आत्महत्या कर लेता है। मेजबान अन्तिमकारी हल का संगठन करता है पर समय पर साहस को बैठता है। वर्गों का पात्र भी सभी तरह उपरिष्कार है। यद्यपि तुर्गेनिय के पार्श्वों के मगन ही वे विचित्र यथार्थ हैं उनमें ही

अकारात्मक है।

‘मैला घाँसल’ और ‘परती परिकर्षा’ इन दोनों से बिलकुल मुक्त हैं। रेणु ने अपनी धारणा को बिहार के ग्रामों की धारणा से मिला दिया है। इसके बावजूद भी वे स्वयं बोल नहीं पाते। हर बगल किसी न किसी पात्र का दृष्टिकोण रहता है। अस्तुतः संपूर्ण उपन्यास का विकास ही ग्रामीणों के हृदय के अन्दर होता है। उनकी चेतना-प्रवाह शैली (Stream of consciousness style) से मिसरी-बुलसी शैली इस कार्य में सहायक हुई है।

जीवन एक श्रुत्तामय कला नहीं है—विशेषकर समाज का जीवन। उसमें रूचिरता होती है वैचित्र्य होता है। जब तक कि उपन्यास साहित्य में वैचित्र्यपूर्ण विविध जीवन की कुछ संकेत चट्टानों को लेकर श्रुत्तामय कहानी का रूप दिया जाता था। यह पाठक की वैचारिक तनावशीलता (Emotional tension) को धारि से अलग तक बनाए रखने के लिए और भावों के क्रमिक विकास द्वारा रस संचार करने के लिए उपयोगी है। लेकिन ऐसी कला में जीवन की पूर्णता नहीं रहती। रेणु के उपन्यासों में सामाजिक जीवन को उसकी पूर्णता में देखा गया है। दोनों उपन्यासों में भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् के ग्रामीण-जीवन को कथावस्तु बनाया गया है। ग्राम के सभी तरह के लोग उनकी आशाएँ आकांक्षाएँ मृदुल, ईर्ष्या, पारस्परिक प्रेम और बुरा विश्वास और अविश्वास सब कुछ सामने सामने पड़े हैं। इनका वातावरण एहरमय के ‘आँधी’ और ‘नवम तरंग’ के समान विस्तृत नहीं है किन्तु ग्राम के सीमित वातावरण के अन्दर के जीवन का कुछ प्रतिबिम्ब है। दोनों उपन्यास छोमोचोब के ‘लड़ी बुटी लमीन’ से अधिक मिलते हैं। विशेषकर परती परिकर्षा में लड़ी बुटी लमीन ही बानी जाती है। कथार्थवाद की दृष्टि से देखा जाए तो इनमें ग्राम के सामाजिक जीवन का एक विस्तृत चित्र मिलता है। व्यक्तिगत के प्रादुर्भाव के कारण और उनके भाव-विकास के अभाव के कारण उन से अधिक समय तक दृष्टिक संकेत बनाए रखकर उनकी अनुभूतियों से अपनी अनुभूति मिला देने का अवसर पाठक को नहीं मिलता।

‘मैला घाँसल’ और ‘परती परिकर्षा’ दोनों में कर्मचारियों उनके पुत्रों विविध मकसदों और अवसरवाधियों की स्वार्थमूलक प्रवृत्तियों पर कठोर व्यंग्य किया गया है। पर यह धातुचकारक यथार्थवाधियों की धातुचकारिता से बिलकुल विभक्त है। धातुचकारक यथार्थवाधियों का धातुचकार और धातुचकार रेणु में नहीं है वे अत्यन्त सन्तुलित रहकर वास्तविक और वैज्ञानिक के समान पूर्ण निरपेक्षता से सत् और असत् वृत्तियों को निराकृत करते जाते हैं। यथार्थवादी के संकेत में एक धातुचकारक न कहा है कि उनका उपन्यास जीवन कैसा नहीं है जीवन ही है।¹ यही रेणु के उपन्यासों के संकेत में कह सकते हैं।

मगसतीकरण कर्मा और रेणु समाज के धारणाधारों की धातुचकारिता न करने पर

भी उनपर जोर का प्रहार करते हैं। उनके सम्यक् भेदजन वास्त्वाक धीर गास्त्वर्ही के समान ही कटु व्यंग्य-से प्रहार करते हैं। व्यंग्य करते हुए भी लेखक बिसकुल चलासीन से रहते हैं, जगता है कि उनको इन बातों से क्रोध है ही नहीं। पार्श्वों को रयमंज पर ला खड़ा करके लेखक का अन्तर्धान हो जाना यथार्थवादी की सफलता है। रैगु के पार्श्वों के कर्ण में घाटे ही इस उनके छात्र ही जीने लगते हैं और लेखक को एकदम भूल जाते हैं। रैगु की बोध प्रवाह खेती भी इसमें सहायक रही है।

३४७ इन तीन-चार उपन्यासों के प्रतिरिक्त किसी भी हिन्दी उपन्यास में समाज का धार्मिक और आलोचना से मुक्त केवल यथार्थ निगल नहीं मिलता। मोड़े बहुत संवरण के साथ दो-चार धीर उपन्यासों के भी नाम लिए जा सकते हैं। प्रस्क का 'गरम पक्ष' सबयच्छेकर भट्ट का 'सागर' महर्षि और मनुष्य' हेनेन्द्र सत्याधी का 'कठमुतनी' और प्रस्क के 'गिरणी बीमारों' में सर्व-विशेषों और लम्बे-चोड़े भाषणों द्वारा जो आलोचना की गयी है वह उपन्यास का सबसे बड़ा दोष है। 'परम पक्ष' इस दोष से बहुत कुछ मुक्त है परा धार्मिक यथार्थवादी है। किन्तु उसका सामाजिक लेख बहुत ही सीमित है। समाज के मध्यमार्ग के कुछ युवकों के वैयक्तिक जीवन का जो रूप प्रस्कजी ने प्रस्तुत किया है वह धार्मिक वैयक्तिक है। इन युवकों के सांस्कृतिक जीवन का लोचनान्न और उसके बीच में जियायीस रहनेवाली उनकी कुछ कृतिवों भावि स्पष्ट प्रकट हुई है। वैयक्तिक वासनाएं ही इन युवकों के सामाजिक जीवन को रूप देती हैं। यह सामाजिक जीवन मध्यमार्ग का सम्पूर्ण जीवन नहीं है उसका एक लघु प्रस-मात्र है। हेनेन्द्र सत्याधी के 'कठमुतनी' में विशाल राष्ट्रीय वातावरण में वैयक्तिक जीवन का विकास किया गया है। भारत का विभाजन स्वातन्त्र्य-प्राप्ति हिन्दू मुसलमान दगा इन महत्वपूर्ण राष्ट्रीय संघर्षों के बीच में प्रतिमावाली कलाकार सुनीस का जीवन ठोकरें खाता रहता है। संकीर्ण वर्णों की परतंत्रता ने भारत की जो पुनरुत्थान बना रखी है उसमें विशेषकर स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त पूर्व और परवान की अव्यवस्थित दशा में अस्मत् प्रतिमावाली युवक सुनीस को न अपनी सर्व-शक्तियों का विकास करने का अवसर मिलता है न उसका सदुपयोग करने का। कलाकार के व्यक्तित्व और सामाजिक जीवन के बीच निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। उसका सङ्घ संवेदनशील व्यक्तित्व जीवन पराजयों से झुझित हो जाता है। साथ-साथ हिन्दू-मुस्लिम दंगा गोपीजी की हत्या भावि हृदयविचारक कटनाएँ छोड़े सर्वकर बड़ा पहुंचाती है। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का काफी विचार रूप सत्याधी ने दिखाया है। सुनीस जो नाटक मिलने समय चलता और नाटक-कम्पनी की रधि का विचार करना पड़ता है मिलने पर प्रति तुच्छ मक्या के लिए कृतिवों का विक्रय करना पड़ता है अपनी बुरी भावि दशा के कारण हर दम दूसरों का भुँह वाचना पड़ता है। प्रायःस भारत के सभी छात्राव लेखकों को इन कठिनाइयों का सामना करना ही पड़ता है। इन सबकी वर्ण करते समय भी सत्याधीजी यथासाध्य अस्मत्मित और प्रावेष्टपूर्ण आलोचनाओं से और गैरान्तिक मीमांसाओं से दूर रहते हैं।

सागर महर्षि और मनुष्य' का सामाजिक गुंथ दूसरी तरह का है। इने मापार

उपन्यास (Novel of Manner) कहा जा सकता है। और हिस्ट्री में अपने ढंग का एक ही उपन्यास है। बरसोबा के मनुष्यों का जीवन इसका विषय है। लेखक ने उनके आचार-विचारों पारस्परिक व्यवहारों तथा परम्परागत वृत्तिप्रति नैतिक मान्यताओं को साकार कर दिखाया है। इन सागर-युवों का जीवन सदा महुरों से संघर्ष करता रहता है। पर इस संघर्ष के बीच में भी वह नीरस नहीं है। इस जीवन में भी प्रेम और हुरा पलटी है। हाविकता और विधेय का विकास होता है। उपन्यास के प्रथम तीन भागों का इस जीवन को चित्रित करने में ही उपयोग किया गया है। पात्रों की भावा तक यथार्थ की बारीकियों को ध्यान में रखकर रची गयी है। किन्तु अन्तिम भाग में धारर लेखक को जब धार्मिक और धामोचना की कुन सवार हो जाती है तब यथावत का बम फुटने लगता है। धामीण जीवन की तुलना में जब सामरिक जीवन को प्रस्तुत करने लगे तब लेखक सामरिक जीवन की धामोचना किए बिना नहीं रह सके और धामोचना की ही दृष्टि से जो हृदय निर्मित किए गए हैं उनमें प्रतिबलन कम नहीं है। इसके साथ-साथ पात्रों के अपार मोह के कारण मन परिवर्तन का सहारा लेकर उनका धार्मिककरण किया गया है। रत्ना को विनाशपूर्ण जीवन की जो सुनक सवार हुई थी उसे दूर करके उसे नर्स के सेवामय जीवन में लगाना और प्रेम से निराश यशवन्त को शिक्षित बना बेध-सेवा में लगाना लेखक के धार्मिकवाद के ही परिणामक है।)

मायार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' और 'बलचनदा' में प्रत्यक्ष धामोचना कम है फिर भी कई स्थानों में धामोचना का सूत्र तो प्रकट होता ही है। सामाजिक कुपचारों से सम्बन्धित दृष्टियों का विधान करते समय वे पूर्णतया निरपेक्ष नहीं रह पाये हैं। फिर भी यह मान सकते हैं कि वे यथार्थवाद के बहुत निकट तक पहुँच गये हैं।

१४८ इन सामाजिक यथार्थवादियों के उपन्यास सूक्ष्म निरीक्षण और कलात्मक अभिव्यक्ति से उत्कृष्ट होते पर भी जीवन के चिरंतन तत्त्वों के प्रौढ़ एवं गंभीर संरहित होने के कारण सर्वेक्षणीय और सर्वकालीन होने में असमर्थ हैं। तुर्बनेब बेखव वालबाक और पलाबेयर की कला की उत्कृष्टता पर सन्देह नहीं किया जा सकता है, पर जीवन का मूल्यांकन करने में और जीवन को प्रेरणा देने में वे सर्वथा असमर्थ हुए हैं। अगर पलाबेयर और तुर्बनेब के उपन्यास प्रसिद्ध हुए हैं तो उसका कारण उनमें प्रस्तुत मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है। तुर्बनेब ने परम्परागत संस्कृति से संघर्ष करते हुए विकसित होने को प्रयत्नशील जीवन को दिखाया है पर उसमें भी वे विकास के बरसे विकास को धरदर करनेवाले सांस्कृतिक बन्धनों को ही स्पष्ट कर सके। बेखव और बास्बाक ध्विधास उत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के विक्षेपण तक ही सीमित रह गए हैं। तास्ताय और बास्तायबस्की के समान पक्ष से उठकर मानव बने हुए (प्रयत्न करने वाले हुए) मनुष्य के धास्वत मनस्तरणों का विवेचन वे नहीं कर सके। अन्त-पला अपराध-वृत्ति (Crime-instinct), अपराध-बोध (Crime-consciousness) बास्तना और संयम इन सबको उत्कालीन जीवन से ऊपर उठाकर दिखाना सामाजिक यथार्थवादियों का काम नहीं था। भगवतीचरण वर्मा रेणु मायार्जुन देवेन्द्र सत्पात्री

आदि मेडकों में भी यही बलहीनता है। 'टिंके मेडो रास्ते' 'मैला धौबन' 'परती परिकषा' 'अठपुतसी' आदि में किसीमें भी मनुष्य के मनस्तरुओं का संमीर प्रप्ययन नहीं है। इनमें सामाजिक जीवन के विविध रूप देखा सकते हैं उनके पार्श्व से निकट परिचय प्राप्त कर सकते हैं, और उनसे सहानुभूति का अनुभव कर सकते हैं। पर यह परिचय केवल उसी परिचय के समान है जो हम अपने निकट और आत्मीय मित्रों से रखते हैं। निस्सन्देह ये उपन्यास इस दृष्टि से देखे जाएं, तो अपना महत्त्व रखते हैं। पर इससे बढ़कर आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य का समाज ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि उनमें नहीं है जैसेकि तात्त्विक वास्तव्यवादी और हमों के उपन्यासों में है।

४

आलोचनात्मक समर्थवाद (Critical Realism)

३४६ आलोचनात्मक समर्थवाद की वस्तुतः समर्थवाद की एक विशेष बात के रूप में गणना करना कठिन है क्योंकि समर्थवाद नानतावाद आदि से पूर्णतया मुक्त होकर वह अपना अस्तित्व न रखता है, न रख सकता है। सामान्यतः आलोचनात्मक समर्थवाद साहित्य में उस प्रकृति का नाम है जिसमें समाज की बहम्य प्रवृत्तियों की विवेचना और आलोचना की जाती है। शायद ऐसा कहा जा सके कि उपन्यासों को केवल इसी आलोचना से भर देना कठिन है। यद्यपि पूर्णतया आलोचनात्मक समर्थवादी उपन्यास प्रादुर्भाव नहीं मिलेंगे। इस पर देख चुके हैं कि कुराहियों और दुर्वलताओं को जीवन की अपूर्णता के रूप में देखना समर्थवादी दृष्टिकोण ही है। आदर्शवादी समर्थवादी उपन्यासों के विवेचन के प्रसंग में हम इस बात पर भी विचार कर चुके हैं कि ऐसे उपन्यासों में भी जीवन की कुलित प्रवृत्तियों को निरावृत्त किया जाता है। आदर्श की स्थापना करने के पहले जीवन की अपूर्णता को दिखाना ही पड़ता है। हिन्दी के आधिकारिक आदर्शवादी उपन्यासकारों ने इस तरह अपूर्ण जीवन की निम्नस्तर की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते समय उनकी आलोचना भी की है। ऐसे प्रसंगों में व आलोचनात्मक समर्थवादी बन गए हैं। इस बात की विवेचना की जा चुकी है। यहाँ प्राकृति अनावश्यक है।

३४७ आदर्श की स्थापना न करनेवाले कुछ उपन्यासकारों में भी मनुष्य की निम्न प्राकृतिक प्रवृत्तियों की कठोर आलोचना की है। जब ऐसे लेखकों का समर्थ विशुद्ध धारणा निरावृत्त हो जाता है तब समर्थवाद नानतावाद का रूप धारण कर लेता है। हिन्दी में उच्च अक्षरसम अन्तर्भाव युक्त आदि के कुछ उपन्यास इस बात के अन्तर्गत आते हैं। उनकी चर्चा आगे की जायगी। यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि 'नानतावाद' भी आलोचनात्मक समर्थवाद का ही एक रूप है। यद्यपि सभी नानतावादी उपन्यासकारों को आलोचनात्मक समर्थवादी मानना चाहिए। किन्तु यहाँ उनकी चर्चा नहीं की जा रही है और इसलिए नहीं की जा रही है कि प्रकृतिवादिनों से अलग

मुक्त करने की आवश्यकता के कारण 'प्रवृत्तिवाद' और 'अप्यतावाद' का विवेचन एकसाथ करना उपयोगी है।

३५१ भावार्थगुण यथार्थवादी तथा अप्यतावादी उपन्यासों को छोड़ें तो आलोचनात्मक प्रवृत्ति हमारे अधिक उपन्यासों में नहीं मिलती। अतः यहाँ हम आलोचनात्मक यथार्थवाद का स्वरूप दिखाने-मान के उद्देश्य से दो-एक उपन्यासों से कुछ प्रसंग उद्धृत करेंगे। प्रस्तावनी के 'ककाम' और 'तितनी' सामाजिक समस्याओं की कठोर आलोचनाओं से भरे हुए हैं। 'ककाम' में आलोचना अधिक तीव्र है पर वह अधिक यथार्थ नहीं है। 'तितनी' में यथार्थ अधिक है पर आलोचना उतनी तीव्र नहीं है। दोनों उपन्यासों में समाज की जनसंख्या प्रवृत्तियों की प्रतिरूपन की हद तक पहुँचाया गया है। आलोचना के प्रसंगों के दो-एक उदाहरण देते हैं

धनकूट के हिन्दू धर्म की निन्दा करते हुए विजय निरन्तर से कहता है 'क्या हिन्दू होना परम सौभाग्य की बात है? जब उस समाज का अधिकांश पदविविध और दुर्बलाग्रस्त है जब उसके अधिमान और औरव की वस्तु बरा-सूझ पर नहीं बची— उसकी संस्कृति विह्वलता उसकी संस्था सारणी और राष्ट्र—बीड़ों के धूम्र के सहच बन गया है जब संसार की अन्य जातियाँ सार्वजनिक आशुभाव और साम्यवाद को लेकर खड़ी हैं तब आपके इन किसीनों से भला उसकी सम्पत्ति होगी? ^१ और एक प्रसंग में विजय मनुना से कहता है 'देखो यह बीसवीं सदी में तीन हजार की सी का अभिनय। समग्र संसार अपनी स्थिति रखने के लिए बचल है। रोटी का प्रसन्न सबके सामने है फिर भी मूर्ख हिन्दू अपनी पुरानी असम्भवाओं का प्रदर्शन कराकर पुष्प सज्ज किया जाहते हैं। ^२ इस तरह के कई प्रसंग प्रस्ताव के दोनों उपन्यासों में मिलते हैं।

राजेश राज के 'विवाहमठ' और 'घरीब' आलोचनात्मक यथार्थवाद के अच्छे उदाहरण हैं। विशेषकर प्रथम उपन्यास में यथार्थ का पक्ष अधिक पुष्ट है। बंगाल के प्रकाश के समय की कठणात्मक परिस्थिति को लेखक ने चित्रित किया है। उनका श्रेष्ठ मनुष्य की दयनीय बर्ताव को तथा संकट के अन्तर में भी उसके पार्थक्य व्यवहारों को दिखाना है। अतः मनुष्य की सम्भावनाओं के प्रति उनका ध्यान ही नहीं गया है। एक बगल सोमा के सिद्ध और शक्ति का प्यार बूझी बगल इन्नु डाप सन्मम की सहायता—ऐसी दो तीन बटनाओं के प्रतिरूप और कहीं भी मानव-हृदय की सद्बृत्तियों का आभास नहीं मिलता। सम्पूर्ण उपन्यास में एक के बाद एक कठना जनक दृश्य प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें आलोचना दो प्रकार से आयी है। वित्त के मामिक दृश्य उपस्थित किये गये हैं, वे मनुष्य की पक्षुता पर परोक्ष रूप से आघात करनेवाले हैं। इसके प्रतिरूप कहीं-कहीं सीधी आलोचना भी की गयी है। जैसे

'मेहनत करके बुरों को भरपेट खिलानेवाले पाब घूबे भर रहे थे तिनका जाना बमीशर, पुजारी महाजन और सरकार ने जाया था देवताओं ने जिसकी बंक

केवल समस्त सत्त्विकी श्रुतिजिमा या भाव वह मजबूर धीरे-धीरे किसान इस भयानक सुख
री में निहरी में गड़े पड़े थे। उस समय बणाल का हर घर कश्चित्तान बन चुका था। १

'धरोरे' में सेवक ने तत्कालीन युवक-युवतियों के धार्मिक जीवन के विविध
सुखों पर प्रकाश डाला है। यद्यपि इसने पात्र धार्मिकता का ज्ञान-साक्षात् है धीरे-
छावरण विद्यालय का ही है तथापि ज्ञान-जीवन का यथार्थ चित्रण इसमें नहीं
सता। मजबूत-मजबूतों की इच्छावादी पर सेवक ने जितना ध्यान दिया है उतना
न-जीवन की धर्म्य बातों पर नहीं। पर जिस जीवन का चित्रण रंगीय राजन ने
मा है वह यथार्थ रूप में सामने आता है धीरे-उसकी कुत्सितता स्पष्ट प्रकट होती
। इस दृष्टि से—धीरे इसी दृष्टि से यह यथार्थवादी है धीरे धार्मिकतात्मक भी।

इनके धार्मिकता धार्मिकतायुक्त यथार्थवाद धीरे नग्नतावाद के धर्म्यत धार्मिकता
धार्मिकता में धार्मिकतात्मक यथार्थवाद का प्रभाव स्पष्ट है।

५

समाजवादी यथार्थवाद (Socialist Realism)

३५२ सन् १९१७ का रूसी विप्लव ऐसा महान संघर्ष था जिसने केवल रूस
राजनीति की भाषा ही नहीं पसदी बल्कि संसार की राष्ट्रीय नीमांसा में धार्मिक
तन में धीरे धर्म्यतात्मक में भी मौलिक विचार-विप्लव की प्रेरणा दी। रूस में साम्य-
की धार्मिकता की स्थापना विप्लववादी प्रभाव डालनेवाली बटना थी धीरे-उसका
प्रभाव संसार की विचार-धाराओं पर भी पड़ा। यूरोपीय साहित्य में इससे
मृष्ट नहीं रह सका। पहले रूस में धीरे-उसके बाद पोलिश कम्युनिस्टा कम्युनिस्टा
दि देशों के साहित्यों को इस धार्मिकता ने प्रभावित किया। इसीका परिणाम है
समाजवादी यथार्थवाद का जन्म।

नीचर्नी सती क मजबूर धीरे धर्म्यता उपन्यास साहित्य के यथार्थवाद ने मनुष्य
धर्म्यता की विभिन्न संकुल प्रकृतियों की व्याख्या करने का प्रयत्न करते हुए
विप्लव के क्षण में पधारण किया। लेकिन रूसी उपन्यास ने व्यक्ति के धार्मिकता
की बहुत कुछ उपेक्षा करते हुए, समाज की ह्लाधोग्मक धीरे-विकासोन्मुख
तियों का विस्मरण करते हुए, एक नये प्रकार के यथार्थवाद को जन्म दिया।
रूस धीरे-मार्क्स के समाजवादी चिन्तन से प्रभावित धीरे-नवनिर्मित साम्यवादी समाज-
त सम्मानित इस यथार्थवाद का समाजवादी यथार्थवाद नाम पड़ा।

३५३ समाजवादी यथार्थवाद की परिभाषा—समाजवाद को प्राप्त
का समाजवाद की धीरे-धर्म्यता होनेवाले समाज की विभिन्न प्रकृतियों को यथार्थ-
री धर्म्यता-विचार द्वारा प्रस्तुत करने की प्रणाली को समाजवादी यथार्थवाद

कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार उही देश के साहित्य में समाजवादी मथार्थवाद का विकास हो सकता है जिसका समाज स्वयं समाजवादी हो चुका हो भयभीत हो रहा हो। योकी ने भी माना है कि वास्तविक व्यवहार में जो समाजवादी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ हैं, उन्हींके प्रतिबिम्ब के रूप में साहित्य में समाजवादी मथार्थवाद विकसित हो सकता है।^१ इस परिभाषा का आधार यही है कि मथार्थवाद समाज का वास्तविक प्रतिबिम्ब है और जो समाज समाजवादी या समाजवादोन्मुख नहीं है उसका साहित्य समाजवादी हो तो समाजवादी नहीं हो सकता और समाजवादी हो तो समाजवादी नहीं रह सकता। अतः समाजवाद मथार्थवादी साहित्य के विकास के लिए समाज की विशेष परिस्थिति—समाजवाद—आवश्यक है।

समाजवादी समाज का मथार्थ चित्रण—मात्र साहित्य नहीं हो सकता। किसी रचना को साहित्यिक बनानेवासी बहुत सानवी विकारों का प्रत्यक्षीकरण व्याख्या भयभीत विरोध है। रागात्मिकता समाजवादी वर्तन में भी साहित्य का अनिवार्य अंग है। अतः समाजवादी मथार्थवादी उपन्यासों में सामाजिक बातावरण में मनुष्य का मनुष्य के विकारों का चित्रण किया जाता है।^२

समाजवादी मथार्थवाद व उद्देश्य और विशेषताएँ

३५४ जैसे मथार्थवाद का विषय ही समाज का वास्तविक चित्रण है। समाजवादी मथार्थवाद समाज का वास्तविक चित्रण करते हुए भी अपना एक विशेष दृष्टिकोण रखता है। उस दृष्टिकोण के अनुसार मथार्थ के आवश्यक भागों को स्वीकृत करता है, अनुपेक्षित भागों को उपेक्षा करता है। निम्नलिखित विषय सामारसुत समाजवादी मथार्थवाद के अनिवार्य अंग हैं

(१) वर्गीयवादी दृष्टि या संस्कृति का पतन और उस चरम की प्रतिक्रियावादी शक्तियों की पराजय।

(२) प्रतिक्रियावादी शक्तियों से उन्नत करते हुए, समाजवादी सामाजिक व्यवस्था की ओर अग्रसर होनेवाले समाज की विकासोन्मुख प्रवृत्तियाँ।^३

१ "Socialist Realism concerns itself with the aims, qualities and manifestations of Socialist society as it exists and as it is in the making" —Reavey Soviet Literature Today P 20

२ "Socialist Realism in literature can appear only as a reflection of the facts of socialist creative activities as they exist in actual practice" —Gorky Literature & Life, P 144

३ "The subject of painting and indeed of literature according to this theory is man first and foremost, the human passions set in their social background." —Reavey Soviet Literature Today P 22;

४ "Realism means that we make a selection from the point of

(१) समाजवादी यथार्थवाद एक असाध्य धार्ष्णीय होता है। समाजवादी समाज की स्थापना उसका धार्ष्णीय है। किसी विशेष दर्शन या समाज प्रणाली पर आधारित वस्तुतः धार्ष्णीय प्रकृति है। यथार्थ पर आधारित होने पर भी समाजवादी यथार्थवाद जीवन की धार्ष्णीय प्रक्रियाओं को प्रतिबिम्बित करता है।^१ दूसरी धार्ष्णीय प्रकृति को समाजवादी यथार्थवाद में भी स्वीकृत है वह यह है कि कोई समाजवादी यथार्थवादी जीवन की कुत्सितताओं का मर्म चित्रण नहीं करता। योर्की ने मास्को में एक पत्र में सीमाना से लिखा था कि साहित्य में कुत्सितता का चित्रण हानिकारक है।^२ पर वह धार्ष्णीय से इस बात में निश्चिंत है कि वह कोई कल्पित धार्ष्णीय प्रस्तुत नहीं करता किसी कुत्सित श्रुति-पुत्र धार्ष्णीय पात्र का मुद्रण नहीं करता बल्कि जीवन और मनुष्य को बलहीनताओं को भी समझता है।

(४) समाजवादी यथार्थवादी अपार आधारवादी होता वह इस कमजोर और विविक्त समाज में भी मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक विकास का प्रचार देता है। दुर्गमों और कुत्सित श्रुतियों की देखकर भी वह समाज पर आस्था रखता है निर्माण की भांति रखता है।

(५) समाजवादी यथार्थवादी साहित्य में एक नई तरह का मानवतावाद मिला है। वह नया मानवतावाद मनुष्य की घसीम शक्ति पर विश्वास करता है। पहले मानवतावाद ने मनुष्य को पाश्चात्तिक मनोवृत्तियों से मुक्त होते हुए उच्चतर प्राणी के रूप में देखा था तो यह नया मानवतावाद प्रकृति की सभी शक्तियों पर विजय पाते हुए शक्ति-पुत्र के रूप में मनुष्य को देखता है।

(६) समाजवादी यथार्थवाद में जीवन के निरीक्षण और अध्ययन का अंग

view of what is essential from the point of view of guiding principles. Select all phenomena which show how the system of capitalism is being smashed, how socialism is growing, not embellishing socialism but showing that it is growing in battle in hard toil and sweat.” —Karl Radek's speech, Quoted by Read Art and Society P 269-270

“We set out from real active men, and on the basis of their real life process we demonstrate the development of the ideological reflexes and echoes of this life process.”

—Marx & Engels The German Ideology Quoted in 'Literature & Art' P 11

२. “To display for the world one's scars to scratch them, in public and ooze their pus, to spurt one's gall into people's eyes as many are doing today and as our evil genius Feodor Dostoevsky had done most disgustingly is an infamous occupation and certainly a harmful one. —Slavonic Review XVII. 50 Jan 1939 P 436.

माना है कि साहित्य का ध्येय यथार्थ से ऊपर उठकर हृदय की अभिलाषाओं को भी प्रकट करता है परन्तु इस बात पर भी ध्यान दिया है कि हमारी शक्ति द्वारा प्राप्ति सिद्ध की परिमिति का भी विचार करना चाहिए।^१

३५६ आभित के पत्राचार—गोर्की ने अपने उपन्यासों में जिस सामाजिक चेतना की प्रतिष्ठा की उसके विकास का सबसे प्रमुख कारण क्रांति (१९१७) के पश्चात् ही आया। साम्यवादी शासन के स्थापित हो जाने पर, जहाँ नयी व्यवस्था में विकसित होनेवाले समाज की प्रवृत्तियों का प्रदर्शन साहित्य का ध्येय हो गया। समय-समय पर निम्नी रचनाएं उत्क्रांती देशीय समाज का धीरे-धीरे राष्ट्रीय विकास का परिचय देती हैं। प्रथम मजदूरों का उपन्यासों की है जो 'नयी धार्मिक योजना' के समय (N. E. P. Period) में लिखे गए। इनमें मुख्य हैं—डेरिन के नगर धीरे-धीरे 'आत्मकाय-मुक्त' 'महाभारत प्रीत्य' ग्लाबकोव का 'सिमेट' आदि। इसके बाद के पंचवर्षीय योजना उपन्यासों में कठोरता का भाव बड़ा समय। (१९१९) ग्लाबकोव का 'शक्ति' (१९२१) लिबिन्स्की का 'एक धीरे का जन्म' (१९२१) पिलनिवाक का 'बोल्शेविकों को बहरी है' (१९२१) गोर्बोवोव का 'नयी बुद्धि जमीन' (१९२२-२३)। आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त दोनों श्रेणियों के उपन्यासों में देशीय विकास का यथार्थ चित्रण उपलब्ध है। इनमें उस जनता का जीवन है जो नयी शासन व्यवस्था धीरे सामाजिक सिद्धान्तों को स्वीकृत करने पर भी अपनी परम्परागत संस्कृति धीरे-धीरे उससे प्रभावित मनोभावों को नहीं छोड़ पायी है। पूर्वीवासी मनोवृत्ति पूर्णतया मृत नहीं हुई थी धीरे वह समय-समय पर सामाजिक विकास में बाधक बन जाती थी। राष्ट्रीय योजनाओं में सहयोग देनेवालों में भी कुछ लोग सबसे आगे प्रगतिशील मान का प्रयत्न करते थे। इस तरह प्रगतिशील धीरे प्रतिक्रियाशील शक्तियों के संघर्ष से होकर बढ़ती हुई जनता का इतिहास इन उपन्यासों में है।

३५७ इसके बाद सन् १९२४ से १९२९ तक का काल ही वस्तुतः समाजवादी यथार्थवाद का काल माना जाता है। अब तक सामाजिक विकास से सम्बन्धित जितने उपन्यास लिखे गए वे सबकों ने अपने ही यथार्थ धीरे प्रेरणा से लिखे थे। यद्यपि पंचवर्षीय योजना के काल में Russian Association of Proletarian Writers में सबकों के सामने कुछ निश्चित योजनाएं रखी थीं तथापि अधिकतर लेखक संघ में नहीं थे बाहर रहकर संघ को जोड़ा-बहुत सहयोग देते थे धीरे 'सहकारी' बड़े जाते थे। सन् १९२२ में यह संघ विघटित किया गया धीरे सन् १९२४ में गोर्की

१ "I am not a naturalist. I want literature to rise above reality and to look down on reality from above, because literature has a great purpose than merely to reflect reality. It is not enough merely to depict already existing things—we must also bear in mind the things we desire and things which are possible of achievement."

—Gorky Literature & Life, P. 142

की सम्पत्ति में यू एच यूस० यार के छोड़ियत लेखकों का सब 'Union of Soviet Writers of U. S. S. R.' स्थापित हुआ। उससे छोड़ियत लेखकों के सामने समाजवादी यवार्थवाद की योजना रखी। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और व्यवसायीकरण ही साहित्य के ध्येय माने गए। साहित्य में तीन बातें आवश्यक मानी गयीं—समाजवादी वस्तु, राष्ट्रीय रूप और यवार्थवादी प्रतिबिम्ब।^१ सब के निर्देशन में समाजवादी यवार्थवाद का बहुत प्रचार हुआ और प्रायः सभी लेखकों ने इन निश्चित सिद्धान्तों को अपनाया। समयन सन् १९४१ तक इसी योजना के अनुसार वर्जनों उपन्यास लिखे गए। किन्तु इस काल में 'अग्निपरीक्षा' (How the Steel was Tempered) धारि हो-पूक उपन्यासों के प्रतिरिक्त और अधिक उपन्यास प्रविष्ट नहीं हुए। स्पष्ट ही यह योजना की पराजय का परिचय देता है। साहित्यिक क्षेत्र में व्यापक नियंत्रण और नियम स्वच्छन्द विकास में बाधक ही होता है।

नवी यवार्थ योजना (N. E. P. Period) से लेकर सन् १९४१ तक के इसी उपन्यासों में जो समाजवादी यवार्थवाद है वह इसी साहित्य की प्रवृत्ति थी। समाजवादी यवार्थवाद की जो विवेचनाएं ऊपर कही गयी हैं वे सब इनमें मिलती हैं। बुर्जुवाजी का पतन सर्वहारा वर्ग का सम्मुख वेध की अधिक सामाजिक समिति प्रति किया-व्यक्तियों से लड़ते हुए विजय प्राप्त करनेवासी जनता प्राकृतिक व्यक्तियों की जीवनेवासी योजनाएं धारि के पूर्व में उपन्यास उत्पादकीय रूप के विकास का प्रतिपाद प्रस्तुत करते हैं।

३५८ किन्तु इसमें अधिकतर उपन्यासों में वह शक्ति नहीं है जो मन की नैकारिक तनावनी (Emotional Tension) को बनाए रख सके। योनिन उपन्यास सोमोसोब धारि कुछ लेखकों को छोड़कर किसी लेखक ने मानव-जीवन का प्रभाव प्रत्यक्ष नहीं किया है। यह कमी द्वितीय महायुद्ध-काल तक और उसके बाद जो बहुत कुछ बनी रही। प्रेम और क्रुद्ध-व्यक्तियों की पुर्णतया उपेक्षा कभी नहीं की जा सकती इन उपन्यासों में जी नहीं की गयी। लेकिन नैतिक धार्मिकता का मादक रूप और अन्य कौटुम्बिक-व्यक्तियों का मोहक रूप जो उपन्यास के अनुसूचितय अंश के आधार होते हैं बहुत कुछ उपेक्षित हो गए। इन उपन्यासों के विशाल सामाजिक जीवन के बीच में कौटुम्बिक जीवन के कुछ धार्मिक हृदय यथ-तथ बिखरे पड़े मिलते हैं। अकिन कहीं भी मुख्य कथावस्तु किसी पात्र के मानसिक जीवन के आधार पर नहीं चलती जिस से इनमें तीव्र अनुसूति की कमी दिखाई पड़ती है। सोमोसोब के 'दोन' उपन्यासों के परभाव ही इसी उपन्यास में अनुसूति-तरंग का नैतिक विकास समाप्त हो गया। सोमोसोब के ही 'नयी बुनी कमीन' की 'दोन' उपन्यासों से तुलना करते पर यह बात स्पष्ट होगी। वेस्तमेमन क्रुद्ध के विभिन्न चंगों की कथा प्रस्तुत करनेवासे दोन उपन्यास सामाजिक जीवन का प्रतिपाद तो हैं, उससे बढ़कर कितने ही मानव-मंथनों का साकार विषय करनेवासे भी हैं। इनमें भाव-तरंग और चिह्न-विषय को चिह्नितता

करता है और यह कहता कि मानव-चेतना उसकी जीवन-सत्ता को निरूपित करती है ममत है ।^१ यह दृष्टिकोण पूर्णतः मानववादी है ।^२ और इसी दृष्टिकोण से 'बड़ती बूढ़' और 'उत्का' की रचना की गयी है । परम्परागत संस्कृति के बन्धनों से संघर्ष करते जलनेवासे व्यक्ति ही दोनों उपन्यासों के नायक हैं । उनकी बड़ती हुई बौद्धिक चेतना और पीढ़ियों से चलते आनेवासे जीवन-व्यापी संस्कारों का बाध प्रति बाध ही उनके विषय हैं । 'बड़ती बूढ़' का नायक मीहून परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ भागे बड़ता है । बातावरण उसकी क्रियाओं को उसके मानसिक विकास और जीवन को रूप देता है । 'उत्का' में परम्परागत संस्कृतियों और वर्जुमा समाज के बीच हुए आचार विचारों के विच्छेद बिरोह करनेवासी नायक का चरित्र प्रस्तुत है । यहाँ बिरोह केवल एक घावस फटना नहीं है उसका आचार अधिक हड़ है क्योंकि परि स्थितियों से दबे हुए पात्रों के जीवन में वह एक आवश्यकता हो जाता है । फिर भी दोनों उपन्यासों में स्पष्ट पूर्णतया सफल नहीं हुए हैं । उनमें अन्ति का रूप सामा जिक नहीं है । मोहन की समस्या व्यक्तिगत ही रह गयी है और मिस की हड़ताल सर्वहारा वर्ग की अनिवार्य आवश्यकता न होकर केवल पार्टी और मोहन का कार्य रह गया है । 'अंधन' में सबूतों के उस यातनापूर्ण जीवन की ओर ध्यान ही नहीं दिया है जो हड़ताल को उनकी अनिवार्य आवश्यकता बना देता है । 'उत्का' की समस्या भी वैयक्तिक है परन्तु वह वैयक्तिकता की सीमा को कुछ पार कर जाती है । दोनों उपन्यासों में मोहन ममतता तारा प्रकाश और आदि सभी मुख्य पात्र आदर्श हो गये हैं । दोनों में सामाजिक कुरीतियों की प्रत्यक्ष आलोचना भी है । विविध सिद्धान्तों का तार्किक निरूपण और मेकवरवादी भी कम नहीं है । इन कमियों के होते हुए भी दोनों उपन्यासों के सर्वप्रथम जीवन का चित्रण प्रगतिवाद की विशेषता है ।

यहाँ मधुपाम के उपन्यासों की बोड़ी जहाँ आवश्यक है । मधुपाम के आदर्श साम्यवादी हैं लेकिन उनके उपन्यासों की समाजवादी यथार्थवादी या प्रगतिवादी कहना कठिन है क्योंकि उनका सामाजिक आचार बहुत स्थिर है । 'बाबा कामरेड' और 'पार्टी कामरेड' में आत्मिकारी बल की विविध प्रवृत्तियों का मेला है । उनसनी बार और कहीं-कहीं रोमांटिक चटनाएँ एक रोचक लोक की सृष्टि करती हैं पर उनकी यथार्थता पर शन्देह होने लगता है । 'देसाहोही' में विविध पात्रों और नेताओं के कार्यक्रमों और आलगावियों पर अतिरिक्त ध्यान दिया गया है उसका जन-जीवन पर नहीं । हा सभा का रोचक जीवन प्राचीन उपन्यास के वीर नायक (Adventurous Hero) का सा है । मधुपाम ने जो संघर्ष दिखाया है वह राजनीति से अधिक सम्भव रहता है सामाजिक विकास से नहीं ।

१ जामी बूढ़ प्रेमिष्ठ ५ ४ ।

२ Life is not determined by consciousness, but consciousness by life.

—Marx & Engels Literature & Art ११

६

प्रकृतिवाद (Naturalism)

३६२ प्रकृतिवाद^१ ऐसा एक वाद है जिसका हिन्दी में अधिक प्रचार नहीं हुआ है। किन्तु इसके सम्बन्ध में गलत और निराधार धारणाओं का काफी प्रचार हुआ है। हमारे प्रामोचकों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रकृतिवाद की जो परिभाषा या व्याख्या दी है और जो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं उनसे स्पष्ट होता है कि उनके विचार कितने धनदीप्त हैं। जो सक्ता है हिन्दी में प्रकृतिवादी साहित्य के प्रभाव के कारण उसके समीचीन अध्ययन की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई हो।^२ प्राक् इन प्रामोचकों की परिभाषा सपूर्ण है और प्रकृतिवाद के एक ही मन—वह जो बहुत मुख्य भाग नहीं है—का विवेचन करती है।

डा. श्रीकृष्ण लाल ने चतुरसेन शान्धी उग्र चन्द्रसेन पाठक और इलाचन्द्र खोशी को प्रकृतिवादी मानते हुए कहा है कि इन प्रकृतिवादियों ने “ऐसे चरित्रों की सृष्टि की जो पुकार-पुकारकर कहते हैं कि मनुष्य और पशु में कोई विशेष अन्तर नहीं विशेषकर विषय भोग की दृष्टि से वे पशुओं से भी नीचे और निकट हैं। पुरुष और स्त्रियों के बाह्य सौन्दर्य के उत्तेजक चित्रण पर ही इन लेखकों का ध्यान अधिक गया है और चरित्रों का विकास अधिकोप परिस्थितियों के झुकाव और प्रगति के आधार पर चित्रित किया है।^३ स्पष्ट है कि डा. श्रीकृष्ण लाल नीचे और पतित वर्ग के कुटिल जीवन के बाह्य रूप के चित्रण का प्रकृतिवाद का विषय मानते हैं। लेकिन प्रकृतिवाद इससे बहुत कुछ अधिक है। डा. श्रीकृष्ण लाल ने अपने प्रस्तुत उदाहरणों में—उग्र चतुरसेन शान्धी में—बन्धु विश्वास और चरित्र-चित्रण बहुत ही सूक्ष्म कोटि के माने हैं उनके उपदेष्टा-मूल्य को मान्यता दी है केवल सामाजिक जीवन-चित्रण में सुख के प्रभाव की धारणा की है।^४ यह विचार भी अपूर्ण है जबकि धार के विवेचन से स्पष्ट होगा। उग्र और चतुरसेन प्रकृतिवादी ही नहीं हैं।

दूसरे प्रामोचक शिवशान्तिह चौहान ने ‘वर्म राक्ष’ का उदाहरण देते हुए शैविक जीवन की घोरत और असंख्य बटनाओं के ‘हू-बहू’ यथातथ्य ‘प्यारेबार चित्रण’ को उसकी विशेषता मानी है।^५ धारने उनका कथन है ‘प्रकृतिवादी अपग्याओं में मनुष्य अपनी मनुष्यता व्यक्तित्व और ऐतिहासिक-सामाजिक महत्ता खोकर

१ व्यक्तिगत रूप में मैं ‘Naturalism’ के अनुवाद के रूप में ‘प्रकृतवाद’ को डीज नहीं समझता। किन्तु हिन्दी में इसके काफी प्रचलित होने के कारण इस स्वी को स्वीकृत करता हूँ — वैध ‘Naturalism’ के लिए ‘प्रकृतिवाद’ और ‘Naturalism’ के लिए ‘प्रकृतिवादावाद’ अधिक उचित लगते हैं।

२ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृ. ११५।

३ वैध आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृ. ११६।

४ साहित्यानुशीलन पृ. १६६।

ऐसा ही यह था ब्योसॉजिकल (Biological) प्राणी बन जाता है और कसा की मूल वस्तु-विचार न होकर अन्तर या बाह्य जीवन की कोई बटना बन जाती है।^१ यह विचार भी एगोरी है और प्रकृतिवाद को पूर्णतया स्पष्ट नहीं करता।

साधारण मनुष्यसारे माजयेयी प्रकृतिवाद में जीवन के स्वस्थ उपकरणों का अभाव 'विहृत और असंतुलित चरित्रों की जीवन-माया' देखते हैं।^२ डा हबारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है 'इसके अनुसार मनुष्य प्रकृति का उसी प्रकार से अल्प विकसित जन्तु है जिस प्रकार संसार के अन्य प्राणी। उसमें वसु-सुलभ आकर्षण विकर्षण बलों के त्यों वर्तमान हैं। प्रकृतिवादी भेदक मनुष्य को काम-क्रोध आदि मनो रागों का पट्टर-मात्र समझता है उसके अर्थहीन आचरणों का मासक केटाघों और अहंकार से उत्पन्न आत्मिक कृतियों का विशेष भाव से उल्लेख करता है।^३ डा द्विवेदी की व्याख्या प्रकृतिवाद की वस्तु के सम्बन्ध में कुछ निश्चित सिद्धान्तों की ओर संकेत करती है। यह व्याख्या नृतिरहित है फिर भी अपूर्ण है क्योंकि प्रकृतिवाद के लिए अत्यन्त अपेक्षित कुछ बातों का उल्लेख इसमें नहीं हुआ है। किन्तु डा द्विवेदी ने जो कुछ कहा है उसका निषेध नहीं किया जा सकता है।

वस्तुतः हिन्दी के ही नहीं इंग्लिश और स्वयं फ्रांस तक के कई विद्वानों ने प्रकृतिवाद और उसके प्रवर्तक माने जानेवाले बोसा का भयकर विरोध किया था।^४ और बोसा और मोपासों के पदार्थ प्रकृतिवाद का एकदम विनाश ही उसकी कमजोरी की ओर संकेत करता है। किन्तु परकामीन मथार्थवाद पर उसका जो प्रभाव पड़ा और उसने स्वयं जो महत्वपूर्ण विश्वप्रसिद्ध रचनाएँ उपस्थित कीं उनका निषेध नहीं किया जा सकता है।

प्रकृतिवाद क्या है ?

३६३ अब हम प्रकृतिवाद के प्रवर्तकों की व्याख्याओं से और उनकी प्रकृतिवादी रचनाओं से समझने का प्रयत्न करेंगे कि प्रकृतिवाद वस्तुतः क्या है उसका स्वरूप क्या है उसके अनुपेक्षणीय अंग क्या हैं ? प्रकृतिवाद का जन्म फ्रांस में हुआ और इसके प्रथम प्रवर्तक गनकोर भाई थे।^५ किन्तु एक बार के रूप में साहित्य में उसका प्रतिष्ठापन करनेवाले और पहले-श्रेष्ठ उसकी व्याख्या करनेवाले प्रसिद्ध अत्यन्तकार एमील बोसा थे। बोसा की पुस्तक 'न रोमान एक्सपेरिमेंटल

१ साहित्यशास्त्रीयन पृ. १३०।

२ क्या साहित्य : नवे प्रश्न पृ. १।

३ हिन्दी साहित्य, पृ. ४९०-९८।

४ आमानोले कांस्त ने बोसा के प्रकृतिवाद को पढ़ीगी और निराश्रय भयकर खोदकर रागों में उद्वेग प्रवेश किया। 'मैं अनुपेक्षित' की पार लिखी। काय सेट्सवरी प्रकृतिवाद के सर्वप्रतिरोधी है। देखें 'History of French Novel' में प्रकृतिवाद पर लिखित अध्याय।

५ Saintsbury History of the French Novel, P 460

(Experimental Novel) ही प्रकृतिवाद का प्रथम सैद्धांतिक ग्रन्थ है। इस नाम से ही स्पष्ट है कि जोसा जीवन को एक प्रयोग के रूप में देखते थे। इसके बाद पुत्रत्रिएर के 'न रोमान नैच्युरलिस्ट' (प्रकृतिवादी उपन्यास) में इसके सिद्धांतों को और स्पष्ट किया गया। इन दोनों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रकृतिवाद का निवेदन विस्तृत निम्न दो पहलुओं की ओर करना चाहिए (१) ज्ञान-वृद्धि के माध्यम के रूप में—धर्मार्थ—एक विज्ञान के रूप में और (२) एक कला-प्रणाली के रूप में। इनमें प्रथम का सम्बन्ध अधिक वस्तु से है दूसरे का धर्मव्यवहार से।

इन दोनों की विस्तृत निवेदना करने के पहले कुछ प्रसिद्ध प्रकृतिवादियों और उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है।

फ्रेंच प्रकृतिवादी

१६४ यमकोर माई—(एडमण्ड व यमकोर और जूल व यमकोर) इन दोनों माईनों ने मिलकर सन् १८२९ और १८७७ के बीच में जो उपन्यास लिखे वे प्रथम प्रकृतिवादी उपन्यास थे। विषय और वस्तु-विन्यास की दृष्टि से वे अत्यंत यथार्थवादी थे मनुष्य की वास्तविकता का विश्लेषण करनेवाले थे किन्तु प्रकृतिवाद के ग्रन्थ कई गुण इनके उपन्यासों में न थे।^१

१६५ एमील जोसा—प्रकृतिवाद के सर्वमान्य प्रवर्तक जोसा के बीच उपन्यासों की एक श्रृंखला को 'रोमन मोक्वार उपन्यास-श्रृंखला' नाम से प्रसिद्ध है हमारी दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है। इसका प्रत्येक उपन्यास अपने-आपमें पूर्ण है किन्तु प्रत्येक उपन्यास को पूर्ण रूप में समझने के लिए सबको क्रमानुसार पढ़ना आवश्यक है। इसके बिना एक या दो उपन्यासों की पढ़कर प्रकृतिवाद की विवेचना करनेवाले प्रकृतिवाद को समझ ही नहीं पाते हाथी के पैर या पूंछ या सूँठ को ही हाथी समझने की शुरुआत करते हैं।

आगे के अध्ययन के लिए इन तीनों उपन्यासों के विषय का ज्ञान आवश्यक है यद्यपि इनमें मुख्य उपन्यासों के सम्बन्ध के साथ उनकी सम्पूर्ण वस्तु संक्षेप में यहाँ दी जाती है। फ्रेंच में इसका नाम 'रोमन मोक्वार द्वितीय साम्राज्य के एक कुटुम्ब का प्राकृतिक और सामाजिक इतिहास'^२ ही प्रचलित करता है कि जोसा का ध्येय इसमें एक ब्रह्म-विरमण का वैवायविकी (Hereditry) और परिवेश (Environment) के

१ The important novels are Charles Demailly Socur Philomine, Renee Mauperin, Germinie Lacerteux, Manette Solomom, After Jules death Edmond alone wrote La Fille Elisa La Faustin Cherie etc.

२ Les Rougon Macquart, Histoire naturelle et sociale d'une famille sous le Second Empire (The Natural and Social History of the Rougon Macquart Family under the Second Empire).

प्रभावों के प्रभाव पर वैज्ञानिक अध्ययन करना है। वैज्ञानिकी मनुष्य के कप-रूप उसके रक्त में सब बातें बिकार यहाँ तक कि उसके भाव्य तक की निर्धारक शक्ति है। इसके साथ-साथ परिवेश का प्रभाव भी जीवन में कई परिवर्तन लाता है। मनुष्य के कम रंग और स्वभावों को बहुत कुछ प्रभावित करता है। किन्तु वैज्ञानिकी का पूर्ण सोन घटसंघ है। इस वैज्ञानिक सत्य का प्रतिपादन ही जोना का मुख्य ध्येय है। रोपन मोक्षार-बंध की उत्पत्ति आदिसेव फोक नामक स्त्री से होती है जो अपने-आपको वास्तविक जीवन के आदेश में ली जाती है। उसका अनिर्दिष्ट भाव्य उसे सम्भावनाय तक पहुँचाता है जहाँ वह मर जाती है। पर मरने के पहले अपने बीतों उत्पत्तिकारियों को वास्तव में डूबते हुए, विविध घपराय करते हुए और तरह-तरह के रंगों के छिन्न होते हुए देखती है। इतना ही नहीं उसी बंध-परम्परा के कुछ व्यक्ति वैज्ञानिकी के जगत्कार से और परिवेश की अनुकूलता से घटि मेवाही भी बने हैं। आदिसेव ने एक परिधमी कपक रोगन से विवाह किया था। पर एक पुत्र विधर रोपन के जन्म के बाद बिचवा हो पयी। बिना बिचब एक पियकूड़ बरि-हीन व्यक्ति मोक्षार से उसके दो खर्व छत्तानें पैदा होती हैं। इस तरह एक भार वैध रोपन बंध-परम्परा और पुष्टी और खर्व मोक्षार बंध-परम्परा बनती है। दोनों परम्पराओं में कुछ सामान्य गुण हैं, यति तीव्र इच्छाएं, स्वायत्त करने का धाम, सांसारिक सुख भाग के पूर्ण अनुभव का आदेश। लेकिन प्रथम परम्परा के सभी व्यक्ति आदिसेव के जन्म रक्त और रोगन के अधिक हड़ रक्त के सम्मिश्रण के कारण अधिक भिन्नी हैं, शक्ति सम्पन्न हैं और जीवन में सामान्यतः बिचयी होते हैं और कभी-कभी अतिशय विजय प्राप्त करते हैं जबकि मोक्षार-परम्परा के जन्म माता-पिता दोनों के विनाशमय जन्म सम्भाव्यत जीवन के परिणाम में तरह-तरह की विकृतियों के शिकार बनते हैं—अपार विनाशिता मरणान प्रत्येक प्रकृति की घटि मात्रा सम्भाव आदि के जन्म आदर्शजनक प्रतिमाधारी का कलाकार बनते हैं। चित्त-विकृति (Neurosis) के दो भिन्न रूपों का (क्योंकि प्रतिमा धी एक तरह की चित्त-विकृति है) अध्ययन जोना ने वैज्ञानिक आधार पर किया है। रोगन और मोक्षार के व्यक्तियों के विषय से उत्पन्न सम्पत्तियों की चित्त-वृत्तियाँ अधिक बटिल हो जाती हैं। भिन्न व्यक्तियों में जो सम्पत्तियाँ और बिन्नताएँ हैं जो-जो कुछ चित्त-चित्त मात्रा में आरोपित हैं यह सब बीज-विज्ञान और मनोविज्ञान के बटिल नियमों के आधार पर है। मेथन के वैज्ञानिकी-सम्बन्धी सिद्धान्तों के अध्ययन से जोना की वैज्ञानिकता अधिक स्पष्ट होती।

१ मेथन का नियम मेथन ने कई प्रयोगों से सिद्ध किया है कि किसी एक रंग के एक ही ठोस रंग के जूलों के वास्तविक वास्तव (Pollination) में अपनी रंगी में लगी रंग के जूल मिलते हैं। पर दो भिन्न रंगों के जूलों के पराग से अपनी रंगी में दोनों भिन्न रंगों के रंग मिलित रंगों के जूल मिलते हैं। फिर विभिन्न रंगों के जूलों के वास्तविक पराग का रंग की रंगी में ठोस रंगों के जूलों का मिलन भी संभव है। सामान्यतः लघु प्रयोग के

माइसेव और मोन्टार का पुत्र एन्टोइन मोन्टार आधारे का जीवन बिताता है। वह और उसकी पत्नी मछप हैं। इनकी पुत्री जेन जो संपूर्ण उपन्यास-माता में सबसे दयनीय पात्र है (L. Assommoir में उसकी जीवनी है) बचपन में ही माँ बाप की अचानक वृत्ति और मछ-श्रेय से प्रभावित होती है। बीसह साल की उम्र में एक सुन्दर, पर उत्तरदायित्वहीन युवक सांतिघर के संबंध से एक पुत्र बनाह को और बन्दी ही घोर को पुत्र बाक घोर एतीन को जन्म देती है। जेन सांतिघर के साथ पारिस जाती है जहाँ उसकी सारी संपत्ति गल्ट की जाती है और वह धनामिश्र छोड़ दी जाती है। दूसरे एक मछप कुनो से विवाह करके वह स्वयं मछपान में डूब जाती है और दयनीय मृत्यु के मुंह पड़ती है। बनाह एक उत्कट कलाकार बनता है पर कला जीवन की भयंकर निराशा से उत्पन्न उन्माद से आत्महत्या कर लेता है। 'म आइवर' में उसकी कथा है। 'म बेथ हू मेन' में बाक की कथा है जो हत्या-वृत्ति के विच्छिन्न-श्रेय से पीड़ित है। जेन और कुनो की पुत्री चम्पा कुनो या नाना की कथा 'नाना' में है जो जोना के उपन्यासों में सबसे प्रसिद्ध है। अचानक असाधारणता से प्रभावित और पारिस की भौतिक उच्छृङ्खलता से पत्नी नाना की आराधना में ही बर छोड़ जाती है और वैवाहिक स्वीकृत कर अन्त में दयनीय मृत्यु मरती है। एतीन इस परम्परा में सबसे कम असाधारण व्यक्ति है जिसका जीवन 'अमिन्स' में बणित है। एतीन की साधारणता और नाना की असाधारणता के बीच में साधारणता और असाधारणता के विभिन्न अनुपातों के आधार पर विच्छिन्न-वृत्तियों के कई स्तर विभिन्न पात्रों में दिखाए गए हैं।

दूसरा उदाहरण मोन्टार-बच का प्राकृतिक जीवन। इसके साथ-साथ बाता बरगु के रूप में ऐश्वर्य और आइवरपूर्ण पारिस की निरिच्छित उच्छृङ्खल विनाशिता से लेकर ('नाना' और 'म अस्मोयर' में) जीवन के लिए मरण से लड़नेवाले और नित्य दार्ष्टिक्य को अनुभव करते हुए भी व्यवहार कुप्रवृत्ति पर सामना-वृत्ति का भाग हूँ निरासनेवाले खनिज-मछपुत्रों के संघर्षमय जीवन तक का (Germinal में) विलुप्त विषय है। यह बाताबरण रोगन मोन्टार-बच के स्वभावों को अधिक स्पष्ट करने के लिए नहीं बल्कि वैज्ञानिकी और परिवेश के बात प्रभावों से पात्रों के जीवन को रूप देने के निमित्त मिश्रित किया गया है। दूसरे शब्दों में वहाँ तो यह बाता बरण (Background) वस्तु परिवेश (Environment) है जिसमें जीवन चलता है।

यह है जोना की प्रथम उपन्यास-परम्परा का विषय। इसके बाद एक उपन्यास मयी 'तीन घण्ट' निकला जिसमें यूरोप के सबसे बड़े वारिष्क सहर बूर् और रोम

विभिन्न वयस की लड़िका होने पर शुरु रंगों के रूप कम होने हैं, विभिन्न रंग के व्यक्ति। यह शुरु रंगों के ही नदी कम शुरु के संभव में भी लागू होता है, जहाँ में ही नदी शुरु में भी।

भाषा पढ़ जाती है। इस विषय में मिस रिचर्डसन को अधिक सफलता मिली है। उनकी मिडियम का चरित्र प्रकृतिवादी ढंग से विकसित है। अपने पूर्वजों से प्राप्त संस्कारों को वैयक्तिक जीवन की परिस्थितियों से मुहं भर मुहं सामना करानेवाली मिडियम का चरित्र उत्तम उदाहरण है। इन दोनों उपन्यासों में एक बात दृष्ट्य है कि जोसा और मोपासा के उपन्यासों में परिवेश की जो विस्तृति है वह इनमें नहीं है।

हिन्दी के उपाकथित प्रकृतिवादी

१६१ ऊपर कुछ प्रकृतिवादी उपन्यासों के विषय-मात्र का जो उल्लास दिया गया है उसे हिन्दी के उपाकथित प्रकृतिवादियों के (उदा. कमुरसेन मम्मननाथ मुष्ट आदि) उपन्यासों की तुलना करें तो स्पष्ट होगा कि ये प्रकृतिवाद से कोसों दूर हैं। घावे के बिसेपण से यह बात और स्पष्ट हो जायगी कि विषय वस्तु-विस्थाप्य शैली इष्टिकोण किसी भी बात में ये प्रकृतिवादी नहीं हैं।

प्रकृतिवाद की विधायताएँ

१७० पहले ही कहा जा चुका है कि प्रकृतिवाद को पूर्णतया समझने के लिए उसे दो स्तरों में देखना पड़ेगा—विज्ञान के रूप में और कला प्रणाली के रूप में। घटारूखी और उन्नीसवीं शती में भौतिक विज्ञान जीव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण आविष्कार हुए, उनका साहित्य पर प्रभाव आश्चर्य की बात नहीं है। बढ़ते हुए भौतिकवाद ने जीवन के प्रति धब तक जो दार्शनिक दृष्टिकोण या उसको एकदम झकझोर दिया जीवन की वैयक्तिकता के जो नियम परम्परा से निर्धारित किसे गए थे उन सबको निरर्थक सिद्ध कर दिया और इष्टित सत्तों एवं परैमित्य तत्त्वों के आचार पर जीवन के पुनर्गु स्थापन का प्रयत्न किया। वहीं से साहित्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिष्ठापन होता है।

प्रकृतिवाद वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में

१७१ जोसा के 'प्रयोगवादी उपन्यास' (Experimental Novel) नामक ग्रंथ के नाम से ही स्पष्ट है कि जोसा उपन्यास में प्रतिपादित जीवन को एक प्रयोग के रूप में ही देखना चाहते हैं।^१ उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा 'प्रयोगी प्रकृति का परीक्षण कर बिबि-निर्णय करनेवाला होता है। हम उपन्यासकार अनुप्यों और उनके बिकारों का

१ यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि आचार्य प्रयोगवादी कविता' शब्द का जिस जगह में हिन्दी के इतिहासी आलोचक प्रयोग करते हैं उसके समान अर्थ में यहाँ 'प्रयोगवादी उपन्यास' का प्रयोग नहीं हुआ है। हिन्दी के बहुत से कवि और आलोचक प्रयोगवादी को रीतिगत प्रयोग तक ही सीमित रखते हैं जो ग़रीब भूल है। प्रयोग वस्तुतः मानव के अन्तर्निहित मानों विचारों और संस्कारसंकेत प्रवृत्तियों के वास्तविक संज्ञ एवं चरित्रवर्णन का नाम है, चाहे वह कविता में हो, चाहे उपन्यास में। इसी अर्थ में यहाँ इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

परीक्षण कर बिबिध-निर्णय करनेवाले हैं ।^१

बिबिध रासायनिक पदार्थों के बिबिध धनुषातों में संयुक्त होने पर कितने ही नवीन पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिनके मौखिक एवं रास-गुण पदार्थों के धनुषात पर और रासायनिक प्रक्रिया की परिस्थितियों पर आधारित रहते हैं। मनुष्य की चित्त-वृत्तियों की क्रियाएँ भी इसी तरह की होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति में कितनी ही मानसिक प्रक्रियाएँ और स्वाभाविक वृत्तियाँ होती हैं जो उसे पशु-सम्पत्ति के रूप में मिसी होती हैं अथवा सामाजिक संस्कृति-संश्लिष्ट। ये सब संश्लिष्ट चित्त-वृत्तियाँ निरन्तर परिवेश के जावात्मक धर्मों के साथ संपर्क में और संघर्ष में घाटी हैं और न जाने कितनी नुतन वृत्तियों को जन्म देती हैं। रासायनिक प्रक्रिया में जैसे एलुमि (Alum) का किसी रूप में आबर्जन या विसर्जन होता है और कभी-कभी भस्कर विस्फोट होता है उसी तरह का अपार दलित-विसर्जन और विस्फोट मानसिक प्रक्रियाओं में भी संभव है। इसी दृष्टि से बोना और बोनासा मानव-जीवन का अध्ययन करते हैं।

३७२ किन्तु इस प्रयोग के संबंध में कई-सन्देह हो सकते हैं। क्या विज्ञान के सिद्धान्तों और नियमों के समान जीवन के भी सिद्धान्त और नियम बनाये जा सकते हैं? और क्या रासायनिक प्रक्रियाओं के समान भावों की क्रियाएँ भी निश्चित नियमों से बंधी हुई हैं? रास-योग या अन्य कोई वैज्ञानिक प्रक्रिया प्रयोगी के व्यक्तित्व से प्रभावित होती है। पर क्या मनुष्य के भाव भी ऐसे होते हैं? उसी बात को यह है कि कोई कलाकार मनोभावों के संबंध में प्रयोग करता है, वह उसने उसके अपने दृष्टिकोण और व्यक्तिगत इष्टानिष्टों नैतिक चारणाओं और यहाँ तक कि सत्कालीन मानसिक दशा का भी प्रभाव पड़ता है। एक ही परिस्थिति में एक ही पात्र के भावों से उसकनेवाले बिभिन्न कलाकार एक ही परिणाम पर पहुँच नहीं सकते। वैज्ञानिक प्रयोग में वैयक्तिक प्रभाव नहीं होता बकारिक चेष्टना नहीं रहती तटिकता की चारणाएँ और सौन्दर्य की भाव्यताएँ नहीं होती। पर क्या मैं ये सब अनुपेक्षणीय हैं। ऐसी दशा में विज्ञान के मापदण्ड से जीवन का मापन करना और वैज्ञानिक अध्ययन की नींव पर क्या का महान कड़ा करना कहाँ तक संभव होता?

३७३ केवल प्रयोगों से केवल अध्ययन से केवल सत्त्वों से क्या का सुजन नहीं हो सकता।^२ किन्तु प्रयोग अध्ययन और सत्त्व क्या-सुजन में उपयोगी धन्य होते

१ "The experimentalist is the examining magistrate of nature, we novelists are examining magistrates of men and their passion."

—Zola, Quoted by Grabo Technique of the Novel P 251

२ "It is perfectly true that novel-writing ought to be based on experience in practical life, and that infinite documents are procurable. Infinite notes may be made from that life. It is utterly untrue that any observation any experiment, any document is good novel."

—Saintsbury History of the French Novel P 470.

है। जोसा और मोपासा इस बात से अनभिज्ञ नहीं थे। इसीलिए उनके उपन्यासों में बच्चे से बच्चे धर्म्याओं में भी बीच-बीच में जीवन के स्पष्टतम सुभाषी पड़ते हैं। किन्तु प्रकृतिवाद की मूल वृत्ति के रूप में उन्होंने जिस वस्तु को देखा वह जीवन का ब्रह्मानिक अध्ययन ही है। वह अध्ययन मुख्यतया दो धाराओं पर है (१) जॉन स्टेनर धारि के पैदा गतिकी परिवेष्ट परिछामवाद धारि से सम्बन्धित सिद्धान्तों के धारा पर और (२) मनोविज्ञान के नियतिवाद के धारा पर।

१७४ जॉन और स्टेनर ने निम्नतम श्रेणी से लेकर जन्तुओं के क्रमिक विकास का अध्ययन करके मनुष्य के पूर्वजों का भी निष्कर्ष किया। इस निर्णय से मनुष्य में जो प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ अवशिष्ट हैं उनके कारणों पर भी प्रकाश पड़ा। किन्तु जॉन और स्टेनर के ये सिद्धान्त बीच-विज्ञान और शरीर-विज्ञान से ही अधिक सम्बन्धित थे। मनोमात्रों के क्षेत्र में उनका प्रवेश न था। किन्तु फ्रायड धारि मनो-वैज्ञानिकों ने जिस नियतिवाद का सिद्धान्त प्रस्तुत किया उसमें और जॉन के परिछामवाद में बहुत समानता है। मनोवैज्ञानिक नियतिवाद को सभी मनुष्यों के मनोविज्ञान्यता सेते हैं। इसके अनुसार मनुष्य की चित्त-वृत्तियाँ बहुत कुछ जन्म से ही निश्चित हो जाती हैं।^१

जोसा और मोपासा के सभी पात्रों के जीवन इन नियमों के धारा पर निर्मित है। रोगन और मोन्वार-बच्चों का सामान्य पुण्य-विकार तीव्रत्व—धारिसेह से प्राप्त है क्योंकि धारिसेह का यह स्वभाव प्रायः पुण्यत्व की वधा में है। रोगन से उसके पुत्रों में अधिक सम्नुमित वधा की संभावना है क्योंकि रोगन स्वयं सम्नुमित है। किन्तु धारिसेह के समान ही पूर्वतमा असम्नुमित मोन्वार से उसके जो सन्तानें होती हैं उनका भी अपनी हर वृत्ति में तीव्र होना स्वाभाविक है।^२ परवर्ती पीढ़ियों में स्वभावों और चित्त-वृत्तियों की अधिक सक्रियता पायी जाती है, वह भी देखने से स्वीकृत है। मोपासा के 'ऊन बी' में जीन और वुलियन के पुत्र को सीबिए। जीन वुलियन मर्यादा का पालन करनेवाली है उसकी लैंगिक चेतना अधिक सक्रिय नहीं है। अधिक जर्ज और ब्रांडर

१ "According to him (Freud) man has acquired somewhere in his phylogenetic history certain innate unlearned strivings, or urges or instincts.

—See Brown Psychodynamics of Abnormal Behaviour P 136

२ मेन्डेल (Mendel) का सिद्धान्त वस्तुतः जनसंख्याओं और वस्तुओं से सम्बन्धित था और पूर्वतमा जनके शारीरिक गुणों के सम्बन्ध में लागू था। किन्तु प्रोफेसर रिचर्ड्स ने सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ भी इस नियम से शासित हैं। उक्त नियमनुसार पूर्वे चित्त-विविध और पूर्वे चित्त-अविविध के व्यक्तियों की संख्या कम होती। आंशिक चित्त-विविध व्यक्तियों की संख्या में शरीर होती है। जोसा के पात्रों में भी यही दृश्य है।

—See Doncaster Heredity in the Light of Recent Research, P 49-50

का स्वभाव बाहे परिवेश के कारण हुआ हो जब वह उसके व्यक्तित्व का अभिन्न भग्न है। बुनियात बबूच है उसके योग-विकार तीव्र हैं। जब इन दोनों के पुनर्गमन की योग-तीव्रता धीर धीन का अर्धमापन दोनों का बाधे हैं। रोम्या रोमों का बाधे किस्साके एक मध्यम का पुनर्गमन है जब बाधकाल में उसका अस्तित्व कम नहीं है, बिना कारण ही उसका धीर मजाना बाध में उसकी चित्त विकृति (Neurosis) स्पष्ट है। किन्तु परिवेश की प्रेरणा से यही चित्त-विकृति कलात्मक प्रतिभा का रूप धारण कर लेती है।

जब इनकी तुलना में वह अतुरसेन धीर सम्मननाय गुप्त के उपम्यासों को सीखिए। हममें किसीका ध्येय इस तरह का वैज्ञानिक अध्ययन नहीं है। समाज में विद्यावी पढ़नेवाली साधारण या असाधारण प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक धीर जीव वैज्ञानिक कारण बड़े निकालने के बरमे से सभी कुत्सित वृत्तियों का अपघ्न समाज धर्म धीर संस्कृति के कड़िबात विकृत रूप के उसके बन्धनों के उसके अन्धविश्वासों के मत्के बोधकर क्षान्ति की सांस लेते हैं। उनका चिन्तन सामाजिक कड़ियों की ऊपरी वह को पार कर पार्श्वों की चित्त-वृत्ति तक पहुँचता ही नहीं। समाज पर आघात करने के आदेश में से ऐसे हृत्सों का निर्माण करते हैं जो अस्वीकृत तो हैं ही साध-साध समाज्यता की समुची सीमाओं का उल्लंघन भी कर जाते हैं। अध्ययन उनका ध्येय नहीं है विस्तेषण उनकी परिपाटी नहीं है। आलोचना धीर सुधारभाव (बाहे वह परोक्ष हो) के आधार पर अन्तर्निहित लेखक की प्रकृतिवादी नहीं होता।

यहाँ यह प्रश्न आ सकता है कि क्या वैज्ञानिकी परिवेश जीवन का प्राकृतिक विकास इन सबका अध्ययन उपम्यास के लिए आवश्यक है। उत्तर 'हाँ' भी है 'नहीं' भी। इनका अध्ययन उपम्यास में अनिवार्य नहीं है किन्तु यह भी आवश्यक नहीं है कि इन सबका बहिष्कार किया जाय। जीवन को समझने का किसी भी तरह का प्रयत्न औपम्यासिक कला से निषिद्ध नहीं है। पर प्रकृतिवादी उपन्यास वही माना जायगा जिसमें जीवन का प्राकृतिक विकास प्रतिबिम्बित हो।

इस बात को भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि विज्ञान की प्रणालियों के आधार पर मनुष्य को एक जीव-संज्ञ-मान मान लेना कहाँ तक उचित है? प्रकृतिवाद के सिद्धान्त बाहे जो कुछ हों प्रकृतिवादी रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि उनमें धनु भूति की अन्वेषणा नहीं हुई। जीवन की उपेक्षा नहीं की गयी है। जोसा प्रभृति वैज्ञानिक सिद्धान्तों को उपन्यास में लाना चाहते थे किन्तु धन्य विषयों का एकदम बहिष्कार नहीं चाहते थे। कलाकार को अपनी सौम्यायामुभूति अपनी व्यक्तिगत धनुभूति इन सबको व्यक्त करने की स्वतन्त्रता है पर वह स्वतन्त्रता इतनी ही है कि जीवन की भूभूति धीर वैज्ञानिक धनुभूतियों रोमान्टिक बस्यना या आदर्श का आशय लेकर

१. अन्तराल रिकर इस बात को अधिक स्पष्ट करने से शिथिल रोखती है। 'धनुष की रीति' में धनुष के बल में बर्णित बाधे 'होयत दि ताव' में अनुरिचारीयित बेहता से सैरजी के अन्तराल रिकर का सामूहिक व्यपिचार बाधे पक्ष प्रभृति के नन्ने।

मानव विकास के आधारभूत सत्यों के विरोधी न हों। खोला के उपन्यासों में बिखरे पड़े सीधे धनुमृति के प्रसंग इसके प्रमाण हैं। 'उन नी' और 'जो किस्ताऊँ' में मानव हृदय के सूक्ष्म स्वभावों को प्रतिबिम्बित करनेवाले प्रसंग कितने ही हैं। इनको देखते हुए प्रकृतिवाद के कला-मूल्य को भी मानना पड़ता है।

कला-प्रस्तावी के रूप में (As an Aesthetic Method)

३७५ प्रकृतिवाद वैज्ञानिक ज्ञान का साम्य ही नहीं एक कसारमक प्रयोग भी है। जैसे उसने वस्तु-लोक में नया दृष्टिकोण लाने का प्रयत्न किया उसी तरह उपन्यास के रूप को भी बहुत कुछ परिवर्तित किया।

प्रकृतिवादी अधिभ्यजन का आधार मथार्थ कथन है। मथार्थवादी प्रकृतिवाद के पहले भी हुए थे और मथार्थवादी न होने पर भी हर एक उपन्यास में थोड़ा-बहुत मथार्थ होता ही है। किन्तु प्रकृतिवादी ने मथार्थ को उसके पूर्ण लक्ष्य रूप में देखा और इस कारण उसका बहुत कुछ विरोध भी हो चुका है। यह गमता ही नहीं और कई विशेषताएँ भी प्रकृतिवादी मथार्थ में हैं।

३७६ प्रकृतिवाद ने प्रथम प्रथम कथानक को हर तरह की जटिलता से मुक्त कर दिया। एक शृङ्खलावद्ध कथा कहना उसके लिए अनिवार्य नहीं है किन्तु जीवन का निरीक्षण आवश्यक है। जीवन घसत में कथा नहीं है जीवन से कथा को जुन भना पड़ता है। और यह जुनना प्रकृतिवादी को पसन्द नहीं है। एव शृङ्खलावद्ध कहानी के लिए आवश्यक घटनाओं को जीवन से जुन से तो उसके ध्व्य कई धर्मों की उपेक्षा होती है। यत जीवन के एक भाग का भी पूर्ण चित्र नहीं मिलता। प्रकृतिवादी या तो जीवन के विघात रूप को देखता है जैसे रोयल मोन्टगोमरी-यरम्परा या 'जो किस्ताऊँ' में या नेबल प्रकथन के ध्व्य से एक परिमित खंड को ले लेता है जैसे 'बेम एनी' में। प्रकृतिवादी उपन्यास में कथा के पूर्ण होने की आवश्यकता नहीं रहती किन्तु उसमें प्रतिपादित जीवन पूर्ण रहता है।

उस बतुरसेन मयमनाय मथि के उपन्यास इसके बिसमूल बिन्दु हैं। उनमें जीवन के किसी एक खण्ड का पूर्ण रूप नहीं मिलता। अपने ध्व्य की प्रति के लिए निर्मित की गयी एक कथा या अनेक कथाएँ इनके प्रत्येक सामाजिक उपन्यासों में मिलती हैं।

३७७ विषय वृद्ध के समान—धरर सेवक यह पहले ही जाने कि वह धर्म में कहीं पहुँचेगा धनका वह नियुक्त कर से कि कहीं पहुँचना चाहिए, तब पापों को नम, धन्य या नम्य तक पहुँचाने का प्रयत्न वह धनकाते ही करने का करता है। पात्र बिबिध कस्मिन् संभलों से होकर नम्य तक पहुँचाने जाते हैं उनका जीवन निश्चित पथ से चलता है—या धर्मिक सही सज्जों में—जलाया जाता है। यह उग्र प्रभु तिया ने किया है और यही खोला मोपासों और रोम्पा रोसा ने नहीं किया है। इनके उपन्यासों में वस्तु एक वृद्ध के समान बढ़ती है जिसका कोई निश्चित रूप नहीं रहता जिसके रूप के सम्बन्ध में पहले कोई धारणा नहीं बनायी जा सकती है। ऐसी कथावस्तु

प्रकृतिवादी उपन्यास की विशेषता है। लेखक द्वारा संचालित कथानक से मुक्त उपन्यास की वस्तु का विकास उस गहन के निर्माण के समान होता है जिसका कोई प्रामाणिक रूप निश्चित रहता है।^१

अगर कथानक लेखक द्वारा संचालित न हो तो उसमें "Suspense" न होने की संभावना रहती है। इसीलिए साधारण हमारे उपर्युक्त उदाहरणों ने कथानक को स्वयं संचालित किया है। किंतु क्या जोला के उपन्यास "Suspense" से रहित है? निश्चित ही पाठक को चिन्तित करनेवाले प्रसंग जोला में नहीं हैं, उसके जीवन-सम्बन्धी शारणाओं के सामने एक धार्षर्ष चिन्ह जगानेवासी बटना जोला में नहीं है। लेकिन उनमें दूसरी तरह का एक Suspense है। स्वयं जीवन में Suspense होता है जो किसी भी कल्पित कथा के Suspense से अधिक प्रभावशाली होता है। जीवन के ऐसे प्रसंगों को जोला में पहचाना है। उसी तरह के जीवन में भी अननुभूत और अज्ञात सत्त्वों को भी जोला के उपन्यासों में अपने सामने उपस्थित देखकर हम स्तब्ध रह जाते हैं। उनकी वास्तविकता और साधारणता भी Suspense का कारण बन जाती है।

३७८ व्यक्तता का अभाव—प्रकृतिवादी यथार्थ लेखी की और एक विशेषता व्यक्तता-शक्ति का अभाव है। प्रकृतिवादी का अभिव्यंजन हमेशा धीमा होता है। उसमें कथन की शक्ति नहीं रहती चमत्कार नहीं रहता।^२ लेकिन प्रकृतिवादी लेखी कभी विचारों को अमूर्त रूप में प्रकट नहीं करती। प्रत्येक विचार को एक मूर्त रूप दिया जाता है। जोला और मोपासां कहीं भी नैतिक धार्षर्ष-सम्बन्धी तर्क-वितर्कपूर्ण विचार प्रस्तुत नहीं करते। नैतिक पक्ष को वे मूर्त रूप में दिखाते हैं पर उसकी धारणा करना, किसी धार्षर्ष की स्थापना नहीं करते। हमारे उदाहरित प्रकृतिवादियों में यह गुण नहीं के बराबर है। उनके उपन्यासों में नैतिक धार्षर्षों के सम्बन्ध में वितर्कित विचार बिखरकर तार्किक विचार—मरे पड़े हैं। रोम्मा रोसा का उपन्यास भी इस दोष से मुक्त नहीं है। 'बां क्रिस्ताफे' जब कला धारि के सम्बन्ध में अपने तर्क उपस्थित करता है, तब उपन्यास की सबसे कमजोर कड़ियों का खनन होता है। ऐसे प्रसंगों में रोम्मा रोसा निश्चित हो धार्षर्षवादी के अधीन हो जाते हैं और उपन्यास के लिए धार्षर्षक मूर्तता की सृष्टि नहीं कर सकते।

३७९ निरीक्षण—प्रकृतिवाद का यथार्थ पूर्णतया निरीक्षण पर अवलंबित है। निरीक्षक ही प्रयोग कर सकता है निरीक्षण के बिना प्रयोग व्यर्थ है। जोला एक-

१ See—Grabo Technique of the Novel P 672.

२ About Maupassant's style Saintsbury says "Maupassant had no tricks—the worst curse of art at all times.

—History of French Novel, Part I, P 514

"Naturalism disdains literary graces and purports to tell the truth about life as it has been revealed by science."

—Myers Later Realism P 22

एक उपन्यास लिखने के पहले उसमें प्रतिबिम्बित जीवन का पूरा अध्ययन कर लेते थे। प्रत्येक पात्र परिस्थिति संभाषण भाव-विभाव इन सबके संबंध में विद्याम नोट तैयार करके लिखते थे। अपनी उपन्यास के विषय के संबंध में उन्होंने प्रामाणिक प्रश्नों का अध्ययन किया। स्वभाव का चित्रण किया। मनुष्यों की भावों का बारीकी से निरीक्षण किया। इस तरह तैयार किये गये विद्याम ज्ञान-संग्रह से महीनों और कभी-कभी वर्षों तक के प्रयत्न से एक रचना को जन्म देते थे।^१ मोपासाँ का निरीक्षण भी कम नहीं होता था। उनकी बेतना और प्रकृत-शक्ति अत्यन्त तीव्र थी और फिर उनका निर्यापी साहित्यिक सिद्धान्त था— 'निरीक्षण करो फिर निरीक्षण करो और एक बार निरीक्षण करो'।^२ 'बर्निसटाउ' में कथानक की तुलना में जो प्रति निस्तुत कतेबर है उसका कारण रोम्या रोलाँ का निरीक्षण ही है। जीवन और कला बड़ी बारीकी से जो अध्ययन किया गया था वही पृष्ठ के पृष्ठ रंगों के लिए पर्याप्त सिद्ध हुआ है।

हिन्दी के किसी भी उपन्यासकार में ऐसी निरीक्षण-बसाता है इसमें सन्देह है। उषा प्रादि के उपन्यासों में कहीं भी कथानक को धाये बढ़ाने या समाज की कुत्सित वृत्तियों का दिखाने के अतिरिक्त और किसी विषय की ओर देखक का ध्यान नहीं आता। पात्रों के स्वभाव के बाह्य अथवा आन्तरिक अंगों को व्यक्त करने या परिस्थिति को पूर्णता प्रदान करने के शिथिल उन्होंने अपनी स्वतन्त्र-शक्ति का उपयोग नहीं किया है।

६३० प्रकृतिवादी निरीक्षण का परिणाम : अत्यन्त ब्रिस्तार—निष्क्रिय हस्त हो सक्रिय बटना हो अथवा कोई मानसिक व्यापार हो सबको मूर्त रूप देना—अपार्थ की जरूर सीमा तक पहुंचाना—प्रकृतिवादी आवश्यक मानता है परिणाम यह होता है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुओं और जगहों के विवरण से उपन्यास के कुछ मान सब जाते हैं। एक उदाहरण पर्याप्त होया

"मैं बोरो में सारा प्राण निस्तब्धता में डूबा हुआ था। वह एक निर्जीव कारखाने के समान था बड़े-बड़े रोड सब खाली थे सब कुछ निश्चल था। जिसका के घुंघरू आकाश के नीचे सीन-बार पीये घुंघरे पड़े थे जो कुछ अचेतन वस्तुओं के डेर के ऊपर उदास-से बिछायी पड़ रहे थे। बरा नीचे पतली सड़कियों की मेंका मे बीच में कोदने का जो डेर पड़ा था वह कम होता था रखा था और काले रंग के जमीन दिखायी पड़ रही थी। नामे के किनारे पर एक गाड़ी जो घायी लगी हुई थी नामे के गंदे पानी में प्रतिबिम्बित सोयी-सी बिछायी पड़ रही थी और खार्ड के पास जहाँ पानी के बरसते हुए भी रसायन-विकार से दुर्लभ पुष्पां दे रखा था एक छत्र के कम आकाश की ओर देख रहे थे।^३ यह सीली अन्ध अनाकपक है पर इसने

१ See—Thomas & Thomas Living Biographies of Famous Novelists, P 267

Germinal" का प्रत्येक अन्वय इस निरीक्षण का परिचायक है।

२ "Observe then observe and observe again. —See, Ibid P 24

३ Germinal Tancock's Translation P 217

सिने को धम करना पड़ता है वह प्रसीम है।

इस तरह के बर्तान संस्कारों मिलते हैं फेंच के प्रकृतिवादी उपन्यासों में और यह प्रकृतिवादी दौली की बात विरोधता है। जोरों की रिचवसन के उपन्यासों में भी ऐसे बर्तान कम नहीं हैं किन्तु हिन्दी के किसी भी यथार्थवादी में इस तरह बारीकी से ध्यान देने की प्रवृत्ति नहीं है। कभी-कभी यह अनादरपूर्ण गणन उभानेवाला हो जाता है, किन्तु यथार्थ के सत्य प्रकटन में यह उपयोगी ही है। उग्र अतुरधेन यदि इस मैत्री से कोसों दूर है। वह उनको सैली के घाघार पर भी प्रकृतिवादी कहना अनुचित है।

३८१ प्रकृतिवाद का एकान्वी निरीक्षण—प्रकृतिवाद के निरीक्षण की सबसे बड़ी बलहीनता उसका एकान्वी दृष्टिकोण है। उसमें जीवन का निरीक्षण तो है किन्तु जीवन के निकट घंटों पर ध्यान केन्द्रित रहता है। निस्सन्देह सबको और कारखानों में सड़ते हुए जीवन में जोना और मोपासी पाशविकता से ऊपर उठी हुई आत्मस्थ मानवता के शक्ति प्रकाश को देखते हैं पर यह क्षणिक प्रकाश हीन ही उस पशुत्व के भयंकर अन्धकार में मग्न हो जाता है। जोना की दृष्टि में जीवन में अज्ञानता अधिक है, बलहीनता कम। मोपासी के 'ऊन बी' में जीवन का जीवन पशुत्व और नृसत्ता से ऊपर उठा हुआ है किन्तु 'बेस एपी' के बिलासमीन नागरिकों का जीवन मनुष्य की सबसे निकट प्रवृत्तियों को दिखाता है। रोम्या रोमाँ इससे बहुत आगे बढ़े हुए हैं। उन्होंने मगर के लोगों तरह के जीवन का निरीक्षण किया है एक यह जीवन को उलझा हुआ है, वैसे को पानी की तरह बहानवाला है बिजेटों जोषलों और मझुलाताओं में जीवन की कुरिया देखनेवाला है दूसरा यह जीवन है जिसमें बहुत अपने जीवन की सारी समझायाएँ बचाकर भाई को पढ़ाने के लिए नौकरी करती है उसी भाई के लिए अपना सब कुछ खर्च करती है।

हिन्दी के उग्र धार्मिक समाज के यथार्थ विचारों ने जोना के समान बलिक जोना से भी अधिक जीवन के कुरितत दृष्ट को ही देखा है। इन कुरितत घंटों को देखने की उनकी प्रेरणा दूसरी रही हो किन्तु इस बात में वे प्रकृतिवाद से दूर नहीं हैं। और केवल इस विषय में वे प्रकृतिवादी हैं।

३८२ तटस्थता—यथार्थवादी जीवन को उसी रूप में देखकर, उसके रूप को उसकी प्रेरणाओं को समझने के अतिरिक्त और कोई ध्येय नहीं रखता। स्वच्छन्दतावाधियों के समान यह एक मनमोहक कल्पित संसार में अपने-आपको खोना नहीं चाहता और न आदरवाधियों के समान तत्कालीन जीवन से उन्नततर एक जीवन का स्वनिर्गत रूप प्रस्तुत करना ही चाहता है। उसके सामने जीवन को रूप देने की समस्या नहीं रहती जीवन और मनुष्य के रूप को समझने से ही वह मनुष्य है। इस तरह जीवन और मनुष्य को समझने से जीवन को कोई रिफा मिलती है या नहीं यह जीवन के सम्मुख में उपयोग है या नहीं यह दूसरी बात है। यथार्थवादी की यह ज्ञान-पिपासा प्रकृतिवादी में ललट बसा में होती है। और आनन्दन के लिए तटस्थ रहना अत्यन्त आवश्यक है। भेषक को अपनी नैतिक माय्यताओं का दृष्टान्तों को

धीर संस्कार-संविष्ट सामाजिक बारखाओं को एक धीरे रक्तकर पूर्ण बौद्धिक दृष्टि-कोण से विषय का समीपन करना पड़ता है और यह समीपन पूर्णतया निर्मम-सा बनता है।

इस तटस्थता के कारण प्रकृतिवादी तीन बातों से दूर रहता है

(क) वह कभी प्रत्यक्ष आलोचना नहीं करता।

(ख) वह सामान्यीकृत (Generalised) सिद्धान्तों को प्रत्यक्ष रूप में नहीं कहता।

(ग) अपने धारणों को उपदेश या तर्कों के रूप में प्रकट नहीं करता।

प्रकृतिवादी कला का ध्येय समाज की बीमस्तता को दिखाना तो है लेकिन उस उसके नग्न रूप में दिखाने के बाद प्रकृतिवादी चुपचाप रह जाता है। यह मौन प्रत्यक्ष आलोचना से अधिक प्रभावशाली है। जैसे बीरे-बीरे धुंधी होते हुए धनिपर्वत को देखकर ही पता चलता है कि उसके अन्दर एक भयंकर धनिसोक है उसी तरह विलकुल शान्त दीखनेवाले जूमिन सन्धों से उसके लेखक के हृदय की धनि-सिखा का आभास मिलता है। उस अतुरसेन धारि इसके विलकुल विरुद्ध हैं। वे किसी धनीति या प्रत्याचार को देखकर तुरन्त चिल्ला उठते हैं। बाखी की मीन धनिष्ठ से धनमित्र से लेखक सन्धों की मासिकता को केवल बाह्य समझते हैं। रोसा धीरे मोपास। जैसे आलोचना से दूर रहते हैं रोम्मा रोसा नहीं रह पाते। उनके बाँ किस्ताऊ के मुँह से तत्कासीन कला समाज धीरसंस्कृति की आलोचना की जाती है और यह आलोचना कही-कही धति धीर्य होकर धीपन्यासिक बास्ता में बाधक तक बन जाती है ऐसे आलोचनात्मक भाव उपन्यास के सबसे बलहीन भाग ही हैं।

आलोचना के साथ ही आलोचनी और बाते हैं सामान्यीकृत सिद्धान्त और भादर्ष का उपदेश। उध धारि हिन्दी के 'प्रकृतिवादियों' के उपन्यास ऐसे प्रसंगों से धरे पड़े हैं। मानव-हृदय के निबुद्ध सन्धों का सामान्य धरोस कचन जोसा धारि में भी मिलते हैं किन्तु उध ध्रुतियों में तत्कासीन सामाजिक बधा के किसी रूप को देखकर सामान्य सिद्धान्त पर पडुन जाता है और यह स्पष्ट कहा जाता है। एक उदाहरण देखें

"ननिक किसीको कुछ है या न है पर धन का समाज पर ऐसा कुप्रभाव है कि उसके साथ जून भाऊ । १

१ "In telling the truth naturalism professes to follow exactly the method of science, that is, collection of detailed evidence and impersonal setting forth of conclusions.

—Myers Later Realism, P 23.

२. अठकठा रहस्य का कभी में कोस्ता 'धीरक माग पृ १४६ देखें और एक उदाहरण "रुध धोरी की पत्नी कथार के साथ याव गयी। धति पुन पुनी धर धन सन्धों जोध वह कथार के साथ धाधिर क्रिध जोध के तिप धानी ? शाधर नही औरतों की पहली जीव है नारी समी धार की ध्यवस्थकनार ।

—जीमी की पृ० ११ ।

इसने साध-साध उपदेश का यह रूप देखा

अपनी पत्नी को छोड़ दूसरे की औरत पर नजर न डालो। धीरे बचाओ।

ओ जीवनानो

१

इन्हें भयकर विषय सुख देता—प्रकृतिवादी जो विषय सेता ॥ उनमें भीयत्त विषय कम नहीं होते। भयकर से भयकर धर्माधारों से और क्रुस्ति से क्रुस्ति भीयत्त विषयों से बचने का यह प्रयत्न नहीं करता। परन्तु जब इनको उपन्यास में लाता है उस कबानी बहुत सँभालकर बनाता है। केवल बटना-माफ का कठोर कथन न कर वह कथा को सुंदर रेशाओं से भावों को प्रकट करता है। बातावरण को स्पष्ट करता है या एक समर्थ विचार को कोमल छुमिका ही कर सकती है। विशेषकर फ्रेंच भाषा की ही यह विशेषता है कि बिलकुल बबल्य विषय को भी उसमें सम्मता का आवरण पहनाकर प्रस्तुत किया जा सकता है। जोला के उपन्यासों का अनुवाद करते समय उनके जैसे सम्य सभ्यों में प्रसम्य और पक्षीय भावों को प्रकट करना असंभव हो जाता है।^१

इत्या और व्यवहार ऐसी बरेखु चीजें नहीं हैं, बल्कि हम अपनी सुविधा और इच्छानुसार व्यवहार कर सकें। साधारण लेखक इनको कमा में लाकर कमा कर्म को निभा नहीं पाता। ये उही कमाकार के व्यवहार के विषय हैं, जो जीवन के सब तरह के अनुभवों के कारण प्रत्येक परिस्थिति में मानसिक समुन्नत रहने की क्षमता प्राप्त कर चुका हो अपनी अनुभूति-शक्ति को प्रत्यक्ष चेतन (Sensitive) बना चुका हो सत्-वस्तु को लोगों से निरपेक्ष रखने की शक्ति पा चुका हो और जिसकी छुमिका प्रति सूक्ष्म रेशाओं से और हल्के से हल्के रंगों में चित्र का रूप देने में समर्थ हो। यही वह चीज है जो जोला में है जो अन्य प्रकृतिवादियों में कम है हिन्दी के प्रकृतिवादियों में नहीं है और जब प्रभुत्वों में कटई नहीं है। उद्यम चतुरसेन और मनमथान के हाथ में कम नहीं कुठार है और कुठार सिर्फ कोई प्रकृतिवादी नहीं बन सकता।

इन्हें प्रकृतिवादी का नराधम इष्टिकोश—प्रकृतिवादी के इष्टिकोश की प्रत्यक्षता का मुख्य कारण उनका वैराग्य बताया जाता है और यह बहुत कुछ सत्य भी है। कमा जीवन में सौन्दर्य का निकालती है, पर जीवन प्रकृतिवादी उपन्यासों में प्रायः नोक कुंठियों में मरा है। यद्यपि जीवन की नीचता में जीवन के पतन में सौन्दर्य का दर्शन करना प्रकृतिवादी का स्वभाव है और पतन में सौन्दर्य बचनेवाला निश्चय ही निराशावादी है। जो जीवन के सभीवीण रूप को देखता है वह भूख-बुखमय सभी धनुषों को छोड़ और छायासमय सभी धनुषियों को देखता है। इन सबको देखते हुए, मानव-जीवन की बिम्ब का निर्माण करनेवाला संस्कार निराशावादी भी मया गुराई और बुद्ध में जीवन का अन्त नहीं पाया।

किन्तु प्रकृतिवादिनों ने विशेषकर जोसा से जीवन की निराशा को ही निरखा । पाश्चिक जीवन में इधर-उधर मानवता के जो अक्षय दिखायी पड़ते हैं वे धारणा लीए मसते हैं । किन्तु मनुष्य की पाश्चिकता-मात्र को देखनेवासे जोसा धरा पसीम वसा और सहानुभूति से उनको देखते हैं । जोसा और मोपासा निर्मम रहते हैं किन्तु यह निर्ममता केवल बहाना है और बहाने में वास्तविकता को छिपाना अधिक काम तक सम्भव नहीं है । अतः जगह-जगह पर उनके रूप के कोमल पंखों के बर्तन धनायास हो ही जाते हैं । जोसा के प्रसिद्ध उपन्यास 'आमा' को ही मीजिए । पारिष के विकास में बूढ़े संकड़ा पुस्तों की आराध्यदेवी बन बेस्मा जीवन व्यतीत करनेवाली नाना की स्वनीय मृत्यु को देखकर हमें निर्ममता से यह कहने का साहस नहीं होता कि 'अच्छा हुआ मुई मर मिटी ।' बल्कि हम एकदम चिन्तित होकर, बीबं रवात लेते हुए कहने को विवश होते हैं कि 'आखिर एक और रंगीनी कहानी का भी अन्त हुआ ।

पर जोसा नाना की मृत्यु में सौन्दर्य देखते हैं । केबरीन के पतन में (बोर्निलन) जेब (स एसमोर) के मरण में और क्साव की घातकहत्या में उनको सौन्दर्य ही दीखता है । उनका एक भी उपन्यास सुखान्त नहीं है । पानों को विशेषकर स्त्रियों को बुझित करने में उन्हें कुछ मिसता है । इसीलिए प्रकृतिवादी क सम्बन्ध में उन्हें ने कहा है

"यह (प्रकृतिवादी) तो बहुत दिनों तक जलता रहा जलकर राख बन गया उस आमा को ज्वलित रखने के लिए और शिकारों की धारमकता हुई, विशेषकर स्त्रियों की । वे उसको व्यभिक्त करनी और वह व्यावसायिक व्यवसा को बापस करेगा । उसने अपने चारों ओर के हर व्यक्ति पर निर्माप्य साया बाहा ।^१

प्रकृतिवादी बीते हुए अतीत में गल्ली हुई जवानी में मुरझते हुए पुष्पों में और मिटते हुए संसार में ही सौन्दर्य देखता है किन्तु संसार का जीवन मरण ही नहीं जन्म भी है मुरझाता ही नहीं खिलना भी है मिटना ही नहीं बनना भी है । इन बात से प्रकृतिवादी अनभिज्ञ थे जबका जानकर भी उन्होंने इसकी प्रबहेलना की बिधपकर जोसा ने । अन्य प्रकृतिवादियों में जोसा से अधिक साधा है । जोसा की इस भयंकर निराशा का अनातोलो फ्रांस ने खोरदार शब्दों में विरोध किया था ।^२ फ्रांस के कथन में बहुत कुछ सत्य है लेकिन उसे उसके मुक्त-मूल्या (Face Value) पर हम

१ Sartre What is Literature, P 99-100.

२. "There is in all of us, in the small as well as in the great, in the humble as well as in the lofty an instinct of the beautiful a desire for all that adorns and beautifies and this, spread throughout the world, makes the charm of life M. Zola does not know it. Desire and modesty are sometimes charmingly blended in human souls. M Zola does not know it There are on earth magnificent forms and noble

स्वीकृत नहीं कर सकते । फ्रांस प्रार्थनावादी थे उनका दृष्टिकोण ही जोना को देखने के लिए अपर्याप्त था । फ्रांस की शिक्षायात है कि जीवन में प्रार्थना और मर्यादा भी कभी कभी है जोना इसे नहीं देखते । परसभी बात है कि जीवन में कभी-कभी जो प्रार्थना और मर्यादा दिखायी पड़ती है उसे जोना देखते हैं परसम्पूर्ण जीवन में फँसी हुई वास्तविकता के रूप में नहीं देखते कथिक्त रोच के समान ही देखते हैं ।

मोपासा और रोम्या रोसा में जोना की तुलना म अधिक प्रामा है । मोपासा 'जोस एमी' 'ऊन बी' 'गादु कोर' सबमें जीवन के पतनोन्मुख स्वभाव को ही देखते हैं, पर सबमें विधेयकर 'ऊन बी' में मानव-महज संबंध भी है । जीन पति को उच्छ्वसता और पुत्र के प्रथम्य यमन से परीव हु भी है, किन्तु पुत्र की बालिका को बंध बनाकर प्रपता सेती है । 'ऊन बी' का अन्तिम वाक्य—रोसली का कथन—मोपासा के दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है । सचमुच जीवन न उतना प्रच्छ है न दुरा है बिना कि लोग समझते हैं । सगंध यही दृष्टि रोम्या रोसा की भी है, किन्तु वे समाज क विविध वर्गों के जीवन में सत् और प्रसत को बंटा हुआ पाते हैं ।

इन्द्र मानवता का हृदय-स्थान—किसी भी कथारमक रचना की उत्कृष्टता का कारण उसमें मानवता का प्रतिबिम्बन होता है । यहाँ मानवता से तात्पर्य सांसारिक मनुष्य के ऊपर छड़ी हुई तथा बलहीनताओं और पाप-वृत्तियों से दूर रहनेवासी एक कल्पित सत्ता से नहीं है बल्कि इसी ससार के साधारण मनुष्य के दुर्बल किन्तु पवित्र व्यक्तित्व से है । यही व्यक्तित्व को राग विराग प्रम-रूप शान्ति-अशान्ति क्रोध खोभ मोह त्याग इन सबको जख-क्षण के लिए प्रपनाता जाता है । यथार्थवादी इस संकुल एवं विविध व्यक्तित्व को कला का आधार बनाता है और ऐसे हृदयों का विधान करता है जिनमें पात्रों की मानवता स्पष्ट प्रकट होती है । उत्कृष्ट प्रकृति वादियों में भी ऐसे सन्धर्म प्रयणित मिलते हैं और ये ही सन्धर्म प्रकृतिवादी उपन्यासों को विज्ञ-साहित्य में स्थायी महत्त्व के अधिकारी बनाते हैं । उदाहरण के लिए बा-टीन हस्य पुनेदे

एटीन बिना पैसे के और बिना रोटी के जूम-फिरकर प्राया है । कथपीन यह जानकर प्रपनी रोटी का एक हिस्सा देने को तैयार होती है । जोना यथार्थवादी संस्पर्ध देखे हैं

‘मरे से एक हिस्सा मे लो ?

thoughts. M Zola does not know it. Even many weaknesses many errors and many faults have a touching beauty of their own. Grief is sacred The sanctity of tears is at the base of all religions. Misery should suffice to make a man august in the eyes of men. Zola does not know it.

—From La Vie Littéraire I, P 236 Translated and quoted by

उसने इनकार किया धीर भूल की पीड़ा से कांपती हुई धाराब में कहा कि मुझे भूल नहीं है। तब वह प्रसन्नता से बोली 'तुम्हें धारण यह धर्म नहीं लगता।' वेको इधर इस ओर ही घेने काटा है। दूसरी ओर तुम्हें वे धर्म।^१

महाब छोटी बच्ची का घाठ साव की बासिका के साथ छोड़ गयी थी भूखी बासिका रोने लगती है।

'मट्टी के पास धरती की बाँहों में एंटीन गभा फड़ककर पिट्ठा रही थी। नीनी छतम हो यमी थी घस' उनका रोना बन्द कर देने का उपाय न जानकर उसने अपना स्तन पिछाने का बहाना किया। यह धाराकी पहले काम करती थी पर अब सब प्रयत्न बेकार हुआ। उसने बोली सोलकर अपनी घाठ साव की छाती को उसके मुँह में दिया पर जर्म के अतिरिक्त धीर कुछ न पाकर बच्ची धीर ओर से रोने लगी।"

"उसे मुझे दे दो" मैं ने माँकर सब सामान नीचे रखकर कहा "नहीं तो एक शब्द भी सुनने नहीं देगी।"

"उसने अपना समरा हुआ स्तन निकालकर बच्ची के मुँह में दे दिया धीर रोना एकदम बन्द हो गया।"

'ऊन वी' में नीन पति से जुड़ा करती है उससे प्रेम रखती है। एकमात्र पुत्र के बीमार होने पर, उनके मर जाने की आशंका से उसका हृदय तड़पता है। उसकी कथा का सारा इत्य मुरझा करण में एक धीर सन्तान उत्पन्न करने की अभिसाया इस उद्यम से पति का सामीप्य प्राप्त करना इन सबका हृदय अत्यन्त मार्मिक हुआ है।^२

'जो क्रिस्ताळे में क्रिस्ताळे को प्याना सीकने से इनकार करने पर पिता ने पीटा

"बह रोया रोया। फिर उसने छाते गन्दे हाथों में धाँधें पोंछ दीं और साठ बेहरा गदा हो गया। रोते हुए भी उसकी धाँधें बाएँ ओर की बीबों से न हटी उनमें उसे कुछ आकर्षण हुआ। पुरन्त एक मकड़ी जमने लगी और उसे देख रोना बंद कर दिया तब धीरे से फिर रोने लगा अपने दरम की धाराब की ओर ही ध्यान देते हुए, सिसकते हुए धीर बुद न जानते हुए कि वह क्यों रो रहा है।"

अत-अत है ऐसे प्रसंग उदाहरण बढाने की आवश्यकता नहीं है। इसका ही कहना पर्याप्त होगा कि जीवन के धर्मधारमय पहलुओं से अधिक धारण होने पर भी प्रकृतिवादी मनुष्य को कबल पशु के रूप में नहीं देखते वे उसकी कमी-कमी जगमगाती हुई मानवता से भी अभिमत थे।

१ Germinal, P 54

२ Germinal P 101

३ A Woman's Life (Une Vie & Tr) Chap. X.

४ Jean Christophe Part I P 87

३८६ नम्रतावादी या उग्रवादी—इन सबकी तुलना में चतुरसेन उग्र मम्मपताम धारि को प्रकृतिवादी कहना प्रामाणिक समता है। प्रकृतिवादियों में धीर इनमें जो समता है वह केवल इसी बात में है कि ये भी प्रकृतिवादियों के समान जीवन के निकृष्ट पक्षों को देखते हैं और इनकी रीति में भी प्रकृतिवादियों का कुना पन है। पर प्रकृतिवाद के विरोधी जो ठरते इनमें भिन्न हैं उनकी संस्था धीर महत्त्व धारिक हैं। ये जीवन की बुराई का गहन विमर्श करते हैं अतः उनको नम्रतावादी कहना उचित होगा अथवा उनकी उग्र आलोचनात्मक रीति के आधार पर उग्रवादी कहना भी असंगत नहीं है। संक्षेप में इनके उपन्यासों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

१ जीवन के कष्टम कुत्सित पक्षों का निरूपण।

२ इन पक्षों को धिक्कृत करने के लिए ही कथानक का निर्माण।

३ इसे-इलाए पात्र को लेखक की समस्याओं और विचारों को प्रस्तुत करते हैं। अतः चरित्र की अपूर्णता।

४ भयंकर आक्षेप और आलोचना का मुह जो शब्दों में भी प्रतिबिम्बित है।

५ आलोचना उपवेश और सामाज्यीकरण।

६ रीति का कुनापन या सीमापन।

७ कमी-कमी अत्यन्त अस्वाभाविक दृष्टियों का विधान।

८ बाधावरण और चरित्र-विचरण की अपूर्णता। बटनार्यों पर ध्यान देने वाला लेखक यथार्थ बाधावरण की मृष्टि नहीं करता। सामाजिक कुत्सितता को विधान के निमित्त निर्मित पात्र एकांगी और रमित है।

हिन्दी उपन्यास में प्रकृतिवाद के ठर

किन्तु हिन्दी का उपन्यास साहित्य प्रकृतिवाद से पूर्णतया अस्पृष्ट नहीं है। जोड़ा-बहुत मनोवैज्ञानिक आधार लेकर लिखनेवाले कुछ उपन्यासकारों की रचनाओं में प्रकृतिवादी ठरों का समावेश जाने-अनजाने हुआ है। इसाचन्द्र जोशी और अजय ऐसे ही लेखक हैं। जोशीजी के 'पत्नी की रानी' की निरखना का चरित्र पत्रागति की धीर मनोवैज्ञानिक निरतिवाद से निर्णीत है। परिस्थितियों से उत्पन्न संस्कार का संघर्ष होता है उसे ही यह संघर्ष स्पष्ट नहीं दिखाया गया हो।

३८७ 'प्रेम और छाया' का पात्रनाम एक चरित्रहीन पिता और सती साध्वी माता का पुत्र है। पात्रनाम में इन दोनों के संस्कार हैं। पिता उसे एक दिन कह देता है कि पात्र अक्षम में उसका पुत्र नहीं है वह उसकी माता की धर्म्य सतान है। इसी विश्वास के आधार पर पात्र का जीवन चलता है। उसे रीति-निति के गदीत्व पर विश्वास नहीं रहा। उसका अर्थ विश्वास है कि सतार में केवल वे ही स्थिति सती साध्वी होने का डोंग रच सकती हैं जिन्हें या तो समाज के बड़े बन्दों ने स्वेच्छा-चरण का मौका नहीं दिया है या जिन्हें प्राणित पुण्य प्राप्त नहीं हो पाये हैं।^१ इस

तरह स्त्री जाति की भलाई पर विश्वास जोकर यह अपने संपर्क में आनेवाली हर स्त्री का चरित्र ग्रंथ करने का प्रयत्न करता है। उनमें किसीसे विवाह नहीं करता। इस तरह स्त्रियों को पणित करने में उसे एक पाश्चात्तिक भ्रातृत्व मिलता है। लेकिन को इस बीच में समाज के दूषित नैतिक धार्मिक को भी खोलकर विद्या का प्रसरण मिलता है। बाहिर पारस का संबंध एक बेव्या से होता है। जब एक दिन यह पिता से मुक्तता है कि उसकी माता सही थी तो उसमें एक बड़ा परिवर्तन आ जाता है और यह उस बेव्या से विवाह कर गार्हस्थ्य जीवन बिताता है। इस मन-परिवर्तन को मनोविज्ञान किन्तु सम्मति देता इसमें सन्देह है यह अन्त बोधीकी का रोमान्टिक धार्मिक ही बीजता है।

विषय के समान लोभी की दृष्टि से भी ये दोनों उपन्यास प्रकृतिवादी हैं। बिना धारण के ही यथार्थ को कर्म की पद्धति बोधी ने अपनायी है उनका अन्त उपन्यासों में धार्मिक दृष्टि से देखा जाय तो विषय प्रकृतिवादी नहीं है, किन्तु 'समाजी' 'निर्वासित' 'बहाल का पक्षी' धारि में समाज के कात्तपन का जो चित्रण है वह प्रकृति वादियों के समाज-चित्रण के समान है। फिर भी इनमें समाज का जो चित्रण आया है बहुत ही सफुल्लित है। इसका प्रथम कारण यह है कि बोधीकी के उपन्यास प्रायः अत्यधिक वैयक्तिक हैं और व्यक्ति के 'अन्तर्याम' की विवेचना करते हुए उनका समाज का विसृत रूप देखने का प्रयत्न नहीं मिलता है। दूसरा कारण यह है कि इन सबमें बोधी का उद्देश्य समाज की दुर्दृष्टियों की धासोचना करने का ही है प्रभावन करने का नहीं। प्रायः उपन्यास के धार्मिक ही अन्त (जैसे 'समाजी' 'निर्वासित' 'प्रेत और छाया' धारि में) भी प्रकृतिवाद के विरुद्ध है।

द्वितीय अक्षय का 'खर' भी व्यक्तिवादी उपन्यास है और उसका धारण मनोविज्ञान है। खर का व्यक्तित्व असाधारण है और इस असाधारण व्यक्तित्व का अपने-आपमें पूरा अभिव्यक्त अक्षय ने किया है। लेकिन खर के बंध में उसके व्यक्तित्व की वृष्टमूर्ति तैयार नहीं की गयी है।

खर म सैक्स का जो विकास बिलाया गया है वह उस लैंगिक चेतना का रूप है जो समस्त प्राणिजों में 'लैसगिक' रूप से विकसित होती है। यौन चेतना हर समय उन्मुक्त होने के प्रयत्न की प्रतीक्षा करती रहती है और सामाजिक मर्यादा के कारण अपना व्यक्तिक सन्तुष्टा के कारण उसे दबाने पर तरह-तरह की बल-बिहारीयों का कारण बनती है। खर के जीवन की प्रायः सभी घटनाएँ जो कभी बिचित्र-सी लगती हैं इसी तरह संचालित हैं।

अक्षय के दृष्टिकोण में जो तटस्थता है वह उनको बोधी से भी अधिक प्रकृतिवादी पैसी के निकट लाती है। 'खर' भी व्यक्तिवादी उपन्यास है और व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक परिवेश उतना ही उपेक्षित रह गया है जितना कि बोधी के उपन्यासों में।

३८६ नदी के द्वीप पर राज पक्ष की लोच—उपेक्षनाय अक्षय के 'वर्म रात' और डा. बबराज के 'पक्ष की लोच' को कुछ धासोचकों ने प्रकृतिवादी माना

है।^१ लेकिन इन्हें बड़े संवरण के साथ ही प्रकटिवादी माना जा सकता है। इनमें जीवन की कुछ वृत्तियों का जो यथार्थ विवरण हुआ है, उसीके आधार पर सिद्धांतसिद्ध बौद्धात्न ने इन्हें प्रकटिवादी माना है। इस दृष्टि से इनके साथ 'नदी व द्वीप' का भी नाम लिया जा सकता है। इन तीनों में पुरुष की वासना जो सदा मुक्त विकास की चेष्टा करती रहती है, अवसर पाकर प्राकृतिक रूप में प्रकट होती है। यह वासना प्रेम से भिन्न है और केवल प्राकृतिक संबंध का साधक रहती है। सुख रेखा के प्रति आकृष्ट होता है उसे पठित करता है किन्तु उससे विवाह करना नहीं चाहता। 'गर्म राख' में बयमोहन और सत्या के बीच में आकर्षण है, पर यही सत्या की काम-चेतना अधिक आवण्ट है। वह एकान्त मार्ग से बयमोहन के साथ जाते हुए उसे निकटत्व का अवसर देती है उसका कपड़ा ले-पहनकर उसके हृदय को विवर्णित करती है और अन्त में उन दोनों का यौन-संबन्ध हो जाता है। पर विवाह के लिए बयमोहन तैयार नहीं होता। 'पद्म की खोज' का बन्धनाथ प्रत्येक पड़ी-सिखी मुबती से आकृष्ट होता है, पर किसीसे अपना प्रेम प्रकट करने का दम उसमें नहीं है। लेकिन न उसके कुछ व्यवहारों को प्रकट किया है। साधना और उसके बीच आकर्षण बढ़ता जाता है पर आकर्षित-विशु (Danger Point) तक पहुँचते-पहुँचते साधना समझ जाती है। इन सब उपमाओं में मनुष्य की छूटता और प्राकृतिकता का चित्र बोझी-बहुत मनोवैज्ञानिकता के साथ प्रकटिवादी की कुली शंखी में है किन्तु इनको पूर्णतया प्रकटिवादी कह भी नहीं सकते क्योंकि प्रकटिवादी के लिए आवश्यक वैज्ञानिक अध्ययन मूल्य निरीक्षण दृष्टिकोण आदि का इनमें बहुत कुछ अभाव है।

७

यथाववाद और मनोविज्ञान

यथाय यथाववाद और मनोवैज्ञानिक यथाववाद

३६० कला न केवल बुद्धि का विषय है न केवल हृदय का। बौद्धिक यथावत् को हृदय की अनुभूति के क्षेत्र में उपस्थित करना ही कला का ध्येय है। यद्यपि केवल बाह्य जगत् के तथ्यों से अवगत करने-कराने से कला अपनी सार्थकता को प्रस्तुत नहीं रख सकती। जब तक मनुष्य के आन्तरिक मार्गों का हृदय के विभिन्न अंगियों के विकारों इन्हीं और संघर्षों का ज्ञान न मिलेगा तब तक मनुष्य को पूर्णतया समझना असंभव है। आन्तरिक तथ्यों का ज्ञान दूसरों को समझने में ही नहीं अपने-आपको समझने में भी अत्यन्त उपयोगी होता है। यद्यपि यथाववाद में मनुष्य को बाहरी परिस्थितियों और चेष्टाओं के विषयीकरण का जो महत्त्व है वही—वर्तक उससे भी अधिक

१ सिद्धांतसिद्ध बौद्धात्न : साहित्यानुशीलन में 'हृदय' नाम रख और 'पद्म की खोज' पर लिखित अध्याय।

उसकी स्त्री जाति की मलाई पर विश्वास जोकर वह अपने संपर्क में आनेवाली स्त्री का चरित्र मंजूर करने का प्रयत्न करता है। उनमें किसीसे विवाह नहीं करता। इस तरह स्त्रियों को पतित करने में उसे एक प्राथमिक मान्यता मिलती है। उस बीच में समाज के दूषित भौतिक आदर्श को भी जोड़कर दिखाने का प्रयत्न मिलता है। बाहिर पारस का संबंध एक बेस्मा से होता है। जब एक दिन वह पिता से मुगटा है कि उसकी भाता सती भी तो उसमें एक बड़ा परिवर्तन आ जाएगा है और वह उस बेस्मा से विवाह कर पार्श्वस्थ जीवन बिताता है। इस मन-परिवर्तन को मनोविज्ञान कितनी सम्मति देगा इसमें शंका नहीं है, यह अन्त जोड़ी-बी का रोमांटिक आदर्श ही सिद्धता है।

विषय के समाज संबंधों की दृष्टि से भी ये दोनों उपन्यास प्रकृतिवादी हैं। बिना आचारण के ही यथार्थों को कहने की पद्धति जोड़ी ने अपनायी है उनका अर्थ उपन्यासों में शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो विषय प्रकृतिवादी नहीं है किन्तु 'संस्था' 'निर्वासित' 'जहाज का पक्षी' आदि में समाज के कामेष्ट का जो चित्रण है वह प्रकृतिवादियों के समाज-चित्रण के समान है। फिर भी इनमें समाज का जो चित्रण आया है बहुत ही संकुचित है। इसका प्रथम कारण यह है कि जोड़ी-बी के उपन्यास प्रायः आत्यधिक वैयक्तिक हैं और व्यक्ति के 'अन्तरगत' की विवेचना करते हुए उनका समाज का विस्तृत रूप देखने का प्रयत्न नहीं मिला है। दूसरा कारण यह है कि इन सबमें जोड़ी का उद्देश्य समाज की दुर्गतियों की आलोचना करने का ही है प्रथम करने का नहीं। प्रायः उपन्यास के आदर्श ही अल्प (जैसे 'संस्था' 'निर्वासित' 'प्रेत और छाया' आदि में) भी प्रकृतिवाद के विषय हैं।

इन्हीं अर्थों का 'खेहर' भी व्यक्तिवादी उपन्यास है और उसका आधार मनोविज्ञान है। खेहर का व्यक्तित्व असाधारण है और इस असाधारण व्यक्तित्व का अपने-आपमें पूर्ण अभ्युदय प्रलय ने किया है। लेकिन खेहर के बंध में उसके व्यक्तित्व की पूर्णतम सीमा नहीं की गयी है।

खेहर में स्वयं का जो विकास दिखाया गया है वह उस सीमा के भीतर का रूप है जो समस्त प्राणियों में 'नैसर्गिक' रूप से विकसित होती है। यौन चेतना हर समय उत्पन्न होने के प्रयत्न की प्रतीक्षा करती रहती है और सामाजिक मर्यादा के कारण अथवा अंतिक प्रवृत्ति के कारण उसे दबाने पर तरह-तरह की चित्त-विकृतियों का कारण बनती है। खेहर के जीवन की प्रायः सभी घटनाएँ जो कभी विचित्र-सी लगती हैं वही तरह संभावित हैं।

अर्थों के दृष्टिकोण में जो तटस्थता है वह उनको जोड़ी से भी अधिक प्रकृतिवादी सीमा के निकट जाती है। 'खेहर' भी व्यक्तिवादी उपन्यास है और व्यक्तित्व के विचार में सामाजिक परिवेश अतना ही उपस्थित रह गया है जितना कि जोड़ी के उपन्यासों में।

३८३ नहीं के हीन यत्न राधा पद की ओर—उपेन्द्रनाथ चक्र के 'धर्म रास' और डा. देवराज के 'पद की ओर' को कुछ आलोचकों ने प्रकृतिवादी माना

है।^१ लेकिन इन्हें बड़े संवरण के साथ ही प्रकृतिवादी माना जा सकता है। इनमें जीवन की कुछ वृत्तियों का जो यथार्थ विवरण हुआ है, उनकी व्याख्यान पर शिवबानसिंह चौहान ने इन्हें प्रकृतिवादी माना है। इस दृष्टि से इनके साथ 'नदी के डीप' का भी नाम मिया जा सकता है। इन तीनों में पुरुष की वासना जो सदा मुखर विकास की चेष्टा करती रहती है, भबसर पाकर पाशविक रूप में प्रकट होती है। यह वासना प्रेम से भिन्न है और केवल धारीरिज संबन्ध का भाग्य रहती है। सुवन रेखा क प्रति आकृष्ट होता है उसे पतित करता है, किन्तु उससे विवाह करना नहीं चाहता। 'यर्म' 'राज' में बगमोहन और सत्या के बीच में आकर्षण है, पर यहा सत्या की काम-चेतना अधिक आपरित है। वह एकान्त धर्म से बगमोहन के साथ जाते हुए उसे निकटत्व का भवसर देती है उसका कपड़ा से-महमकर उसके हृदय को विचलित करती है और अन्त में उन दोनों का यौन-संबन्ध हो जाता है। पर विवाह क लिए बगमोहन तैयार नहीं होता। 'यम की खोज' का चम्पनाथ प्रत्येक पढ़ी-लिखी सुवर्ती से आकृष्ट होता है पर किसीसे अपना प्रेम प्रकट करने का दम उसमें नहीं है। मेरक ने उसके कुछ व्यक्तित्व को प्रकट किया है। साधना और उनके बीच आकर्षण बढ़ता जाता है, पर आपत्ति-बिन्दु (Danger Point) तक पहुँचते-पहुँचते साधना संभल जाती है। इन सब उपर्यानों में मनुष्य की कुत्ता और पाशविकता का चित्र बोझी-बहुन मनोवैज्ञानिकता के साथ प्रकृतिवादी की जुमी खोसी में है, किन्तु इनको पूर्णतया प्रकृतिवादी कह भी नहीं सकते क्योंकि प्रकृतिवादी के लिए आवश्यक वैज्ञानिक अध्ययन मृगम निरीक्षण सदृश दृष्टिकोण आदि का इनमें बहुत कुछ अभाव है।

७

यथायथाव और मनोविज्ञान

यथार्थ यथार्थवाद और मनोवैज्ञानिक यथायथाव

३२० क्या न केवल वृत्ति का विषय है न केवल हृदय का। वैज्ञानिक यथार्थों को हृदय की अनुभूति के क्षेत्र में उपस्थित करना ही क्या का ध्येय है अतः केवल बाह्य व्यवृ के तथ्यों से अवगत करने-कराने से क्या अपनी सार्वक्यता को अनुभूति नहीं रख सकती। जब तक मनुष्य के आन्तरिक भावों का हृदय के विभिन्न धारियों क विचारों इन्हीं और संभवों का ज्ञान न मिलता, तब तक मनुष्य को पूर्णतया समझना असंभव है। आन्तरिक तथ्यों का ज्ञान दूसरों को समझने से ही नहीं अपने-आपको समझने में भी अवश्य उपयोगी होता है। अतः यथार्थवाद में मनुष्य की बाह्य परिस्थितियों और चेष्टाओं क विचारीकरण का जो महत्त्व है, वही—वैज्ञानिक उमर भी अधिक

१ शिवबानसिंह चौहान साहित्यसमीक्षण में 'सुखदा' 'यर्म' तथा और 'यम की खोज' पर लिखित अध्याय।

महान् उसके अन्तर्निहित धर्मों का उद्घाटन करने में और उसकी संकुच मानसिक प्रवृत्तियों को खोल दिखाने में है। जब से मनोविज्ञान को उपन्यास में स्थान दिया गया तब से इस दृष्टिकोण का विकास हुआ है और आज विश्व-उपन्यास की एक मुख्य धारा इसी आधार पर चल रही है।

सामान्य मनोविज्ञान और यथार्थ

३२१ प्रेमचन्द—हिन्दी में प्रथम मनोविज्ञान की उपन्यास में प्रेमचन्द ने ही स्थान दिया। उनका मनोविज्ञान आज के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के मनोविज्ञान से भिन्न था किन्तु यथार्थवादी होने से उसकी शक्ति अपार थी। प्रेमचन्द अपने समाज को जानते थे उस समाज के हर व्यक्ति को पहचानते थे। किसान मजदूर, सेठ-साहूकार जमीनार भिक्षु-मालिक कारिन्दा पट्टवार, व्यापक सुचारक हर तरह की सामाजिक श्रेणियों के व्यक्तियों का उन्हें अच्छा ज्ञान था। किन्तु निम्न लोगों के प्रति उनकी विशेष सहानुभूति थी अतः उनके मानसिक विश्लेषण में प्रेमचन्द की सफलता प्रसन्ननीय हुई है और आज इस कार्य में वे हमारे सबसे बड़े कमाकार बने हुए हैं।

प्रेमचन्द ने फ़ायदा मुँह और एडमर का अध्ययन नहीं किया था। उन्हें संकुच मानसिक प्रवृत्तियों का ज्ञान नहीं था वैयक्तिक कुण्ठाओं से विशेष काम नहीं था पर मनुष्य समाज में कैसे व्यवहार करता है उन सामाजिक प्रवृत्तियों की मानसिक प्रेरणाएं क्या हैं इन सबका उन्हें पर्याप्त ज्ञान था। वही ज्ञान को एक माता में सहज में ही था जाता है जिसके कारण वह अपने बच्चे का स्वतः और उसका कारण एकत्र समझ लेती है और एक कुशल मनोविज्ञ से भी अधिक कुशलता से वह उस सन्त कर लेती है। प्रेमचन्द का मनोविज्ञान पात्रों को खण्ड-खण्ड करके हमारे सामने नहीं रखता बल्कि उन्हें हमारे सम्मुख साकार बढ़ा करके उसके हृदय के स्पर्शों को स्पष्ट सुनने देता है। 'सिंहासन' में भोली माई के जाने सुनने पर सुमन पर पड़नेवाले प्रभाव को प्रेमचन्द की मेहनती वैयक्तिक श्रमता से उतार दिया है। सुमन और सुमन पर पड़नेवाले प्रभाव में अन्तर है दोनों की परिस्थितियाँ भिन्न हैं, प्रेमचन्द इसे जानते हैं। सुमन बिनाह कांक्षिणी सुन्दरी सुखी है जिस यथार्थ के कारण कोई नहीं चाहता है। पर वह देखती है कि भोली उसकी सुखी भी नहीं फिर भी उसपर शोध मुग्ध है। 'सुमन ने भी उसी पक्ष को धीरे-धीरे गुनगुनाकर बाया और अपनी सफलता पर मुग्ध हो गयी।' एक प्रबोध वासिका के अवचेतन के सूक्ष्म स्पन्दन यहाँ सुनाई पड़ते हैं। वह उस नाम के प्रति पागलपन के प्रति फिर उसपर मुग्ध आस्थाओं के प्रति अपना ध्यान केन्द्रित करती है। फिर जाकर वर्ण्य में अपना रूप देखकर निश्चय कर लेती है कि मैं भोली से कम सुखी नहीं हूँ। वहाँ उसके मन में एक संघर्ष घाता है अपनी पराधीनता और विनम्रता तथा भोली की स्वच्छन्दता एवं स्वतंत्रता के संबंध में।

प्रेमचन्द हृदय की अगाधता तक नहीं जाने जैसे वास्तव्यवस्त्री मातास्वभाव बाते हैं किन्तु बोधीन सरस रेखाओं हैं पाशों को हमारे हृदय में बिठा देते हैं। 'निर्मसा' के कितने ही स्थानों में मनोबिज्ञान और महार्थवाद का सहयोग कला की उत्कृष्टता का कारण बना है। सङ्कल्पों को अपने घर छोड़ने की निवृत्ता के बारे में निर्मसा और कृष्णा से बातचीत कृष्ण की सबसे बड़ी समस्या की चर्चा करते हुए उद्यमानु और कल्याणी में होनेवाला झगड़ा और निर्मसा तोतायम मन्साराम इनके पारस्परिक व्यवहारों में क्रमशः जानेवाले परिवर्तन आदि का विस्तृत यथावधानी ढंग से विकास किया गया है। प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों में भी ऐसे प्रसंग कितने ही मिलते हैं। केवल दो-एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। 'गहन' के प्रथम अध्याय की बिसाती और मानकी की बातचीत का या दूसरे अध्याय की मानकी और बाबू की बातचीत को लीजिए। मानकी के लिए चन्द्रहार मंगवाया जाता है। बेटी बाबू पिताजी से चन्द्रहार का आग्रह करती है उनके बाबू से तुष्ट न होकर माता के पास जाकर कहती है "अम्माजी, मुझे भी अपना-सा हार बनवा दो।"

माँ—वह तो बहुत खर्चों में बनेवा बेटी।

बाबू—तुमने अपने लिए बनवाया है मेरे लिए क्यों नहीं बनवाती ?

माँ ने मुस्कुराकर कहा "तेरे लिए तेरी समुदाय से आया।"

बोधी या प्रलय के समान प्रेमचन्द हृदय की चोर फाड़ करने की बात-चोड़ में हत कर देता नहीं पड़ते। बड़े नाच से उनकी लक्ष्मी चमकी है। 'गोदान' में होटी के यह प्रसन्न ध्वज 'क्या समुदाय जाना है जो पाशों पोसाक मापी है ? समुदाय में भी तो कोई बचान साजी-सजह नहीं बैठी है जिसे जाकर दिखाऊ। कितन नाच से कितनी सरसता से पर कितनी मार्मिकता से बचनकर उसके निराशापूस् जीवन से पले हृदय का प्रकट करते लगते हैं "साठ तक पहुँचने की नीवत तक न जाने पायेगी बनिमा ! इसके पहले ही चमकेंगे। मानव-मान को समझने में हमारा मनोबैज्ञानिक उपन्यासकार प्रेमचन्द के द्वारा एक अभी नहीं पहुँच पाये हैं। हृदय की चोर-छाड़ करने वाले प्रलय बोधी का बेवराज आदि उस हृदय के अन्दर की प्रियियों को देखते हैं उनकी क्रिया प्रतिक्रियाओं को देखते हैं पर उस हृदय का रस नहीं पाते। उनके लिए हृदय प्रणियों की प्रक्रिया का स्थान-मात्र है पर प्रेमचन्द के लिए वह सपूर्ण मानव है। प्रेमचन्द का यही यथावधानी मनोबिज्ञान है, जो उनके पाशों को हमारे हृदय के अन्दर बिठा देता है जबकि प्रजेय और बोधी के पाश हमारे मस्तिष्क के चारों ओर घट बने रहते हैं और बहुत प्रयत्न करने पर भी हम उन्हें ठीक-ठीक समझ नहीं सकते उनसे निवृत्ता का अनुभव नहीं कर सकते।

मनोबैज्ञानिक दृष्टि से प्रेमचन्द का यथावधानी बुद्धिहीन नहीं है। प्रायः उनके पाश सेवक के निरिच्छ माग से होकर ही चलते हैं। यद्यपि उनके जीवन में स्वाभाविक बलि का समाज है। मुमन से लेकर प्रेमचन्द सुरदास चक्रवर्त, आदि सभी पात्र

प्रेमचन्द के कुछ निश्चित सिद्धांतों का उच्चाटन करने के लिए ही भीषित रहते हैं। विशेषकर इन पात्रों का अन्त में सुधारक बन जाना या कोई धारण उपस्थित करना मनो-वैज्ञानिक दृष्टि से विशेष मूल्य नहीं रखता—और प्रायः अस्वाभाविक भी है। प्रेमचन्द और सुरदास ने जीवन अन्त में ही नहीं सम्पूर्ण रूप से सेवक के उद्देश्य के अनुकूल ही निमित्त हैं। किन्तु होरी में बहुत अन्तर है। निश्चित ही होरी का चरित्र भारतीय कृषक के विरुद्ध और व्यापारपूर्ण जीवन को दिखाने के उद्देश्य से निमित्त है। पर उसके चरित्र में इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए धारणक संघों का ही चित्रण नहीं है, उसे एक मनुष्य के रूप में उपस्थित करने के लिए धारणक सभी अर्थों पर ध्यान दिया गया है। उसकी बलहीनताएं अहंकार जाई के प्रति द्वेष के साथ-साथ प्रेम विरादरी की चिन्ता इस तरह उसके मानसिक क्षेत्र के सभी अर्थों का चित्रण है।

३६२ **अप्य सेवक**—कई अप्य उपन्यासकारों में भी सामान्य मनोविज्ञान द्वारा पात्रों को मर्याद बनाने का प्रयत्न किया है। लेकिन रेणु को छोड़कर कोई भी सेवक प्रेमचन्द से अधिक सफलता नहीं पा सका है। शिवाचमखरण के 'नारी' में पितृहीन इसी और उसकी माता की आकांक्षाएं बहुत कुछ मर्याद रूप में प्रकट की गयी हैं, लेकिन मातृकता का एक मध्य स्पर्श उस मर्याद को छोड़ी बाधा पहुँचाता है। छपादेवी ने 'जीवन की मुस्कान' में छविता का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी मातृकता से रहित नहीं है। इसके साथ इस तरह पात्रों के मानसिक पक्ष को स्वाभाविकता के साथ प्रस्तुत करनेवाले उपन्यासकार अरुण का 'बिरती बीबारे' और 'रंजितराज' के 'सीबा-साक्ष रास्ता' में समाज के सम्भवर्गीय लोगों की मानसिक प्रवृत्ति को मर्याद बायी-स्वरूप में दिखाया गया है। 'गिरती बीबारे' में चेतन के परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के रूप देखने के योग्य हैं। अराज पीकर हुस्नक मचानेवाला पिता जीवन-यापन के लिए ठीक या मजदूर रहता हुआ बहनेवाला भाई, अपने व्यक्तित्व आग्रहों और परिवार के लोगों की इच्छाओं के बीच बहनेवाला चेतन ये सब मनोवैज्ञानिक विस्तारण के पात्र बने हैं। प्रेमचन्द के बाद उन्हींके मार्ग पर चलते हुए सामान्य मनोविज्ञान के द्वारा मर्याद पात्रों की सृष्टि करनेवाले सफल सेवक नागार्जुन और फणीश्वरनाथ रेणु हैं। 'रति नाच की बाबी' में भीरी का पेट गिराने की चिन्त्येदारी सेनेवासी जमाइन अपने अन्दर-बाहर को प्रकट करती हुई हमारे सामने आकार खड़ी हो जाती है। बसावा रुपये के लिए मड़ती हुई वह परिस्थिति को स्पष्ट करती है। 'तुम सोच तो बनवासी हो हाकिम भी तुम्हारी सरफदारी कर लेना। किन्तु जोकिम का काम है पेट गिराना। पठा जल बाय तो सरकार मेरा सरवानाच कर देगी और फिर रुपया पाने के बाद भी बीम निकालकर जमाइन बोयी "जला वह भी क्या कहने की बात है मजिदाइन? धापकी बदनामी क्या हमारी बदनामी नहीं है? पर एक बात कहती हूँ माफ़ करना बड़ी बातवालों की तुम्हारी यह विरादरी बड़ी गलेच्छ, बड़ी भिष्टुर होती है मजिदाइन' रेणु ने उपन्यासों में कथानक की शुद्धतावस्था का बलिदान करके भी पात्रों

के मानसिक भावों का जो विशाल क्रिया गया है वह उन पात्रों को यथार्थ बनाने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। रेणु की विशेषता यह है कि उनका हर एक पात्रों के मन में जन्म लेता है। यद्यपि प्रत्येक शब्द कथानक को धारण करने के साथ-साथ पात्रों के व्यक्तिगत या सामाजिक मनोभावों को भी स्पष्ट करता जाता है। 'मेसा दाचिस' से एक साधारण विवरणात्मक प्रसंग को ले सकते हैं। फुलिया 'पुरीनिया टोसन' से आई है एकदम बरस गई है फुलिया। साड़ी पहनने का इस मोनने-बति याने का डंग सब कुछ बदल गया है। तहसीलदार साहब की बेटी कमली प्रिया के नीचे जैसी छोटी बोली पहनती है वैसी वह भी पहनती है। दाचिस में बाबी का पुच्छा बाँधती है पैर में खोखी का रंग लगाती है। हाँ कसासीबी बहुत पैसा कमाते हैं साथ-साथ। घरे कसासी के मुँह पर धड़कू मारो। "ये शब्द वस्तुतः रेणुजी के नहीं हैं। प्रामीण लोग फुलिया को जिस रूप में देखते हैं वही रूप यहाँ प्रस्तुत है। फुलिया की दशा प्रामीणों के मन के वर्णन में प्रतिबिम्बित होती है उसी प्रतिबिम्ब को रेणुजी यहाँ का लो उधार रखते हैं। 'मेसा दाचिस' और 'बरती परिकपा' मसौ-सौ हैं ऐसे प्रसंग जो एक चुनना अपर्याप्त होगा। इन प्रसंगों से पात्रों को जैसे हम समझ सकते हैं, उनका हृदय तक जैसे हम पहुँच सकते हैं जैसे मनोविश्लेषक उपन्वातकार धर्मेज और मोरी के पात्रों को समझना और उनका हृदय तक पहुँचना असम्भव है।

इ.इ.इ. कला उपन्यासों में यथार्थवादी मनोविज्ञान—इसी तरह वास्तविकता की तुलना और तात्पर्य के परभाव कला उपन्यास का मनोविज्ञान पात्रों को उनकी पूर्णता में समझने का प्रयास करता है। तात्पर्य तुलना और वास्तविकता की मनोविज्ञान की एक ऐसी दशा में है जिसमें वे मानसिक इन्द्रियों की असाधारण परिस्थितियों में भी पात्रों को यथार्थ बता सके हैं और उनके भावों के साथ हमारे भावों को भी मिला सके हैं। वे सब न इसका अर्थ कर दिया असाधारण भावों का वैचित्र्य ने पूर्णतया तिरस्कार किया। उनके लघु उपन्यासों में पात्रों की मानसिक बजावों को उतना महत्त्व नहीं मिला है जितना बाह्य वस्तुओं को। गोर्की से लेकर मनोभावों का यथार्थवादी चित्रण मिलता है जो भाव तक अपना प्रभाव प्रत्युत्पन्न रखता जाता है। गोर्की सोमोसोव केविन इत्यादि अग्रजों के बादमेव कोबेनिकोव कोवमेव कोबेकेविन आदि सभी नवीन उपन्यासकारों ने पात्रों की मानसिक क्रियाओं और प्रक्रियाओं का विशेषण किया बिना उनकी निकट परिचय से सम्भ्रा है। वे सब मनुष्य को एक मनोविज्ञानिक की दृष्टि से नहीं बल्कि एक सङ्घटन मनुष्य की दृष्टि से देखते हैं। 'नदी खुली जमीन' के कई पात्र अपनी मनुष्यता के कारण हमारे बहुत निकट होते हैं। एक पात्र है स्क्रुकर, जो हर विषय में झूठ बोलता है आत्मप्रशंसा करता है। एक दिन उसने नये कानून का लंघन कर अपने बन्धु को मार डाला। किन्तु जब अदालत जाबुलनाथ आकर सलाही करता है तब अपने का प्रयत्न करता है। "मैं पाप में बसीटा गया मेरी बुद्धि ने मुझे विचार कर दिया, मुझपर क्या करो। लेकिन इसके बाद जब लोग पूछते हैं कि अदालत क्यों धाया था तब उसका जवाब है "मेरी तरीकल अरा ठीक नहीं थी देखने वाले ने। मेरे बिना उनका कोई काम ठीक नहीं चलता।

और प्राधुनिक कवी उपन्यासकारों के यथार्थवाद से भिन्न हैं और अधिक प्रभावता से मनोवृत्तियों का अध्ययन करनेवाले शास्त्रज्ञों वास्तविकता की तुल्यता मोपासो प्रादि के यथार्थवाद से भी भिन्न हैं।

हिन्दी में अज्ञेय और बोधी को मनोवैज्ञानिक उपन्यास के प्रतिनिधि रचयिता मान सकते हैं। धर्मवीर भारती और डा. देवराज के कुछ उपन्यासों में भी इस विस्लेषणात्मक प्रवृत्ति का आभास मिलता है। फॉब में प्रुष्ठ मसरो मारिया ब्रूक रोमे बीर प्रादि और अंग्रेजी में मर्द डिक्सेयर बरजीनिया ब्रूक, मिस रिचर्डसन डी. एच. सारेन्स प्रादि वैज्ञानिक रूप में पाशों का मनोविश्लेषण करनेवाले लेखक हैं। इन सभी का प्रथम ध्येय मनुष्य के अन्दर छिपे करेवाली विषय और संकुच प्रवृत्तियों का विस्लेषण है। विशेषकर ये सब संक्षेप से सम्बन्धित सज्जता-मान का अध्ययन कर रहे जाते हैं। फॉब प्रादि मनोविज्ञान के सिद्धांतों का जीवन में आरोप करनेवाले ये लेखक मनुष्य के उन सहज और स्वाभाविक प्रवृत्तियों को नहीं देखते जो साधारण लोगों की दृष्टि में भी जाती हैं और जो समस्त मानवता में विद्यमान होने के कारण सबके लिये आत्मा हैं।

ऐसी विशिष्ट वृत्तियाँ कभी-कभी अत्यन्त असाधारण हैं और केवल उन्हीं से पाशों को संज्ञित करने पर वे भी असाधारण हो जाते हैं। इस असाधारणता पर आधारित बातकर उसे भी सहज संभाव्य और आत्मा बनानेवासी बीर फॉब उपन्यासों में प्रत्येक चैप्टर का सूक्ष्म अध्ययन है और अंग्रेजी उपन्यासों में इन असाधारण वृत्तियों का प्रति की मात्रा तक पहुँचने से बचाकर पाशों में उनके साथ ही साधारण प्रवृत्तियों का मिश्रण कर देना है।

प्रुष्ठ मनोवृत्तियों का बाह्य चैप्टरों के रूप में क्वाण्टर करते हैं किसी भी मनोमान को जिसे सीधे दो-एक वाक्यों में प्रकट कर सकते हैं, बाह्य प्रवृत्तियों द्वारा व्यञ्जित करने के लिए पृष्ठों तक विस्तृत करते हैं। पर इससे मनोवृत्तियाँ सूक्ष्म न रहकर स्तब्ध बन जाती हैं। मारिया के 'जो खो गया' (That Which Was Lost) में एक उत्तरदायित्वपूर्ण बनमोड़ी पति को पाकर दुःखित इरॉन की मनोव्यथा का अभिन्न विकास है। साथ-साथ सामाजिक वातावरण भी सुप्त नहीं हुआ है, क्योंकि इससे सम्बन्ध में आनेवाले अन्य पाशों का भी पर्याप्त महत्त्व है। बुद्धिमान का 'समाजिन' असाधारण प्रबन्ध है पर यह असाधारणता सम्पूर्ण उपन्यास में एक अन्तर्धारा के रूप में ही जाती है और जो बाह्य जीवन है वह विविध-सा नहीं लगता। 'समाजिन' की विशिष्टता उसकी बिकार हीलण्ड है जो समय-समय पर विविध प्रवृत्तियों के रूप में प्रकट होते हैं जैसे अकस्तर के कान से आकट होकर उसे सुनेगा।

अंग्रेजी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में भी सामाजिक वातावरण की पूर्ण उपेक्षा करके वैयक्तिक चैप्टरों का आभास पर सम्पूर्ण कथानक का विकास नहीं होगा। इनमें मनोवैज्ञानिक तत्त्व केवल कथानक के अधिपत्य के समान हैं। उपर बढाये गये मान और रक्त सामाज्य जीवन के हैं यद्यपि वे भासित होने में बाधा नहीं पत्ती। डी. एच. सारेन्स के 'पुत्र और प्रेमी' (Sons and Lovers) को

सीजिए। पाल मरिस एक धसाधारण व्यक्ति है जो अपनी माता से असीम प्रेम पाकर अपने परिचय में अपनेवासी सड़कियों से उठी तरह के व्यवहार की इच्छा करता है। जैसाकि माँ से मिलता है। पर केवल इस धसाधारण व्यक्ति के घरभूता के धाधार पर उपन्यास का निर्माण नहीं हुआ है। एक कुटुम्ब का सम्पूर्ण वातावरण उसमें धा बाठा है। पात्रों और परिस्थितियों के अनुगमन को लारेस सदा सुरक्षित रखत है। उन्होंने स्वयं इस अनुगमन की धावश्यकता धानी है और धाँसे उपन्यास क लिए व्यक्तिधों वस्तुधों और घटनाधों को धही उनके धीनित सम्बन्धों को धावरयक धामा है।

धव हम हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की बधावर्धता की परीक्षा करें। 'सेखर का धारमिक धध्याय बाल-मनोविज्ञान का उत्कट उदाहरण है और है धधार्थ बारी कसा का धध्या उदाहरण। सेखर सधमुध धीनित रहता है लकिन इसके बाद धीवन से उधका संबन्ध कुछ टूट-सा बाठा है। धारमिक माध की कई घटनाएं और उनके धविपादन की धैसी धधार्थ के बहुत निकट है किन्तु बाध में सेखर सेखर की धधाधारणता की धोर धाकट होता है। इन धसाधारणता को सेखर थोड़ा-बहुत धधार्थ के रूप में प्रस्तुत कर सका है। धैसी धीर वातावरण इसमें उपमोधी हुए हैं। धध्य पात्रों से इसके सम्बन्धों में धी एक सधुनित धधस्था है, धधधि ये सभी संबन्ध सेखर की मानसिक क्षिधासा के विस्लेषण के लिए धी रधित हैं। 'नदी के धीप' में धधमजी धधिक उलझी हुई मनोवृत्तिधों में स्वयं उसधकर रह गये हैं और धीवन को धधार्थ रूप में प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। धीन-विकारों की विकसिधों धीवन में सरय हो सकती हैं, संकुल मनोवृत्तिधों वास्तविक हो सकती हैं। पर केवल इन्हीके धाधार पर पात्र-सृष्टि नहीं हो सकती। यह प्रसन्न ठठ सकता है कि क्या उपन्यास में धीवन के सर्वाधीन विधण की धावश्यकता है क्या केवल कुछ विशिष्ट विकारों को धा मानसिक धधियों को सेखर उनका विस्लेषण नहीं किया जा सकता है। विशिष्ट मनोवृत्तिधों और धधियों का धधयन हो सकता है किन्तु इन धोधिक धधयन को धनुवृत्तिधूर्त धाने के लिए धीर उनमें धधार्थ के धाधास के लिए—धधौररि उनमें धीवन धूँधने के लिए उन मनोवृत्तिधों वा धधियों को धीवन से धधन नहीं करना होधा। धीवन से सबड रहने पर ही के धधार्थ ज्ञात हो सकते हैं। धध्रय अपने पात्रों को धी समाज से धधन नहीं करते। कहीं-कहीं स्वयं उनकी धसाधारण धानसिध धधियों को उनके धीवन से धी धधन कर रहते हैं। ये पात्र इन धधियों से धी निर्मित हैं, धधः धधूर्त हैं धसाधारण हैं और सामान्य दृष्टि में धधधार्थ हैं।

इसाधत्र बोधी ने धी सामान्य धीवन की घटनाधों की धधान्यध उधेला की है। धसाधारण मनोवृत्तिधों को मुठ रूप देने के लिए उधोंने धो घटनाएं रधी हैं, धधिकांश रोमान्सिक हैं। 'प्रेत धीर धाया' में धधनसिक रूप में धीर 'अहाब का पंघी' में सामान्य रूप में घटनाएं धधन्य विधन हुई हैं। कोर् धी घटना धैसी नहीं है

और प्राधुनिक कभी उपन्यासकारों के मथार्थवाद से विभक्त हैं और अधिक प्रभावशाली से मनोवृत्तियों का अध्ययन करनेवाले तात्त्विक वास्तविकता की तुलना मोपासों प्रादि के मथार्थवाद से भी भिन्न हैं।

हिन्दी में अश्वमेध और जोशी को मनोवैज्ञानिक उपन्यास के प्रतिनिधि रचयिता मान सकते हैं। बर्मबीर भारती और डा. रेवराज के कुछ उपन्यासों में भी बिदेसेपणात्मक प्रकृति का आभास मिलता है। फेंच में प्रुस्त मनरो मारिया रोमें और प्रादि और अश्वमेध में मुई चिन्तेधर बरबीनिया बृहत्तम मिस रिचर्ड डी. एच. सारेन्स प्रादि वैज्ञानिक रूप में पाशों का मनोविश्लेषण करनेवाले हैं। इन सभी का प्रथम ध्येय मनुष्य के अन्तर संबंध करनेवाली विषय और प्रकृतियों का विश्लेषण है। विशेषकर ये सब लेखक से सम्बन्धित सुकुमता-का अध्ययन कर रहे जाते हैं। फायद प्रादि मनोविज्ञान के सिद्धांतों का जीवन में करनेवाले से लेखक मनुष्य के उन सहज और स्वाभाविक प्रकृतियों को नहीं दे साधारण लोगों की दृष्टि में भी प्राती हैं और जो समस्त मानवता में विघटन के कारण सबके मिये आस्था है।

ऐसी विशिष्ट वृत्तियों कभी-कभी अत्यन्त प्रभावशाली हैं और के से पाशों को संश्लेषित करने पर वे भी प्रभावशाली हो जाते हैं। इस प्रभावशाली प्रभाव का ज्ञानकर उसे भी सहज संभाव्य और आस्था बनानेवाली उपन्यासों में प्रत्येक केष्टा का सूक्ष्म अध्ययन है और अश्वमेध उपन्यासों में इन वृत्तियों का प्रति की मात्रा तक पहुँचने से बचाकर पाशों में उनके साथ प्रकृतियों का मिश्रण कर देना है।

प्रुस्त मनोवृत्तियों का बाह्य केष्टाओं के रूप में रूपान्तर करके मनोमात्र की बिदे सीधे हो-एक भावों में प्रकट कर सकते हैं, बाह्य प्रकट करने के लिए पूर्ण तक विस्तृत करते हैं। पर इससे मना-रहकर स्थूल बन जाती है। मारिया के 'वो जो गया' (That Whi) में एक उत्तरवायित्वपूर्ण बनमोही पति को पाकर दुःखित इरान प्रेमिक विकास है। साथ-साथ सामाजिक जातावरण भी सुस्पष्ट नहीं उनके सम्बन्ध में आनेवाले अन्य पाशों का भी पर्याप्त महत्व है। इस प्रभावशाली प्रभाव है पर यह प्रभावशालीता सम्पूर्ण उपन्यास में ही प्राती है और जो बाह्य जीवन है वह विशिष्ट-सा नहीं सदा विशिष्टता उसकी विचार तीव्रता है जो समय-समय पर विशिष्ट में प्रकट होते हैं जैसे अष्टम के काल से प्रकट होकर उसे छू

अश्वमेध के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में भी सामाजिक प्रेरणा के वैयक्तिक कुण्डलों के आधार पर सम्पूर्ण कथानक होता है। इनमें मनोवैज्ञानिक तत्त्व केवल कथानक के अतिरिक्त प्रभावशाली मने मान और एक सामान्य जीवन के हैं, अतः मथार्थ नहीं पड़ती। डी. एच. सारेन्स के 'युव और प्रेमी' (S

उपन्यास में उतारने के लिए तब तक बित्त तथ्यों का परिज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। लेखक को स्वयं अपनी रचनात्मकता के माध्यम से तथ्यों को कला का रूप देना होगा।

१२८ उपन्यास—सांख्यिक उपन्यास—जीवन के समान नहीं होता जीवन ही होता है। उसमें पात्रों और घाटावरण को वही रूप देना होगा जिससे यह सात हो सके कि वे हमारे जीवन से दूर नहीं हैं हमसे दूर नहीं हैं। बाह्य बगल द्वारा धन संबंध की व्याख्या ही स्पष्ट के द्वारा सूत्र की अभिव्यक्ति ही किसी रचना को बचार्थवादी और सहज विषयसमीप बनाकर हमारे निष्पन्न ला सकता है। इससे अन्तर्गत की अपेक्षा नहीं होती बल्कि को लेखक बाह्य बगल का धारण लेकर अन्तर्गत की बितनी स्पष्ट और बितनी मार्मिक व्याख्या करना वह उतना ही बचार्थवादी माना जायगा। इसीसे बाह्य तथा अन्तर्गत विषयसमीप हावे। यह विषयसमीपता बचार्थवाद की बात है। जान कूपर वादित कहते हैं "पात्र अपने बचार्थ हो कि हम उनके अपने-आपको रख सकें और घाटावरण इतना बचार्थ हो कि हम उसमें चल-फिर सकें।"^१

इस प्रभाव के लिए व्यक्ति और वस्तु का भौतिक विवरण पर्याप्त नहीं है, उन सबकी अन्तरात्मा को समझकर अन्धीको कला के माध्यम से व्यक्त करना पड़ेगा। विरल के प्रसिद्ध उपन्यासकारों ने यही किया है।

१२९ पात्र की बचार्थता के सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है। पात्र पात्र को स्वतंत्र छोड़ देने की बात नहीं जाती है और कुछ लेखक इस तरह पात्रों को छोड़ देने में बड़े पौरव का भी अनुभव करने हैं।^२ लेकिन क्या कोई पात्र लेखक से पूर्णतया मुक्त हो सकता है? सचचा क्या उन्हें मुक्त होकर मनमाने करने का अधिकार देना प्रसिद्धाहित है? वस्तुतः लोक-जीवन में कोई अनुप्य स्वतंत्र नहीं होता उसकी हर प्रवृत्ति उसकी आन्तरिक दशाओं और बाह्य परिस्थितियों से परिचालित रहती है। अब कोई भी अनुप्य स्वतंत्र नहीं है सब पात्रों को क्या स्वतंत्रता दी जाय? पात्र को बचार्थ बनाने के लिए लेखक को उन नियमित करके परिस्थिति के अनुकूल प्रवृत्त कराना पड़ेगा। उसकी स्वतंत्रता देने का इनका ही धर्म हो सकता है कि लेखक अपनी वैयक्तिक प्रतिक्रिया के अनुकूल अपने निष्ठाता के प्रचार के लिए या अपनी मान्यताओं की स्थापना के लिए उनकी परिस्थितिपरिणत स्वाभाविक प्रवृत्तियों में बाधा न डाले। लेखक को पात्रों पर पूरा नियंत्रण रखना पड़ता है बिना उनके जीवन को अपनी इच्छानुसार गठित करने के लिए बड़ी परिस्थिति के अनुकूल उनको गति देने के लिए।

१ "The characters must be so real that we can throw ourselves into them and the background so real that we can walk about in it."

—Fovys Dostoevsky P 15

२ इसे 'गुप्तों का देश की भूमि'।

बिसे देखकर हमें यह भागास हो कि यह जीवन की साधारण चटमा है। 'सम्भाषी' 'निर्वासित' 'मृत और छाया' इन सबके नामों के जीवन कुछ नोन विकारों पार पाँच सड़कियों से परिचय और सबन्धों तथा उनके परिणामों तक सीमित रहती है। बीजीजी प्रुस्त और मारिया के समान मूढम बिबरण की बीसी से इन घसाबारण पार्श्वों की साधारण क्रियाओं को मूर्त भी नहीं बनाते। केवल 'मुक्तिपथ' में सुनम्दा की 'मह' वृत्ति का विकास क्रमगत और मूर्त हुआ है। 'सुनह के सुने' में कहीं-कहीं पार्श्व एवं परिस्थितियों को बथार्थ रूप में प्रस्तुत करने में बीजीजी सफल हुए है।

८

यथाथवाच

पात्र वातावरण शस्ती

३२६ पात्र और वातावरण की पारस्परिक अनुकूलता और दोनों के अनुकूल बीसी—इसको प्राप्त करने में उपन्यासकार सफल हो जाय तो वह जीवन को यथार्थ रूप में प्रकट करने में प्रायः सफल हो जाता है। पात्र यथार्थ तभी होना जब वे परिस्थितियों के अनुकूल एवं बीठ-जागते रहें वातावरण यथार्थ तब होगा जब वह पात्र को पूर्णतया प्रकट करने में सफल हो और बीसी यथार्थ तब होगी जब वह वातावरण के अनुसार जीनेवाले पात्र की बधा के अनुकूल हो।

३२७ साहित्य का आश्रित और प्रतिम सब्ध मनुष्य है, चाहे उसमें मनुष्य को सुधारने का ध्येय हो चाहे उसे समझने भर का। इसलिये बीसी और वातावरण भी अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण न होकर मनुष्य को व्यक्त करने में ही सार्थकता रखते हैं। यथार्थवादी को मनुष्य को यथार्थ रूप में बिकाना पड़ता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे समस्त उपलब्ध साधनों का उपयोग करना होगा। जहाँ तक वातावरण और बीसी का प्रश्न है उनको वही रूप देना पड़ेगा जो पात्रों की प्रकृति को और उनके मनोमात्रों को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक हो।

उपमास में पात्र का व्यक्तित्व बही होना चाहिए जो जीवन में होता है।^१ उपन्यास जीवन का प्रतिबिम्ब होता है मृत जीवन को समझने के लिए उपमास का विधान ऐसा होना चाहिए कि उसका पात्रों और हृदयों का समतल चित्र (Flat Picture) ही नहीं संपूर्ण रूप और चेटाए हमारे मन में जय जाय। यथास्थ बिबरण से एक तरह का समतल प्रभाव (Flat Impression) हो सकता है। लेकिन जीवन का सत्य इससे परे है। उसमें तथ्य ही नहीं तथ्य को मानव-मन से संबद्ध करने-बाना सामासिक संबंध भी होता है। इस साधारण संबंध में समन्वित सत्य को

१ "In fiction personality consists of essentially the same qualities as belong to it in the actual life." —Myers Later Realism, P 3

उपस्थापन व उत्तारणे के लिए तबकाचित तथ्यों का परिज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। मेखक को स्वयं अपनी उपस्थितिपद्धता के माध्यम में तथ्यों को कथा का रूप देना होगा।

१२६ उपस्थापन—साधुनिक उपस्थापन—जीवन के समान नहीं होता जीवन ही होता है। उसमें पात्रों की वातावरण को वही रूप देना होगा जिससे यह बात हो सके कि वे हमारे जीवन से दूर नहीं हैं। हमसे दूर नहीं हैं। बाह्य जगत् द्वारा अन्तर्जगत् की व्याख्या ही स्थूल के द्वारा सूक्ष्म की अभिव्यक्ति हो किसी रचना को बचार्नवादी और सहज विवक्षनीय बनाकर हमारे निकट ला सकती है। इसमें अन्तर्जगत् की उपेक्षा नहीं होती। बल्कि वो मेखक बाह्य जगत् का अध्ययन लेकर अन्तर्जगत् की जितनी स्पष्ट और जितनी भाविक व्याख्या करेगा वह उतना ही बचार्नवादी माना जाएगा। इसीसे बाह्य तथा अन्तर्जगत् विवक्षनीय हान। यह विवक्षनीयता बचार्नवाद की बात है। ज्ञान रूपर पात्रों के कहते हैं "पात्र इतने उच्चार्थ हो कि हम उनमें अपने आपको रक्त सर्व और वातावरण इतना यथार्थ हो कि हम उसमें बच-पड़ सकें।"^१

इस प्रभाव के लिए व्यक्ति और वस्तु का भीतिव विवरण पर्याप्त नहीं है उन सबकी अन्तरात्मा को समझकर उनकी कथा का माध्यम में व्यञ्जित करना पड़ेगा। बिस्व के प्रसिद्ध उपस्थापनकारों ने यही किया है।

१२७ पात्र का उच्चार्थता के सम्बन्ध में एक बात धीर विचारणीय है। प्रायः पात्र को स्वतंत्र छोड़ देने की बात कही जाती है। धीर कुछ लेखक इस तरह पात्रों को छोड़ देने में बड़े धीरज का भी अनुभव करते हैं।^२ लेकिन क्या कोई पात्र लेखक से पूर्णतया मुक्त हो सकता है? प्रकृति क्या प्रकृति मुक्त होकर मनमानी करने का अधिकार देना अभिवांछित है? वस्तुतः भोक जीवन में कोई मनुष्य स्वतंत्र नहीं होता उसकी हर प्रवृत्ति उसकी आन्तरिक दशाभा और बाह्य परिस्थितियों से परिचायित रहती है। जब कोई भी मनुष्य स्वतंत्र नहीं है तब पात्रों को क्या स्वतंत्रता दी जाय? पात्र को बचार्न बनाने के लिए लेखक को उसे नियमित करके परिस्थिति के अनुकूल प्रवृत्त कराना पड़ेगा। उसको स्वतंत्रता देने का इतना ही अर्थ हो सकता है कि लेखक अपनी वैयक्तिक प्रतिबन्ध के अनुकूल अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए या अपनी मान्यताओं की स्थापना के लिए उसकी परिस्थितिपरिस्थित स्वाभाविक प्रवृत्तियों में बाधा न डालें। लेखक को पात्रों पर पुरा नियंत्रण रखना पड़ता है। बिना उनके जीवन को अपनी इच्छानुसार मॉडल करने के लिए नहीं परिस्थिति के अनुकूल उनको मॉडल देने के लिए।

१ "The characters must be so real that we can throw ourselves into them and the background so real that we can walk about in it."

—Pows Dostoevsky P 15

२. ये गुणों का ईशता की धृतिः।

यथार्थभास कुछ उदाहरण

४०० पाप और पातावरण में मयार्थ का भ्रम उत्पन्न करने पर हिन्दी के अधिकांश उपन्यासकारों ने विशेष ध्यान नहीं दिया है। उपन्यास की कहानी पर ध्यान देनेवाला यथवा समाज की आलोचना के लिए प्राकृत लेखक इस विषय के प्रति अधिक आकृष्ट नहीं होता। प्रमथ ने ही यहाँ अपने सुधार-सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये हैं, यहाँ मयार्थ पर बहुत आघात किया है। पर अन्य स्थानों में जीवन की वास्तविक परिस्थितियाँ उपस्थित करने में और पात्रों को मयार्थ बनाकर उनमें प्राण-प्रतिष्ठा करने में उनको बड़ी सफलता मिली है।

अब हम हिन्दी के उपन्यासों में प्राप्त कुछ मयार्थ हृदयों को उदाहरण के रूप लेकर देखें। यहाँ इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि ये प्रसंग बिना किसी नियम के ही चुने जा रहे हैं ऐसे संकष्टों प्रसंग प्राप्त हो सकते हैं, हमें अपने विषय और दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिये वो ही चार माध्यम हैं अतः विभिन्न प्रकार के होने-गिने उदाहरण ही दिए जा रहे हैं।

४०१ साधारण से साधारण बटनाएँ भी उपन्यास में मयार्थ रूप में प्रस्तुत किये जाने पर मोहक हो जाती हैं। चिरपरिचित चरेसु दृश्य भी अरोचक नहीं होते। चन्न के 'शराबी' का एक प्रसंग देखिए, यहाँ ये आलोचना हैं मुख होकर केवल मयार्थ हृदय प्रकट करत हैं

हीरा और एक सड़का परीक्षा भगाकर लेलते हैं।

सड़के ने स्वाभाविक स्वार्थ से देखा—सबमुख हीरा के सामने अधिक बुरा भी। उचका महल बड़ा था। पड़ोसी बूंदरे पड़ोसी की इस मृष्ययी महानता को न सह सका।

“मैं तेरा महल बिगाड़ दूँगा” उसने वात्तावेस से कहा साथ ही हाथ भी चढ़ाया।

“मैं नी तेरा बिगाड़ दूँगी हूँ मैं किसीसे कमबोर हूँ? खबरदार, इधर हाथ न चढ़ाना।

“क्या कर लेगी ?

ऐसा बूँसा माकड़ी कि चिल्लाया भाव लड़ा होया।

“मैं अपनी या को पुकारूँगी।

उसको भी माकड़ी भौंटा पकड़कर।

“मैं बाबा को बुला लूँगी तब मैं तेरे कान पकड़कर तीन तमाके जड़ दूँगे। मैंें चिल्लाते लगेगी।”^१

इस तरह के हृदय हमें जीवन की वास्तविकता की ओर यथवा समीर सप्त स्थायों की ओर आकृष्ट नहीं करते परन्तु इनमें जीवन के प्रति रागादिमय दृष्टि का विकास होता स्वाभाविक है। सड़की के 'गिरती बीचारे' से एक उदाहरण भी लिये।

(कैसे कई उदाहरण हैं। पूरा बाईसवां अध्याय मयार्थ विभाग का श्रेष्ठ उदाहरण है।) चेतन के समुदाय में रहते समय का एक प्रसंग है।

“छन्द मुगाइये बीजाजी छन्द ! और मङ्गलियो ने उसका कोट बीजा । एक निमित्त के लिए चेतन की धाँक नीला से चार हुई ।

“बीजाजी छन्द ”

चेतन वही समय परिचित किसीप्रकार अपने हिलते हुए सटीर के साथ भाये और हाथ जोड़कर उभूनि कहा “अब महाशय उठिये ।

चेतन अनिच्छापूर्वक उठने लगा था कि नीला ने उसके कोट का हाथन पकड़ लिया । चेतन फिर बैठ गया । पहिली के फिर हाथ जोड़े । वह फिर उठने लगा । नीला ने फिर हाथन बीजा “नीला ने ठनिक रोप-अरे स्वर में कहा पिताजी आप बैठने की दोनिए धमी एक भी छन्द नहीं सुना हमने । ”

अनाश्रयक धारस्य नही धारस्यवनक बट्नाए नही केवल एक साधारण घटना का घरस बरुण है जिससे बीजा का रूप साकार सामने आया है ।

इन प्रसंगों में केवल एक बीजित विन ही नहीं पात्र भी अपनी विशेषताओं के साथ अपना पूर्ण व्यक्तित्व प्रकट कर देते हैं । मनुष्य सब समान होते तो हैं पर हर मनुष्य का अपने करने-करने का अंग होना है बोलचाल की रीति होनी है जिसके कारण उनके व्यक्तित्व की पहचान होती है । हिन्दी के कुछ महीनतम अध्यासों में इन व्यक्तित्व विशेषताओं का बारीकी से अध्ययन किया गया है । रेसु के दोनों अध्यासों में इसके संकटों उदाहरण मिलते हैं । किन्तु उनके किसी पात्र से निरन्तर संबंध स्थापित करना कठिन है यद्यपि व्यक्तित्व विशेषताएँ अधिक प्रभाव नहीं डालतीं मने ही वे मयार्थ हस्य के निर्माण में सहायक हुई हो । मयार्थप्रभाव वाचपदी के हास में प्रकाशित अध्यास ‘मयार्थ से धारि’ ने हस्य-विज्ञान में ऐसा प्रभाव डाला है कि हस्यों की मयार्थता के साथ-साथ व्यक्तियों की वे सब विशेषताएँ प्रकट हुई हैं या उन्हें हमारे चिरपरिचित-न बना देती हैं । ‘पोपी सासा’ ‘मीसा’ ‘बड़ा लड़का’ ‘वडी बहू’ आदि के नाम मुनठ ही हमारे सामने एक विशेष तरह का साधारण या वाता है और एक-एक के प्रति हमारा विशेष मूक मन जाता है । हर दो-तीन वाक्य बोले ‘राम राम मित्र दिव’ कहनेवाला ‘पोपी सासा’ बहू के इशारे पर साधनेवाला बड़ा लड़का बोले में अपना एक विशेष ‘टोन’ रखनेवाली ‘मीसा’—(यह टोन सासा मयार्थ की सबसे बड़ी संकेतिका है ।) ये सब पात्र बहुत स्पष्ट हैं । बाबू एक-दूसरे को मयार्थी तरह जानते हैं उनके एक-दूसरे के सामने के साधारण हस्य स्पष्ट करते हैं । उदाहरण के रूप में एक हस्य लिया जा सकता है । पोपीसासा के पुत्र ने मूठ बोलकर अपनी पत्नी को लपटी बनवा दी । बहू की लपटी देखकर सास महाशय की भी बस्का लप जाता है । यत्

राम को जब (पोपी सासा) जाने बैठे तो धात्र वीमटीनी भी उनके पास धा

पहुँची और पंजा ह्रास में लेकर उनके ऊपर अपने मर्गों ।

गोपी लाला समझ जाते हैं कि धाव कोई बात है । धाव बड़े भाव हैं बड़े की माँ ! मगर किसी मतलब से ही मेरी जातिरवारी हो रही है । राम राम धिक्-धिक् ।

लेखक दोनों को धावणी तरह जानते हैं । हर छन्द उनके व्यक्तित्वों के अनुकूल हैं । बड़ की माँ कहती है

“तुम मुझसे मवाक मत किया करो रंजना के बाबू ! ऐसा मवाक जब इस ज़मान में हमें धावणी नहीं लगता । कहते हो बड़े भाग हैं सरम नहीं घाटी तुमको ऐसी बात कहते हुए ? भूमिरा जब तैयार की गयी है धाव तोप से बोला छूटता है कभी ऐसी चीज बनना भी हाँसी तो कहने में भी धावणी लगता । क्या कभी तपस्वी पहनने के मेरे दिन या धाव भी अगर मैं पहनूँ तो कुरी मयेयी ? मगर तुम्हारे घर धाकर मेरी कोई कवर न हुई, लौरी बनी रही ।”

इस प्रसंग को पढ़ते समय क्वी उप-यासों के चरित्र चित्रण का स्मरण आता है । वास्तव्य से लेकर धाव तक के उप-यासकार वैयक्तिक विशेषताओं और पार्श्वों के टोन पर ध्यान देते आ रहे हैं । व्यक्तियों की मनोभूमि की भाव-धारा को सम्पूर्ण वातावरण में विस्तृत कर देने में वास्तव्य सिद्धहस्त हैं । विभिन्न पार्श्वों व व्यक्तित्व से परिचित होते समय पाठक के मूक को उसके अनुसार परिवर्तित कर सहानुभूति की तरफ उत्पन्न करनेवाले उपन्यासों में धाव ‘धन्ना करेनिना’ विश्व-साहित्य में ही सर्वश्रेष्ठ है । जिन धावियों में एक या दो ही पात्र आते हैं—और धाविकाएँ धाव्य ऐसी ही हैं—उनकी पढ़ते समय होनेवासी हमारी मानसिक रसा के विशेषण से यह बात स्पष्ट होगी । धन्ना के परिचय में आते ही हमारी मनोभूमि में एक शोकात्मक गम्भीर वातावरण फैल जाता है जो विट्टी और ललित के परिचय से एक उद्वेगमय प्रमत्तता और डानी के सम्पर्क से एक ग्रीह-गम्भीर शान्ति आ जाती है । यह धाव्य अनुभूति बाबयेयी के उपन्यासों से लगती नहीं होती जो भी कुछ धाव्य होती है । उनके और देख के पार्श्वों की वैयक्तिक विशेषताएँ विन्वाधानन्तर क्वी उपन्यास में की सी हैं जिनसे हम पार्श्वों की गहनतम अनुभूतियों के धाराधतम तल तक नहीं पहुँचते बल्कि उनसे विरपरिचित अनुभूतियों के समान एक स्वस्थ सत्यक स्थापित कर लेते हैं । इसी एहरनबर्ग के ‘आभी’ में ऐसे धाव-गाव प्रसंग हैं, जो वातावरण और पार्श्वों से यथार्थ रूप के कारण धावन्त मोहक हैं । लेखक की इति निर्बंध वस्तुओं की आलोचकों पर नहीं जाती पर प्रत्येक जीवन-स्थान को पहचानती है ।

छाते बनीये में दो मुर्गियाँ कोयी-सी भूय रही थी । एक दुबरी ह्रास में एक हाँसी जिसे निकल आयी उसे बैल भुगियों में मानो पान आ गयी ।

‘मोरी बबलिनएँ कैसा है ?’ एक पड़ोसिन ने बड़े के ऊपर से पूछा ।

‘जरा धावणी हुआ है लगता है कि कर्पिय गिलास से ही धावणी हुआ

पर बहुत अभी उठ नहीं सकता । मैंने डाक्टर को बुला भेजा है ।”

“किसी बवान डाक्टर को मत बुलाओ । ‘बवान सब बयभास होते हैं ।’
इस रमणियों की वपस्य सुनकर हमारा बीमार जम्बुक हो जाता है—उठ-
बैठकर सुनने लगता है । पर जब डाक्टर आये तब ऐसा बैठना नहीं चाहिए
‘दरवाजे पर बैठकर हुआ । बीमार आदमी ने जल्दी ही बैठकर कम्बल छोड़
लिया । डाक्टर दरवाजा खोलकर धन्दर आया ।”

‘प्राची’ युद्ध-सम्बन्धी उपन्यास है । एक हजार पृष्ठों के इस उपन्यास को
सरस बनानेवाली बीब ऐसे ही यथार्थ व्यक्ति और वातावरण है । लोमोलोम फेदिन
‘अबदेव कोनेतोव’ आदि के उपन्यासों में भी ऐसे अनेक यथार्थ दृश्य मिलते हैं ।
अधेरी में फ्रीस्वीय से लेकर बी एच सारेन्स तक के उपन्यासों में यथार्थ दृश्यों के
निर्माण में तरह-तरह के उपायों का उपयोग किया गया है । किसी तरह के मनो-
विस्लेषण या अभाव अध्ययन के बिना केवल साधारण बरसू जीवन-यात्रा को सरस
तम रूप में प्रतिबिम्बित करनेवाले केन आस्तिन के उपन्यास और प्रत्यक्ष प्रवृत्ति में कोई
मनोवैज्ञानिक सत्य और रावानुभूति का समावेश करनेवाले बी एच सारेन्स के
उपन्यास यथार्थवादी शैली की दो सीमाएँ हैं । सारेन्स ने यथार्थ का साधारण सेकर
पात्र की सूक्ष्म मानसिक प्रवृत्तियों का जिस कुशलता से धपधपन किया है बहुत कम
अन्य उपन्यासकारों ने किया है । हिन्सी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में ‘खेपर’ के
प्रथम भाग को छोड़कर किसीमें भी इस तरह नित्य जीवन की साधारण से साधारण
घमलों के पीछे काम करनेवाली मानसिक प्रेरणाओं की धोर संकेत तक नहीं किया
गया है ।

४०२ वातावरण के सूक्ष्म निरीक्षण में दृश्य को साकार करने की शक्ति
रहती है । दृष्टि-क्षेत्र (Field of Vision) में आनेवाली सबूतम वस्तुओं को भी
आवश्यक महत्त्व देकर कला का रूप दिया जा सकता है । जब सूक्ष्म वस्तुओं को
एक-एक करके आँखों के सामने लाया जाता है तभी यह भ्रम हो सकता है कि हम
उसी वातावरण में चल-फिर रहे हैं जिसमें पात्र स्वयं बिचरते हैं । अस्क के ऐसे
वातावरण-चित्रण का एक उदाहरण देखिए

“मास पर जुलनेवाले इन मकानों की पाँच-पाँच मंजिलें कहीं-कहीं मिडिल
बाजार की सजीलता को उसी प्रकार प्रकट करती हैं जिस प्रकार बाईं धोर छोटे-छोटे
मकानों की एक ही मंजिल इस बाजार की चर्चनता को । मास की धोर के मकानों
की निचली मंजिलें प्रायः बन्द ही रहती हैं । दरवाजों और झिड़कियों के दीर्घों पर
भूम की बड़ी मोटी परत जमी रहती है और यदि किसी लिङ्की का कोई छीछा टूट
जाता है तो वह उसी प्रकार धपपी कानी पाँखों से हाथपैरों के टीमे की धोर टाकता
रहता है । गोदामों और गहनालों के अतिरिक्त हम पंक्ति में जो कमरे हैं वे भी या तो

बन्ध ही रहते हैं धीर यदि कहीं-कहीं कुत्ते भी हैं तो किसी कमईगर, बाबेबामे, भयका किसी चामफरोक ने दूसरों से भी बचकर बना दिया है।^१

४०३ यह एक निश्चय है पर वर्णन के द्वारा उसमें जान डाल दी गयी है। प्रत्येक वस्तु भीषित होकर धारण का पात्र बन जाती है। मस्कबी ने ऐसे निश्चय हस्तों के वर्णन में सूक्ष्मता पर बिछाया ध्यान दिया है। व्यक्तियों के चित्रण में नहीं। व्यक्तियों की सूक्ष्म से सूक्ष्म चरित्र धीर चमक का निरीक्षण यद्यपि नामानुन रेणु धीर उद्यमशंकर भट्ट के कुछ उपन्यासों में मिलता है। यद्यपि के 'मुनिया की सारी' से एक हस्त देखें

'स्वामि ने मेरे मे बाहर कटिया के बले का कुछा जोत दिया धीर वह मेरे के नीचे बाहर दूध बूझने लगी। बोली ही बेर में भैस पचास घायी। स्वामि ने कटिया को पकड़कर एक घोर छूट से बांध दिया धीर स्वयं कुछावनी लेकर दूध निकालने बैठ गया। अपनी कुछावनी बटाबट कितारे तक भरकर स्वामि ने कटिया के बले का कुछा फिर जोत दिया धीर वह भी उल्लसती कुवती फुरकती बीड़कर अपनी माँ के धनों से चिपट गयी। दूध भी भरकर बूझा उसने धीर मेरे ने भी प्यार से अपनी दूधकी बुना-बुनाकर अपनी बच्ची को निहार, ठुमकार।'^२

मर्णार्थ का दूसरा रूप वातावरण का प्रभाव

४०४ मर्णार्थवाद के उत्कृष्टतम रूपों के लिए वातावरण अनिवार्य नहीं माना जा सकता है, धीर न बाह्य व्यक्ति का चित्रण ही प्रासंगिक है। निश्चित ही बाह्य वातावरण धीर बाह्य व्यक्ति का सूक्ष्म चित्रण मर्णार्थ रूप उपस्थित करने में सहायक है। पर यह मर्णार्थवाद का एक ही रूप है। दूसरे रूप में इस तरह बाह्य वस्तुओं के सूक्ष्म चित्रण की अपेक्षा करके हार्मिक विकारों के क्रमिक विकास द्वारा पाठक के हृदय की तन्मियों में भी सहकंपन (Sympathetic Vibration) उत्पन्न किए जाते हैं। हेनरी जेम्स ने मर्णार्थवाद के इस रूप को सर्वश्रेष्ठ माना है जिसमें सामान्य कलात्मकता परम्परागत ऐक्य धीर समुच्चय की भी अपेक्षा करके अनुपपत्ति अस्मिता धीर असंबद्धता को भी स्थान दिया जाता है। यह असांगत्य असंबद्धता धारि व्यक्ति का चित्रण को प्रकट करने धीर वैचारिक तीक्ष्णता को अतिव्यक्ति करने में अत्यंत उपयोगी है। प्रायः ऐसी मर्णार्थवादी रचनाओं में एक काव्यात्मक रहस्यानुभूति भरी रहती है धीर कभी-कभी रोमान्टिक जम्झुललता भी।^३ मर्णार्थवाद के इस रूप को या बाह्य मर्णार्थों को ही सर्वस्व मानता है, जेम्स ने निम्न स्थान ही दिया। जेम्स का यह मत अशुद्ध नहीं है। कला पहले हृदय का विषय है फिर बुद्धि का। यद्यपि हमें इस बाह्य अर्थ से एक निमित्त के लिए बीच से बाहर पार्श्व के मानसिक वस्तु में

१ निरती बीबारे, पृ. ४४३।

२, मुनिया की सारी, पृ. २९।

३ See, James Notes on Novelists, P 321

सेवक प्रविष्ट कर दे तो उसे अनुचित नहीं कह सकते। नीतिक दृष्टि से देखने पर ऐसे पार्थों की मार्बार्थता पर धर्म ही हमें संवेष्ट हो पर बिना कोई प्ररन बिमे उनके बिकारों को उनकी अनुभूतियों को स्वीकृत करने के लिए हम तैयार हो जाते हैं। मानसिक जगत् का प्रत्यक्षीकरण करनेवासे सेवक को बाह्य वातावरण की भावयकता नहीं रहती। बिकारों के बिकास में वातावरण उपयोगी हो सकता है पर वह धर्मिबार्थ नहीं है। प्रेमी धीर प्रेमिका अनुराग की चरम दशा में बसन्त धीर मलय पवन को पसन्द लायक करें, पर उनके लिए हठ कभी नहीं करेंगे। स्नायुसहस्रों में धर्मिबन्धित कम्पन करनेवासी तीव्र अनुभूति की दशा में उनका ध्यान वातावरण की समस्त उर्वीयक वस्तुओं से बिभय होकर न जाने किस धर्मीकिक वस्तु पर केन्द्रित हो जाता है। जब पात्र स्वयं वातावरण के लिए हठ नहीं करें तब सेवक क्यों कर ?

४०५ आन्ध्र धीर के 'तुल्य वरचाचा' नामक उपन्यास को चीनिए। इसके प्रथम दो-तीन अध्यायों में जो व्यस्यत वातावरण है वह भी धीम्र सुप्त हो जाता है। धीर फिर उपन्यास बन्त तक बेरोप धीर एलिया की मनोभूमि के धाधार पर बसता है। सामाजिक वातावरण धर्मत्वसा है ही साथ-साथ वह वातावरण भी सुप्त हो जाता है जिसमें पात्र बिबरस करत हैं। इसीलिए पात्र कुछ बामबीन होकर धस्वाभाबिक से हो गए हैं। किन्तु वातावरण का वह धमाव उनकी भाव-तीकता को धर्बिक स्पष्ट करता है उनके बिकारों के बिकास के साथ-साथ हमारे हृदय में भी एक समान बिकार बिकसित करने को बिबस करता है। इसी तरह धांसो मारिया के 'जो जो पबा' (That which was Lost) की एक पठ की बटनाएँ मार्सेस धीर तोटा की मानसिक पुष्ट्यभि पर बटित होती हैं। मारिया का 'काले बेबता' (The Dark Angels—Les Anges Noirs) मरिएम प्रेदेर की मानसिक कथा है जो बचपन से ही पुरोहिताई के लिए पाला जाता है किन्तु मुराई से मुराई की धीर जाता है। मासल धीर प्रेदेर के मानसिक पठन के बिकास को बिबाने के लिए मारिया में किसी बाह्य वातावरण की भावत्वकता नहीं समझी। वातावरण के धीर पार्थों की ही सामान्य बाह्य बिवाधों के धमाव के कारण कुछ धर्मबद्धता धीर धर्तावत्प दम सबम है धीर पात्र सब धसाधारण मगते हैं। लेकिन इसके परिशामत्वकम हम उसकी भाव-तंडा में बिबिनि होकर बाह्य जगत् से ही पराङ्मुख हो जाते हैं। धीर उल्टे पार-बिरासों के बिम्वय संसार में बिबरण करने लगते हैं। भाव का धर्बार्थ बाह्य धर्बार्थ से ठनिक भी कम नहीं बल्कि यही धामय बाह्यधर्बिक धर्बार्थ है।—भाबों का धर्बार्थ ही वास्तावबस्की के 'धर्बार्थ धर्बार्थ' का धाधार है। (पर वास्तावबस्की वातावरण को बिनुस नहीं करते।)

४६ हिन्दी में पुणेतया वातावरणरहित उपन्यास नहीं है। किन्तु 'धुनीता' धीर 'धुत्तिपब' में वातावरण की कमी बर्धनीय है। 'धुत्तिपब' इस दृष्टि से धर्बिक महत्वपूर्ण है। सेवक का ध्यान उदा राजीव धीर सुमन्या के धाधनवत् में ही लबा रहता है। नीतिक जीवन के सुलमय धाधों के धभाब में कुप्यदस्त राजीव का मानसिक जीवन धर्तावत्पपूर्ण है। वह धपना स्वतंत्र धस्तित्व रखता है धीर बाह्य संसार से बिच्छिन्न है। उसके संपर्क में जानेवासी सुमन्या की मनोभूमि में जो

धाबियां घाटी हैं वह उपन्यास का मुख्य आकर्षण है। स्वयं कुच्छाग्रस्त राजीव उसे बासनाभों को समित रखन की प्रेरणा देता है और व्यक्तिगत विकास का मार्ग दिखाता है। और परिणाम ? सुनन्दा का व्यक्तिगत निकसित होता है यहाँ तक कि वह अपनी स्वतंत्रता की बोधना करने राजीव के यहाँ से जाती जाती है। इन दोनों की मनोवृत्तियों की सूक्ष्म रेखाओं को प्रकट करते हुए बोधीजी वातावरण की आवश्यकता नहीं समझते। अन्य उपन्यासों में यत्र-तत्र जहाँ वे मान विकास में गये हैं वहाँ भी वातावरण को धूल धाँधे हैं पर संपूर्ण उपन्यास में मान-विकास का काम नहीं दिखा पाते। एक उदाहरण ल सकते हैं 'निर्वासित' का कारण एक सामाजिक समा में होता है। पर क्या समा एक वातावरण के रूप में जाती है ? मेलक महीप और नीतिमा की घोर ही आकृष्ट है।

'सुनीता' में सामाजिक वातावरण का अभाव है लेकिन हृदय-वातावरण स्पष्टतः प्रकट है। परन्तु उस वातावरण का भी बिना ऐसा हुआ है कि उसके प्रति हमारा ध्यान नहीं जाता। पात्रों की मनोवृत्तियाँ हमें हठपूर्व आकृष्ट करती हैं।

अन्त्य के 'नदी के द्वीप' में वातावरण है अस्पष्ट है। पर क्या उसमें किसी सामाजिक अथवा पारिवारिक हृदय का रूप सामन आता है ? प्रेमचन्द के उपन्यासों में बँधे कितने ही हृदय आदों के सामन माधुर्यपूर्ण से प्रकट होते हैं बँधे 'नदी के द्वीप' पढ़ते समय होता है ? बिभक्त नहीं। प्रत्येक हृदय को पढ़ते समय हमारा ध्यान पात्रों की मनोवृत्तियों पर ही केन्द्रित रहता है। पात्रों में कितने ही असाधारण हों हम उनकी अनुवृत्तियों से बच नहीं पाते।^१

इन उपन्यासों को पढ़ते समय वह बौद्धिक प्रदान नहीं करना चाहिए कि वह संभव है या नहीं ? वह पात्र समाज में मिलता है या नहीं ? हमें अपनी आदिक चेतना को बौद्धिक बन्धन से मुक्त करके मान और अनुभूति के क्षेत्र में स्वतंत्र बिबरण के लिए छोड़ देना चाहिए। इन सबमें संसार की वास्तविक अनुभूतियों के ही प्रतिरंजित रूप मिलते हैं। जिन्हें हम प्रतिरंजन होने से वास्तविकता का बृहत् रूप भी कह सकते हैं और दूसरी दृष्टि से अवास्तविक भी कह सकते हैं।

अगर बाह्य और आन्तरिक यथार्थ के दो रूप बताये गए हैं। इनके लिए मान हृदय उपाधानों के मजबूत से अलक्ष्य जब मिलता होता है, तब यथार्थवाद प्रदर्शित अवस्था में आकर दुर्बल हो जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो बाह्यनिष्ठ यथार्थवाद में हृदय उपस्थित करने में और अन्तर्निष्ठ यथार्थवाद में पात्रों के विकास से पात्रों के विकास को मिला देने में मेलक असमर्थ हुआ तो उसकी भयंकर पराजय होती है। इस पराजय के कई कारण होते हैं जिनपर हम संक्षेप में विचार करेंगे।

कुछ दोष

४०७ कमा का असाधारण असम्यक्त अवभाष्यता और स्वच्छन्दता—प्रमचन्द से पूर्व के उपन्यासों में असंभव और अटिष्ठ घटनाओं का जो आधिपत्य है वह स्वयं

१ दिवंगत निवेचना अनुभूति २२५ २२६ में की गयी है।

उपन्यासों को मनार्थ बना देता है। प्रत्यक्ष के बाहर के कई घेष्ठ लेखकों के उपन्यासों में भी इसी कारण से वस्तु की मनार्थता में संशेह होने लगता है। प्रसाद के उपन्यासों की बटनाएं घनम-घनम मनार्थ हो सकती हैं पर इनसे संभवपूर्ण विषय बोधम दितानेवासे पात्र जीवन में सामर ही मिलेये। कुछ बटनाएं भी बिलकुल अस्वाभाविक हैं जैसे 'अकाल' में तारा का गया में कूदने का प्रयत्न करत ही संन्यासी का धाकर पकड़ लेना फिर दूसरी बार कूदकर भी सुरक्षित दूसरे संन्यासी के यहाँ पहुच जाना 'तितली' में महन्तजी के समानुषिक धायाचार, यमुवन द्वारा उसकी हत्या धारि। कौशिक के दोनों उपन्यास प्रतापनारायण श्रीवास्तव और मम्मननाथ गुप्त के प्राय सभी उपन्यास अपादेवी के 'पिया' और 'पचपारी' चतुरधन और मयवतीप्रसाद बाबुदेवी के प्रारंभिक उपन्यास धारि ऐसे उपन्यास हैं जो बटनाओं की ळटिमता घनमति या अस्वाभाविकता के कारण कमजित हैं। यहाँ कुछ घेष्ठ उपन्यासकारों के ऐसे प्रसंगों का उल्लेख करना प्रसंगत न होना जिनके द्वारा मनार्थ की हत्या होती है। बुन्दावनमास बर्मा के लयन और 'कुण्डलीबल' में विविध बटनाएं हैं ही। पर अधिक ग्रीह माने जानेवासे 'कभी न कभी' को ही लीजिए। मजदूरों के जीवन में रोमास ईदने के प्रयत्न में लेखक ने समसनी पैदा करनेवाली कई बटनाएं समाविष्ट की हैं जैसे लछमन का रास्ते में भ्रमकर अकगर लेखना (पृ १४) धारि देवद के प्रति लछमन का प्रेम दिखाने के लिए उससे बीमारी में भी देवद के लिए मड़की दुकवाकर बर्माजी ने हृद कर बी है।

"दूसरे दिन भी लछमन को अवर था। परन्तु वह बरबा-सापर जला गया और किराये की बाइसिकल लेकर दो-तीन गावों का भ्रमकर काटने को निकल पड़ा।"

यह है बिबाह के लिए मड़की दुबने का तरीका।

इसी 'कभी न कभी' के परिचय में और प्राय सभी अन्य सामाजिक उपन्यासों की भूमिकाओं में बर्माजी ने दावा किया है कि प्राय उनके सभी बटनाएं घाँवों-देखी हैं। फिर भी उनके सभी सामाजिक उपन्यासों में ऐसी ही अविद्वसनीय बटनाएं मिलती हैं। बर्माजी बकील हैं अतः उनकी कानूनी दृष्टि में घाँवों-देखी सभी बटनाएं सरय हैं। उन बटनाओं को नियम-जीवन में प्राय स्नान सबबा उनके मानवी मूल्य के बारे में बर्माजी सोचते तक नहीं। लथों को वे लय मानते हैं कानूनी सरय केवल लय है साहित्यिक सरय इनसे भिन्न है।

इमाचन्द्र बोसी के उपन्यासों में कई बटनाएं हैं जिन्हें कोई भी साधारण या असाधारण मनोविज्ञान (Abnormal Psychology) मान्यता नहीं देगा। 'निर्वासित' को वे स्वयं 'भारतीय जीवन की आँकी' मानते हैं। हम इन माने को मानना पड़गा भारतीय जीवन रोमास के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है हमारे सड़के-मड़कियों को प्रेम

प्रांशियां घाती हैं वह उपन्यास का मुख्य धातुत्व है। स्वयं कुष्ठापस्त राजीब उसे बाधनाओं को रमित रखने की प्रेरणा देता है और व्यक्ति के विकास का मार्ग दिखाता है। और परिणाम ? सुनम्बा का व्यक्तित्व विकसित होता है यहाँ तक कि वह अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करने राजीब ने यहाँ से चली जाती है। इन दोनों की मनोवृत्तियों की सूक्ष्म रेखाओं को ध्वनित करते हुए बोझीबी बातावरण की भावस्थिरता नहीं समझते। अन्य उपन्यासों में मन्त्र-तन्त्र वहाँ ने भाव विकास में लगे हैं वहाँ भी बातावरण को भूल जाते हैं पर संपूर्ण उपन्यास में भाव-विकास का क्रम नहीं दिखा पाते। एक उदाहरण से सकते हैं 'निर्वासित' का प्रारम्भ एक सार्वजनिक सभा में होता है। पर क्या सभा एक बातावरण के रूप में घाती है ? लेकिन महीप और नीसिमा की ओर ही आकृष्ट है।

'सुनीठा' में सामाजिक बातावरण का प्रभाव है लेकिन इस-बातावरण स्पष्टतः प्रकट है। परन्तु उस बातावरण का भी चित्रण ऐसा हुआ है कि उसके प्रति हमारा ध्यान नहीं जाता। पात्रों की मनोवृत्तियाँ हमें हठात् आकृष्ट करती हैं।

ग्रन्थ के 'नदी के द्वीप' में बातावरण है प्रत्यक्ष है। पर क्या उसमें किसी सामाजिक प्रभाव पारिवारिक दृश्य का रूप सामल घाता है ? प्रमचन्द के उपन्यासों में बँस कितने ही दृश्य प्रांशों के सामने आते हुए से प्रकट होते हैं जैसे 'नदी के द्वीप' पढ़ते समय होता है ? विलकुल नहीं। प्रत्येक दृश्य को पढ़ते समय हमारा ध्यान पात्रों की मनोवृत्तियों पर ही केन्द्रित रहता है। पात्रों में कितने ही असाधारण हैं। हम उनकी अनुभूतियों से बच नहीं पाते।^१

इन उपन्यासों को पढ़ते समय यह बौद्धिक प्रश्न नहीं करना चाहिए कि यह संभव है या नहीं ? यह पात्र समाज में मिलता है या नहीं ? हमें अपनी हार्दिक बैठना को बौद्धिक मन्यन से मुक्त करके भाव और अनुभूति के क्षेत्र में स्वतंत्र विचारण के लिए छोड़ देना चाहिए। इन सबमें संसार की वास्तविक अनुभूतियों के ही प्रतिरचित रूप मिलते हैं। जिन्हें हम प्रतिरंजन होने से वास्तविकता का बृहत् रूप भी कह सकते हैं और दूसरी दृष्टि से अवास्तविक भी कह सकते हैं।

ऊपर बाह्य और आन्तरिक मथार्थ के दो रूप बताये गए हैं। इनके लिए भाव दृश्य उपादानों के मूलन से लेकर बच विरल होता है तब मथार्थवाचक प्रकृत प्रवृत्ति में आकर दुर्बल हो जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो वास्तविक मथार्थवाच में दृश्य उपस्थित करने में और वास्तविक मथार्थवाद में पात्रों के विकारों से पाठक के विकारों को मिला देने में लेकर असमर्थ हुआ तो उसकी सर्वकर पराजय होती है। इस पराजय के कई कारण हो सकते हैं जिसपर हम संक्षेप में विचार करते।

कुछ दोष

४ ७ कसा का असाधारण असमर्थता प्रसन्नता और स्वच्छन्दता—प्रमचन्द के पूर्व के उपन्यासों में प्रसन्न और पटित घटनाओं का जो आविर्भाव है वह स्वयं

^१ विरल विवचना अनुच्छेद १२२-१२६ में की गयी है।

धार्षों को भी कतिपय स्थानों पर मेकवरवाजी से प्रकट किया है^१ और ऐसे स्थानों में पार्श्वों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता। उपर्युक्त सभी प्रसंगों में पार्श्वों के स्वाभाविक जीवन में बाधा डालकर मेकवर उनपर अपने मत और सिद्धान्त लागू करने का प्रयत्न करते हैं।

४०६. **धार्शनिक मूढ़**—कहीं-कहीं धार्षवादा एक तरह के धार्शनिक मूढ़ का कारण बन जाता है। धर्म जीवन और उपन्यास में अन्ध है पर साधारण पार्श्वों का धार्शनिक बन जाना यथार्थ-विरोधी है। क्रीडिक के 'मिथारिखी' में प्रेम के सम्बन्ध में समता और ब्रह्मविरोध का वास्तविक^२ वास्तविक होने से ही अस्वाभाविक लगता है। और एक निरीह बालिका अपने पिता का हाथ दूर करने के लिए कहती है, 'अपने ऊपर इसलिए हंसो कि तुमने संसार को नहीं समझा संसार पर इसलिए हंसो कि संसार ने तुमको नहीं समझा अपनी भूलों पर इसलिए हंसो कि उनका सुधार असंभव है अपनी लालसाओं पर इस वास्ते हंसो कि वे असंभविकार बेहता की'^३ यहाँ कथन की नाटकीयता में संदेह नहीं है पर क्या इस तरह बोलनेवाले पार्श्व भी कहीं मिलेंगे? मजबूतीप्रदाय बाणपेयी के यथार्थवाद में बीच-बीच में बाधा डालनेवाली चीज यह धार्शनिकता है। उनकी यह प्रकृति को 'पिपासा' से शुरू हुई^४ 'यथार्थ से भागे' तक पहुँचने पर भी समाप्त नहीं हुई है। 'यथार्थ से भागे' में यथार्थवादी चरित्र चित्रण और कथा-विकास बहुत प्रभावशाली हैं, पर बीच-बीच में लगे पापसु और धार्शनिक विवेचन खटकते हैं।^५ यही बाणपेयीजी के यथार्थ से पीछे से जानेवाली चीज है। पार्श्वों के मनोभावों की विविध रूपाओं में उन्हींके अनुसार सुनायी पड़नेवाली धार्शनिक रेडियो-वाणी या पीठा-बमोके या सिनेमा-वार्ता आदि विमकुल असाधारण संयोग हैं और फिर्साफर के ही हथकंडे हैं।

इनके अतिरिक्त धार्षवादी पार्श्व कथानक आदि भी यथार्थवादी कला में मौल्य पर आघात कर सकते हैं। अनिर्बंधित आलोचनाएं यथार्थ में बाधा ही डालती हैं।

प्रादेशिक बोली और यथार्थ

४१०. हिन्दी उपन्यास में जिन नवीनतम यथार्थवादी प्रवृत्तियों का विकास हुआ है उनमें एक प्रादेशिक बोलियों का प्रयोग है। पार्श्वों की यथार्थता के लिए उनकी माया की स्वाभाविकता अनिवार्य है। स्वाभाविकता की चरम रक्षा तभी प्राप्त होती जबकि पार्श्वों की बोली को कहीं रूप में उपन्यास में रखा जाय यही सोचकर आशुतोष उपन्यासकारों ने पार्श्वों की प्रादेशिक बोलियों का उपयोग किया है। विशेषकर आंचलिक उपन्यासों में यह एक अनिवार्य संग-सा हो गया है। किन्तु हम प्रयोग से जो

१ बाबा कमरेज पृ. १५६, १५७।

२ मिथारिखी पृ. ४६।

३ मिथारिखी, पृ. ११६।

४ पिपासा में कमलधर के उपर पृ. २५, २६ और नरेन्द्र के विपास, पृ. ६।

५. वेने यथार्थ से भागे पृ. २८, ११७, ११८।

की प्राथमिकता और धारण बढ़ाने के अतिरिक्त कोई काम ही नहीं है। अन्त में जो क्षमति होती है उसमें भारत की राष्ट्रीय क्षमति का वास्तविक रूप नहीं है कुछ अनसही कुछ परम संभाषण और मनपरिवर्तन यह क्षमति समाप्त। धार्मिक भाव में पूर्णतया महीन और अक्षर के प्रेम-युक्त की आत्मशक्तियाँ हैं। क्या और समिधा के प्रति अक्षर के अत्याचार की कथा? 'अरेबियन नाइट्स' और 'डेकामेरा' की कथाओं से बहुत भिन्न नहीं है। बीराज की कहानी जिसका रोमांटिक है। बीराज का हास का अपमान 'अहाज का पक्षी' यमार्थ की दृष्टि से देखा जाय तो अर्थकर पराजय है। बीराज ने समाज की जिन-जिन बुराइयों की आलोचना करनी चाही उन सबसे होकर नाटक को एक बार जुमा दिया है और उन सबके सम्मुख में सम्य-अस्ये भाषण दिलाते हैं। बटनाएँ सब रोचक हैं पर उनपर सहज विश्वास नहीं किया जा सकता।

४०८ धारणवाद—वस्तुतः धारणवाद अपने-आपमें यमार्थवाद का विरोध नहीं है पर कल्पित धारणों का प्रयुक्त प्रकटन पात्रों और नातावरण को अस्पष्ट और अस्वाभाविक बना देता है। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि प्रमत्त के उपन्यासों के सबसे कमजोर भाग नहीं हैं, जहाँ पात्र धारणों का प्रचार करने लगते हैं। वास्तविक के उपन्यासों में भी कलात्मक बाधता उन्हीं भागों में कम है जहाँ धारणवादी प्रचार मुख्य हो गया है। 'अन्ना करेनिना' के लेखन के जीवन में धारणों की भूल करने के बावजूद भी सब-सब भाषणों और विवरणों में औपन्यासिक लक्ष्य जुट हो गये हैं। हिन्दी में प्रायः कोई लेखक इस दोष से पूर्णतया मुक्त नहीं है। यमार्थवादियों में यमवतीचरण वर्मा (केवल 'छेड़े मेड़े रास्ते' में) राधेय राजन नायार्जुन एवं रेणु की और मनोवैज्ञानिकों में केवल अज्ञेय की प्रचारवाद से बहुत कुछ मुक्त कह सकते हैं। अन्त सभी लेखक पात्रों को धारण बनाते हैं और धारणों का प्रवस कथन करते हैं। जैनेन्द्र त्यागपत्र में विवाह के सम्मुख में लक्ष्य करने सपते हैं 'विवाह की शक्ति हो के बीच की क्षमि नहीं है वह समाज के बीच की भी है विवाह आकुलता का प्रसन्न नहीं व्यक्तता का प्रसन्न है' ^१ उनका धारणवाद प्रायः धार्मिक चिन्तन का रूप धारण कर लेता है जब पुष्टी तक उपन्यास के लक्षण नहीं छोड़ते। इसी तरह उध के 'बीबी बी' में पूरा एक उपन्यास ही स्त्रियों की सामाजिक विवशता के बारे में है, ^२ जो निरर्थक के समान है और कई क्षमों के उद्धारणों से भरा है। इसाचन्द्र बीराज के 'अहाज का पक्षी' में समाज की आलोचना और धारण का प्रदर्शन दोनों लेखनवादी के द्वारा किये गये हैं। ^३ यद्यपि ने अपने क्षमिकारी

१ निर्वासित अध्याय १८।

२ त्यागपत्र पृ. २७।

३ त्यागपत्र पृ. ४२ से ४२ तक।

उपन्यास पृ. १२४ से १२५ तक।

४ बीबी बी पृ. ४७-४८।

५ अहाज का पक्षी पृ. ४८-४९, ११, १२०-१२१, ४२६-४२८ ४२८-४२९।

भाषणों को भी कठिणम स्त्राणों पर सेजवरवासी हैं प्रकट किया है, और ऐसे स्त्राणों में पात्रों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता। उपर्युक्त सभी प्रसंगों में पात्रों के स्वाभाविक जीवन में भाषा बातकर लेखक समुद्र अपने मल और सिद्धांत बाढ़ने का प्रयत्न करते हैं।

४०६ दार्शनिक मूढ़ — कहीं-कहीं भाषासंवाद एक तरह के दार्शनिक मूढ़ का कारण बन जाता है। दर्शन जीवन और उपन्यास में प्रमुख है पर साधारण पात्रों का दार्शनिक बन जाना मथार्थ-विरोधी है। कोटिक के 'मिथारिणी' में प्रेम के संबंध में समता और लक्ष्मिधोर का वास्तविक दार्शनिक होने से ही अस्वाभाविक लगता है। और एक निरीह बालिका अपने पिता का दुःख दूर करने के लिए कहती है 'अपने ऊपर इसलिए हंसो कि तुमने संसार को नहीं समझा संसार पर इसलिए हंसो कि संसार ने तुमको नहीं समझा अपनी भूमों पर इसलिए हंसो कि उनका सुधार संभव है, अपनी मानसताओं पर हस बांटे हंसो कि वे अनधिकार चेष्टा कीं' १ यहाँ कथन की नाटकीयता में संदेह नहीं है पर क्या इस तरह बोलनेवाले पात्र भी कहीं मिलेंगे? अवश्यतीव्रता बाणेशी के मथार्थवाद में बीच-बीच में भाषा बातनेवासी बीच यह दार्शनिकता है। उनकी यह प्रवृत्ति जो 'पिपासा' में धुल हुई ४ 'मथार्थ से घागे तक पहुंचने पर भी समाप्त नहीं हुई है। 'मथार्थ से घागे' में मथार्थवादी चरित्र चित्रण और कथा-विकास बहुत प्रभावशाली हैं पर बीच-बीच में सब भाषण और दार्शनिक विवेचन कटफटे हैं। ५ यहाँ बाणेशीजी के मथार्थ से पीछे से जानेवासी बीच है। पात्रों के मनोवार्ता की विभिन्न दशाओं में उनकी अनुसार मुनामी पढ़नेवासी दार्शनिक रेडियो-वार्ता या गीता-ब्लोक या सिनेमा-वार्ता यदि बिल्कुल साधारण संयोग हैं और फिनाइलर के ही हथकंडे हैं।

इनके अतिरिक्त भाषासंवादी पात्र कथानक घाबि भी मथार्थवादी कथा के सीन्स पर घाघात कर सकते हैं। अनिर्वचित आलोचनाएँ मथार्थ में भाषा ही आसती हैं।

प्रादेशिक बोली और मथार्थ

४१० हिन्दी उपन्यास में जिन नवीनतम मथार्थवादी प्रवृत्तियों का विकास हुआ है उनमें एक प्रादेशिक बोलियों का प्रयोग है। पात्रों की मथार्थता के लिए उनकी भाषा की स्वाभाविकता अनिवार्य है। स्वाभाविकता की भरम बहा सभी प्राप्त होती जबकि पात्रों की बोली को उसी रूप में उपन्यास में रखा जाय यही सोचकर आनंदकुल उपन्यासकारों ने पात्रों की प्रादेशिक बोलियों का उपयोग किया है। विदेपकर सांघिक उपन्यासों में यह एक अनिवार्य अंग-सा हो गया है। किन्तु इन प्रयोग से जो

१ भाषा कमरेट पृ. २४६-२४७।

२ मिथारिणी पृ. ४६।

३ मिथारिणी पृ. ३२५।

४ निगमा में कथनमय के रूप में पृ. ३२-३६ और मतेन्द्र के विचार पृ. २।

५ देवी मथार्थ से घागे पृ. २८-२९ २६६।

यथार्थ धारण और इनसे संबंधित बात

प्रयोजन होता है उसके सम्मान में भी सोचना आवश्यक है।
 ४११ जैसे प्रादेशिक बोमियों का उपयोग हिन्दी उपन्यास के लिए कोई नयी बात नहीं है। हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में ही यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।
 ४१२ के कई वर्ष पहले लिखित और १८६ में प्रकाशित बाबू रामाकृष्ण दास के 'नित्यहास हिन्दू' में ग्रामीण व्यक्तियों के मुँह से प्रादेशिक बोली का ही व्यवहार किया गया है।

‘सोहनमाल—कहो अब हम मदनमोहन का कहीं धो के कितनी समझाओ कुछ सुनने नाही करता कितना कहा कि तू हमारे साथ बाजार जमा करो अपना काम काम सीको हुई तीन लौदा कराय दिया घाठ दस धाना मिला गया न कोई की लीकरी न बाकरी पर मन्त नाही हम करी सो करी हम तो धोके मारे लय होय पये हाहा ठीठी सेन दूध में दिन बितावना पाय ।’

४१२ इसी तरह भाषा को यथार्थ बनाने के लिए अपनायी गयी ब्रह्मरी प्रवृत्ति मयोजो हाथ हिन्दी में बाधपूर्ण करते समय उनकी हिन्दी में अप्रज्वी उच्चारण का समावेश करता है। ‘कुपुप कुपारी’ में अर्द्धमस्तिष्क की बोली इसका उदाहरण है। इसके बाद भी कई उपन्यासों में यम-रम इन दोनों प्रकार के भाषा-सम्बन्धी विशेष प्रयोग किये गये। किन्तु उनको न सार्वजनिक प्रचार मिला और न वे विशेष सम्मान के पात्र ही हुए। कमजोर इस प्रयोग की उपेक्षा की गयी। प्रेमचन्द ने एक बार स्पष्ट विज्ञा दिया कि महाजनो कमीदारों और किसानों की भाषाओं को पानामुहूर्त बनाने के लिए विभिन्न बोमियों के उपयोग की आवश्यकता नहीं है। भाषा के—साहित्यिक भाषा के—अव्यवहार से ही आवश्यकता अनुसार व्यक्तों को चुनकर और उपयुक्त टीली में बाध्य करना करके अपेक्षित प्रभाव लाया जा सकता है। कुछ छात्रों में बहुत ही असाधारण हेर-फेर करने के अतिरिक्त उन्होंने कभी संपूर्ण संज्ञा को नहीं बनाया। होरी वक्षि कोई ग्रामीण बोली नहीं बोलता तो भी उसे ग्रामीण समझने से कोई बाध नहीं होता। होरी में प्रेमचन्द ने जिस ग्रामीण भाषा की प्रतिष्ठा की है वही ग्रामीण भाषा है। वही भाषा में भी है जैसे ही उसका कसेवर सम्म और पुस्तकीय भाषा हो। वही भाषा का बाह्य रूप भाषा के अतिरिक्त में बाध नहीं बनती। प्रेमचन्द के पश्चात् के अधिकांश लेखकों ने भी पात्रों को यथार्थ बनाने के लिए बासियों की आवश्यकता नहीं समझी।

४१३ किन्तु हास में कुछ उपन्यासों में पात्र और बातवचन के अनुसार बोमियों का उपयोग होने लगा है। उदाहरण के रूप में हम ‘गुनाहों का शिकार’ ‘टेंगे मेड़े रात’ ‘सागर, लहर और मनुष्य’ ‘मैंसा बासिन’ ‘परती परिक्रमा’ आदि को ले सकते हैं। इनमें रेणु के उपन्यासों को छोड़कर अन्य तीनों एक अर्थ में धार्य रेणु के उपन्यास जिसकुल मित्र थे। प्रथम तीनों में कुछ पात्र अपनी-अपनी प्रादेशिक बोली में बोलते हैं पर अन्तिम दोनों में प्रादेशिक बोली का प्रयोग नहीं

हुआ है, पात्रों के कुछ व्यक्तियों के विशेष चरित्रों को ज्यों का त्यों उभारा गया है। 'बुझावों का देवता' में केवल बुझावों और 'देखें मेरे हाते में कबल भगवन्' में धामी-धपनी दोनों में बोलते हैं। अन्य सभी पात्रों के वातावरण ठीक बोलचाल की सही बोली में है। इस तरह केवल एक पात्र के कथन को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने की क्या आवश्यकता है जबकि अन्य पात्रों के संवादों में एक के साहित्यिक स्तर में इसका आते है ? लगता है, लेखकों का उपदेश इन पात्रों के सबसे प्राचीन व्यक्तित्व पर जोर देना ही है। कथा को घाने बढ़ाने के लिए नहीं पात्रों को साकार बनाने के लिए कथोपकथन बढ़ा गया है। बुझावों और भगवन् के बोलने के टोन को उनकी बोलियों में बिना सुझाव से साया या सज्जा है। किताबी भाषा में नहीं। पर अन्य पात्रों का व्यक्तित्व प्राचीन नहीं है। अन्य वातावरण में बिचारनेवाले उन नागरिकों के भाव और रंग-रंग साधारण बोलचाल की भाषा में भी प्रकट किये जा सकते हैं। फिर भी मर्यादावादी कसीटी पर कसने से एक बात कटपटी है। जब अन्य पात्रों के संवादों को ज्यों का त्यों उभारने और उनके व्यक्तित्वों का फोटोग्राफिक प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने की विन्ता लेखक ने नहीं की है, तब एक ही पात्र के व्यक्तित्व की इतनी विन्ता क्यों है ? इस एक पात्र की तुलना में अन्य पात्र कुछ अस्पष्ट-से हो जाते हैं।

४१४ सागर, मधुर और मनुष्य में बोला-सा अन्तर है। उसके परिचित पात्र बरसोबासों के मधुर हैं। यह एक धार्मिक उपन्यास है जिसमें मधुरों के प्राचीन जीवन के विविध घंटे प्रकट किये गये हैं। उनमें हर एक का व्यक्तित्व उनके व्यक्तित्व और सामूहिक व्यवहार आधार-विचार इन सबको प्रकट करने के कारण यह एक 'धार्मिक-उपन्यास' (Novel of Manners) है। लेखक ने रत्ना को छोड़कर सभी प्राचीन पात्रों से मधुरों की बोली में बातचीत करायी है। इसका प्रभाव यह हुआ कि संपूर्ण उपन्यास में एक प्राचीन वातावरण फैल गया है और उस वातावरण में बिचारनेवाले पात्रों की धारणा को समझने में अधिक सुविधा रहती है। यह बोली भी बड़ी-बोली के बहुत निकट होने के कारण अधिक स्पष्ट नहीं है। पर प्रश्न यह है कि इस विवेक बोली से जो भाव और टोन प्रकट हुए हैं, क्या बड़ी-बोली की बोल-चाल की भाषा में नहीं जा सकते ? क्या भाव और व्यक्तित्व वासी पर ही निर्भर रहते हैं ? विशेष तरह की धार्मिक बोली वातावरण को अधिक मरसता से स्पष्ट हो करती है पर हमें यह मानना पड़ेगा कि यह उपन्यास की प्रयत्नायता को बढ़ाकर किसी घंटीर चरित्र की सिद्धि नहीं करती। बोली से अपरिचित पाठक को एक ही उपन्यास में एकाधिक बोलियों के होना से कष्ट होता है। लेखक का रसता भी सुझ नहीं रहता। इसीलिए वह यह कह रहा है कि वह अपने स्वाभाविक जीवन के उच्चतम उपभाग में शामिल रहते हैं, लेखकों को स्वयं प्रत्यक्ष होकर व्याख्या करनी पड़ेगी।

४१५ 'मैत्रा धार्मिक' और 'पत्नी परिकथा' की भाषा इन सबसे अधिक साफ़ है। पर उनकी कलात्मकता और प्रयत्नायता पर भी अधिक स्पष्ट होता है। रसता ने किसी प्रादेशिक बोली का उपयोग नहीं किया है। उनके सभी पात्र साधारण बोली ही बोलते हैं। लेकिन उनके द्वारा विवेक प्रकार से उच्चरित होत हैं। पात्र के

करने की उदात्त प्रवृत्ति के बीच एक संघर्षमय यथा उत्पन्न की है। अपराध-वासना (Crime Instinct) और अपराध-बोध (Crime Conscience) इसके विषय हैं। 'महामूर्ख' में भी आत्मा की दो वधाएँ दिखायी गयी हैं—एक वह जिसमें वह क्रुद्धित से क्रुद्धित नीचता की ओर पतित हो सकता है और दूसरी जिसमें वह अपार उदात्तता प्राप्त कर सकता है। 'धम्मा करेनिता' भी पाप-वासना और पाप-बोध के संघर्ष के रूप के प्रतिरिक्त कुछ नहीं है। 'पुनर्जीवन' में एक ओर पाप और पाप-बोध का संघर्ष दिखाया गया है तो दूसरी ओर आत्मपीड़न से होनेवाले अभिमान का रूप। मनुष्य के हृदय पर युद्ध जो आघात करता है उसे 'युद्ध और शान्ति' स्पष्ट करता है।

इन उपन्यासों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कुछ पाठकों का प्रतिष्ठापन किया गया है। पर वस्तुतः उनके महत्त्व का कारण ये भावार्थ नहीं हैं। सम्भाव्यता की कसीटी पर ये भावार्थ निरर्थक सिद्ध होंगे। पाप और पुण्य के बीच के संघर्ष में पड़ी हुई मानवआत्मा की उद्वेग ही इन उपन्यासों के चिरन्तन मूल्य का कारण है। यह उद्वेग पन इसलिये अधिक मार्मिक हुई है कि उसके द्वारा लेखकों की कुछ स्वानुभूत अनुभूतियाँ ही प्रकट की गई हैं। पात्रों के हृदय-मन्वन में हम लेखकों की हृदय-पीड़ा का भी अनुभव कर सकते हैं। अपनी ही मानसिक बचलता के कारण जीवन में जोर गिरावा का अनुभव करनेवाली गवाछा के प्रति जब पिएर कहता है "मैं जो कुछ हूँ वह न होता मैं सघार में सबसे सुन्दर, सबसे समर्थ, सबसे सम्पन्न होता मैं स्वतन्त्र होता तो तुम्हारे सामने झुटने टेककर तुम्हारे प्रेम की याचना करता।" तो जात होता है कि जीवन की इच्छाएँ और पराधीनताएँ मन में कैसा संघर्ष उत्पन्न करती हैं।

हारिक अनुभूति

४१८ उपर्युक्त सभी उपन्यासों में तथा जेन आस्टिन जिकेन्स जार्ज एलियट, मोर्फी सोमोबोव आदि कलाकारों के उपन्यासों में हमें जीवन पर प्राप्त करनेवाली भी जीवन मिलती है वह लेखकों की हारिक अनुभूति है। इन कलाकारों के लिए जीवन वस्तुतः अध्ययन का विषय नहीं अनुभव और अनुभूति का विषय रहा है। जहाँ-जहाँ लेखक पात्रों से तात्पर्य पाकर उनके पात्रों से अपने भावों को मिला देता है और हृदय की बाणी को उन्मुख करता है वहाँ उपन्यास के सबसे मार्मिक प्रसंग मिलते हैं। जोसा से उपन्यासों में भी ऐसे प्रसंगों की कमी नहीं है। हिन्दी में प्रेमचन्द ही एक कलाकार हुए हैं जिनकी अनुभूति जागरित होकर लेखक को पात्र से मिला सकी है। यह हारिक अनुभूति अध्ययन से नहीं आती बल्कि परम्परासिद्ध संस्कृति तथा वैयक्तिक साधना द्वारा ही आती है। और जब वह आती है थम से नहीं आती सहज रूप में ही आ जाती है। आचार्य विनोबा ने सभी अनुभूति का उदाहरण देते हुए सुन्दर रूप से कहा है "किसी माँ के बारे में ऐसा नहीं मुना कि उसने (बालक की मृत्यु पर) विषाद इसलिये नहीं किया कि उसने किसी कलिय में तालीम नहीं पायी थी और

हुमा है, पात्रों के कुछ दृष्टियों के विशेष उच्चारण को क्यों का क्यों उतारा गया है। 'बुनाहों का देवता मे केवल बुझाबी और 'टेक मेवे रास्ते' में केवल भ्रमरू मित्र अपनी-अपनी बोली में बोलते हैं। ग्रन्थ सभी पात्रों के वातावरण में बोलचाल की बाड़ी बोली में है। इस तरह केवल एक पात्र के कथन को क्यों का क्यों प्रस्तुत करने की क्या आवश्यकता है जबकि ग्रन्थ पात्रों के संभाषण लेखक के साहित्यिक सौख्य से इसकर करते हैं? सत्यता है लेखकों का उपदेश इन पात्रों के सबल ग्रामीण व्यक्तित्व पर और देमा ही है। क्या को धाने बढ़ाने के लिए नहीं पात्रों को साकार बनाने के लिए कथोपकथन गढ़ा गया है। बुझाबी और भ्रमरू मित्र के बोलने के टोन को उनकी बोलियों में बिलकुल सुमेलता से साया बा सकता है, किताबी भाषा में नहीं। पर ग्रन्थ पात्रों का व्यक्तित्व ग्रामीण नहीं है। ग्रन्थ वातावरण में विचारनेवाले उन नागरिकों के भाव और रस-रंग साधारण बोलचाल की भाषा में भी प्रकट किये जा सकते हैं। फिर भी मनार्थवाद की कड़ीटी पर कसने से एक बात खटकती है। जब ग्रन्थ पात्रों के संभाषणों को क्यों का क्यों उतारने और उनके व्यक्तित्वों का फोटोग्राफिक प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने की चिन्ता लेखक ने नहीं की है तब एक ही पात्र के व्यक्तित्व की इतनी चिन्ता क्यों है? इस एक पात्र की तुलना में ग्रन्थ पात्र कुछ कमजोर-से हो जाते हैं।

४१४ 'सागर, लहरे और मनुष्य' में चोड़-सा अन्तर है। उसके अधिकतर पात्र बरहोवा गाँव के मधुर हैं। यह एक धार्मिक उपन्यास है जिसमें मधुरों के ग्रामीण जीवन के विविध घट प्रकट किये गये हैं। उनमें हरणक का व्यक्तित्व उनके व्यक्तित्व और सामूहिक व्यवहार, आचार-विचार इन सबको प्रकट करने के कारण यह एक 'आचार-उपन्यास' (Novel of Manners) है। लेखक ने रस को छोड़कर सभी ग्रामीण पात्रों से मधुरों की बोली में बात चोट करायी है। इसका प्रभाव यह हुआ कि संपूर्ण उपन्यास में एक ग्रामीण वातावरण फैल गया है और उस वातावरण में विचारनेवाले पात्रों की आत्मा को समझने में अधिक सुविधा रहती है। यह बोली भी कड़ीबोली के बहुत निकट होने के कारण अधिक स्पष्ट नहीं है। पर प्रश्न यह है कि इस विशेष बोली से जो भाव और टोन प्रकट हुए हैं, क्या कड़ीबोली की बोलचाल की भाषा में नहीं जा सकते? क्या भाव और व्यक्तित्व बोली पर ही निर्भर करते हैं? विशेष तरह की धार्मिक बोली वातावरण को अधिक नरमता से स्पष्ट हो करती है पर हमें यह मानना पड़ेगा कि यह उपन्यास की प्रणालिका को बनाकर किसी मंदीर उद्धार की धिड़ नहीं करती। बोली से अपरिचित पाठक को एक ही उपन्यास में एकाधिक दृष्टियों के होने से कष्ट होता है, लेखक का रास्ता भी लुप्त नहीं रहता। इसीलिए जगह जगह पर वही पात्र अपने स्वाभाविक जीवन-व्यवहार उपमाय में चलती-चलती हैं, लेखकों को स्वयं प्रत्यक्ष होकर व्याख्या करनी पड़ी है।

४१५ 'मेला धौल और पशुती परिकथा' की भाषा इन सबसे अधिक साक्षर है पर उसको कलात्मकता और प्रणालिका पर भी अधिक सन्देह होता है। रेलु ने किसी प्रादेशिक बोली का उपयोग नहीं किया है उनके सभी पात्र साधारण बोली ही बोलते हैं, लेकिन उनके ग्रन्थ विशेष प्रकार से उच्चारित होते हैं। पात्र के

संभाषण में ही नहीं लेखक के वर्णन में भी शब्दों के ऐसे प्रचलित प्रामीशु शब्दों का प्रयोग किया गया है। पर कोई वाक्य सम्पूर्ण रूप से प्रामीशु नहीं बनाया गया है। रेणु ने साधारण लड़ीबोली के बोसबास और सेसन के रूप में ही बीच-बीच में हिन्दी लड़ीबोली शब्दों के प्रामीशु रूपों को बिठाकर एक विशेष तरह का जमल्कार उत्पन्न किया है। इसे कसा का कोई उत्कृष्ट मयूना नहीं कहा जा सकता। निस्सन्देह इस लिचड़ी भाषा से प्रामीशु भाषाधरण धीर प्रामीशु पार्श्वों के बाह्य स्वरूप का यथार्थ रूप प्रकट होता है। इसमें भी सन्देह नहीं है कि इस भाषा से शब्दार्थ से भी परे कुछ व्यक्तित्व होता है। क्योंकि ये विशेष शब्द केवल कुछ भाग को नहीं प्रकट करते बोलनेवालों के सांस्कृतिक और सामाजिक स्तर को भी व्यक्त करते हैं। उन्ही शब्दों के स्थान पर लड़ीबोली के साधारण शब्दों को रख दें तो सात जमल्कार नष्ट हो जायगा। 'मेला घांचल' में— 'रीतहट टीसन में जो होमापोबी बागडर के (पृ ४३) 'सीढ़ी में ही लगी हुई बोस कडी में 'जलमुनिया' का कठोर बैठ दिया है' (पृ ४४) 'पावकल डाक्टर सोय 'पत्थल' का नकसी बाँध गया बैठे हैं' (पृ ४५) 'बासदेवजी घाबकल 'जाय हिल' कहते हैं' (पृ ४६) 'ये सोय' इस्कुलिया है' (पृ ४६) 'कभी ताल का 'रिहर्स' करना है।' (पृ ७७) 'पुरु ने छिमा' कर दिया' (पृ ७७) ऐसे सँकड़ों सहावरण मिलते हैं। 'परती परिकमा' में घाम में प्रचलित धरेबी शब्दों पर भी ध्यान दिया गया है। उनाबा के बाद उसबीक। उसबीक करने के लिए कानूनगो से क्या पावरवाले हाकिम साहब आए हैं 'हर नया हाकिम नया ऐलान करता है— बाउष्ठी उनाबा हम नहीं जाने (पृ २६१)।

४३६ स्पष्ट है कि यहाँ जो आकर्षण है, वह भाग में नहीं शब्दों के रूप में है—बल्कि रूप में भी नहीं साधारणतया अनमृत शब्द-बीच में है। इसमें सन्देह नहीं कि रेणु ने पार्श्वों को यथार्थ बनाने के लिए प्रथम कई व्यापारों का भी उपयोग किया है। धीर उच्चारण-सम्बन्धी यह विशेषता उनकी प्रकृति है। किन्तु इससे जो जमल्कार आता है वह बहुत ही कम है। धीर आर्योमु-मुग की हिन्दी-अपभ्रंशमिश्रित हास्य कविताओं से अधिक उन्नत श्रेणी का नहीं है। कोई स्त्री या पुरुष साड़ी और कोट पहने तो उसमें एक विशेष कृत्रिम जमल्कार रहेगा जिसका कारण प्रसाधारणता ही है। रेणु की भाषा में जो ऐसा ही जमल्कार है। शब्दों के ध्वन्यनुकरण-मात्र में इन उपधाओं का प्रस्तावन नहीं किया जा सकेगा। ये उपस्थास भाषा-सम्बन्धी इस विशेषता के कारण उन्ही शीर्षों को प्रति प्रिय होगा जो उसमें बहिर्य प्राथमिक जीवन का उनके पार्श्वों और परिस्थितियों का प्रत्यक्ष ज्ञान रखते हों। अपनी प्राथमिक सीमा के बाहर धीर उसमें प्रतिपादित जीवन से अनभिज्ञ लोगों के बीच में उसकी कसा उतनी प्रस्ताव नहीं रहेगी। यथार्थ इसमें है पर यह यथार्थ सीमित क्षेत्र का है। भाषा धीर बोली के भी परे भाषा-सत्ता का जो यथार्थ है, वही विश्व-कलाकारों को उत्कृष्ट कृतियों का निदान है। ऐसा महत्त्व रेणु के उपस्थासों को मिलेगा यह बहुत ही सन्दिग्ध है। पर इसका निषेध हम नहीं करते कि इनकी यह भाषा अपने प्राथमिक के जीवन का वास्तविक रूप व्यक्त करने में सहायक है—धीर बहुत सहायक है।

आठवाँ अध्याय उपसंहार मूल्यांकन

१

स्थायी मूल्य के सत्य

यूरोप के वो उपन्यासकार जिस-साहित्यकार के पद पर प्रतिष्ठित हो चुके हैं उनकी संकल्प रचनाओं में कुछ विशेष गुण मिलेंगे वो उन कृतियों को साबसीकृत सम्मान से प्राप्त बनाते हैं। यद्यपि किसी मने-तुमने सिद्धांत के आधार पर किसी उपन्यास की उत्कृष्टता का कारण बताया नहीं जा सकता है, तथापि सामान्य रूप में कुछ गुणों का उल्लेख किया जा सकता है जिनमें एक या दोहों के होने से रचना श्रेष्ठ बनती ही है। हम अब देखें कि विश्व के श्रेष्ठ उपन्यासों के मुख्य गुण क्या हैं ?

मानव-जीवन के महाभाष्य

४१७ विक्टर ह्यूगो का 'मिडराइल' वास्तविकता के 'अपराध और दण्ड' और 'महामुर्ख' वास्तविकता के 'अंधा करेजिना' 'पुनर्जीवन' (रिसरन्सन) और 'युद्ध और शांति' आदि उपन्यास मानव-जीवन के महाभाष्य माने जा सकते हैं। इनमें स्वानुभूतिपूर्ण वास्तविक दृष्टान्त के द्वारा जीवन का बिबलेपण किया गया है। इनसे अधिक विस्तृत क्षेत्रों की व्याख्या करनेवाले और इनसे अधिक घणाक्षर तथा कलात्मक उपन्यास कहीं मिलते हैं। पर उपर्युक्त उपन्यासों की विशेषता इस बात में है कि उनमें मानव की मानवता का बिबलेपण किया गया है। जालों बपों के निरन्तर विकास के परिणामस्वरूप वर्तमान समय तथा तक पहुँचते हुए मनुष्य में जो उदात्तता और जो वासविकता भाव भी काम कर रही है उसमें निश्चित ही असीम शक्तियाँ हैं। इन विरोधी शक्तियों का संघर्ष ही मनुष्य के विकास की मुख्य प्रेरणा है। वासविकता से मनुष्यता की ओर प्रमाण करनेवाले मनुष्य के इस विकास को भले ही धारमवादी व्यक्तित्व आध्यात्मिक साधना मार्ग और नीतिकवादा सामाजिक नीतित्ववियों से समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न सम्पूर्ण पर इस बात का निष्पत्ति नहीं किया जा सकता है कि व्यक्ति तथा समाज में इन दोनों प्रकारों की शक्तियाँ तथा काम करती पायी हैं और उन्हींके परिणामस्वरूप मानव-जाति के नैतिक नियम सामाजिक समन्वयता राष्ट्रीय संगठन आदि का विकास हुआ है। उपर्युक्त उदाहरणों में इन शक्तियों के पारस्परिक संघर्ष का रूप दिखाया गया है। 'मिडराइल' में जेल कोर्ट के मध्य से प्रतिष्ठित आलोचक की ओर जानेवाला जी-जप-जी मनुष्य के व्यष्टि से समष्टि की ओर विकास का चित्रण करता है। वास्तविकता में 'अपराध और दण्ड' में मनुष्य की अपराध करने की वासविक वासविक और उग अपराध के सम्मुख में संघर्ष-विचार

करने की उदात्त प्रवृत्ति के बीच एक संघर्षमय दशा उत्पन्न की है। अपराध-वासना (Crime Instinct) और अपराध-बोध (Crime Conscience) इसके विषय हैं। 'महामूर्ख' में भी धारणा की दो दशाएँ दिखायी गयी हैं—एक वह जिसमें वह क्रुशित से क्रुशित नीचता की ओर पतित हो सकता है और दूसरी जिसमें वह अपरा उदात्तता प्राप्त कर सकता है। 'धम्मा करेनिता' भी पाप-वासना और पाप-बोध के संघर्ष के कण्ठ के प्रतिरिक्त कुछ नहीं है। 'पुनर्जीवन' में एक घोर पाप और पाप-बोध का संघर्ष दिखाया गया है जो दूसरी घोर आत्मपीड़न से होनेवाले अभिमान का रूप। मनुष्य के हृदय पर कुछ जो छायात करता है उसे 'युद्ध और शान्ति' स्पष्ट करता है।

इन उपन्यासों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कुछ पात्रों का प्रतिष्ठापन किया गया है। पर बल्लुत उनके महत्त्व का कारण ये पात्र नहीं हैं। पाप और पुण्य के बीच के संघर्ष में पवी कसौटी पर ये पात्रों निरर्थक सिद्ध होँगे। पाप और पुण्य के बीच का कारण है। यह एक हुई मानवात्मा की तत्पन ही इन उपन्यासों के चिरम्भन मूल्य का कारण है। यह एक पन इसलिए शक्ति मानिक हुई है कि उसके द्वारा नैतिकों की कुछ स्वामुक्त अनु-भूतियाँ ही प्रकट की गई हैं। पात्रों के हृदय-मन्थन में हम लेखकों की हृदय-पीड़ा का भी अनुभव कर सकते हैं। अपनी ही मानसिक बंधनता के कारण जीवन में जो निराशा का अनुभव करनेवाली नताशा के प्रति जब फिर कहता है 'मैं जो कुछ हूँ वह न होता' मैं सत्ता में सबसे सुन्दर, सबसे समर्थ सबसे सम्पन्न होता मैं स्वतन्त्र होता तो पुनः हमने खुदने टुकड़ों प्रेम की याचना करता।¹ तो बात होता है कि जीवन की इच्छा और पराधीनताएँ मन में कैसे संघर्ष उत्पन्न करती हैं।

हादिक अनुभूति

४१८ उपर्युक्त सभी उपन्यासों में तथा जेन आस्टिन बिकेन्स जार्ज एलियट मोर्फी जोसोबोव भावि कलाकारों के उपन्यासों में हमें जीवन पर प्राप्त करनेवाली की बीच मिलती है वह लेखकों की हादिक अनुभूति है। इन कलाकारों के लिए जीवन बल्लुत अध्ययन का विषय नहीं अनुभव और अनुभूति का विषय रहा है। जहाँ-जहाँ नैतिक पात्रों से तादात्म्य पाकर उनके भावों से अपने भावों को मिला होता है और हृदय की बाणी को समुक्त करता है जहाँ उपन्यास के सबसे मानिक प्रसंग मिलते हैं। बोला के उपन्यासों में भी ऐसे प्रसंगों की कमी नहीं है। हिन्दी में प्रेमचन्द ही एक कलाकार हुए हैं जिनकी अनुभूति जागरित होकर लेखक को पात्र से मिला सकी है। यह हादिक अनुभूति अध्ययन से नहीं जाती बल्कि परम्परासिद्ध संस्कृति तथा वैयक्तिक साधना द्वारा ही जाती है। और जब वह जाती है तब से नहीं जाती तब तक रूप में ही या जाती है। आचार्य विनोबा ने सभी अनुभूति का उदाहरण देते हुए सुन्दर वंश से कहा है 'किसी को के बारे में ऐसा नहीं सुना कि उसने (बालक की मृत्यु पर) बिनाप इसलिए नहीं किया कि उसने किसी कर्म में तत्सीम नहीं पायी थी'।

बच्चा बिना बिनाप के जन्मा गया।^१ बच्चे के प्रति माता का जो भाव है वह पार्श्वों के प्रति लेखक में या बाय तो पार्श्वों की अनुभूति लेखक की भी अनुभूति बन जाती है। और इसीसे उपन्यास उत्पन्न बनता है। यह अनुभूति मानवता के प्रति विद्यालय सहानुभूति का कारण बन जाती है। अतः समस्त मानवता के सुख-दुःखों से प्रभावित होकर लेखक लिखता है। ऐसी सहानुभूतिपूर्ण रचना निश्चित ही हृदय के ठरम विकारों को उरगित करती है।

सामाजिक इतिहास

४१६ उपन्यास के स्थायी मूल्य का धीरे एक कारण उसमें समाविष्ट यथार्थ सामाजिक जीवन का इतिहास होता है। किसी विशेष समय के धीरे किसी विशेष समाज के सामान्य स्वभावों को रेखाचित्र करनेवाले उपन्यास सामाजिकता की दृष्टि में महान हो जाते हैं। तुर्नर मास्टरवर्क प्रुस्त धारि के उपन्यास उत्कृष्टतम समाज के यथार्थ अध्ययन के रूप में महत्त्वपूर्ण हैं। इन उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाओं का विशेष स्थान न होने पर भी ये इतिहास से अधिक सामाजिक परिवर्तनों का विश्लेषण करते हैं क्योंकि इनमें समाज की आन्तरिक सत्ता का इतिहास निहित रहता है। टॉल्स्टाय के 'युद्ध और शांति' तथा घोमोसोव के उपन्यासों में महान ऐतिहासिक घटनाओं का भी समावेश किया गया है। इन आस्तविक घटनाओं में जब सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन भी सम्मिश्रित हो जाते हैं तब उपन्यास की श्रेष्ठ-विस्तृति अधिक बढ़ जाती है और उसमें जीवन का अध्ययन सर्वांगीण हो जाता है।

जीवन की स्पष्टता और सजीवता

४२० उपन्यासकार अपनी इच्छानुसार जीवन के छोटे या बड़े घंटा को न सकता है किन्तु जिस विषय को वह लेता है उसे पूर्णतया स्पष्ट और सजीव बनाना आवश्यक है। स्थायी मूल्य के किसी भी उपन्यास को ले तो स्पष्ट होना कि उसमें जीवन निर्बाध रेखाओं द्वारा चित्रित नहीं किया गया है बल्कि सजीव रूप में व्यञ्जित किया गया है। सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित तर्क-आलोचनों से भरे हुए उपन्यासों में तथा आधुनिक विश्लेषणात्मक उपन्यासों में प्रायः इन सजीवता की कमी रहती है और इन कारण उनकी मार्मिकता में भी कमी का अनुभव होता है।

हृदय का चरित्र-चित्र

४२१ अगर जिसकी बातें बतायी गयी हैं उनके आस्तविक आधार का ध्यानपूर्वक करें तो हमें ज्ञात होगा सभी उत्कृष्ट रचनाओं की समुची श्रेष्ठ प्रकृतियाँ लेखक के हृदय से निकलती हैं। जैसे जिसकी जिसकीतर से निकलकर तारों द्वारा विभिन्न दिशाओं की ओर प्रमाण कर एक विद्यालय क्षेत्र में प्रकाश फैलाती है उभी

उत्तम लेखक के हृदय के चकित-वैग्रह से निकलनेवासी अपार शक्ति ही उपन्यास के पात्रों में बटनाघों में घोर प्रत्येक दाय्य में प्राण-उत्सार करती है। किसी उत्कृष्ट रचना की सृष्टि में कम मनोव्यक्ति का व्यय नहीं करना पड़ता। किन्तु इसका धर्म यह नहीं है कि उत्कृष्ट रचनाएं कठिन परिश्रम से सिखी जाती हैं। लेखक के हृदय में ही ऐसी अपार शक्ति होती है जो स्वतःस्पूरत बहिष्कुरण द्वारा रचनाघों को प्राणमय सजीव बना देती है।

२

हिन्दी उपन्यास की उपसम्भियों और सीमाएं

अगर जिन व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है उनके आधार पर हिन्दी उपन्यास की उपसम्भियों का विश्लेषण कर तो हमें ज्ञात होगा कि हमारा साहित्य कहां पड़ा हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि विश्व-साहित्य के सामने हमारी उपसम्भियां अल्प-मात्र हैं किन्तु हम सन् १९२२ से अब तक के अल्पकाल के हिन्दी उपन्यास के विकास पर दृष्टि डालें तो बड़ा ही आश्चर्य होगा। इन बातों को ध्यान में रखते हुए ही हमें हिन्दी उपन्यास की उपसम्भियों तथा सीमाओं का निर्णय करना पड़ेगा। सामान्य रूप में कहा जाय तो कहीं उपन्यास जीवन के सत्यों और यथार्थों के अधिक निकट है। वह साधारण मनुष्य की साधारण प्रवृत्तियों को प्रकट करता है पर कभी-कभी उसका प्रभाव असामान्य है। फ्रेंच उपन्यास विज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से संसार के सभी उपन्यासों से उत्कृष्ट है। विषय तथा मनोविकाओं का क्रमिक और प्रभावशाली विकास करने में फ्रेंच कलाकारों को जो सफलता मिली है अन्य किसी जाति के उपन्यासकारों को प्राप्त नहीं हुई है। अंग्रेजी उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता उसका वैविध्य है। विषय और विज्ञान-विज्ञान का जो वैविध्य अंग्रेजी उपन्यास साहित्य में मिलता है वह कुछ विशिष्ट पाठकों का ही विकास करनेवाले फ्रेंच तथा कहीं उपन्यासों में नहीं मिलता। हिन्दी उपन्यास में ये सभी विशेषताएं थोड़ी-बहुत मिलती हैं लेकिन विशेष रूप में उत्तेजनीय विशेषता कोई भी नहीं है।

विषय की सीमा

४२२ विषय की दृष्टि से देखा जाय तो हमें मुख्यतया तीन प्रकार के उपन्यास प्राप्त हुए हैं—सामाजिक, वैयक्तिक और ऐतिहासिक। सामाजिक सामाजिक उपन्यास कुछ समस्याओं के सम्बन्ध में ही लिखे गये हैं और आदर्शवादी यथार्थवादी उपन्यासों में उन समस्याओं को सुलझाने का भी प्रयत्न किया गया है। वैयक्तिक उपन्यास प्रायः काय-समुक्ति से जनित बुद्धि से पीड़ित व्यक्तियों का मनोविवरण करनेवाले हैं।

जैन धार्मिक के उपन्यासों में समान पर की बहारी-बारी के प्रत्येक के जीवन को पूज्यता में प्रकट करनेवाले पारिवारिक (Domestic) उपन्यास शास्त्रज्ञों और जो

के उपन्यासों के समान बच्च-परम्परा का इतिहास प्रस्तुत करनेवाले बच्च-इतिहास के उपन्यास (Family Chronicle) 'मदाम बोवारी' 'मानन लस्टा' 'घासस मार्लर' आदि के समान किसी विशेष प्रकार के व्यक्तित्व से युक्त व्यक्ति के जीवन की विवेचना करनेवाले चरित्र-उपन्यास (Character Novel) 'पाप और इष्' 'म मिश्रतुम्ह' 'अन्ना करेनिना' आदि के समान हृदय के सच्यों को मार्मिक ढंग से चित्रित करनेवाले दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'युद्ध और शान्ति' 'दोन उपन्यास' आदि के समान किसी महान ऐतिहासिक घटना का इतिहास प्रस्तुत करनेवाले ऐतिहासिक-सामाजिक उपन्यास 'दुर्गन्ध के पिता और पुत्र' और 'वनचारा' के 'धौम्मसो' के समान पीढ़ियों के परिवर्तन से परिचित मनोव्यासों की व्यक्त करनेवाले उपन्यास 'केस' के उपन्यासों के समान वैज्ञानिक रोमान्स आदि हमें प्राप्त नहीं हुए हैं। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में अधिकांश ऐतिहासिक रोमान्स हैं। केवल 'वृन्दावनवास' बर्मा के 'भासी की रानी' में रोमान्स और इतिहास के भाग भ्रमण किये जा सकते हैं। इतिहास के भाग में यथार्थ अधिक है।

विषय-विकास की सीमा

४२३ जैसे तीसरे अध्याय में दिखाया गया है हिन्दी के अधिकांश उपन्यास विचरण शैली में ही लिखे गये हैं। पूर्णतया हृदय-विज्ञान-शैली में लिखित उपन्यासों का एकदम अभाव है किन्तु विचरण-शैली के उपन्यासों में यथ-संग हृदयों का भी उपयोग किया गया है। पनोरमिक तथा चरित्रोपम उपन्यास का भी विकास हिन्दी में नहीं हुआ है। प्रथम के उदाहरण के रूप में 'योदान' 'मैला घाँसल' 'पछी परिकषा' आदि दो-तीन उपन्यासों का तथा दूसरे के उदाहरण के रूप में केवल 'खेपार एक बीचनी' का उल्लेख किया जा सकता है। केवला प्रवाह-उपन्यास हिन्दी में एक भी नहीं लिखा गया है।

प्रादुर्भाव की सीमा

४२४ अस्माभ्य आदर्शों की कल्पना सभी भाषाओं के उपन्यासों में किसी न किसी तरह होती रही है। अथवा फेंच और क्सी के प्रारम्भिक उपन्यासों में बोझा बहुत प्रादुर्भाव मिलता है। तात्सत्य की उत्कृष्ट रचनाओं में भी कुछ आदर्शों का प्रतिष्ठापन किया गया है। लेकिन बौद्धिक विकास के साथ-साथ आदर्शवाद का पतन होता गया है और फेंच तथा अंग्रेजी में वह मुक्त-सा हो गया है। हिन्दी उपन्यासों में जो आदर्श मिलते हैं उनमें भी बहुत-से आदर्शात्म्य हैं। ऐसे आदर्श हमारे उत्कृष्ट लेखकों के मनीषित उपन्यासों तक में मिलते हैं जैसे हलाचन्द्र जोशी के 'जहाज का पंखी' आदि में। क्सी के समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों में वैज्ञानिक आधार पर अभिव्यक्ति जो आदर्शवाद मिलता है वह भी हिन्दी उपन्यासों में अप्राप्य है। किन्तु रेणु के उपन्यासों से संश्लेष मिलता है कि हिन्दी में भी ऐसे समाज-निर्माण-उपन्यासी आदर्श प्रस्तुत करने की क्षमता विकसित हो रही है।

यथार्थवाद की सीमा

४२५ यथार्थवाद के क्षेत्र में हिन्दी उपन्यास को अभी बहुत कुछ करने को पड़ा है। यद्यपि हमारे उपन्यासों में विस्फेपण की परिपाटी अपना भी है तथापि उनके व्यक्ति और समाज के वैज्ञानिक अध्ययन में अधिक सीप्य नहीं पा सका है। इस कारणों की तथा हिन्दी उपन्यासकारों के यथार्थवाद के स्वरूप की विस्तृत चर्चा की जा चुकी है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होया कि यथार्थ की उत्कृष्टतम भूमि तक हमारे कलाकार नहीं पहुँच सके हैं। हमारे सामाजिक उपन्यासों से सम्बन्धित तर्क-वितर्कों से तथा कात्पनिक भावनों से यथार्थवाद को धाँवात पहुँचा है तो व्यक्तिवादी उपन्यासों में अतीतिक रोमांटिक कल्पना तथा दार्शनिक चिन्तन से। मनीषित सामाजिक यथार्थवादी नायार्थन धीरे-धीरे एक कात्पनिक भावनों से पूर्णतया मुक्त नहीं हैं। व्यक्तिवादियों में जोसीबी के उपन्यास असाधारण बटनाओं से लदे हैं, तो जेनेत्र के उपन्यास भावुकतापूर्ण दार्शनिक चिन्तन से। इन दोनों प्रकार के उपन्यासों में व्यक्तिगत विशेषताओं की बाँधीयों का सूक्ष्म अध्ययन नहीं मिलता। अगर जीवन केवल विकार और आवेग है तो हमारे अधिकांश उपन्यासों को कलात्मक कहा जा सकता है। पर अगर उसमें विचार, चिन्तन और नीतिकता का भी स्थान है तो हमें मानना पड़ेगा कि हमारे बहुत-से उपन्यास दुर्बल हैं। याद भी अधिकांश हिन्दी उपन्यासकारों का ध्येय पाठकों को बहकित करनेवाली रोचक सामग्री प्रस्तुत करने का और कभी-कभी उनके पक्ष-विमोहित पक्षों को ठीक रास्ते पर लाने का रहता है। इस प्रयत्न में उपन्यास बटनाओं की अधिकता से भावे जाते हैं और बटनाएँ भी ऐसी होती हैं जो जीवन के किसी पहलू की व्याख्या करने के बलसे पाठक को एक आश्चर्यमय भ्रम भ्रमण की विस्तृति में डाल देती हैं। अत्यधिक यथार्थ जीवन उपस्थित करनेवाले उपन्यास भी इस तरह की कल्पना से पूर्णतया मुक्त नहीं हो सकते। उदाहरण के लिए बिहार के ग्रामीण गाँववासी का प्रतिबिम्ब उतारते हुए 'परती परिक्रमा' में जितन परती का ट्रैक्टर से ओतकर गुलाब की बेटी करने की सोचता है। वह उपन्यास और सब प्रकार से भल ही उत्कृष्ट हो जितन की यह विधि मूर्ख सचमुच कुछ बटकती है। जो इस पाठकता के विरुद्ध बाध से उन्मुक्त होकर सद्यः प्राप्त स्वतंत्रता के गाँववासी में अपनी छत-छत सत्यवाचों को सुनघटने का प्रयत्न कर रहा है उसमें ट्रैक्टर से परतियों को ओतकर गुलाब की बेटी करने की चिन्ता हो बाध तो उसकी यह मूर्ख निश्चित ही भावुक हृदय की सनक-माज समझी जायगी। यही यथार्थ कल्पना प्रकट करती है कि सैलक ठोस परती पर नहीं लड़ा है बल्कि यथार्थ की बरती और कल्पना के गगन के बीच में इधर-उधर बटकता रहता है—कभी बरती की ओर, कभी गगन की ओर। विस्फेपणवादी उपन्यासों में भी मनोविज्ञान या दर्शन के बहाने ऐसी कल्पना का उपयोग किया गया है। इन सबसे जो बात प्रकट होती है वह यही है कि हमारे सैलक यथार्थ के पक्ष से कुछ दूर तो बढ़ जाये हैं किन्तु उन्हें धीरे भी बहुत बढ़ना है।

भारतविश्वास का अभाव

४२६ हमारे उपन्यासकारों ने सर्वत्र अपने विषय की सीधी व्याख्या करने का जो प्रयत्न किया है उससे हम इस अनुमान पर पहुँच सकते हैं कि या तो उन्हें पाठकों की समझने की शक्ति पर भरोसा नहीं है या फिर अपनी ही कला पर विश्वास नहीं है। कुछ इने-दिने उपन्यासों को छोड़कर सभी सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को लेकर लम्बे-लम्बे भाषणों और तर्कों का विधान किया गया है, तो बिस्मेषणवादी उपन्यासों में मन की उलझनों तथा धारणा की समस्याओं की लम्बी चर्चाएं छोड़ी गयी हैं। वहाँ पात्रों को पाठक के सामने उपस्थित करने के बाद भी लेखक को अपने विचारों को प्रकट करने के लिए सीधे पाठक से बोलना पड़ता है वहाँ निश्चित ही कला की दुर्बलता प्रकट होती है। पात्रों को सामने उपस्थित कर स्वयं मयनिका क पीछे धमत्त हो जाना लेखक के रचनात्मक चौकस के लिए आवश्यक है। अगर लेखक को अपनी सर्व-शक्ति पर विश्वास हो तो वह अपने पात्रों पर विश्वास करेगा और उनके संचार को हमारे सामने रखकर हमारे सामने से हट जायगा। लेकिन इतना भारतविश्वास हमारे बहुत कम लेखकों में है। 'टैडे मेडे टस्टे' 'यथार्थ से घाबरे' 'मैला घाबरा' 'परती परिकथा' आदि कुछ इने-दिने उपन्यास ही हैं जिनमें लेखक सीधे सामने धाकर नहीं बोलते या पात्रों के व्यवहारों पर टीका टिप्पणी नहीं करते।

३

विश्व-उपन्यास की कुण्ठित बशा

४२७ पादचार्य उपन्यासों के सम्बन्ध में श्री धब यह चिकाघट होने लगी है उनके अन्त और हृदिकोण अत्यन्त संकुचित हो गये हैं। अतः उनमें जीवन को प्रेरणा देनेवाला कोई तात्त्विक वर्णन नहीं रहा। यूरोपीय भाषाओं के उपन्यास साहित्यों की भीतिकवासी तथा अन्तर्बन्धनवादी धाराओं के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होगी। जू यो जॉन एसिएट, मॉर्टिमर वास्तायबस्की तात्सत्ताव आदि लेखकों ने जीवन को जैसे पूर्ण रूप में देखा था और उससे भारतीयता का अनुभव किया था वैसे धब के पादचार्य उपन्यासकार नहीं कर पाते। इसका कारण यही है कि जीवन के प्रतिमात्रों के सम्बन्ध में कोई निश्चित मुद्दा भारणा न होने के कारण धब के लेखक एक धम्मर्वास्पत मनोरथा में उलझे हुए हैं।

धब तक जीवन के सम्बन्ध में जो दार्शनिक सिद्धांत बनाये गये थे वे सब निर्मूल और निरर्थक सिद्ध होने लगे हैं। धारणा और विश्वास पर आधारित मान्यताओं को बुद्धि और धर्मविश्वास से बहा दिया है। इस तरह जीवन के धब तक स्थापित मुख्य निरर्थक सिद्ध हुए हैं। किन्तु उनके बहने में नये मुख्य स्थापित करने की शक्ति नहीं बौद्धिकता में नहीं रही। धबका इस बौद्धिकता ने पुराने मूल्यों को बदलते देखकर नये मुख्य स्थापित करने की आवश्यकता ही नहीं समझी। जो भी हो,

इस समय संसार के चिन्तन-क्षेत्र में इस तरह की जो कुष्ठित दशा घा तपी है उस का प्रभाव उपन्यास-साहित्य पर भी पड़ा है। प्रायः उपन्यास में कोई वास्तविक वर्णन नहीं होता उसका सबसे बड़ा वर्धन सामान्य बुद्धि (Common Sense) ही होता है, यद्यपि उसीके धातन में उपन्यास पल रहा है।

उपन्यास में इस प्रकार की दशा उत्पन्न करने में जो विचारबाराए प्रेरक हुईं और जिनके कारण प्रायः यूरोपीय उपन्यास दो विभागों में विभक्त हुआ है वे मनोविज्ञान और मार्क्सवाद है। इन दोनों ने उपन्यास को कई उत्कृष्ट गुणों से भूषित किया है जो उसे कुछ हानि भी पहुँचायी है।

मनोविज्ञान का प्रभाव

४२८ हम स्पष्ट कर चुके हैं कि मनुष्य को अधिकाधिक विस्मृत करके समझने का प्रयत्न में ही उपन्यास में मनोविज्ञान का प्रतिष्ठापन हुआ। प्राथमिक पाश्चात्य उपन्यासकारों ने मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्ति की मन की प्रत्येक दशा और भाव का तथा उत्पत्ति हुई मानसिक प्रक्रियाओं का सूक्ष्म व सूक्ष्म अध्ययन किया है। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य के व्यवहारों के सम्बन्ध में अब तक अज्ञात कई सत्य खुला पड़े हैं। किन्तु मनुष्य की प्रवृत्तियों को समझने के इन प्रयत्न ने हमें मनुष्य को उसकी पूर्णता में समझने में असमर्थ कर दिया है। जैसे एक विद्वान् चित्र के विवरण यशों को प्रसंग प्रसंग देखने से उस चित्र का रूप हमारे सामने नहीं आता उसी प्रकार मनुष्य को विद्वान्-मिश्र करके समझने का प्रयत्न करने पर उसकी पूर्णता हमारी दृष्टि में नहीं आती। यही कारण है कि वास्तविकता प्रायः के पात्रों में हम को सीन्दूर्य देखते हैं वह प्राथमिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के पात्रों में नहीं देखते। विशेषणकारी उपन्यासों के पात्रों से हार्दिक वास्तव्य प्राप्त करना भी असम्भव साध हुआ है।

मार्क्सवाद

४२९ दूसरी ओर मार्क्सवाद से प्रभावित विचारधाराओं ने मनुष्य के आन्तरिक जगत् की अवहेलना करके उसकी समस्त प्रवृत्तियों की प्रेरणाओं को सामाजिक सम्बन्धों में ढूँढ़न लगा है। धारम्भ से ही इसी उपन्यास का ध्येय किसी न किसी प्रकार की सिरा प्रचार, या नीत्यात्मिक विवेचन रहा है। प्रभावार्थवाद ने लेखकों को व्यक्ति या समाज के बिस्मरण को ओर सम्मुख न करके ओर किसी प्रकार के प्रगाढ़ चिन्तन का प्रेरणा न देकर, सामाजिक स्थितियों तथा साधारण व्यक्तिगत विषयवस्तुओं को प्रतिबिम्बित करन-भाज की प्रेरणा दी है। नीतिकवाद से प्रभावित समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों का विशेष गुण उनका धारण मुख्य है। अल्प किसी भी धारा के उपन्यासों में उत्काक्षीय वैधीय स्थितियों को उसके व्यवसाय विज्ञान ध्यापार, धिरा धादि में होनवाली प्रगतियों को इसी सफ़लता से नहीं दिखाया गया है जितनी सफ़लता से समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों में।

इस पिछले मुख्य और प्रचार से कुछ होने पर भी इसी उपन्यास समुचित

सीमाओं के अन्दर बन्द हो गया है। कुछ विशिष्ट भावों कुछ विशिष्ट सिद्धान्तों और अभिव्यक्ति की कुछ विशिष्ट प्रणालियों को ही स्वीकृत करके उपन्यास में समाख्य प्रसीम वैविध्य को समाप्त कर दिया गया है। अतः भाव के सोवियत उपन्यास सभी एक ही भाव से मुक्त और एक ही राशि पर बने जात होते हैं।

व्यक्तित्व और अनुभूति का अभाव

४३० उक्त दोनों प्रकार के उपन्यासों में अध्ययन अधिक रहता है अनुभूति कम। बुद्धिपथ बड़ा रहता है। हृदयपथ धिबिध। (यहाँ हम इस बात को नहीं भूलते कि ऐसे उपन्यासों में हार्दिक अनुभूतिपूर्ण घण्टित प्रसंग मिलते हैं। यहाँ हमारा धारणा यही है कि इनमें तात्सल्य या हृदय की भाँति हृदय के विकारों का क्रमिक विकास करके उनको परम सीमा तक नहीं पहुँचाया गया है।) सामाजिक और समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों में आनन्दिक संघर्ष का अभाव भी रहता है। विरोधवादी उपन्यासों में यद्यपि संघर्ष का स्थान रहता है तथापि वह बहुत सांकेतिक और बौद्धिक होने के कारण हृदय को प्रभावित नहीं करता।

प्राकृतिक उपन्यासों में लेखकों के व्यक्तित्वों का विशेष स्थान नहीं रहता। वैज्ञानिक अध्ययन में अध्येता का व्यक्तित्व अनपेक्षित है। अतः सत्त्वों और तत्त्वों पर ध्यान देनेवाले प्राकृतिक व्यक्तिवादी और समाजवादी उपन्यासों में सत्त्वों का व्यक्तित्व अत्यन्त धीन रहता है। उपन्यास में लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव आवश्यक है या नहीं इसके सम्बन्ध में हम अधिक विवेचना नहीं करते। पर अध्ययन के आधार पर हमारा जो कह सकते हैं कि विषय के सभी सर्वप्रसूत तत्त्वों में लेखकों की आत्मा ही झलकती है। हो सकता है इस आत्मानुभूति की कमी ने ही वर्तमान पाश्चात्य उपन्यास को एक कुष्ठित दशा तक पहुँचा दिया है।

हिन्दी के प्राकृतिक उपन्यासों में भी इस आत्मानुभूति की कमी इष्ट है। यह कहना गलत नहीं होगा कि हमारे उपन्यासकारों में प्रसन्न को छोड़कर अन्य किसीके उपन्यासों में लेखक का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित नहीं हुआ है।

प्रयत्न-साधन का अभाव

४३१ अध्ययनपूर्ण एवं वैज्ञानिक होने के कारण प्राकृतिक उपन्यासों में एक प्रकार का तनाव (टेंशन) रहता है। जैन धार्मिक हृदय और तात्सल्य वीर उपन्यासकारों की लेखनी जिस साधन से चाले जाती है। प्राकृतिक उपन्यासकारों की लेखनी नहीं चलती। जैन धार्मिक के उपन्यासों की पढ़ते समय लगता है कि लेखिका अपने पात्रों का या वातावरण का अध्ययन करने का प्रयत्न नहीं करती बल्कि वे उसके अत्यन्त परिचित अतः आत्मीय हैं। हमें भी ऐसी प्रतीति होती है कि हम अपने परिचित वस्तुओं की ही मण्डली में प्रविष्ट हो रहे हैं। अतः पात्रों को समझना हमारे लिए बिलकुल सुगम हो जाता है। हृदय और तात्सल्य में भी यह प्रयत्न-साधन देख सकते हैं।

प्राकृतिक केवल और संघर्षी उपन्यासों की तुलना में नवीनतम किसी उपन्यासों

में लेखकों ने अधिक प्रयत्न-भावक प्रकट किया है। उनमें सांकेतिक विषयों का परिचय देनेवाले भावों को छोड़ बँ तो अन्य स्थाओं में तनाव कम रहता है। पात्र साधारणता की सीमा के अन्दर ही व्यवहार करते दीखते हैं। उनके विकासों को प्रावश्यकता से अधिक तीव्र नहीं बनाया गया है।

प्रयत्न-भावक की यह कमी हिन्दी उपन्यासों में भी देख सकते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यास जिस प्रकार प्रभाव गति से चलते हैं उसी प्रकार जमनेवाले परबरी उपन्यासों की संख्या बहुत कम है। यज्ञराज का 'मुनिया की साड़ी' नाथार्जुन का 'रतिनाथ की चाची' सस्मीनारायण ताम का 'बया का बोंसभा धीर साँप' आदि इने-गिने उपन्यासों में प्रेमचन्द के उपन्यासों के समान प्रयत्न-भावक देख सकते हैं। अन्य प्राकृतिक उपन्यासों में या तो विषय के कारण तनावनी घा बरि है जैसे अनेक बोधी भारती अज्ञेय आदि के उपन्यासों में या भाषा के कारण जैसे रेशु के उपन्यासों तथा रायम रावत के विद्या मठ आदि में। इस तनावनी को उपन्यास में आवश्यक या घना बहक बनाना कठिन है, पर यह शरत है कि इन उपन्यासों को उसी प्रसन्न भाव से पढ़ना असंभव है जैसे प्रेमचन्द के उपन्यासों को पढ़ सकते हैं।

उपसंहार

४३२ ऊपर यूरोपीय उपन्यासों की जो विशेषताएँ बतायी गयी हैं, उनके कारण यूरोपीय उपन्यास में एक अनिवार्य धीर गतिहीन रिधा घा बयी है। इस बात की धीर संकेत करते हुए इलाक़र बोधी तथा बर्मवीर भारती ने कहा है कि पाश्चात्य लेखकों की गति एकदम धबकड़ हो गयी है धीर भारतीय लेखक ही अपनी प्रभाविकता लिए उनको रिधा-निर्देशन कर सकते हैं।^१ बोधी धीर भारती के इस मत की सार्थकता को समय ही प्रमाणित या अप्रमाणित कर सकता है। किन्तु इस सम्बन्ध में हमें दो बातें कहनी हैं। पहली यह कि उपन्यास साहित्य में अगर कोई धरम बरोव हुमा है तो वह स्वाधी नहीं है। साहित्य के क्षेत्र में देखी धीर मन्दी होती ही है, धीर सर्वोत्कृष्ट कलाकार रोज रोज नहीं होते। किसी भी साहित्य का अध्ययन करने से ज्ञात होमा कि उसमें उत्कृष्ट कलाकार समय-समय पर अपवाद के रूप में ही धबकीर्ण हुए हैं। अतः उपन्यास के विकास की वर्तमान पन्ध गति को देखकर वह नहीं समझना चाहिए कि उपन्यास साहित्य किसी घटन टीने से आकर घटक गया है धीर उसे घाये बढ़ने का कोई मार्ग दिखाया नहीं पड़ रहा है। इस सम्बन्ध में स्वयं बोधी ने सौम्यत साहित्य में रोमांस द्वारा गवनीकरण के जागरित होने की बात बताते हुए कहा है " मार्मियन सिडान्तों ने बहों के (सौम्यत के) कलात्मक रस प्रवाह को कुछ समय के लिए बाधु की जिस भीत से बांधने की भेटा की थी वह धब बढ़ने लयी है, धीर फिर से बहों रस-सचार होने लमा है।"^२ बर्मवीर भारती ने भी माना है कि

१ इलाक़र बोधी : साहित्य चिन्ता ५ ४१ ; बर्मवीर भारती : प्रगतिपन्ध कक सवीधा ५ २-२

२ इलाक़र बोधी : साहित्य सममा ५ ७ ।

शोधित साहित्य संकुचित पाथों से निकसकर वैयक्तिक सम्पर्कगत और सामाजिक वास्तविकता का सम्भव करने वाले बड़ा रहा है।^१ शोधित के ही नहीं अन्य यूरोपीय भाषाओं के भी उपन्यास साहित्यों के पूर्वतया प्रचलित होने के कोई कारण नहीं दीखते।

दूसरी बात हमें यह कहनी है कि यद्यपि हमारे उपन्यास साहित्य की वर्तमान दशा अस्वस्थायक नहीं है तथापि उसपर धनितमात्र करने का कोई कारण भी नहीं दीखता। उसमें ऐसी कोई प्रगतिशील प्रकृति दिखायी नहीं देती जो विरह-उपन्यास साहित्य को प्रभावित कर सके। हमें नवीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अन्धकारवाद की भीमसा और उपन्यास से उसका प्रयोग अब तक नहीं हुआ है, और इस प्रयोग के लिए क्षेत्र खुला पड़ा है। परिसराम भविष्य ही बता सकेगा।^२

जो कुछ भी हो वह निश्चित है कि उपन्यास के अन्तर्गत में चिन्ता करने की कोई बात नहीं है क्योंकि परिस्थिति के अनुसार बदलने की क्षमता क्षति उसमें है अन्य किसी साहित्यिक विधा में नहीं है। यह लचीलापन ही उसे समर रखने के लिए पर्याप्त होगा। साधारण बोलचाल जीवन से लेकर आदमी के भावनात्मक सिद्धांत तक को उपन्यास में स्थान दिया जा सकता है। उक्त केवल यही है कि उसमें विषय कोई भी रहे उसे जीवन से संबंधित करना नहीं चाहिए। उपन्यास के चिरन्तन जीवन का और एक कारण यह है कि उपन्यासकार सत्य का इतिहास लिखता है—ऐसा इतिहास जो कोई इतिहासकार नहीं लिख सकता—ऐसा इतिहास जो कुछ घाटीयों और पठारों पर सेक-पाथ न देकर कीट-पतंगों मानव का वर्तमान जीवन प्रस्तुत करता है। अतः वह एक मनुष्य को अपना ही इतिहास जानने की प्रेरणादायक रहेगी तब तक उपन्यास का जीवन भी सुरक्षित रहेगा।

अनुकूल और चिरन्तन के सम्बन्ध की संभावना भी उपन्यास में अधिक रहती है। अनुकूलिमात्र काय्य तथा विचार शक्ति यद्यपि के कुछ उपन्यास में समाविष्ट किये जा सकते। एक आलोचक के मत में उपन्यास काय्य और यद्यपि संकर-वाक्य है यद्यपि वैज्ञानिक युग में जीवित रहने की सबसे अधिक शोध्य है।^३

जहाँ तक हिन्दी उपन्यास साहित्य का सम्बन्ध है हमारी उपसम्पत्ति परिमित होने पर भी महत्वपूर्ण है। 'सेनासदन' से लेकर अब तक के समय पचास वर्षों में

१. नवीन भारतीय : प्रगतिवाद दृष्टि समीक्षा पृ० १४१।

२. वहाँ भी यह लक्ष्य रहता है कि निरन्तर जीवनवाद की ओर ध्यान देनेवाला बुद्धिवादी निरन्तर पुनः अन्धकारवाद की लक्ष्य करेगा या नहीं। विज्ञान के विचारधारा के अन्तर्गत की विधीरिका से अन्धकार निरन्तर बहाल होनी शुरू ("समय और अन्धकारवाद की ओर या आगे या पीछे। पर यह बात अनिश्चित ही है।

३. "If poetry is immortal we need not greatly worry about the novel which is a kind of mongrel child of poetry and prose a species most admirably adapted for survival in this practically scientific world"

मयवतीप्रसाद बाजपेयी
अभिनन्दन समिति
भोलानाथ

रामचन्द्र मुखल

रामबिनायक शर्मा

"

विनोदचंकर व्यास

राजीवजी गुर्द

"

शिवकुमार मिश्र

सिखदानविहारी बौहान

"

शिवनाथराय श्रीवास्तव

भीष्मपुत्राज

हजारप्रसाद द्विवेदी

मयवतीप्रसाद बाजपेयी
स (?)
हिन्दी साहित्य
(१९२६-१९४७) १९४४

हिन्दी साहित्य का
इतिहास सं २ ७

प्रगतिशील साहित्य की
समस्याएँ, १९४४

प्रमचन्द्र और उनकी पुत्र
१९४९

यूरोपीय उपन्यास साहित्य
१९४९

प्रमचन्द्र और मोर्को
(संकलन) १९४५

साहित्य वर्णन (भाग १)
कृष्णबनमाल वर्मा

१९४६

साहित्यानुसंधान
१९४४

हिन्दी साहित्य के अस्ती
वर्ष १९४४

हिन्दी उपन्यास
सं २ ७

आधुनिक हिन्दी साहित्य
का विकास १९४२

हिन्दी साहित्य १९४५

मयवतीप्रसाद बाजपेयी
अभिनन्दन समिति कानपुर

प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग

नागरी प्रचारिणी सभा काशी

विनोद पुस्तक मंदिर, धापरा

मेहरचन्द मुंशीराम बिस्नी

साहित्य सेवक कार्यालय काशी

राजकमल प्रकाशन बम्बई

गीतम मुख डिपो बिस्नी

रवि प्रकाशन कानपुर

धारावाचन एण्ड सन्स बिस्नी

राजकमल प्रकाशन बम्बई

सरस्वती मंदिर बनारस

प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग

मयवतीप्रसाद बाजपेयी
अभिनन्दन समिति कानपुर

Abraham, Gerald

Dostoevsky 1936

George Allen & Unwin
Ltd. London.

Baker Ernest

The History of the
English Novel

Oxford University Press
London.

(Ten Volumes)

Charles

Contemporary

Ed. Baker

Belinsky V G	Selected Philosophical Works 1956	F.L.P.H., Moscow
Brown	Psychodynamics of Abnormal Behaviour 1940	Mc Graw Hill Pub Co New York.
Bruford W.H.	Chekhov & His Russia, 1947	Kegan Paul, Trench Turner & Co., London.
Candwell, Christopher	Illusion & Reality 1950	Lawrence & Wishart Ltd. London
"	Studies in a Dying Culture 1951	John Lane the Bodley Head Ltd. London.
Cecil, David	Early Victorian Novelists, 1948	Penguin Books Ltd., Harmondsworth.
Church, Richard	The Growth of the English Novel, 1951	Methuen & Co Ltd London
Collins, Norman	The Facts of Fiction March 1932	Victor Gollancz Ltd., London.
Culler H Ward	Evolution Heredity and Variation, 1944	Christophers, London.
Doncaster L.	Heredity in the Light of Recent Research, 1921	Cambridge University Press, London.
Drever James	A Dictionary of Psychology 1956	Penguin Books Ltd Harmondsworth.
Eastman, Max	Literary Mind 1935	Charles Scribner's Sons New York.
Edel Leon	The Psychological Novel, 1955	Rupert Hart Davis, London.
Eliot, George	The Works of George Eliot, 1885	William Blackwood & Sons, London.
Eliot, T S.	Selected Essays, 1932	Faber & Faber Ltd London.
Engels, Frederic	Anti Duhring, 1954	F L P H., Moscow
"	Dialectics of Nature 1954	"
Fast, Howard	Literature and Reality 1955	People's Publishing House New Delhi.

हिन्दी उपन्यास साहित्य ने जो कुछ प्राप्त किया है वह सचमुच आश्चर्यजनक है। यूरोपीय भाषाओं में सेकड़ों वर्षों से जो विकास हुआ वहीं हिन्दी में इन पचास वर्षों में हुआ। इतने घट्ट काल में किसी भी भाषा में इतनी वैविध्यपूर्ण प्रकृतियों का उद्गम और विकास नहीं हुआ होगा।

हमारे उपन्यास में सब कुछ है पर अत्यन्त हीसु एवं दुर्बल दशा में है। हमारे उपन्यासकार बितनी विस्तृति प्राप्त कर सके हैं उतनी अशापता नहीं। परिणामतः उनकी रचनाओं में मिल्न मिन्न चारों की अनेक प्रकृतियाँ उपलब्ध होती हैं। किन्तु ये प्रकृतियाँ अधिक प्रौढ दशा तक नहीं पहुँच सकी हैं। किन्तु हम इस बात को विस्मरण नहीं कर सकते कि पारचास वर्षों की तुलना में हमारे उपन्यास साहित्य का विकास बहुत ही घट्ट काल में हुआ है। अतः यह अपनयता एवं अग्रगता स्वाभाविक ही है। प्रायः हमारे उपन्यास साहित्य में जिन-जिन प्रकृतियों का बीजारोपण हुआ है उनको कमबल विकास द्वारा प्रौढता प्रदान की जाय तो कुछ उत्कृष्ट रचनाओं के उद्भव की संभावना है।

हिन्दी-उपन्यास की अब तक की विभिन्न प्रकृतियों को तथा हमारी स्वतन्त्र पत्रिका के पश्चात् की विशेष चेतना एवं स्फूर्तिमय गतिविधियों को देखते हुए भाव होता है कि हमारी भविष्य की संभावनाएं बहुत हैं। इन बस-यन्त्रों वर्षों में विविध चारों के बितते उपन्यास लिखे गये हैं उनमें कई कमियों और दुर्बलताओं के होने पर भी नवजागरण के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। विशेषकर सामाजिक चर्चाबादी तथा अन्तर्चेतनावादी चारों की विभिन्न विकासशील प्रकृतियों से हमें विश्वास होता है कि हमारा उपन्यास साहित्य भविष्य के हस्त में सुरक्षित रहेगा।

‘जैन जैसे प्रायः हैं, हमें ‘गोदान’ ‘देवर’ ‘दिव्या’ ‘सागर’, ‘सहर और मनुष्य’ ‘मोती की टानी’ ‘मृगमयी’ ‘मैला धावन’ आदि प्रायः दर्जन से अधिक उत्कृष्ट उपन्यास प्राप्त हुए हैं, जिन्हें निम्नकोश विश्व-उपन्यास साहित्य में स्थापित किया जा सकता है।

इससे भी अधिक आशावाचक विषय है, गत अस्सी के समय वर्षों के हमारे उपन्यास साहित्य में बिलकुल मिल्न-मिन्न और कभी-कभी परस्परविरोधी कतिपय प्रकृतियों का समावेश होना। जीवन की अनेक समस्याओं की गंभीरता से अनभिज्ञ रह कर आश्चर्यमय अनुसन्धियों से झाल-भित्रीनी खेजनेवाले खेजनीनन्दन जहाँ और किशोरीलाल गोस्वामी से लेकर जीवन की गंभीर से गंभीर समस्याओं का मुँह बर मुँह सामना करनेवाले प्रेमचन्द तक जीवन की विपमताओं के सामाजिक स्वरूप को स्पष्ट करनेवाले प्रेमचन्द और प्रसाद से लेकर मानव मन की गहराई में उन विपमताओं के मूस का अन्वेषण करनेवाले जैनेश जोशी अज्ञेय और देवराज तक जीवन के उत्कृष्ट आदर्शों के मजुर स्वप्न देखनेवाले आरसबादी श्रीनिवासबास और लज्जाराय मेहता से लेकर कुल्लित से कुल्लित यमाओं की निरावृत्त प्रस्तुत करनेवाले उषाबादी उषा और मय्यननाथ गुप्त तक अतीत की विस्मृतियों को स्मृति-पट पर प्रकीर्ण करनेवाले राहुल और चतुरसेन से लेकर वर्तमान की वास्तविकता को गालीबंद करनेवाले नारायण और रणु तक उपन्यास साहित्य को विस्तृति एवं विविधता प्राप्त कर सच है, वह सचमुच एक अद्भुत भविष्य की आशा प्रदान करनेवाली है।

सहायक ग्रंथ

इमाचन्द्र जोशी	शैक्षा-परक्षा साहित्य चिन्तन १९३३ साहित्य सर्वज्ञा १९४७ महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग सं २ ०८	अजन्ता प्रस पटना छात्र हितकारी पुस्तकालय प्रयाग
चक्रवर्तीरायण मुखर्जी	कमी साहित्य १९३१ साहित्य बार्ता १९३३ हिन्दी यद्य चीनी का विचार स २ ६ साहित्य का अर्थ और अर्थ १९३३ हिन्दी उपन्यास और समावेष्टा सं २०१२ साधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान १९३६ साहित्य चिन्ता १९३६ प्रयत्निवाद एक समीक्षा १९४८ साधुनिक साहित्य सं २ १३ नया साहित्य नये प्रश्न १९३३ हिन्दी साहित्य बीमबीं छापी १९४६ आदय और सचार्थ स २ ६ साहित्य का उद्देश्य (संकलित निबंध) १९३४	सरस्वती मन्दिर, बनारस भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली नामरी प्रचारिणी सभा काशी पूर्वोक्त प्रकाशन दिल्ली हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय काशी
चक्रवर्तीरायण मुखर्जी	साहित्य भवन मि इलाहाबाद गौतम बुद्ध विद्यापीठ दिल्ली	
चर्मवीर भारती	साहित्य भवन मि इलाहाबाद	
चन्द्रशेखर वाजपेयी	भारती भवन, इलाहाबाद	
"	विद्यामन्दिर, बनारस	
"	इण्डियन प्रेस बुक डिपो मदनम	
पुस्तकालयमात पीकास्तव	नामरी प्रचारिणी सभा काशी	
प्रमथम्	हय प्रकाशन इलाहाबाद	

भगवतीप्रसाद बाजपेयी	भगवतीप्रसाद बाजपेयी	भगवतीप्रसाद बाजपेयी
अभिनन्दन समिति	सं (१)	अभिनन्दन समिति कानपुर
भोलानाथ	हिन्दी साहित्य	
	(१९२६-१९४०) १९२४	प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग
रायचन्द्र शुक्ल	हिन्दी साहित्य का	
	इतिहास सं २० ७	नागरी प्रचारिणी सभा काशी
रामबिनास शर्मा	प्रगतिशील साहित्य की	
	समस्याएँ, १९२४	विमोद पुस्तक मंदिर, भागलपुर
"	प्रमथन और उनका युग	
	१९२२	देहरादून कुशीराम बिस्मि
बिनोदचंद्र व्यास	यूरोपीय उपन्यास साहित्य	
	१९२९	साहित्य सेवक कार्यालय काशी
राजीवराज कुर्द	प्रेमचन्द और मोर्फी	
	(संकलन) १९२२	राजकमल प्रकाशन बम्बई
	साहित्य वसंत (भाग १)	नौचम बुक डिपो दिल्ली
शिवकुमार मिश्र	कुम्हारनामाल वर्मा	
	१९२६	रवि प्रकाशन कानपुर
शिवदानसिंह चौहान	साहित्यसामुदायिक	
	१९२२	वाल्मीकीय एण्ड सन्स दिल्ली
	हिन्दी साहित्य के अस्ती	
	वर्ग १९२४	राजकमल प्रकाशन बम्बई
शिवनाथराय भीवास्तन	हिन्दी उपन्यास	
	सं २ ७	सम्बती मंदिर बनारस
श्रीकृष्णनाथ	धार्मिक हिन्दी साहित्य	
	का विकास १९२२	प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग
हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी साहित्य १९२२	अंतराष्ट्रीय कपूर एण्ड सन्स दिल्ली

Abraham Gerald	Dostoevsky 1936	George Allen & Unwin Ltd. London.
Baker Ernest	The History of the English Novel (Ten Volumes)	Oxford University Press, London.
Baudoin, Charles	Contemporary Studies Tr Eden	" "

- Bellamy V G
Brown
Bruford, W.H.
Candwell, Christopher
"
Cecil David
Church, Richard
Collins, Norman
Cutler D Ward
Doncaster L.
Drever James
Eastman, Max
Edel Leon
Eliot, George
Ellot T S
Engels, Frederic
"
Fast, Howard
- Selected Philosophical Works 1956
Psychodynamics of Abnormal Behaviour 1940
Chekhov & His Russia, 1947
Illusion & Reality 1950
Studies in a Dying Culture, 1951
Early Victorian Novelists, 1948
The Growth of the English Novel 1951
The Facts of Fiction March 1932
Evolution Heredity and Variation, 1944
Heredity in the Light of Recent Research, 1921
A Dictionary of Psychology 1956
Literary Mind 1935
The Psychological Novel, 1955
The Works of George Eliot, 1885
Selected Essays, 1932
Anti-Duhring, 1954
Dialectics of Nature, 1954
Literature and Reality 1955
- F.L.P.H. Moscow
Mc Graw Hill Pub Co., New York.
Kegan Paul, Trench Tulner & Co London
Lawrence & Wishart Ltd London
John Lane the Bodley Head Ltd. London.
Penguin Books Ltd., Harmondsworth.
Methuen & Co Ltd., London
Victor Gollancz Ltd. London
Christophers London.
Cambridge University Press London.
Penguin Books Ltd Harmondsworth.
Charles Scribner's Sons, New York.
Rupert Hart Davis, London.
William Blackwood & Sons London.
Faber & Faber Ltd., London.
F L P H., Moscow
"
People's Publishing House, New Delhi.

Ford Ford Madox	Mightier than the Sword 1938	George Allen and Unwin Ltd London.
Fox, Ralph	The Novel & the People, 1954	F L P H. Moscow
Freud Sigmund	Introductory Lectures in Psychoanalysis, Tr Joan Revere, 1952	George Allen and Unwin Ltd London.
George, W L.	A Novelist on Novels, 1918	W Collins Sons & Co Ltd. London
Gorky Maxim	An Anthology Literature and Life, 1946	Kutub Publishers Poona. Hutchinsons International Ltd. London.
"	Reminiscences of Tolstoy Chekhov & Andreiev 1934	Hogarth Press, London
Gould Gerald	The English Novel Today 1924	John Castle, London.
Grabo Carl H.	The Technique of the Novel, 1928	Charles Scribner's Sons, New York.
Hare, Richard	Russian Literature (From Puskin to Present Day 1947	Methuen & Co Ltd., London.
Hemmings, F W J	The Russian Novel in France, 1950	Oxford University Press, London.
Henderson Philip	The Novel Today 1936	John Lane the Bodley Head Ltd., London.
Hoare Dorothy	Some Studies in the Modern Novel 1938	Chatto & Windus London.
Hogarth Basil	The Technique of Novel-writing 1937	John Lane the Bodley Head Ltd., London
James, Henry	French Poets & Novelists, 1919	Macmillan & Co., London.
"	Notes on Novelists 1914	Charles Scribner's Sons, New York.

James Henry	Partial Portraits, 1888	Macmillan & Co., London.
Jastrow Joseph	Frued, His Dream & Sex Theories 1915	Pocket Books : Inc. New York.
Johnson, R. B.	Jane Austen 1930	J. M. Dent & Sons Ltd., London
Jung, C. G.	Development of Personality 1954	Routledge & Kegan Paul Ltd London.
"	Two Essays in An- alytical Psychology 1953	
Kastner L. E. & Atkins H. G	A Short History of French Literature 1925	Blackse & Sons Ltd London.
Katz, David	Gestalt Psychology Tr R. Tyson, 1951	Methuen & Co Ltd London
Kerr Martin Janet	Mammac, 1954	Bowes & Bowes, Cambridge.
Koffka, K.	Principles of Gestalt Psychology 1950	Routledge & Kegan Paul Ltd., London
Lawrence D H.	Selected Letters, 1954	Penguin Books, Harmondsworth.
	Selected Literary Criticism, 1955	William Heinemann Ltd. London
Lavrin, Janko	An Introduction to Russian Novel 1945	Methuen & Co Ltd., London.
	Goncharov 1954	Bowes & Bowes, Cambridge.
Leavis Q D	Fiction and the Rea- ding Public, 1932	Chatto & Windus, London
Liddell, Robert	A Treatise on the Novel 1947	Jonathan Cape Ltd., London.
	Some Principles of Fiction, 1953	

Ford Ford Madox	Mightier than the Sword 1938	George Allen and Unwin Ltd., London.
Fox, Ralph	The Novel & the People, 1954	F L P H. Moscow
Freud, Sigmund	Introductory Lectures in Psychoanalysis Tr Joan Riviere, 1952	George Allen and Unwin Ltd London
George, W L,	A Novelist on Novels, 1918	W Collins Sons & Co. Ltd. London
Gorky Maxim	An Anthology Literature and Life, 1946	Kutub Publishers Poona. Hutchinsons International Ltd. London.
"	Reminiscences of Tolstoy Chekhov & Andreev 1934	Hogarth Press London.
Gould, Gerald	The English Novel Today 1924	John Castle London
Grabo Carl H	The Technique of the Novel, 1928	Charles Scribner's Sons, New York.
Hare Richard	Russian Literature (From Puskin to Present Day 1947	Methuen & Co Ltd., London
Hemmings F W J	The Russian Novel in France, 1950	Oxford University Press, London.
Henderson, Philip	The Novel Today 1936	John Lane the Bodley Head Ltd., London.
Hoare Dorothy	Some Studies in the Modern Novel 1938	Chatto & Windus, London.
Hogarth, Basil	The Technique of Novel-writing, 1937	John Lane the Bodley Head Ltd., London.
James, Henry	French Poets & Novelists, 1919	Macmillan & Co., London.
"	Notes on Novelists 1914	Charles Scribner's Sons New York.

James Henry	Partial Portraits, 1888	Macmillan & Co. London.
Jastrow Joseph	Frued, His Dream & Sex Theories 1915	Pocket Books Inc. New York.
Johnson, R. B.	Jane Austen 1930	J. M. Dent & Sons Ltd London.
Jung C. G.	Development of Personality 1954	Routledge & Kegan Paul Ltd London
"	Two Essays in An alytical Psychology 1953	
Kastner L. E. & Atkins H. G.	A Short History of French Literature 1925	Blackie & Sons Ltd London.
Katz, David	Gestalt Psychology Tr R. Tyson, 1951	Methuen & Co Ltd London
Kerr Martin Janet	Mauriac, 1954	Bowes & Bowes, Cambridge
Koffka K.	Principles of Gestalt Psychology 1950	Routledge & Kegan Paul Ltd., London
Lawrence, D. H.	Selected Letters 1954	Penguin Books, Harmondsworth.
	Selected Literary Criticism, 1955	William Heinemann Ltd. London
Lavrin, Janko	An Introduction to Russian Novel 1945	Methuen & Co Ltd., London.
	Goncharov 1954	Bowes & Bowes, Cambridge.
Leavis, Q. D.	Fiction and the Rea ding Public, 1932	Chatto & Windus, London
Liddell, Robert	A Treatise on the Novel 1947	Jonathan Cape Ltd., London.
"	Some Principles of Fiction, 1953	

Ford, Ford Madox	Mightier than the Sword 1938	George Allen and Unwin Ltd., London
Fox, Ralph	The Novel & the People, 1954	F L P H. Moscow
Freud Sigmund	Introductory Lectures in Psychoanalysis, Tr Joan Riviere, 1952	George Allen and Unwin Ltd London
George, W L.	A Novelist on Novels, 1918	W Collins Sons & Co. Ltd. London
Gorky Maxim	An Anthology Literature and Life, 1946	Kutub Publishers, Poona. Hutchinsons International Ltd., London.
"	Reminiscences of Tolstoy Chekhov & Andreev 1934	Hogarth Press, London
Gould Gerald	The English Novel Today 1924	John Castle, London
Grabo Carl H	The Technique of the Novel, 1928	Charles Scribner's Sons, New York.
Hare, Richard	Russian Literature (From Pushkin to Present Day 1947	Methuen & Co Ltd., London.
Hemmings F W J	The Russian Novel in France 1950	Oxford University Press, London.
Henderson, Philip	The Novel Today 1936	John Lane the Bodley Head Ltd London.
Hoare, Dorothy	Some Studies in the Modern Novel 1938	Chatto & Windus, London.
Hogarth Basil	The Technique of Novel writing, 1937	John Lane the Bodley Head Ltd., London
James, Henry	French Poets & Novelists, 1919	Macmillan & Co London.
"	Notes on Novelists, 1914	Charles Scribner's Sons, New York.

James Henry	Partial Portraits, 1888	Macmillan & Co London.
Jastrow Joseph	Frued, His Dream & Sex Theories 1915	Pocket Books Inc. New York.
Johnson, R. B.	Jane Austen 1930	J. M. Dent & Sons Ltd London.
Jung, C. G.	Development of Personality 1954	Routledge & Kegan Paul Ltd London.
"	Two Essays in An- alytical Psychology 1953	
Kastner L. E. & Atkins H. G.	A Short History of French Literature 1925	Blackie & Sons Ltd London.
Katz, David	Gestalt Psychology Tr R. Tyson, 1951	Methuen & Co Ltd London
Kerr Martin Janet	Matruac 1954	Bowes & Bowes, Cambridge
Koffka K.	Principles of Gestalt Psychology 1950	Routledge & Kegan Paul Ltd., London
Lawrence D H	Selected Letters 1954	Penguin Books Harmondsworth.
	Selected Literary Criticism, 1955	William Heinemann Ltd. London
Lawrin, Janko	An Introduction to Russian Novel 1945	Methuen & Co Ltd., London.
	Goncharov 1954	Bowes & Bowes Cambridge.
Leavis, Q D	Fiction and the Rea- ding Public, 1932	Chatto & Windus London
Liddell, Robert	A Treatise on the Novel 1947	Jonathan Cape Ltd., London.
	Some Principles of Fiction, 1953	

Low D M	Essay & Studies— 1955 1955	John Murray London.
Lubbock, Percy	The Craft of Fiction, 1932	Jonathan Cape Ltd. London.
Mann, Klaus	Andre Gide & the Crisis of Modern Thought, 1948	Dennison Dolson Ltd., London.
Maude, Aglmer	The Life of Leo Tolstoy 1953	Oxford University Press, London.
Maugham, Somerset	Partial View 1954	William Heinemann Ltd., London
	Ten Novels & their Authors, 1954	
Maurois, Andre	Quest for Proust 1950	Jonathan Cape Ltd., London.
McKinney Fred	Psychology of Per- sonal Adjustment 1949	John Wiley & Sons Inc., New York.
Marx, Karl	Poverty of Philo- sophy 1847	F. L. P. H., Moscow
Marx, Karl & Engels	Literature & Art (Selections) 1956.	Current Book House, Bombay
Mirsky D S	A History of Russian Literature, 1949	Routledge & Kegan Paul Ltd. London.
Muir Edwin	The Structure of the Novel 1928	Hogarth Press London
Myers, Walter L.	The Later Realism 1927	The University of Chicago Press Chicago
Nicholson, Norman	H. G. Wells, 1950	Arthur Barker Ltd. London
Page, James D	Abnormal Psycho- logy 1947	Mc Graw Hill Publish- ing Co., New York.
Phelps William Lyon	The Advance of the English Novel, 1919	John Murray London.
Powys, John Cowper	Dostoevsky 1946	John Lane the Bodley Head Ltd., London.

Priestly J B.	✓ The English Novel, 1928	Ernest Benn Ltd., London.
Pritchett, V S	The Living Novel, 1946	Lhatto & Windus London.
Read Herbert	Art & Society 1937	William Heinemann Ltd., London
	Collected Essays in Literary Criticism 1938	Faber & Faber Ltd London
	Reason & Romanticism, 1926	Faber & Gwyer Ltd., London.
Reavey George	Soviet Literature Today 1946	Drummonds London.
Reed Henry	Novel Since 1939 1946	Longmans Green & Co London
Roberts, S C.	Essays & Studies 1937 1938	Oxford University Press, London
Routh H. V	English Literature & Ideas in the Twentieth Century 1948	Methuen & Co Ltd., London
Saintsbury	A Short History of French Literature, 1928	Oxford University Press - London
	A History of the French Novel, 1917	Macmillan & Co. London.
Sartre, Jean Paul	What is Literature Tr B Frechtman. 1950	Methuen & Co Ltd., London
Summons, Earnest J	Leo Tolstoy 1949	John Lehmann Ltd., London.
Spender Stephen	The New Realism 1939	Hogarth Press London
Stewart, Herbert L.	Anatole France 1927	George Allen & Unwin Ltd., London.

Strachey Lytton	Landmarks in French Literature 1948	Chatto & Windus, London.
Thomas Henry Leo & Thomas Dana Lee Tolstoy Leo	Living Biographies of Famous Novelists, 1947	Haleyon House, New York.
	What is Art and Essays on Art (Tr Aylmer Maude) 1955	Oxford University Press London
Urban Wilbur Marshall	Beyond Realism and Idealism 1949	George Allen & Unwin Ltd London.
Vivian Francis	Creative Technique in Fiction, 1946	Hutchinson's Scientific & Technical Publications, London.
Walpole, Hugh & others	Tendencies of the Modern Novel, 1934	George Allen & Unwin Ltd., London
West, Ray B	The Art of Modern Fiction 1949	Rinehart & Co Inc., New York.
Westland, Peter	History of the English Literature Vol. VI 1950	English University Press Ltd. London
Woolf Virginia	A Room of One's Own, Dec. 1929	English University Press London.
"	The Common Reader Nov 1925	
Young, Kimbal	Personality and Problems of Adjustment. 1952	Routledge & Kegan Paul Ltd., London

पद-परिचय—

साहित्य (विहार या भा परिपद) साहित्य सम्वेद्य प्रामोचना हुं
आवरण Slavonic Review Essays by Diverse Hands (London)
दस्तावेज।

हिन्दी उपन्यासों की सूची

(प्रकाशन-वाससहित)

सूचना

मि = लिखने का काल

प्र = प्रथम प्रकाशन का काल (वर्ष)

सं = इस संस्करण का काल (वर्ष) जो इस प्रबन्ध की रचना के लिये पढ़ा गया और जिससे उद्धरण किये गये हैं।

		प्र	सं
ईमाप्रस्ता की	रानी केतकी की कहानी	१८ ०-१	—
सदस मित्र	मासिकेष्टोपाख्यात	१८ १	११२
अज्ञातम फिलिपी	भाग्यवती (मि १८७१)	१८७७	—
लाला श्रीनिवासदास	परीक्षा पुष्प	१८८२	१८८२
बालकृष्ण भट्ट	मूलत बह्मचारी	१८८५	१८८५
	छी भवान एक मुजान	१८८२	—
राधाकृष्ण दास	निस्तहाय हिन्दू (मि १८८१)	१८८१	१८८१
देवकीनन्दन खत्री	चन्द्रकान्ता	१८८१ से	—
	नरेन्द्रमोहिनी (दो भाग)	१८८४	—
	चन्द्रकान्ता सन्तति	१८८५ से	—
	कुमुदकुमारी	१८८८	१८८८
	वीरेश्वरीर	१८८८	१८८८
	मृजनाय	१८ ६ से	—
किशोरीनाथ गोस्वामी	त्रिवेणी	१८८२	—
	आदर्श रमणी (हृदयहारिणी)	१८८१	१८८१
	प्रणमिनी परितुष	१८८७	—
	लक्ष्मणदा (आदर्श बाला)	१८८७	१८८८
	कुमुदकुमारी (मि १८८६)	१८ १	१८१२
	सौरा	१८ २	१८ २
	चपला	१८ ३	१८१२
	पद्मिनी (मूलतः पुनर्मुद्रण)	१८ ४	१८ ४
	कुटीरबागिनी (तदर्थ तपस्विनी)	१८ ५	१८ ५
	मौतिया शाह	१८ ७	१८ ७

		प्र	सं
क्रिपटीमान गोस्वामी	सञ्जनऊ की कठ	?	१२१
	प्रममयी	?	१२२४
	बंन सरोबिगी या मस्मिकादेवी	—	—
	नीलावती (मादर्य सती)	—	—
	रजिया बेगम	—	—
ठाकुर बममोहनसिंह गोपासराम गहमरी	श्यामा स्वप्न	१८८८	—
	चतुरा बंनमा	१८८४	१८८४
	भालमती	१८८३	१८८३
	नये बाबू	१८८५	—
	बड़ा भारी	१८८८	१८८८
	शास पठोहू	१८८८	—
	धन्विकादत्त व्यास	१८८३	—
मयोध्यासिंह उपाध्याय	धारचर्य बुलान्त	१८८८	—
	ठेठ हिन्दी का छट	१८८८	—
सम्बारायन शर्मा	प्रवक्षिता फूल	१८ ७	—
	हिन्दू धृष्टस्य	१८ ३	१८ ३
	प्रावर्षी क्षमति	१८ ८	—
	विमर्ष का सुबार	१८ ७	—
	प्रावर्ष हिन्दू	१८१४ १३	१८२८
	भुत रसिकमान	१८८८	—
	स्वर्तन रमा	१८८८	—
	सोम्यवोपासक	१८१९	१८१२
ब्रजनन्दन सहाय	धारण्य-बासा	१८१३	१८१३
	रमाबाई	१८ ७	—
बन्धुदेवर पाठक	बारोबना-रुहस्य (१ भाग)	१८१४ २२	१८१४ २२
	प्रेमा	१८ ३ सं पूर्व	—
ब्रमचन्द्र	सवासदन (बहु बापारे हुस्य)	१८ ७	—
	(हिन्दी)	१८१८	१८३२
	बरवान	१८ ३	१८३३
	प्रेमाग्रम (मि १८१८)	१८२२	?
	रंगभूमि	?	१८३३
	निर्मला	१८२३	१८४४
	कायाकला	१८२८	१८२८
	प्रतिष्ठा (प्रेमा)	१८२८	?
	गणन	१८३	१८४३
	कर्मभूमि	१८३२	?

		प्र	मं
प्रेमचन्द	मोक्षान	१९१६	१९४१
	भगत सूत्र	?	?
अयंगर प्रसाद	कंकाल	१९२९	१९२९
	तितषी	१९३४	१९३४
	हरावटी	?	?
विस्वम्भरनाथ शर्मा 'कौटिल्य'	मां	१९२९	१९२९
	मिन्नारिली	?	?
अनुराधेन शास्त्री	हृष्य की परब	१९१८	१९१८
	अभिचार	१९२४	—
	हृष्य की प्यास	१९३२	१९४६
	अमर अभिमापा	१९३३	—
	बहुते धाँसू (नाम से)	—	?
	नरमेव	?	?
	बैसाखी की नगरबधु	१९४९	१९४५
	अमपुत्र	१९४४	१९४४
	सोमनाथ	१९४४	१९४४
	आममगीर	१९४४	१९४४
कुन्दावनमान बर्मा	बयं रसाम	१९४२	१९४२
	सयन	१९२५	१९४१
	गड़ कुञ्जार	१९२९	?
	प्रेम की भेंट	१९३१	—
	कुच्छली बक	१९३२	१९३२
	विछटा की पद्मिनी	१९३६	१९४८
	मुवाहिबन्तू	९४६	१९४६
	अमी की रानी	१९४६	१९४८
	कजमार	१९४७	१९४७
	अजस मेरा काई	१९४८	१९४८
	भुवनयनी	१९४	१९४४
	कभी न कभी	?	प्रथम
	प्रत्यापत	?	?
	सोना	१९४२	१९४२
	अमर बेत	१९४३	१९४३
	अहिंसा बाई	१९४३	१९४३
	अन्त हामीनों क खतून	१९२३	१९२३
	विजयी का हथाम	—	—
पारेय बेचन शर्मा 'अष्ट'			

		प्र०	सं
प्राथम्य बेचन धर्मा 'उग्र'	पुत्रपुत्रा की बेटी	१९२८	—
	मनुष्यार्मद (नाम से)	—	१९३३
	शराबी	?	१९३४
	बीजी बी	?	?
	कड़ी में कोयला	—	१९३५
शिवधरराज जैन	भाई	—	—
	जम्पाकसी	—	—
	हर हाइनम	—	—
	भाम्य	—	—
	मेप्पा-गुन	१९२६	१९२६
जनेश्वरकुमार	शरपाग्रह	१९३	—
	यह कौन की ?	१९३५	१९३३
	परम	१९३	१९३
	मुनीता (सि १९३४)	१९३५	१९३३
	स्यागपत्र (सि १९३६)	१९३७	१९३७
इलाचन्द्र बोधी	कस्याणी (सि १९३)	१९३६	१९३३
	मुल्ला	१९३२	१९३५
	विमत	१९३३	१९३३
	म्यतीत	१९३३	१९३३
	पुलामपी	१९२६	१९२६
विमाराजधरराज मुज	संन्यासी	१९४१	१९४६
	पर्व की रानी	१९४१	१९४१
	प्रेत धीर छापा	१९४५	१९४७
	निर्वासित	१९४६	१९४६
	मुक्तिपथ	१९३	१९३१
प्रतापनारायण धीवास्तव	जिप्पी	—	—
	मुबह के भूमे	—	—
	जहाज का पंछी	१९३३	१९३३
	गोह	१९३२	१९३२
	शन्निम आकोछा	१९३३	—
प्रतापनारायण धीवास्तव	नारी	१९३७	१९४१
	गूठ सच	१९३६	—
	बिद्या	१९२८	१९२८
	विकास	१९३८	१९४१
	विराज	—	—

प्रतापनारायण श्रीवास्तव
मगवतीचरण वर्मा

बयासीस
चित्रमेला
तीन वर्ष
टेढ़े-मड़े रास्ते
भाबिरी दीव
राम राष्ट्रीय
गोपी टोपी
पुष्प धीर मारी

प्र	सं
११४८	११४८
११४९	११४७
?	११४४
११४६	११४४
११४५	११४५
११४७	११४७
११४८	११४८

राजिकारमणप्रसाद सिंह

बछपाल

दुटा ठाण
बादा कामरेह
देणत्रोही
पानी कामरेह
दिम्पों

—	—
—	—
११४१	११४३
११४२	११४३
११४६	११४७
११४२	११४६

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निरासा'

अमिता
अष्टरा
असका
प्रभावती
निरासा
मुक्ति के बगन

११४८	११४८
११४६	११४६
११४१	११४१
११४३	११४३
११४६	११४६
११४६	—

मोक्षिन्वत्सल पन्त

कल्याण
धनुरापिनी
अमिताभ
एक मूत्र
गुरनही
प्रेमपत्र
भीठी चुल्हो
अमाव पत्नी
मुस्कान

—	—
—	—
—	—
११४६	११४६
११४६	११४६
११४८	११४८
११२९	—
११२५	—
११२८	—

अपवतीप्रसाद बाबूपेयी

त्यागमयी (गाम से)
साविता
प्रेमनिर्वाह
पतिता श्री साधना
पिपासा
दो बहनें

११२८	११२८
११२२	११२२
११३४	—
११३४	—
११३६	११३६
११३७	११४४
११४५	—

		प्र	सं
भगवतीप्रसाद बाजपेयी	मिर्मत्रण	१९४२	१९४२
	पुष्पवन	१९४	—
	ब्रह्मते-ब्रह्मते	१९४१	१९४१
	पतवार	?	?
	मनुष्य और देवता	१९४४	१९४४
	मयार्थ से भागे	१९४५	१९४५
उपाधेवी मिश्रा	बचन का योग	१९३६	?
	पिया	१९३७	१९३७
	जीवन की मुस्कान	१९३८	१९४४
	पतवार	?	१९४८
	नष्ट नीति	१९४५	१९४५
	सितारों का खेल	१९४	१९४२
उपेन्द्रनाथ 'धस्क'	मिस्त्री बीबारे	१९४६	१९४६
	बरम राख	१९४२	१९४२
	बड़ी बड़ी पाँखें	१९४४	१९४४
	सागर सहारे और मनुष्य	?	?
	नये मोड़	?	?
	बरीरे (मि १९४१)	१९४६	१९४६
उमेश राय	धबरे की भूख	१९३८	१९४५
	विपाद मठ	१९४६	१९४६
	मुर्खों का टीला (मि १९४६)	१९४८	१९४५
	धबरे के पुत्र	१९४३	१९४३
	बीबर	—	—
	उबास	—	—
उमेशचर भुल्ल 'धंभल'	छीपा-सादा रास्ता (मि १९४१)	१९४५	१९४५
	बड़ड़ी पुत्र	१९४५	—
	उलका	१९४७	—
	नयी हमारत	१९४७	?
	मर प्रवीण	१९४१	१९४१
	खेलर एक बीबनी (प्र भाग)	१९४	१९४५
उमेश	खेलर एक बीबनी (द्वि भाग)	१९४४	१९४५
	नदी के द्वीप	१९४१	द्वितीय
	हजारीप्रसाद द्विवेदी		
जर्मबीर भारती	बाणभट्ट की धारमकथा	१९४६	१९४४
	मुनारों का देवता	१९४८	१९४८

सहायक ग्रन्थ

४१२

	प्र	सं
धर्मवीर भारती	धूम्र का सातवाँ बोझ	१९४२ १९४२
प्रभाकर भाषणे	परशु	— —
	सीमा	१९४२ १९४५
विष्णु प्रभाकर	बलही राठ	? —
	" निधिकान्त (नाम से)	१९४२ १९४५
	राठ के बन्धन	१९४२ १९४२
मन्मथनाथ कुप्ट	सबसान	? ?
	पुरचरित्र	? ?
	चक्की	? ?
	बलि का बकरा	? ?
	होटल हि राज	? ?
	प्रवेर नयरी	? ?
मिश्रबन्धु	पुष्पमिश्र	— —
	उदयग	— —
राहुत सांकरायण	बीने के लिए (मि १९१९)	१९४ १९४८
	सिंह सेनापति	१९४२ १९४९
	विस्मृति क गर्म में	
	(मि १९२१ २२)	१९४५ १९४५
	खोने की बात	
	(मि १९२१-२२)	१९१० १९४६
	सँतान की धाँख	१९४५ ?
	मनुर, स्वप्न	१९४ —
	जो राठ से	— —
	सतमी के बच्चे	— —
	राजस्थानी समिवाह	
	(मि १९४२)	१९४१ १९४१
	विस्मृत यात्री (मि १९४१)	१९४२ १९४२
	जय बीजय	१९४६ १९४६
देवेन्द्र सराफा	कठपुतली —	१९४४ १९४४
	रज के पहिये	— —
मजदत धर्मा	इनसान	१९४१ १९४१
	महस धीर मजान	— —
	मनु	१९४१ १९४२
	इनसान	१९४४ १९४४
	बदसती राहें	? १९४४

		प्र	सं
भगवतीप्रसाद बाबूपेयी	निर्मलपण	१९४२	१९४२
	कुपचन	१९४	—
	बसते-बसते	१९४१	१९४१
	पतवार	?	?
	मनुष्य की रीति	१९४४	१९४४
	मार्ग से आगे	१९४४	१९४४
उपादेवी मिश्रा	बचन का मोल	१९४६	?
	पिया	१९४७	१९४७
	बीचन की मुस्कान	१९४८	१९४४
	पञ्चारी	?	१९४८
	मष्ट मीठ	१९४३	१९४३
	सितारों का खेल	१९४	१९४२
उपेन्द्रनाथ 'धरक'	बिछी दीवारें	१९४६	१९४६
	नरम पल	१९४२	१९४२
	बढ़ी बड़ी चीजें	१९४४	१९४४
उदयचंकर भट्ट	सागर लहरों की मधुर	?	?
	नये मोड़	?	?
	चरों (लि १९४१)	१९४६	१९४६
उपेन्द्रनाथ 'धरक'	धरों की मूक	१९४८	१९४३
	विपाद मठ	१९४६	१९४६
	मुलों का टीसा (लि १९४६)	१९४८	१९४३
	धरों के चुपचुप	१९४९	१९४९
	बीच	—	—
	उबास	—	—
	छीया-नाया रास्ता		
	(लि १९४१)	१९४३	१९४३
उपेन्द्रनाथ 'धरक'	बढ़ती धूप	१९४३	—
	उलका	१९४७	—
	नयी इमारत	१९४७	?
	मक प्रदीप	१९४१	१९४१
	रोखर एक बीवनी (प्र माय)	१९४	१९४३
धरक	रोखर एक बीवनी (प्रि माय)	१९४४	१९४३
	नदी के द्वीप	१९४१	प्रितीय
	हमारी प्रसाद दिनेश		
धर्मगौर भारती	बालभट्ट की धारमकना	१९४६	१९४४
	मुनाओं का खेल	१९४८	१९४८

	प्र	स
धर्मवीर भारती	१९१०	१९१२
प्रभाकर माधवे	—	—
विष्णु प्रभाकर	१९१२	१९१२
	?	—
मम्मनाथ कुण्ड	१९११	१९११
	१९११	१९११
	?	?
	?	?
	?	?
	?	?
	?	?
	?	?
	—	—
	—	—
	१९४	१९४०
	१९४२	१९४६
	१९४२	१९४२
	१९४०	१९४६
	१९४१	?
	१९४	—
	—	—
	१९४१	१९४३
	१९४२	१९४४
	१९४६	१९४६
	१९४४	१९४४
	—	—
	१९४१	१९४१
	—	—
	१९४१	१९४१
	१९४४	१९४४
	?	?

- अकॉडियानिबम ३८
 अर्चन विस्वर मार्चस ३२६ ३२८
 अमका १७४ १८३ १९९
 अमिज संला ४८ ४९
 अमीकाना और चामीस जोर ४९, ३१९
 अरक से उपेन्द्रनाथ अरक
 असाधारण (अपूर्व) धीष्ण १७१
 अरुणी ३९
 गृह भाव और पूर्णसह ४७ ९२ १२५ १६८ १७६
 महिष्यावार्ड ८६ १३३ ३४
 आ
 आभी ११४ १२६, १४२ १४५ २२३ ३४४ ३४९, ३४९ ३८८ ३९८ ३९९
 आइन्स्टीन ४१९
 आइन्स्टीन ९५ १६३
 आलो जिय से कम माह विमर
 आलोटी हाँ ८२ १२४ १२६ १९३ १९४ २४२
 आय ११४
 आये बड़े समय ११९ १७२
 आइसी बान ३८
 आइसी ३३
 अतीव का पर्यवेक्षण से भूतकाल
 पर्यवेक्षण
 आरमदाह १९१
 आरम बीड १ १ १३१
 आरच हम्मति २३ २७ ७७
 आरम हिन् २३ २७ ७७ १६८
 आधुनिक साहित्य २३३, ३३४
 आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और
 मनोविज्ञान १९७ २९८ ३ १
 ३ ४
- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास
 २४ १९२ ३६१
 आनन्दमठ, ४८
 आप्टर मेंनी ए सपर बाइक दि स्वन
 ११
 आम्सोमोव १ ३
 आरम्भवाला ३३
 आरवेस जार्ज १११
 आराम की छाँड़ी (आराम्ब टॉड)
 ११२
 आर्कटीना ४
 आर्नेनिस ४
 आर्ट एण्ड सोसाइटी ३२६
 आर्ट क्लाइड ३२३ ३२४ ३२७
 आर्टिस्ट ११९ १४१
 आर्तमनोव ११७ २११ २१२ ३३३
 ३३४ ३३५
 आर्तमीन घो-न-आम्ब साइरस ३९
 आर्न स्नायट आर्न दि वेस्टर्न एण्ड
 ११४
 आसा ११६
 आरचर्मम वर्प ३८
 आरचर्म कृताम्ब ४९, २४
 आस्टिन केन ३२ ४७ ९२ ९३,
 ९९ १२३ १२८ १६८ १७६
 १७७ २२३ २६ ३३७ ३९९
 ४१ ४१२ ४१७
 आस्मोम्की ११९, १२६ २२२
 ३३७
 आस्मण्ड ९२
 ३
- इमिथ नॉबिल वि १८६ २३२
 इमिथ नॉबिल एडवाम्ब थॉऊ वि
 १८
 इमिथ नॉबिल दि थोथ थॉऊ वि
 ३६ १ २

इंग्लिश मॉडल वि हिस्ट्री ऑफ़ वि
 ३३, ३६, ३८ ४ ४२, ४३
 ८६, १ १ १ २ ११२, ३२२,
 ३६७
 इम्प्लिड मिन्ट्रेवर एण्ड बाइब्लियान
 इन वि ट्वेन्टीएथ सेंचुरी १ ७
 इषा घन्ता की ४३ ४६
 इम्प्लियाना ६४
 इटालियन ६१
 इन वि चान्सेरी १ ६
 इनसान ८२ २१६
 इनसाइ, १३४ १३३ १८ २२
 २२१
 इम्बिरा ६८
 इयूजिने ग्रान्दे ६७
 इयुयूज ३८ ४२
 इलाक़ा बोधी ८१ ८४ ८३, १२३
 १२४ १२३ १२७ १३ १३३
 १४ १४८ १३३ १३३ १३७
 १३६, १६ १६२ १७१ १७८
 १७६ १८२ १८४ १८६ २ ३
 २ ६, २ ८, २२८ २३३ २३७
 २४३, २४६ २४८ २४६, २३
 २४१ २४२ २४३ २४४ २४६
 २६४ २६३, २७३ २७७ २८
 २८२ २८६ २८१ २८१ २८२,
 २८३ २८४, २८६ २८८ ३ ६
 ३ ८ ३१८ ३१६, ३२ ३३२
 ३४ ३४१ ३६१ ३८१ ३८२,
 ३८३, ३८३ ३८४ ४ १४ ४
 ४१३ ४१८ ४२
 इतिवट (एतिवट) चार्ज ६६, १
 १ १ १ २, १३१ १३२ १३६
 १४८ १६३ १६६, १७७ २३६,
 २३७ २४३ ४१ ४१३ ४१४
 इतिवट ३४

इन्सुशन एण्ड रीयलिटी २८
 इवान इवानोविच १२ १७२ ३३८
 इवान इवानोविच और इवान निकि-
 फ़ोरोविच का झगड़ा ६६
 इनायुशन हेरिडिटी एण्ड बेरियेशन
 ३६४ ३६३
 ई
 ईडेल मिमोन १४ १३१ २६४
 ईपर ११३
 ईस्टमैन मैक ४१६
 उ
 उद्य रे बेचन चर्मा
 उडास्को के बाएचर्य ६१
 उत्तर का एक मनुष्य १ ६
 उद्यमनारायण बाबपेयी ३३
 उद्यमचक्र मद्र, ८३ १३४ १३८
 १३३ १६२ १७६, १८६ २३०
 २४ २४१ २४४ ३४१ ३४७
 ३६८ ४ ४ ६ ४ ७ ४२
 उन्नीस जी चौदावी १११
 उपनिषद् ४३ ४४
 उपेन्द्रनाथ 'असक' ८३ ८४ १२४
 १२६, १३४ १३८ १३३ १३४
 १३४ १६६, १६६, १७६, १८६
 २ १ २ २, २०३ २१८ २२
 २२१ २३८ २४, २४२ २४४
 २६४ २६६, ३ ६ ३१ ३४१
 ३४२ ३४७ ३८२ ३८३ ३८६,
 ३८६ ३८७ ३८६, ४
 उर्ध्व घातरे व ६६
 उल्का ८२, ८३ १३३ २१८ २१६,
 २४१ ३६
 उपाधवी मित्रा ७७ ७८ ८१ ८६
 १३ १३८ १३३ १६८ १६६
 १७४ १८६ १६, १६३ १६४
 ३४१ ३८६ ४ ३

यज्ञदत्त शर्मा

साधारण

छलोस्तरनाथ रेणु

दुस्वप्न

हसराम खबर

धमुराय

डा देवराज

नरमीनारायण साम

ननार्दन मुक्तिदूत

विजयदास मिश्र

सहायक ग्रन्थ

	प्र	सं
अन्तिम चरण	—	—
मुनिया की छापी	१९४४	१९४४
दीवान रामदयाल	१९४६	१९४६
रतिनाथ की छापी	१९४८	१९४९
बलचमया	—	—
बाबा बटेसरनाथ	—	—
नई पीप	१९४९	१९४९
मेता धीवस	१९४४	१९४७
परती परिक्रमा	१९४७	१९४७
माधुच्छा का मूल्य	१९४७	१९४७
माया ज्ञान	१९४९	१९४९
स्वाधीनता के पक्ष पर	?	?
मुच्छल	?	?
ककर (मि १९४४)	१९४४	१९४४
बीज	१९४६	१९४६
पक्ष की खोज	१९४६	१९४६
बया का बोलना और छाप	—	—
धमुरा उपन्यास	१९४९	१९४९
बहुती संया	१९४९	१९४९

नामानुक्रमणिका

अ	अधा करेगिता १ ३ १३७ १४४
अधारे की मूख ८७ १६१	१४६ १४८ १६३ १६८, २३६
अधारे के बुधुन १२३	२४७ २४९ २४४ ३ ६ ३ ७
अधारे के बसता है कासे बसता	३६ ३६८ ४ ७ ४ ८ ४९
अधारे मूमि १ ३ १ २ १७३ १२३	अधारेगिता १२
१६ २३६ ३४३	अधारेगिता ८२ १२ १४३ १२६
अधारेगिता ३३	१६४ ३४९
अधारेगिता ११६ १२३ ३४७	अधारेगिता १७९
अधारेगिता ३३	अधारेगिता धीरे धीरे १ ३ १ २,
अधारेगिता मरा कोही, २	१३३ १६३ २३७ २४७ २४४
अधारेगिता मूमि २४३	३४२ ३८६ ३६ ४ ८, ४९
अधारेगिता मूमि धीरामम् बात्स्यायन	४९३
२८ ८३ १२७ १२८ १३३	अधारेगिता (अधारेगिता) धीरे १७९
१३७ १३८ १४८ १४९ १४३	३४६
१४८, १७७ १७८ २ ६, २ ७	अधारेगिता १७४ १६
२०८ २२८ २३३ २३७ २४४	अधारेगिता धीरे धीरे ११९
२४३, २४६ २४८ २४८, २४९	अधारेगिता की धीरेगिता १७४
२४३ २४४ २४२ २४३ २४८	अधारेगिता धीरे ३८
२४३, २४८, २८ २४९ २४२	अधारेगिता धीरे ४
२४३, २४६ २४८ ३ ६ ३ ८	अधारेगिता धीरे ७६, ७६ १६२
३१ ३१८, ३२० ३८२ ३८३	१७४ १८१ १८२ १८३ ३४९
३८३, ३८२ ३८३ ३८८, ४ २	अधारेगिता २१८ २२
४ ४ ४९३ ४९८ ४७	अधारेगिता धीरे १८८
अधारेगिता है रामेश्वर धीरे	अधारेगिता ८७
अधारेगिता ओसक, ४९ ३७	अधारेगिता धीरे १ ६
अधारेगिता १ ६	अधारेगिता १७६ २१४ २१३
अधारेगिता धीरे ३३	अधारेगिता ४७ ८ ३३२
अधारेगिता ३६७	अधारेगिता धीरे ४६ ३४
अधारेगिता धीरे ३०८ ३७६	अधारेगिता धीरे ३३
अधारेगिता धीरे ७६ ७७ १६ १६८	अधारेगिता धीरे ४६ ३२
१७४ १८८, १८ ३३३	३७
अधारेगिता धीरे धीरे धीरे १ ६	अधारेगिता धीरे ३८

- धर्मोदयानिबन्ध ३८
 धर्म विस्मर मार्गस ३२६, ३२८
 धर्मका १०४ १८३ १८
 धर्मिक सेवा ४८ ४८
 धर्मिका और नालीस चोर ४८,
 ३१८
 धर्म के उपेक्षनाय धर्म
 धर्मधारण (धर्म) धर्म १७१
 धर्म ३२६
 धर्म ३१८
 धर्म मार्ग और धर्म ४७ ८२ १२४
 १६८ १०६
 धर्मिका ८६ १२३ ३४
 धर्म
 धर्म ११४ १२६, १४२, १४३,
 २२३, ३४४ ३४३, ३४६ ३८८
 ३८८ ३८८
 धर्मिक ४१८
 धर्मिक ८३ १६३
 धर्मिक के कम मार्ग विस्मर
 धर्मिक ८२, १४४ १२६
 १८३ १८४ २४२
 धर्म ११४
 धर्मिक समय ११८ १७३
 धर्मिक नाल ३८
 धर्मिक ३३
 धर्मिक का परवर्षण के धर्मिक
 धर्मिक १८१
 धर्मिक १ १ १३१
 धर्मिक २३ २७ ७७
 धर्मिक २३ २७ ७७ १६८
 धर्मिक २३३, ३३४
 धर्मिक १८७ २८८ ३ १
 ३ ४
- धर्मिक हिन्दी साहित्य का विकास
 ३४ १८२ ३६१
 धर्मिक ४८
 धर्मिक मेरी ए धर्मिक दि स्वन
 ११
 धर्मिक १ ३
 धर्मिक ३३
 धर्मिक १११
 धर्मिक की धर्म (धर्मिक रॉड)
 ११२
 धर्मिक ४
 धर्मिक ४
 धर्मिक सोसाइटी ३२६
 धर्मिक ३२३ ३२४ ३२७
 धर्मिक ११८ १४१
 धर्मिक ११७ २११ २१२, ३३३
 ३३४ ३३४
 धर्मिक-धर्मिक-धर्मिक साहित्य ३८
 धर्मिक धर्मिक धर्मिक दि स्वन फर्म,
 ११४
 धर्मिक ११६
 धर्मिक धर्मिक ३८
 धर्मिक धर्मिक ४८ ३४
 धर्मिक ३२ ४७ ८२ ८३,
 ८८ १२३ १२८ १६८ १७६,
 १७७ २२३, २६ ३३७ ३८८,
 ४१ ४१२ ४१७
 धर्मिक ११८ १२६ २२२
 ३३७
 धर्मिक ८२
 धर्मिक ३
 धर्मिक धर्मिक दि १८६ २३२
 धर्मिक धर्मिक एधर्मिक धर्मिक दि
 १८
 धर्मिक धर्मिक दि धर्मिक धर्मिक दि
 ३६ १ २

इन्सिडिग नॉबिल बि हिस्ट्री ऑफ दि
३३, ३६ ३८ ४ ४२, ४३
८६, १ १ १ २ ११२, ३२२
३६७

इन्सिडिग मिटरेयर एण्ड बाइबियाज
इन दि टुवेन्टीएथ सेंचुरी १ ७

इंसा प्रस्ता जी ४३ ४६

इन्सिडिगना ६४

इन्सिडिगना ६१

इन दि चाम्पेरी १ ६

इनसाल ८२ ३१३

इन्साल, १३४ १३३ १८ २२
२२१

इन्सिडिग ४८

इन्सिडिगना ६७

इन्सिडिगना ३८ ४२

इन्सिडिगना ८१ ८४ ८५ १२३

१२४ १२५ १२७ १३ १३३

१४ १४८ १५३ १५५, १५७

१५६, १६ १६२ १७१ १७८

१७६, १८२ १८४ १८६ २ ३

२ ६ २ ८ २२८ २३३ २३७

२४३ २४५ २४८ २४९, २५

२५१ २५२ २५३ २५४ २५६

२६४ २६५, २७३ २७७ २८

२८२ २८६ २८९ २९१ २९३,

२९३ २९५, २९६ २९८ ३ ६

३ ८ ३१८ ३१९ ३२ ३३२

३४ ३४१ ३४३ ३८१ ३८२,

३८५, ३८६ ३८८ ४ १४ ४

४१३ ४१८ ४२

इन्सिडिग (एन्सिडिग) बार्न ६६, १ ०

१ १ १ १ १ १११ ११२ ११६

११८ ११९ १२६, १७७ २३५,

२३७ २४३ ४१ ४१३ ४१५

इन्सिडिग ३३

इन्सिडिग एण्ड रीयलिटी २८

इन्सिडिग इन्सिडिग १२ १७२ ३३८

इन्सिडिग इन्सिडिग ऑर इन्सिडिग मिनि
फेरोविन का ब्यगडा ६६

इन्सिडिगना हेरिडिटी एण्ड वेरिफिकेशन
३६४ ३६५

ई

ईडेन मिगोन १३ १३१ २६४

ईयर ११३

ईन्सिडिगना मीन ४१६

उ

उप दे वेचन बार्न

ब्रह्मस्फो के बावर्च ६१

उत्तर का एक मनुष्य १ ६

उत्तराखण्ड बावर्च ३३

उत्तराखण्ड भट्ट ८३ १३४ १३८

१५३ १६२, १७५, १८६ २३

२४ २४१ २४४ ३४१ ३४७

३४८ ४ ४ ६ ४ ७ ४२

उत्तरी सी बार्न १११

उत्तरीय ४३ ४४

उत्तरीय 'बार्न' ८३ ८४ १२४

१२६, १३४ १३८ १३९ १४४

१६४ १६५, १६६, १७५, १८६

२०१ २ २, २०३ २१८ २२

२२१ २३८ २४ २४२ २४४

२६४ २६६ ३ ६ ३१ ३४१

३४२ ३४७ ३८२ ३८६ ३८८

३८९ ३९७ ३९८, ४

उत्तरी बार्न ३६

उत्तरी ८२, ८३ १३३ २१८ २१९

२४१ ३६

उत्तरीय मिना ७७ ७८ ८१ ८३

१३ १३८ १३९ १६८ १६९

१७४ १८६, १९ १९३ १९४

३४१ ३८६ ४०३

एन्टेमोरेरी स्टडीज ३२७
 कठपंख बासेन्टीन ११८, १५६ १७२,
 २३८
 कपासरित्सागर ४४
 कपान की बेटी २५, २६ १२५, १३२
 कबूतर के पंख १ ४ १३७
 कमी न कमी ८४ १६१ ४०३
 कम मारि बिजुल २२७ २४३
 कणाय १ ५
 कर्मभूमि ६६ ७१ ७४ १४२, १४३
 १५५, १५८ १८८ २१ २११
 २१२, २१३ ३३४ ३३६
 कलकत्ता एड्स १२१ १२२, ३७६
 कला क्या है ? के आर्ट क्लब इन
 कल्याणी ५३ ८१ १३८ १३८,
 १४३ १५८, १६८ १८८, २
 २८५, २८८ ३ १ ३११
 कम्बरी का मार्ग ११८, १४१
 काठन ११७
 काबर की कोठरी ५७
 काँइबेल क्रिस्टोफर, २७ २८ ३४४
 काष्ठ ३२६
 कारक डेविड ३०
 कारम्बरी ४३ ४५, ८७
 कानराड बोठु १ ८
 काम्मुएलो २४
 कान्तिस्तेन बी ११८
 काँउका के २२८, ३
 कामुक है वेम एमी
 कामाकुरा ६५, ६६, ६८, ७ ७१
 ७४ १३७ १४२, १५८ २१
 ३३५, ३३६
 कार्पेटर, एडवर्ड १ ७ १ ८
 कामेन २६
 कामिगु बिजयम बिहारी २८ १५५,
 २३२

काले देवता ११६ १५७ १६ १७१
 ३ ८ ३१ ४ १
 कास्टनर ई ३८, ८८ २६ २४
 २७, २८
 किर्लेण्ड १
 किपिंग रजयार्थ ३२२
 किप्स १०८
 किरामे के लिए, १ ८
 किशोरीसाल पोस्वामी ४५, ४६, ५३
 ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५८,
 ७६ १२३ १२८, १५२ १६८
 १७४ १८३ १८४ १८६ १८७
 २३२ २३३ ३३२, ३३३ ४ ६
 ४२
 कुच विचार २६ ३३४
 कुटीर वासिनी
 के तरण उपस्थिती
 कुम्भीयक, ७७ १३ १६८ १८८,
 १८१ ३३३ ३३८, ४ ३
 कुमारपाल प्रतिबोध ४४
 कुमारसंभव ४४
 कुमुदकुमारी ५४ १२३ १८६ १८७
 २३३ ३३३ ४ ६
 कुस्तुनगुनिया का धारण ३५
 कुपुकाण्ड का नवीयताया ४८
 कुप्या ३५
 केक धीर सराव १११
 केमिसर्ज २५
 कोबेतोव १५६, ३३८ ३२८
 कोबेनिकोव धर्मवती १२६ १३४
 २२२ ३३८, ३८७ ३८८ ३८८
 कोपयेवा एलोनिना १२ १७२
 ३३८ ३८७
 कोपीन २३
 कोमम्बो २६
 कोहलर बोल्फार्थ २२८

कोपिक रे विस्वम्भरमाण समी

मनुप्रिन धनेस्वीधर, ११७

कडे सोनेटा २५४

क्रेणे बेनिदिछो १ ७

कोम मेसो ११

कसारिधा हारलो ४७ ८६ ६ २३२

किलवेज ३५

किलम सुगिन ११७

कलेसी ३६

कले हियर, १ ६ १५

कवन्दीन डर्बाड २५

कवेवे-वो-ई बिस्मिगास ३६

का

किलकीवाला कमरा ११ १३३ २४५

११४ ३१५

कोटी टकसासी ३१६

कोई मङ्गळी ११२

क

कडडा ११७

कडकुम्हार, ८६ १३

कतिरीध ११८

कनकोर, एडमण्ड-व ३३३

कनकोर, बूस-व ३३३

कनकोर भाई १ ५, १६१ ३६२ ३६३

कनकायष्टन १ ५, ४१३

कवन ६५, ६६, ६६ ७ ७४ १३३

१३७ १८८ २११ २३५ २६१

३३५ ३३६ ३३८ ३८२

कनकायष्टन ८३ १३४ २४ २४४

३४७ ३६१ ३८२ ३८३

कांकी टोपी ८१

कांकी मो क० ५८ ६

काइ मैनासि ६५, १६३

काविण, बोयोधीन ८६, १२३ १५७

२४७

काईमोव कोरिख १२ ३५८

कास्तवर्धी जान ६० १ ८ १०६,

११ १२३ १२८ १३१ १४६

१५ १७५ २२५ २३५ ३३३

३३४ ३४३ ३४७ ४११ ४१२

४१३

कास्केल मिष्ठिख ६२

गिरली बीधारे, ८३ १२६ १३४

१५३ १६४ १७५, २ १ २ २,

२ ३ २१८ २३८ २३६, २४४

२६४ २६५, ३ ६ ३१ ३३३

३४१ ३४२ ३४७ ३८१ ३८६,

३८६, ४

गिल व्हा ८८ ६६

गिस्सिल कार्क १ ६ ३३७

कुबमान बाल फावण ३६

गुच्छन २१८ २१६ २२०

गुनाहो का देवता ८२ १३८ १५४

२ १ २ २ २४४ २८६ २६४

३ ६, ३४१ ३४२, ३६३ ४ ६

४ ७

गुण गोवला ५४

गुच्छन ८२ १७४ २१४ २१८

२१६, २२

गुवाको हगोट, १११

योगोल निकोलाइ वासिस्तेविच ६६

१२३ १३२ १५६

मोद ७७

मोहान ५६ ६६, ६७ ६६ ७ ७१

७२ ७३ ७५, ८ १२४ १२६

१३६ १३७ १४१ १४२, १४३

१४४ १४५ १५३ १५८ १६६

१७५, २१ २११ २३० २३५,

२३८ २६१ ३३३ ३३५, ३३८,

३३६ ३८५, ३८६ ४११ ४२

मोपालरान महमरी ४६, ४६, ५१

५४ ५६, ५७ ५६ ७१

नोर्की मेक्सिम ३ ७३ ११७ ११६
१२८ १३४ १३६ १६३ १७१
२१ २१२ ३३३ ३३४ ३३७
३३२, ३३४ ३३६ ३८७ ४१

नोमी ८७ १३६

नोलोव्योव कुटुम्ब १ ७

नोव्हस्मिग घोलिवर ४७

नोव्हस्मिग पन्त ८७ १२६ १३३

न्याम ११७

नोमी नार्म एच १३८ १६ १६६
३६६

न्यावकोव पी ११८ ११६, १३३,
१७१ ३३६

नोव स्पीट ३६६

न

नारीबा ८३ १३४ १८४ ३३ ३३१

नृणा के समय ११६

नृणामबी (मज्जा) १३ १७१ २ ४

नोरे के बाहर, ३१६ ३१७

न

नन्की १६१

नन्की घुप ८१ १३३ २१८ ११६,
२४१ ३३६ ३६

ननुरवेन घास्त्री ७६, ७७ ७६ ८२
८६ ८७ १२६, १३१ १३६
१३३ १३४ १३६ १६८ १६६
१७४ १८४ १६१ १६३ १६४
२१६ २३३ २३४ २६ ३४१
३४६ ३६१ ३६८ ३७१ ३७२
३७३ ३७६ ३७७ ३८१ ४ ३
४२

नन् हसीनों के खतुन ७६

नन् धीर छ रेंग १११

नन्क्राप्ता ४६, ४७ ४८ ५३ ५४
६ ७६ १२३ १३२ १६८ ३१६

नन्क्राप्ता सगति ४८ ५३ १३२

३१६

नन् पर पहासा मनुष्य १ ८

नन्सेखार पाठक ३३ १७४ ३६१

नन्नावसीया कुलटा कुतुम्ब ५३ ५७

नन्ना ३३ ३३, ३६ ३६, ७६ १२३
१३२ १६८ १७४ १८६, ३३२

३३३

नन्नीहीन ११३ ११६

नन् रिचर्ड ३६ १ २

नन्ते-नन्ते ८३ १३ १३४

नन्दी का नम्य १ ६

नन्तेरी में १ ६

नार्म रेंगिहसन ८६

नन्सेला ७८ ७६ १३८ १६३
३८६, ३८१

नोवट, ८७

नोवट एण्डन पी ७३ १ ७ १२८
१३२ १३४ १७१ ३४३ ३४७

३४८ ३८७

न

नन्क्रिग वित्तमी १२ १२३,
१२६, १३३, २२२ २२३ ३३८
३३६

नन्नावप्रसाद धर्मा ६८ ६६

नन्मोहनसिंह ठाकुर ४६, ७४

नन्म पून छटे, १ ६

नन् ११३ १२७

नन्नावप्रसाद भ्या 'त्रिज' ३३४

नन् सूरज निकलता है १२ ३३८

नन् मीनेन ८६

नन्नाकर प्रसाद ४८ ७६ ७७ ७८
७६, १३ १३३ १३८ १३६

१६८ १६६ १७४ १८३ १८४

१८६ २३३ २३४ ३३७ ४२

नन्ना ईमार ६२

नन्नी ओसक २७२ २७३ २८४

कीलिक दे निवन्मरगाव समी

मनुमिग धसेनवैण्डर, ११७

मने सोनेटा २५४

मोवे बेनिरितो १ ७

मोम यलो ११

मसारिसा हारलो ८७ ८६ ६ २३२

मिलयेव ३५

मिलम समिन ११७

मलेसी ३६

मले हूंगर, १ ६ १५

मलेष्टीम बर्बाड ६३

मवेवे-वा-ई मिल्लियाव ३६

म

मिङ्कीवाला कमरा ११ १५३ २४५,

३१४ ३१५

मोटी टकसासी ३१६

मोई मङ्की ११२

म

मङ्गा ११७

मङ्गुङ्गा, ८६ १३

मयिरोव ११८

मनकोर एङ्गमङ्ग-व ३६३

मनकोर बूल-व ३६३

मनकोर माई १ ५, १६१ ३६२ ३६३

मनकासक १ ५, ४१३

मनन ६३, ६६, ६६ ७ ७४ १३६

१३७ १८५ २११ २३५, २६१

३३५, ३३६ ३३८ ३८३

मरम रास ८३ १३४ २४ २४४

३४७ ३६१ ३८२, ३८३

मापी टोपी ८१

मापी मो ८ ५५ ६

माह मेनरिय ६३, १६३

माठिए, भीमोपीम ५६, १२३ १५७

२४७

मारबोव बोरिस १२ ३३८

मासवर्दी भाग ६ १ ८ १ ६,

११ १२३ १२८ १३१ १४६

१५ १७५, २२५ २३५ ३३३

३३४ ३४३ ३४७ ४११ ४१२

४१३

मास्केम मिथिज ६६

मिरली भीबार्दे, ८३ १२६, १३४

१५३ १६४ १७५, २ १ २ २,

२ ३ २१८ २३८ २३६, २४४

२६४ २६५ ३ ६ ३१० ३३३

३४१ ३४२ ३४७ ३८६ ३८६

३८६ ४

मिल ब्ला ८८ ६३

मिल्लिया बार्दे १ ६ ३६७

मुबमान बाल कायव ३६

मुष्म २१८ २१६ २२

मुनाहो का बेवला ८२ १३८ १५४

२ १ २ २ २४४ २८३ २६४

३ ६ ३४१ ३४२ ३६५ ४ ६

४ ७

मुल मोहना ५४

मुखस ८२ १७४ २१४ २१८

२१६ २२

मुठाको इमो, १११

मोगोल मिफोलाइ बासिल्येविच ६६

१२३ १३२ १५६

मोव ७७

मोबाग ६६, ६६ ६७ ६६ ७ ७१

७२ ७३ ७५, ८ १२४ १२६

१३६ १३७ १४१ १४२ १४३

१४४ १४५ १५३ १५८ १६६

१७५, २१ २११ २३ २३५

२३८ २६१ ३३३ ३३५, ३३८,

३३६ ३८५, ३८६ ४१३ ४२

मोपासराग गहमरी ४६, ४६, ५३

५४ ५६ ५७ ५६ ७६

गोर्नी मैक्सिम ३ ७३ ११७ ११८,
१२८ १३४ १३६ १६३ १७१
२१ २१२, ३३३ ३३४ ३३७
३३२ ३३४ ३३६ ३८७ ४१

गोमी ८७ १५८

गोलोन्सपोव कुटुम्ब १ ७

गोल्डस्मिथ ग्रोसिबर ४७

गोविन्दबस्मन पण्ट ८७ १२८ १३३

ग्राम ११७

ग्रैंवो कार्म एच १३८ १६ १६६
३६६

ग्राहकोव बी ११८ ११८, १३५,
१७१ ३३६

ग्रेव स्ट्रीट ३६३

घ

घरौडा ८३ १३४ १८४ ३३ ३३१

बुला के समय ११६

बुणामबी (सज्जा) १३ १७१ २ ४

बोरे के बाहुट, ३१६, ३१७

च

चक्की १८१

चङ्गी रूप ८१ १३३ २१८ २१८
२४१ ३३८ ३६

चतुरसेन शास्त्री ७६, ७७ ७८ ८२
८६ ८७ १२८, १३१ १३६
१३३ १३४ १३८, १६८ १६८
१७४ १८४ १८१ १८३ १८४
२१६ २२३ २३४ २६ ३४१
३४८ ३६१ ३६८ ३७१ ३७२,
३७३ ३७६ ३७७ ३८१ ४ ३
४२

चन्द इमीनों के अतूठ ७६

चन्द्र घोर छः पेंस १११

चन्द्रकाश ४६ ४७ ४८ ५३ ५४

६ ७६, १२३ १३८, १६८ ३१८

चन्द्रकाश सज्जति ४८ ३३ १३२

३१८

चन्द्र पर पहला मनुष्य १ ८

चन्द्रसेनार पाठक ५३ १७४ ७६१

चन्द्रावतीया कुमटा कुतुहल ५३ ५७

चपसा ५३ ५५, ५६ ५८, ७६ १२३

१५२, १६८ १७४ १८६, ३३२

३३३

चरिमहीम ११५ ११६

चर्च रिचर्ड ३६ १ २

चलते चलते ८३ १३ १३४

चांदी का चमक १ ८

चम्पेरी में १ ८

चान्स प्रीविसन ८८

चिचमेला ७८ ७८, १३८ १६३

३८८, ३८१

चीवर, ८७

चैत्रन एन्टन पी ७३ १ ७ १२८

१३२ १३४ १७१ ३४३ ३४७

३४८ ३८७

छ

छक्रिजन विजयी १२ १२५

१२६ १३५, २२२ २२३ ३३८

३३८

छगन्नामप्रसाद शर्मा ६८ ६८

छगमोहलसिंह टाकुर ४८ ४८

छाया पुन छटे, १ ८

छत्र ११३ १२७

छनादनप्रसाद भा 'छिन्न' ३३४

छत्र मूरज निकमठा है १२ ३३८

छत्र योथिय ८६

छत्राकर प्रसाद ४८ ७६ ७७ ७८

७८ १३ १३३ १३८ १३८

१६८ १६८ १७४ १८३ १८४

१८८ २३३ २३४ ३३ ३३

छत्राकर ईगार ६२

छत्रो जोछत्र २७२, २७३ २७३

कीर्ति ३६ विद्वत्प्रमाण घर्मा

क्युप्रिम घसेर्ष्वधर, ११७

कञ्ज छोनेटा २५४

कोचे यतिरिचो १ ७

कोम यलो ११

कमारिस्ता हारलो ४७ ८६, ९ २३२

किसिबेख ३५

किसिम सगिन ११७

कलेली ३६

कले हिएर, १ ३ १५

कलेण्डीन कर्वाड ६५

कलेने-दो-ई विस्मितास ३६

क

किङ्करीबासा कमरा ११ १५३ २४४

३१४ ३१५

कोटी टकसामी ३१६

कोई लङ्की ११२

ख

खड्का ११७

खड्कुण्डाट, ८६, १३

खिरीक ११८

खनकोट, एडमण्ड-व ३३३

खनकोट, जूल-व ३३३

खनकोट बाई, १ ५, १११ ३१२ ३३३

खनबासाऊव १ ५, ४१३

खनन ६३, ६६, ६८, ७ ७४ १३६

१३७ १८८ २११ २३५ २६१

३३५ ३३६, ३३८ ३८५

खरम राय ८३ १३४ २४ २४४

३४७ ३६१ ३८८, ३८९

खोपी टीपी ८१

खोपी मो क ५८ ६

खाइ र्मनरिच ६५ १३३

खाण्ड, भीमोलीन ८६ १२३ १५७

२४७

खार्बलोव खोरिच १२ ३३८

गास्तबर्दी खान ६ १ ८ १६,

११ १२३ १२८ १३१ १४६

१५० १७५ २२५, २३५ ३३३

३३४ ३४३ ३४७ ४११ ४१२

४१३

गास्केस मिथिच ६६

गिरली बीमारें ८३ १२६ १३४

१५३ १६४ १७५, २ १ २ २,

२ ३ २१८ २३८ २३९, २४४

२६४ २६५, ३ ३ ३१० ३३३

३४१ ३४२ ३४७ ३८६ ३८६

३८६, ४

गिल व्मा ८८ ६३

गिल्सिच बार्ब १ ६ ३६७

गुनमान बाल फाकाय ३६

गुण्डम २१८ २१६ २२

गुनाहों का वेवता ८२ १३८ १५४

२ १ २०२ २४४ २८३ २८४

३ ६, ३४१ ३४२ ३६५ ४ ६,

४ ७

गुण्य गोबना ५४

गुस्वत्त ८२ १७४ २१४ २१८

२१६, २२

गुसाको हयोट, १११

गोमोल निकोलाह बासिस्वेविच ६६,

१२३ १३२ १३६

गोब ७७

गोबान ५६ ६६, ६७ ६८, ७ ७१

७२ ७३ ७५, ८ १२४ १२६

१३६ १३७ १४१ १४८, १४९

१४४ १४५ १५३ १५८ १६६

१७५, २१ २११ २३, २३५,

२३८ २६१ ३३३ ३३५, ३३८,

३३८ ३८५, ३८६ ४१३ ४२

गोपालराम बहुमयी ४६, ४८, ५१

५४ ५६ ५७, ५८ ७६

मोर्फी मसिहम ३ ७३ ११७ ११८
१२८ १३४ १५६ १६३ १७१
२१ २१२ ३३३ ३३४ ३३७
३५२ ३५४ ३५६ ३८७ ४१

गोली ८७ १३८

गोसोन्मोव कुटुम्ब १ ७

गोस्वस्मिय धर्मिबद्, ४७

गोस्विन्वस्तम पन्थ ८७ १२८ १३३

ग्राम ११७

ईजो कार्ल एच १३८ १६ १६६
३६६

स्मारकोव बी ११८ ११८, १३३
१७१ ३३६

मेव स्पीट ३६६

घ

घरीहा ८३ १३४ १८६ २ ३३१

घुणा के समय ११६

घुणामयी (मग्ना) १३ १७१ २ ४

घेरे के बाहुर, ३१६, ३१७

च

चन्की १८१

चक्री धूप ८१ १५३ २१८ २१८
२४१ ३३८ ३६

चतुरसेन दास्वी ७६, ७७ ७८ ८२
८६ ८७ १२८ १३१ १३६

१३३ १३४ १३८ १६८ १६८

१७६ १८४ १८१ १८३ १८४

२१६ २३३ २३४ २६ ३४१

३४८, ३६१ ३६८ ३७१ ३७२

३७३, ३७६ ३७७ ३८१ ४ ३

४२

चम्प हसीनों के कदम ७६

चम्प घीर छः वें १११

चन्द्रकान्ता ४६ ४७ ४८ ५३ ५४

६ ७६ १२३ १५२, १६८ ३१८

चन्द्रकान्ता सन्तति ४८ ५३ १५२

३१८

चन्द्र पर पद्मा मनुष्य १ ८

चन्द्रसेखर पाठक ५३ १७६ ३६१

चन्द्रावलीया कुलटा कुतुहल ५३ ५७

चपला ५३ ५३ ५६ ५८, ७६ १२३

१५२ १६८ १७६ १८६, ३३७

३३३

चरिबहीन ११३, ११६

चर्च रिचर्ड ३६ १ २

चलते चलते ८३ १३ १३४

चाँदी का चम्मच १ ८

चन्देरी में १ ८

चार्ल्स चैम्बलन ८८

चित्रलेखा ७८ ७८ १३८ १६३

३८८ ३८९

चीवर, ८७

चेन्नै एष्टन पी ७३ १ ७ १२८

१३२ १३४ १७१ ३४३ ३४७

३४८ ३८७

छ

छात्रिकन वितली १२ १२३,

१२६ १३३, १२२, २०३ ३३८

३४८

छगनामप्रसाद शर्मा ६८ ६८

छगमीनसिंह ठाकुर ४८, ५४

छाँगल फूम छटे, १ ८

छत्र ११३ १०७

छनादनप्रसाद म्या 'डिज' ३३४

छत्र सूरज निकलता है १२ ३३८

छत्र योथेय ८६

छत्राकर प्रसाद ६८ ७६ ७७ ७८

७८ १३ १३३ १३८ १३८,

१६८ १६८ १७४ १८३ १८४

१८८ २३३ २३४ ३३ ४२

छत्राच ईमार ६२

छत्रो मोसक २७२, २७३ २८४

कीचिक के विप्लवग्रामाद्य क्षमा
 क्युमिन् धसेवर्द्धक, ११७
 क्कडे छोनेटा २३४
 कोके केनिन्टो १ ७
 कोम येसो ११
 कसारिस्ता हारलो ४७ ८६ ६ २३२
 क्लियेच ३५
 क्लिम सपिन ११७
 कमेसी ३६
 कस हुंगर, १ ६ १५
 कवेन्डीम डर्वाड ६५
 कवेवे-बो-ई मिलिगाछ ३६
 क
 किङकीनाला कमरा ११ १३३ २४८
 ३१४ ३१५
 कोटी टमसासी ३१६
 कोई लङ्की ११२
 क
 काङ्हा ११७
 कङकुम्पाट, ८६, १३
 कतिरोच ११८
 कनकोर एडमण्ड-ड ३३३
 कनकोर कुल-व ३३३
 कनकोर मार्ड, १ ५, १३१ ३६२ ३६३
 कनकासञ्ज १ ५, ४१३
 कबल ६३ ६६, ६६ ७ ७४ १३६
 १३७ १८८ २११ २३५, २६१
 ३३५, ३३६, ३३८ ३८५
 गरम राख ८३ १३४ २४ २४४
 ३४७ ३६१ ३८२, ३८३
 काँची टोपी ८१
 काँची मो क ५८ ६
 काइ मैगरिण ६५, १६३
 गाविण, पीयोनील ८६, १२३ १५७
 २४७
 गार्डमोच बोरेल १२ ३५८

गास्सवर्डी जान ६ १ ८ १ ६,
 ११ १२३ १२८ १३१ १४६
 १५ १७५ २२५ २३५ ३३३
 ३३४ ३४२ ३४७ ४११ ४१२,
 ४१३
 गास्केल मिशिज ६६
 गिरती बीवाट, ८३ १२६ १३४
 १३३ १६४ १७५ २ १ २ २
 २ ३ २१८ २३८ २३६, २४४
 २६४ २६५ ३ ६ ११ ३३६
 ३४१ ३४२ ३४७ ३८६ ३८६
 ३८६ ४
 गिल क्मा ८८ ६३
 गिस्सिण बार्ड १ ६ ३३७
 गुबमान वाल फालवा ३६
 गुष्ठन २१८ २१६ २२
 गुनाहो का बैवता ८२ १३८ १५४
 २ १ २ २ २४४ २८३ २८४
 ३ ६ ३४१ ३४२, ३६५, ४ ६
 ४ ७
 गुप्त मोहना ५४
 गुबलत ८२ १७४ २१४ २१८
 २१६ २२
 गुसाको हबोर, १११
 गोबोल मित्रोलाह बासिस्मेविच ६६,
 १२३ १३२ १५६
 गोड ७७
 गोबाल ५६ ६६ ६७ ६८, ७ ७१
 ७२ ७३ ७५, ८ १२४ १२६
 १३६ १३७ १४१ १४२ १४३
 १४४ १४५, १५३ १५८ १६६
 १७५, २१ २११ २३ २३५,
 २३८ २६१ ३३३ ३३५, ३३८
 ३३६, ३८५ ३८६ ४१७ ४२
 गोपामराम महमरी ४६, ४६ ५३
 ५४ ५६ ५७ ५८ ७६

मोर्नी मैमिस ३ ७३ ११७ ११८
१२८ १३४ १३६ १६३ १७१
२१ २१२ ३३३ ३३४ ३३७
३२२ ३२४ ३२६, ३८७ ४१

गोपी ८७ १२८
गोलोन्मोव कुटुम्ब १ ७
गोल्डस्मिथ डॉलिगर ४७
गोल्डस्मिथ पन्थ ८७ १२८ १२९
ग्राम ११७
ग्रेको कार्म एच १२८ १३ १६६
३६६
ग्लासकोव बी ११८ ११८, १२२,
१७१ ३२६
ग्लेब स्पीट, ३६६

ग

गरीग ८३ १२४ १८४ ३२ ३२१
गुणा के समय ११६
गुणामयी (लग्ना) १३ १७१ २ ४
ग्रे के बाहर, ३१६, ३१७

ग

गवकी १८१
गड़दी बुप ८१ १२३ २१८ २१८
२४१ ३२८ ३६
गगुरदेन घास्वी ७६, ७७ ७८ ८२
८६ ८७ १२८ १३१ १३६
१२३ १२४ १२८ १६८, १६८
१७४ १८४ १८१ १८३ १८४
२१६ २३३ २३४ २६ ३४१
३४८, ३६१ ३६८ ३७१ ३७२
३७२, ३७६ ३७७ ३८१ ४ ३
४२

गम्ब हमीनों के बागुन ७६
गम्ब मोर छः पेंस १११
गम्बाम्बा ४६ ४७ ४८ २३ २४
६ ७६ १२३ १२२, १६६ ३१८
गम्बाम्बा सम्पति ४८ २३ १२२,

३१८
गम्ब पर पहला मनुष्य १ ८
गम्बोहर पाठक २३ १७४ ३६१
गम्बाम्बा कुलटा कुलुहल २३ २७
गम्बाम्बा २३ २३ २६ २८ ७६ १२३
१२२ १६८ १७४ १८६, ३३२
३३३

गम्बाम्बा ११६, ११६
गम्ब रिचर्ड ३६ १ २
गम्बाम्बा-गम्बाम्बा ८१ १३ १३४
गम्बाम्बा का गम्बाम्बा १ १
गम्बाम्बा में १ १
गम्बाम्बा गम्बाम्बा १
गम्बाम्बा ७८ ७८ १३८ १६३
३८८, ३८१

गम्बाम्बा, ८७
गम्बाम्बा गम्बाम्बा ७३ १ ७ १२८
१२२ १३४ १७१ ३४७ ३४७
३४८ ३८७

ग

गम्बाम्बा गम्बाम्बा १२ १२२,
१२६ १२२, २२२ २२३ ३२८
३२८

गम्बाम्बा गम्बाम्बा १८ १८
गम्बाम्बा गम्बाम्बा ४८ २८
गम्बाम्बा गम्बाम्बा, १ १
गम्बाम्बा ११३ १२७
गम्बाम्बा गम्बाम्बा ३३४
गम्बाम्बा गम्बाम्बा १२ ३२८
गम्बाम्बा गम्बाम्बा ८६

गम्बाम्बा गम्बाम्बा ४८ ७६ ७७ ७८,
७८, १३ १२३ १२८ १२८,
१६८ १६८, १७४ १८३ १८४
१८८, २३३ २३४ ३२ ४२
गम्बाम्बा गम्बाम्बा १२
गम्बाम्बा गम्बाम्बा २७२, २७३ २८४

कोषिक दे विद्वत्प्रमदनाथ धर्मा

कपुप्रिग धमेकवम्बर ११७

कूडे सोमेटा २५४

क्रीचे वेनिरिपो १ ७

क्रीम येसो ११

कसारिसा हारलो ४७ ८६ ६ २३२

किसयेज ३५

किलम रामिन ११७

कलेली ३६

कले हंगर, १ ६ १७

कलेष्टीन डर्बाड ६३

कलेवे-हो-ई विस्मिगास ३६

का

किलकीबाला कमरा ११ १५३ २४८

३१४ ३१५

कोटी टक्कामी ३१६

कोई लङ्की ११२

क

कडडा ११७

कडकुण्डार, ८६ १३

कठिरोम ११८

कनकोट, एडमण्ड-व ३६३

कनकोट, बूल-व ३६३

कनकोट भाई १ ५, १६१ ३६२ ३६३

कनकायप्रज १ ५, ४१३

कवन ६५, ६६, ६६ ७ ७४ १३६

१३७ १८८ २११ २३५, २६१

३३५, ३३६ ३३८ ३८५

कसरम राम ८३ १३४ २४ २४४

३४७ ३६१ ३८२, ३८३

कापी टोपी ८१

कापी मो क ५८ ६

काइ पैनरिग ६५, १६३

काठिए, बीमोधीम ८६, १२३ १२७

२४७

काईलाव बोरिस १२ ३३८

कास्तवर्षी जान ६ १०८ १ ६,

११ १२३ १२८ १३१ १४६

१५ १७५, २२५ २३३ ३३३

३३४ ३८३ ३४७ ४११ ४१२

४१३

कास्वेल मिथिज ६६

कास्वेली बीबार्, ८३ १२६ १३४

१३६ १६४ १७५, २ १ २ २,

२ ३ २१८ २३८ २३६ २४४

२६४ २६५ ३ ६ ३१ ३३३

३४१ ३४२ ३४७ ३८६ ३८६

३८६ ४

कास्वेल ८८ ६३

कास्वेली बार्ज १ ६ ३६७

कास्वेली बाल कासव ३६

कास्वेल २१५ २१६ २२

कास्वेली का बेवठा ८२ १३८ १५४

२ १ २०२ २४४ २८३ २६४

३ ६ ३४१ ३४२, ३६५ ४ ६

४ ७

कास्वेली बाला ५४

कास्वेल ८९ १७४ २१४ २१८

२१६, २२

कास्वेली हयोर, १११

कास्वेली निधोलाह कास्वेली ६६

१२३ १३२ १५६

कास्वेल ७७

कास्वेल ५६ ६६ ६७ ६८, ७ ७१

७२ ७३ ७५, ८ १२४ १२६

१३६ १३७ १४१ १४२ १४३

१४४ १४५, १५३ १५८ १६६

१७५ २१ २११ २३ २३५,

२३८ २६१ ३३३ ३३५, ३३८

३३९ ३८५, ३८६ ४१३ ४७

कास्वेली बाला ४६, ४८, ५३,

५४ ५६ ५७ ५८ ७६

गोर्की मैक्सिम ३ ७३ ११७ ११८,
१२८ १३४ १३६ १६३ १७१
२१ २१२ ३३३ ३३४ ३३७
३३२ ३३४ ३३६ ३८७ ४१

गोमी ८७ १३८

गोलोब्योव कुटुम्ब १ ७

गोल्डस्मिथ प्रोडिगर, ४७

गोविन्दबल्लभ पन्त ८७ १२८, १३३

ग्राम ११७

ग्रैबो कार्ल एच १३८ १६ १६६
३६६

ग्राहकोव वी ११८ ११८ १३३,
१७१ ३३६

ग्रेव स्ट्रीट, ३६६

घ

घरीबा ८३ १३४ १८४ ३३ ३३१

घुला के सम ११३

घुलामबी (सख्वा) १३ १७१ २ ४

घेरे के बाहर, ३१६ ३१७

च

चक्की १८१

चक्री रूप ८१ १४३ २१८ २१८
२४१ ३३८ ३६

चक्रसेन शास्त्री ७६, ७७ ७८ ८२

८६ ८७ १२८, १३१ १३६

१३३ १३४ १३८ १६८ १६८

१७४ १८४ १८१ १८३ १८४

२१६, २३३ २३४ २६ ३४१

३४८ ३६१ ३६६ ३७१ ३७२

३७३, ३७६ ३७७ ३८१ ४ ३

४२

चम्ब हसीनी के बरत ७६

चम्ब मीर छ पेंड १११

चम्बकान्ता ४६ ४७ ४८ ५३ ५४

६ ७६, १२३ १३२, १६८ ३१८

चम्बकान्ता सन्धि ४८ ३३ १३२

३१८

चन्द्र पर पहला मनुष्य १ ८

चन्द्रशेखर पाठक ३३ १७४ ७६१

चन्द्रावलीया कुलटा कुतुहल ५३ ५७

चपला ५३ ५३ ५६ ५८, ७६ १२३

१३२ १६८ १७४ १८६, ३३२

३३३

चरित्रहीन ११३, ११६

चर्च रिचर्ड ३६ १ २

चलते चलते ८३ १३ १३४

चांदी का चम्पल १ ८

चम्परी में १ ८

चार्ल्स प्रिंसिपल ८८

चित्रलेखा ७८ ७८ १३८ १६३

३८८, ३८९

चीवर, ८७

चिह्न एम्पनपी ७३ १ ७ १२८

१३२ १३४ १७१ ३४३ ३४७

३४८ ३८७

ज

जगदिन विपरी १२ १२५,

१२६ १३३, २२२ २२३ ३५८

३३८

जगन्नाथप्रसाद शर्मा ६८ ६८

जगन्मोहनसिंह अकुर ४८ ४४

जंगल फूल उठे, १ ८

जन्म ११३ १२७

जगदीशप्रसाद भट्ट 'दिन' ३३४

जब सूरज निकलता है, १२ ३३८

जब योनेस ८६

जयसकर प्रसाद ४८ ७६, ७७ ७८

७८, १३ १३३ १३८ १३८,

१६८ १६८ १७४ १८३ १८४

१८८ २३३ २३४ ३३ ४२

जलधर ईमार ६२

जसो सोष्ठ २७२ २७३ २८४

बाही देवता भी नहीं जाते ११
 बाहाज का पछी ८५ १२३ १३
 १५६ १७८ १८२ १८४ २४५,
 २४६, २४७, २४९ ३१६ ३४१
 ३८२ ३८३ ४ ४ ४१३
 बाइमबिल ३५
 बाँ घोर पाल ३६१
 बाँ खिस्ताले ८५ ११४ १४७ १४८
 १४६, १४४ १४५ १७२, २७८-
 २७५ ३१६, ३६६, ३६७ ३७१
 ३७२ ३७३ ३७४ ३८
 बाँ-न-ना रोच ६५
 बाँ-न-न-बाँ १२५, १७७
 बाभरल ६१ ७२ १८५
 बाभस बिम्ब ३२, ७४ १११ १२७
 १५१ १७
 बाजं डब्बू एस २६, ९३१
 बाबको माइनेस १२ ३५८
 बाभूस (मासिक) ५४
 बिनीबिए ११५, ११६, १५७ १७१
 ३१६
 बिम्बा पानी के मिबिब बाटर
 बिप्पी २८६
 बी बी बी १९८ १७४ १६२ ३७६
 ४ ४
 बीव बाग्र ७४ ११५ १३२
 १३३ १३६, १३७ १५८ १७१
 १७५, १७७ २३७ २४८ २४६,
 २५१ २६५ २८७ ३१२ ३१३
 ३१६ ३६२, ४ १
 बीने की बिबि ३१८
 बीने के लिए, ८६, १३३
 बीनन की मुस्कान १३, १९८
 १५३ १९८ १६३ ३८६
 बीनन बल के मिबिब बाटर
 बूट १ ४ १७७

पूरबीन् १५६ ३५८
 बेकन का कमरा ११३
 बेग बागूर ६६
 बेम्स हेनरी १ ४ १ ८ १३१
 १३२ १३४ १३७ १३८ १५६,
 ४ ४ १
 बरोमकी १४२
 बेमिंगल १०५, ३६५, ३७४ ३७७,
 ३७८ ३८
 बेस्तास्ट ३
 बैक १६
 बैनेन्कुमार, ७७ ८ ८१ ८२
 ८४ ८५, १२८ १३ १३३
 १३८ १३६, १५३ १५५, १५७
 १५६, १६ १६८ १७१ १७७
 १७८ १६३ १६६ २ १ २२८
 २३५ २४४ २४५, २४८ २४६
 २५१ २५२ २५३ २५४ २६
 २६४ २६५, २७५ २७८ २८३
 २८४ २८६ २८१ २८२, २८३
 २८५, २८६, २८७ २८८-३ ४
 ३ ६ ३ ७ ३ ८ ३११, ३१८
 ३१६, ३२ ३३६, ४ १ ४ २
 ४ ४ ४१८ ४२
 बी लो गया ११६, १५७ १६
 १७१ १७७ २४८ २५१ २६५,
 २६१ ३ ६, ३१ ३२१ ३६२,
 ४ १
 बीला एमील १ ५, १०६, ११४
 १२५, १२६ १५० १६१ १७४
 २५३ ३१२ ३६२ ३६६ ३६८
 ३८
 बीसक एन्ड्रय ४७ ६ १८३ २३२
 ४
 बीसी की रागी ८६, १३७ १३८
 १५३ ३४, ४१३

भुतिना की छापी १३४ १३३ १७६,
१८३, २४२ ३३३ ४ ४१८
त
टाप बोम्ब ४७ ६ १२३, १८३
२३२
टाम काका की कुटिया ४७
टु सेट १ ६
टूटे काटे ८६
टेढ़े-येढ़े रास्ते ८२, १२४ १२७
१३८ १६६ २१२, २१३ २४२,
३४३ ३४४, ३४६ ४ ४ ४ ६
४ ७ ४१३
टेल १ ४ १३१ १७७
टैटलर ४१
ट्रामप एम्पेनी ३२४
ट्रिस्ट्रम घींघी ६ १२३, १३१
ट्रेक्टर माइलम्ब १
त
ठा वृत्तान्त नामा ४७ ४८
ठेठ हिन्दी का ठाट ३३ ३७
त
ठाइंग कलचर स्टडीज इन ३३४
ठाइवेरा के बाइवेरा
ठाटर्स एण्ड एण्ड १११
थानकास्टर, ३७
थानविक्स्ोट १३१
थानभक्तिक्स थॉडि नेचर, २१७
२२६, २३
थार्क एजम्स के काले बेबता
थारिन थार्स ११७ ३७
थिकेल्स थार्स ४७ ६७ ६८ ६९
१ ४ १ ६ १२३ १२८ १३१
१५६ २२५ २३२, २३५ ३३७
३३८ ४१
थिमोनी थामस ३८, ३६
थीफो डेनिश ४३ ८६ १३१

थीमोड ३६७
थुलोवस्की ६३, १३२
थे एण्ड नाइट ११३
थेकर थामस ३८ ३६
थेकामेरा ३७ ८७ १३१ ३ ४
थेलफीन ६३
थेनिज कापरफील्ड ४७ ६८ १२५
थोरजेसे ११४
थोरियन से १ ६
थूपमा थलेक्यूडर ६४ ६५ १२३
१३२
थुबेर थेम्स २७७ २ ३
त
तंग कोना १११
तंग करवाका ११५, ११६, १५७
१३८ १७१ १७७ २६७ २४८
२३१ २६५, २८६ ३१२, ३१३
४ १
तट के बथन ८२, १३८ १३४ १३६
१६६
तारों ११३
तारण तपस्विनी या कुटीर-वासिनी
४६, ४ ३३ ३७ १६८ १७४
१८६, २३३
तार्ई (पार्ई) १७१ २४७
तारस परिवार, १२ ३३८
तारा ३४
ताल्स्ताय थलेक्सी ११६ १४१
ताल्स्ताय मियो ३ १ ३ ११८
१२३ १२५, १२६, १२८ १३२,
१४ १४१ १३७ १४४ १४५,
१५६ १५८ १६३ १६६ १६६,
१७१ १७६, १७७ २२५, २३५,
२३६ २३७ २४३ २४७ २४१
२४३ २४४ २६ २६१ ३ ६,
३ ७ ३१५ ३२३ ३२४ ३२७

बहो देवता भी नहीं आते ११
 बहाल का पंखी ८५ १२३ १३
 १२१ १७८ १८२ १८४ २४५,
 २४६, २४७, २४८ ३१६, ३४१
 ३८२ ३८३ ४ ४ ४१३
 बाईमबिस ३३
 बाई घोर पास ३६१
 बाई बिम्बाके ८५ ११४ १४७ १४८
 १४६ १६४ १६५ १७२, २७
 २७५ ३१६ ३३३ ३६७ ३७१
 ३७२ ३७३ ३७४ ३८
 बाई-बा रोष ६३
 बाई-बा-बा १२३, १७७
 बाबरस ६१ ७२ १८५
 बाबस बेम्स ३२, ७४ १११ १२७
 १५१ १७
 बाजें डण्डू एल २६, २३१
 बाबेंको माइफल १२ ३५८
 बासुव (मासिक) ५४
 बिनीबिएव ११५ ११६, १३७ १७१
 ३१६
 बिन्दा पानी के बिबिय बाटर
 बिन्दी २८६
 बी बी बी १६८ १७४ १६२ ३७६
 ४ ४
 बीट, घाल ७४ ११५ १३२
 १३३ १३६, १५७ १५८ १७१
 १७५, १७७ २३७ २४८ २४६,
 २५१ २६५ २८७ ३१२ ३१३
 ३१६, ३६२, ४ १
 बीने की बिबि ३१८
 बीने के लिए, ८६, १३३
 बीवन की मुस्कान १३ १३८
 १५३ १६८ १६३ ३८६
 बीबिठ अस के बिबिय बाटर
 बूट १ ४ १७७

पूरबीन्व १५६, ३५८
 बेकव का कमरा ११३
 बेग घघूर, ६६
 बेम्स हेगरी १ ४ १ ८ १३१
 १३२ १३४ १३७ १३८ १३६,
 ४ ४ १
 खरोम्की १४२
 बेमिनल १ ५, ३६३, ३७४ ३७७,
 ३७८ ३८
 बेस्टास्ट ३
 बीक १६
 बेनेन्नुमाट, ७७ ८ ८१ ८२
 ८४ ८५, १२८ १३ १३३
 १३८ १३६, १३३ १५५, १५७
 १५६, १६ १६८ १७१ १७७
 १७८ १६३ १६६-२ १ २२८
 २३५ २४४ २४५, २४८ २४६,
 २५१ २५२ २५३ २५४ २६
 २६४ २६५, २७५, २७८ २८३
 २८४ २८६ २८७ २८८-३ ४
 ३०६ ३ ७ ३ ८ ३११ ३१८
 ३१६, ३२ ३३६, ४ १ ४ २
 ४ ४ ४१८ ४२
 बा बी पया ११६, १२७ १६
 १७१ १७७ २४८ २५१ २६५,
 २६१ ३ ६, ३१ ३२१ ३६२,
 ४ १
 बीसा एमील १०५, १ ६, ११४
 १२५, १२६ १५ १६१ १७४
 २५३ ३१२ ३६२ ३६६ ३६८
 ३८
 बीसक एण्डु ४७ ६ १८३ २३२
 ४
 मांती की राणी ८६, १३७ १३८
 १५३ ३४ ४१३

मुनिमा की घावी १३४ १५३ १७६,
१८३, २४२ ३३३ ४० ४१८
 ख
टाम बोम्ब ४७ ६ १२३, १८३
२३२
टाम काका की कुटिया ४७
टु सेट १ ६
टूटे काटे ८६
टेढ़े-मेढ़े रास्ते ८२, १२४ १२७
१३८ १६६, २१२ २१३ २४२,
३४३ ३४३, ३४६ ४०४ ४ ६
४ ७ ४१५
टेस १ ४ १३१ १७७
टैटसर ४१
टालप एम्पेनी ३२४
ट्रिस्टम बीगडी १ १२३, १३१
ट्रेवर माहर्लाम्ब १
 ख
ठम वृत्तान्त माला ४७ ४८
ठिठ हिन्दी का ठाट ५३ ५७
 ख
ठाहा कलवर हटडीज हन ३३४
ठाहरेण दे बाहरेण
ठाहर्त एण्ड सम्ब १११
ठालकास्टर, ३७
ठालनिक्कसोट १३१
ठापलेफिटम्ब प्रॉफ मेजर, २१७
२२६, २३
ठाफ एजम्स दे कासे देवता
ठाबिन चार्स ११७ ३७
ठिकेम्ब चार्स ४७ ६७ ६८ ६६
१ ४ १ ६ १२३ १२८ १३१
१३६ २२५ २३२, २३३ ३३७
३३८ ४१
ठिमोनी थामस ३८ ३६
थीफो थिथिएल ४३ ८१ १३१

थीमोज ३६७
थूबोवस्की ६५, १३२
थ एण्ड लाइट ११३
थेकर थामस ३८ ३६
थेकामेरा ३७ ८७ १३१ ३ ४
थेलफीन ६३
थेविड कापरफील्ड ४७ ६८ १२५
थोगजेले ११४
थोरियन पे १ ६
थूमा थोमेरनीयर ६८ ६५, १२३
१३२
थुवेर जेम्स २७७ २८३
 ख
थंग कोना १११
थंग बरणाबा ११३, ११६, १३७
१३८ १७१ १७७ २३७ २४८
२५१ २६५ २८६ ३१२ ३१३
४ १
थट के बबन ८२ १३८ १३४ १३६
१६६
थर्गे ११३
थरुण थपलिननी था कुनीर-बासिनी
४६ ३ ३३ ५७ १६८ १७४
१८६ २३३
थार्ई (नार्ई) १७१ २४७
थारस परिबाट, १२ ३३८
थाया ३४
थास्त्याम थोमेथो ११६, १४१
थास्त्याम मियो ६ १ ३ ११८
१२३ १२५ १२६ १२८ १३२,
१४ १४१ १४७ १४४ १४५,
१४६, १४८ १६३ १६६ १६६,
१७१ १७६ १७७ २२५, २६५,
२३६ २३७ २४३ २४७ २४१
२५३ २५४ २६ २६१ ३ ६,
३ ७, ३१५ ३२३ ३२४ ३२७,

३३६, ३३७ ३४८ ३५५, ३८५,
३८७ ३८८ ३८ ३८१ ३८२
३८८ ४ ४ ४ ८, ४१ ४१५,
४१७

साधियन ३५

सिमिस्म होयकका ४८ ४८

सीन पतोह ५३ ५७

सीन पीडिमी ११७

सीन बहम ११७ १२७ २८ २८४

३ =

सीन मय ८१ १२४ १०६, १३४

१८८ २४२

सीन घाहुर ३६५, ३६६

सीर्षाटक का प्रयाय ४

सुमिब इमान ७३ १ ३ १ ५,

१२३ १२४ १२६, १२८ १३२

१३३ १३६ १३७ १५६, १६

१६१ १७६, २३५, २३६ २३७

२४२ २४३ २५ २५१ २५२

३३३ ३३७ ३४३ ३४५, ३४८

३५५, ३८७ ३८८, ३८९ ४११

४१३

सेनेमाक क बीरकत्य ३८

छावा मैना ८८ ४८, ६

स्यापपम १३ १५३ १६८ १७८

१८३ १८७ १८८ १८८ २७८

२७८ २८८ ३ १ ३ २ ३ ७

४ ४

स्यापमयी ७६, १३ १६८ १८३

१८८ १८

सिमुवनमिह १८२

सिबेगी ५३ ४७

म

मोमम छाता मी ३७ ८७ १ २

१६१ ३७४

मोमम ह्यगी मी ३७ ८७ १ २

१६१ ३७४

मीवास्ट बंश (कुटुम्ब) ११५, १४८

मीकरे मिस्त्रिम मेकपीस ४७ ८७

८८ ८८ १२३ १३१ १३६,

१७६ १८३ २२५, २३२ ३२४

३३७

मी सिस्टर्स दे सीन बहनें

६

मम्म मेमा है मीमिटी छेयर

मयानम्ह सरस्वती १८१

मयकुमारचरित ४५

माहुराति ८८ १३१

मावा कामरेड ८१ १२६ १३८

२१५, २८७ २८८ ३ ८ ३४

३६ ४०५

माहे माल्कोम १ २ १ ३ १ ४

१६ १७१

मानिएम होराण्डी १ १

मास्तामबस्की पयोबीर मिछेमोबिच

६ १०३ १ ५ १२३ १२५,

१२६ १२७ १३२, १३३ १३७

१४४ १५६, १६३ १७१ १७६,

१७७ १७८ २२५ २३५, २३६

२३७ २४३ २४७ २४८ २५३

२५४ २५७ २६५, ३१३ ३२५,

३३७ ३४२ ३४८ ३८५, ३८७

३८८ ३८९ ३८२ ४ १ ४ ८,

४१ ४१३ ४१५

दि रियोस्ट १ २

दि मोरुन बाठम १ ४

दिन पीर पाठ ११३

दि प्रम घाँऊ टाइटन १११

दि मैन घाँऊ प्रोपटी १३१

दि मागेस्ट जर्नी ११

दि मास्ट गर्म ११२

दि मास्ट दे घाँऊ पाप्पी १५

हिस्सी का बसाल १६८ १८१ १८२
 बि बिम्ब घाँऊ बि बब १ ४
 बि बे घाँऊ घाल पनेरा १३३, ३६७
 बिम्बा १३८ ४२
 बि ब्हाइट रंगी १ ६
 बि बिस्वर सून १ ६
 बि स्पाइस घाँऊ व्याइलन १ ४
 बीज देन १ ६
 बुब-बुर्मा ४२
 बुलबुल १३ १८१ १८२
 बुल्लेन बाब ११३, १४७ १४८
 १४८ १७२, ३६२
 बुनरी नदी १ ६
 बेबा परबा ३४
 बेबकी का बैटा ८७
 बेबकीमन्दल बाबी ४६ ४७ ४ ३३
 ४४ ४७ ४८, ९ ७९ १२३
 १३२ १६८ ३६८ ४२
 बेबकुली की प्रवृत्ति ३३
 बेबराज १७७ १६७, २ ७ २४४
 २४४, २४६ २४७ २४८ २६३
 २६२, २६६, २६८ ३ १ ३ ४
 ३१ ३१८ ३६३, ४२
 बेबराजी मिठानी ५३ ३७
 बेबी प्रोपरी ३४
 बेबेन्द्र सराया ८३ १३४ १३८
 १३३ २१६ ३७७ ३४८ ३४८
 बेगप्रोही ८१ २१३ ३ ८ ३६
 बी बान या मुकदम की सनक ६३
 बीज बीरन लीन्व ११
 बीन जपम्यास १४४ १४३ २२३,
 २३ ३ ३, ३ ६ ३ ७ ३६३
 ३३३ ३३७ ३३८ ४१३
 बी मगरी की बहानी ६८
 बीन मदी बीरे बहणी ११८ १४१
 बीन समुद्र की बहानी ११८ १४१

बी बहने ३३ ३७ ८१ १३ १७४
 बन्त बुल ११७
 बारकाप्रसाद ३१६ ३१७
 बारिकाप्रसाद चतुर्वेदी ३४
 ब
 बर्म परीक्षा के भांडियल
 बर्मपुत्र ८७ १३१ १७४ २१६
 ३४१
 बर्मवीर भारती ८२ ८७ १३८
 १३२ १४४ १३८, १६१ २ १
 २ २ २४४ २८३ २८२ २८४
 ३४१ ३४२, ३६२, ३६३, ४ ६,
 ४ ७ ४१८ ४१८
 बागिक ८६
 बागिल पट १११
 बाट मडली ३८
 बाट रतिकपास ४६ ३३
 बाबे की टकसासी ११३
 ब
 बगर बीर बर्म ११८ १७१ ३३६
 बगल बा ११८
 बगीच द्वीप ८३, १३३ १३३ १७८
 २ ७ २३७ २४४ २४५ २४६
 २४६ २४१ २४२, २४३ २४४
 २६३, २६१ २६६, ३ ६, ३१
 ३२ ३८२ ३८३ ३८३ ४ २
 बगुलारे बागपेदी ७४ ७३, १६२,
 २३३, ३६२
 बगामाहिल गय प्रबल १६२, ३६२
 बगीच नीली बगीच ११६ १७३ १२६
 १४२ १४३ १७१ २२२, २२३
 ३४६, ३४६, ३४७ ३४८ ३८७
 ३ ८
 बगीच पीठ ८३ १३४ १६३ २४२
 बग मोड़ ८२ १३४ १३८ १६६,
 २४४

नरमेघ १७४

नरेञ्जनी की घाई ६३

नरेन्द्रमोहनी १६८

नवमखरंज १२६ १४२, ३४६ ३५५

नवाएर मारिट ३७ १३१ ३ ४

नष्ट नीक ८३ १३८ १६८

नामाकुल ८३ १२४ १२६, १२८

१३ १३४ १३२ १३३ १३६

१७५, १६३, २४२ २६२ ३३१

३३२ ३४१ ३४८ ३८६ ३६१

४ ४ ४ ४१४ ४१८ ४२

नॉन कोर ३६६ ३७३

नॉनदाम-ब-पारिस ६४

नाना १ ४ ३१० ३६५, ३७८

नारी ८ ८१ ३८६

नार्थमर एबी ६२

नॉबिस एण्ड दि पोपुल दि १८ ३३४

नॉबिस दि टेक्नीक ऑफ़ दि १३६

१६ १६७ ३६७

नॉबिस टुडे दि १८५

नॉबिस दि साइकोलॉजिकल १३

१५१ २६४

नॉबिस राइनिंग दि टेक्नीक ऑफ़

१६ २५७

नॉबिस दि मिनिंग १३३

नविमिरिट घनि नॉबिस् ए, २६ २३१

नविमिस्ल् नोट घनि ४

नविमिस्ल् मिनिंग बयोंप्राफ़ी

ऑफ़ पेस ६७ १ २ १६१

३७४

नानिबैतोपाक्याल ४३ ४६

निजमेयेवना गलीना १२ १७२,

२२२

निजालग निजमेयी ६८

निर्मलता ८२ १५३ १७४

निराला के मृगनाग निपाटी

निरुपमा ७६ १६४

निर्मला ६४ ६६, ७ ७४ ७५,

१३६, १३७ १७३, १८७ १८८

१८६, १६ २११ २३३, २३८

२६१ ३३५, ३३६ ३३८ ३५३

निर्वासित ८१ ८४ १३ १३३

१५६ १६२ १६६ २ ४ २ ५,

२४४ २४५, २४६ २५ २५२

२५३ २७६ २७६ २८६ २८७

२६३ २६४ २६७ ३४ ३८२

३६४ ४ २ ४ ३ ४ ४

निधिकान्त १२६ १३४ १३८ १५४

१६२ १६६

निस्सहाय हिम्नू, ३२ ३७ ३३२

४ ६

नूतन खरित ४६, ५२ ५७

नूतन ब्रह्मचारी ५२, ५७

नूरजहाँ ८७

नॅरो कॉमर, १११

नॅरा बॉमस ३८

नो घाईनरी खमर १२६

न्यूबरी का बीक ३८

४

नंजनाला साप ११२

नंजनाल ४४

नशिता की साधना ७६ ७८ ८१

१३ १७४ १८३ १८६ १६

नथ की लोम २ ७ २४४ २४५

२४६ २४७ २६६, ३१ ३८२

३८३

नथचारी १३ १३३ १६८ १७४

१६ १६४ ३४१ ४ ३

नरध ७७ १३ १३३ १७८ १६७-

१६६ २७८ २७६, ३३६

नरती परिकषा ८३ १२७ १३८

१४३ १४६ १५१ १५४ १७२

१७६, २२४ २३ २६२ ३४३
 ३४६ ३४६ ३८७ ४ ६४ ८
 ४१४ ४१५
 परिच्छेद की परिसमाप्ति १ ६
 परीक्षा पुनः २७ १३७ १७४ १८२
 २३२ ३२२
 पर्व की रानी ८४ १५३ १७१ २ ४
 २७६ २८६, २९ ३८९
 पर्वर्तनमिटी एष्य प्रॉम्प्टेस्य बाँक
 एडजस्टमेन्ट ९८१
 पवित्र पापी १६३ ३१७
 पवित्र मुक्त ४
 पद्यलोक १११
 पवित्र के मोर्चे पर सब कुल छात्र
 ६ ११४
 पाँच शहरों की मन्ना १ ६
 पामेला ४७ ८६, ९ १३१ १८३
 २३२
 पाम्पी का धर्मिम दिन ६३
 पार्टी नामरेड ८१ २१३, ३४
 ३६
 पार्बोनीस्ठा ४
 पार्म का सम्पादी ६७
 पॉन सन्त ३५
 पाल धीर बर्जीनी ६१
 पॉलिसियम बोरिस १२१ १७२ ३३८
 पाविस बॉन डूपर १ ३ १६२
 ३६३
 पास्के का इतिहास ११३
 पिकनिक पेपर्स ६८
 पिता धीर पुनः (बाप-बेटे) १ ३
 १५६ १६ १६८ २३६ २३२
 ३४५ ३६१ ४१३
 पिर्मागोरस ३३
 पिपासा ८१ १३ १६८, १७४
 ४ ५

पियस ११८
 पियर्सन ३७
 पिया ७७ ७८ १३ १५३ १६८
 १७४ १६ १६३ ४ ६
 पिसग्रिम्मा प्रॉग्रस ४
 पिलनिमाक बोरिस ११८ ११६,
 १५३, ३५६
 पिसेम्स्की १ ७
 पुनः धीर प्रेमी ३६२ ३६३
 पुनर्बाधन १५६ २३६ २३७ २४७
 २५१ ३६ ३६१ ४ ६ ४१
 पुरप धीर स्त्रियाँ १११
 पुरपों से अधिक स्त्रियाँ १११
 पुनीश वृत्तान्त मामा ४७
 पुविक्तन एगेबर्ग ६३ ६६ ६८
 ६६ १२३ १३२ १३६
 पूर्ण प्रकाश धीर चन्द्रप्रसा ३२ ३७
 पटल बीम १११
 पेज बेम्स की २६३ ३ ५, ३ ६
 ३ ८ ३११
 पेनबेनिस ६८
 पेन्ट्रान ६२
 पेटर, मास्टर, १ ६
 पेन्टापुएमीन प्रोम्पास्टिवेसन ३६,
 ३७ १२२ १३१
 प्रयतिबा—एकसमीक्षा ४१८ ४१६
 प्रत्युविनी परिरूप ४३, ५७ ५७ ७६
 प्रतापचन्द्र ३३
 प्रतापनारायण धीरबास्तव ८२, १२४
 १२६ १४ १५३ १५३, १५६
 १६५, १६६ १७४ १८५, १६४
 २१३ २१४ २३३ २३४ ४ ३
 प्रतिज्ञा ६१ ६६ ७ ७३, १८७
 १८६ २११ ३३४ ३३६
 प्रतिबाल ८७
 प्रत्यागम १५६

मरमेय १७४
 मरेजमी की धार् ६३
 मरेन्द्रमोहनी १६८
 मरमठरं १२६ १४२, ३४६, ३८८
 मबाएर मार्मेट २७ १३१ ३ ४
 मष्ट मीङ्ग ८३ १३८ १६८
 नाबाकुम ८३ १२४ १२६, १२८
 १३ १३४ १४२, १४३ १४६
 १७३, १८३, २४२, २४२ ३३१
 ३३२, ३४१ ३४८ ३८६ ३८१
 ४ ४ ४ ४१४ ४१८ ४२
 मोष कोर ३६६ ३७६
 मोत्रवाम-द-गानि ६४
 मोता १ ४ ३१२, ३६५ ३७८
 मोरी ८ ८१ ३८६
 मोषंगर एबी ६२
 मोषिम एम्ब दि पीपुल दि १८ ३३४
 मोषिम दि टेक्नीक ऑफ़ दि १३६
 १६ १६७ ३६७
 मोषिम हुवे दि १८५
 मोषिम दि साइकोमोर्फिकल १३
 १५१ २६४
 मोषिम राइटिंग दि टेक्नीक ऑफ़
 १६ २३७
 मोषिम दि गिविंग १३३
 मोषिमिस्ट मोनोमोषिम ए, २६ २३१
 मोषिमिस्ट्स् मोदु मोन ४
 मोषिमिस्ट्स् मिगिंग ब्याप्राफील
 ऑफ़ कैमस ६७ १ २ १६१
 ३७४
 मामिबैठोपास्याम ४३, ४६
 मिममेयवना रसीना १२ १७२
 २२२
 मिमिमग मिममेबी ६८
 मिमिमग ८२, १३३ १७४
 मिमिसा ६ मूयबान्त मिपाटी

मिमिसा ७६, १३४
 मिमिसा ६४ ६६, ७ ७४ ७३,
 १३६, १४७ १७५, १८७ १८८,
 १८६, १६ २११ २३३ २३८
 २३१ ३३३, ३३६ ३३८ ३८५
 मिमिमिग ८१ ८४ १३ १५३
 १५६, १६२ १६६ २ ४ २ ५
 २४४ २४५, २४६ २५ २५२,
 २५५ २७६ २७६ २८६, २८७
 २८६ २८४ २८७ ३४ ३८२,
 ३८४ ४ २ ४ ३ ४ ४
 मिमिमिग १२६ १३४ १३८ १५४
 १६२ १६६
 मिमिमिग हिन्ग, ५२, ५७ ३३२
 ४ ६
 मुमग वरिग ४६, ५२ ५७
 मुमग वरिग ५२, ५७
 मुमगही ८७
 मुमो कॉनर, १११
 मुम मोमस ३८
 मुम मोमिगरी समर १२६
 मुमगरी का वीक ३८
 ४
 मुममामा साप ११२
 मुममम ४४
 मुमिग की सापना ७६ ७८ ८१
 १३ १७४ १८३ १८६ १६
 मुम की मोम २ ७ २४४ २४३
 २४६ २४७ २८६, ३१ ३८२
 ३८३
 मुमगरी १३ १३३ १६८ १७४
 १६ १८४ ३४१ ४ ३
 मुमग ७७ १३ १३३ १७८ १८७
 १८६ २७८ २७८, ३३६
 मुमगरी परिकषा ८३ १२७ १३८
 १४३ १४६ १५१ १५४ १७२

१७६ २२४ २३ २६२ ३४३
 ३४६, ३४८, ३८७ ४ ६ ४ ८
 ४१४ ४१५
 परिच्छेद की परिचयास्थि १ ६
 परीक्षा गुरु २७ १३७ १७४ १८२
 २३२ ३३२
 पर्वेशीरानी ८४ १३३ १७१ २ ४
 २७६ २८६, २८ ३८१
 पर्सनलिटी एम्ब प्रॉम्प्टेस ऑफ
 एडजस्टमेंट २८१
 पवित्र पापी १६३ ३१७
 पवित्र मुद्रा ४
 पपुमोक १११
 पश्चिम के मोर्चे पर सब कुछ धाम्य
 है ११४
 पाँच घहरों की प्रत्या १ ६
 पामेला ४७ ८६, ६ १३१ १८३
 २३२
 पाम्पी का प्रसिद्ध दिन ६३
 पार्टी कामरेड ८१ २१५, ३४
 ३६
 पार्थेनीस्ता ४
 पाम का सम्पादी १७
 पौम सप्त ३३
 पाल धीर बर्जीनी ११
 पॉलिनाय बोरिस १२१ १७२ ३३८
 पाकिष्ठ ऑन नुपर १ ३ १६२
 ३६३
 पास्के का इतिहास ११३
 पिकनिक पेपर्स ६८
 पिता धीर पुत्र (बाप-बेटे) १ ५
 १३६ १६ १६८ २३६ २५२
 ३४३ ३६१ ४१३
 पिर्बोपोरस ३५
 पिपासा ८१ १३ १६८ १७४
 ४ ५

पियनङ्ग ११८
 पियर्सन ३७
 पिया ७७ ७८ १३ १३३ १६८
 १७४ १६ १६३ ४ ६
 पिनाग्रिम्स प्रॉग्रस ४
 पिसनियाक बोरिस ११८ ११६,
 १३३ ३३६
 पिसेम्मी १ ७
 पुत्र धीर प्रेमी ३६२ ३६३
 पुनर्जीवन १५६ २३६ २३७ २४७
 २३१ ३६ ३६१ ४ ६ ४१
 पुरप धीर स्त्रिया १११
 पुत्रपों से धार्मिक स्त्रिया १११
 पुनीष कृष्णान्त माना ४७
 पुश्किन धमेवर्जिण्डर, ६३ ६६ ६८
 ६६ १२७ १३२ १३६
 पूण प्रकाश धीर चन्द्रप्रभा ५२ ५७
 पेंटर बीन १११
 पेज जेम्स डी २६३ ३ ५ ३ ६,
 ३ ८ ३११
 पैमनेनिस ६८
 पेजु एधान ६२
 पेंटर, बास्टर १ ६
 पेंटापुएमीन प्रोप्तास्त्रियन ३६
 ३७ १२२ १३१
 प्रगतिवाद—एक समीक्षा ४१८ ४१६
 प्रणयिनी परिचय ४५, ५३ ५७ ७६
 प्रतापचन्द्र ६३
 प्रतापनारायण धीबास्तव ८२, १२४
 १२६, १४ १३३ १३५, १३६,
 १६५, १६६, १७८ १८५, १६४
 २१३ २१४ २३३ ७३४ ४ ३
 प्रतिष्ठा ६१ ६६ ७ ७५, १८७
 १८६ २१३ ३३४ ३३६
 प्रतिशान ८७
 प्रत्याग्न १३६

प्रभाकर भाषणे १५२ १५३ १५६
१७ २१८ २२ २२१ २२२
३४१

प्रयोगवाची उपन्यास (रोमान एक्सपेरि
मेंटस) ३६८

प्राइड एण्ड प्रिज्यूमिस् वे ग्रह भाष
घोर पूर्व ग्रह

प्रिन्सेट वी एस १५५

प्रीवास्त वे प्रवास्त

प्रीस्टली के वी० ११ १८६ २३२

प्रुस्त (प्रुस्त) मार्को ११४ ११५

१२३ १३६, १३६ १४८ १४६,

१५७ १६५, १७२ १७३ १७८

२५६ २६ २६१ २६३ ३१४

३१६ ३२ ३२१ ३६२ ३६४

४११

प्रेत घोर छाया ८४ ८३ १३

१३१ १३३ १५३ १५६ १७८

१८२ १८४ २ ४ २ ५, ७ ६

२३७ २४४ २४५ २४२ २७५

२८ २८२ २८८ २८६, २६

२६५, ३ ६ ३१६ ३४१ ३८१

३८२ ३८३ ३८४

प्रेम घोर मि० सुखवास १ ८ १ ६

प्रेम की भेंट ७७

प्रेमचन्द २६ ४८ ५६-७५, ७६ ८

८१ १०४ १०६ १०८ १२६

१३२ १३३ १३४ १३६ १३७

१३८ १४१ १४२ १४३ १४४

१४५, १४२ १४३ १४५, १४८

१६२, १६४ १६५ १६६ १७३

१७७ १७६ १८२ १८३ १८५

१८७-१८६ १६ १६३ २१

२१२, २१३ २४४ २४५, २४६

२३ ३४ २३८ २४२ २५१

२६ २६१ ३३७ ३३३ ३३६

३८४ ३८६ ३८६ ३८१ ३८६

४ २ ४ ४ ४ ६, ४१ ४१३

४१७ ४१८ ४२

प्रमचन्द (मदन गोपाल कत) ६८ ६६

२३५, ३३४

प्रमचन्द घोर मोर्ची ६८ ६६

प्रमचन्द की उपन्यास कला ३३४

प्रमचन्द कीवम घोर कठितर ६८

६६ ७२

प्रममयी ५३ ५७ १८६

प्रेमा ३६ ६१ ६२ ६८ ७ ७१

१८७

प्रेमावम ६३ ६४ ६६ ६८ ७ ७१

७५, १२६ १३७ १४२ १५५

१८८ १८६ २१ २११ २१३

३३४ ३३६

प्रमिका स्थिरी ११०

प्रणया ६०

प्रेनास्त (प्रीनास्त) एबी ६१ १३१

१५७ १५८ १६१ १६३ १७७

२३७ २४७ ३ ५, ४१३

प्रोफेसर ६६

प्रेटी ३२६

प्राइड कीठन्टरप्राइड ११ २६

क

कामीवदरनाथ 'रीतु' ८३ १२४

१२७ १२८ १३८ १४३ १४४

१४६ १५१ १७ १७२, १७५,

१७६ २१८ २२४ २३ २६२

३३१ ३३६ ३४३ ३४६, ३४७

३४८ ३४६ ३८६ ३८७ ३८६,

३६१ ३६७ ३६८ ४ ४०४

४ ६ ४ ८ ४१३ ४१४ ४१४

४१८ ४२

कमल १२ १७२ २२३ ३४८

क्रीक राख १८ ३३४

फादयेन फलेनर्षधर ११८ २२२
 १५७ ३८७ ३६६
 फार्साइट सावा १ ६ ११ १५६
 १२
 फास्टर ई एम १ ८ ११
 १२४ २४८ ३१४ ३१५
 फास्ट हावर्ड १ ३२४
 फिक्काम दि फाफ्ट फॉक १२८ १३६
 १६६ १६७
 फिक्काम दि फेस्टुस फॉक, १५५ २३२
 फिमोसफिकल बक्स विलेजेट २५८
 फिगर मेन्स सन १२६
 फीडिंग एडमंड २६ ४६ ४७ ६
 ६७ १२२ १८३ २३२, ३६६
 फेबिन कान्स्टडीन ११८ ११६,
 १३४ १५६ १६२ १७१ २२२
 २३८ २४२ ३३७ ३३६ ३३७
 ३८७ ३८६ ३६६
 फेनली प्रॉसा-ब-ब-मोले ३६
 फेल्स बिस्मय स्पा १८
 फोमा फोवय ११७ २११ २१
 ३३३ ३३४ ३३४
 फूरॉघि, ४
 फ्रांस धनातोत १२४ १२५ १७१
 २४७ ३६२ ३७८ ३७६, ३८६
 फ्रांसियो ४
 फ्रायड सिमम १ ७ १ ८ ११
 २६७ २६८ २७२ २६ ३७
 ३८४ ३६२
 फ्रायड हिज ड्रीम एण्ड सवस
 मिमोरीज २८४
 फ्रांस स्कोवय ४२
 फ्रेंच गॉबिन ए हिस्ट्री फॉक दि
 ६३ ३६२
 फ्रेंच लिटरचर, ए फार्न हिस्ट्री फॉक,
 ८८ ६३ ६४ ६७ ६८ १२४

पलावेयर यस्ताव ६ १ २, १ ३
 १ ४ १ ३ १२३ १२५, १२६
 १२८ १३० १३७ १३८ १६
 १६३ १७१ १७३ १७७ २३५,
 २३७ २४८ २४६ २५२ २५६
 ६ ६ ३१२ ३८३ ३४८ ४१३
 फर्मावरिंग फॉफ फॉल्डरमेस १ ६
 फर्मोटीम स्तानिस्ता १२ १२५, १२७
 १५५ २२३ ३३८ ३६६
 व
 वंकिमचन्द्र बटर्नी ४८
 वंय सरोबिनी वा मस्तिफावेवी १४
 वज पर्स एण्ड २२७ २४३
 वटसर सामुएल १ ८ ३५५ ३६७
 वडा मार्ल ३७ ४७
 वडी-वडी घाव ८६ १२४ १६६
 २१८ २२ २२१ २६ २४२
 वदमती राहु वाम्स्टडीन २१८
 २२ २४
 वनियन बॉन ४
 वया का घोसला धीर माप १३४
 १४३ १६५ १६६ २४२, २६०
 ४१८
 वयाभीस ८० १४ १५५ १५६,
 १७४ १८५, २१३ २१६
 वरबूसे हेनरी ११४
 वयसा हेनरी २६४
 वर्नी फेनी ६१
 वलचनमा ८३ १३६ १५३ ३८५
 वहते धायु १२६
 वहने ११८
 वाइबिल ३५
 वाइस्टनर १२६ २१२
 वाणमट्ट नी धारमकपा ८७
 वाप बेटे रे पिता धीर पुत्र
 वावा वनेसरनाथ १३४

बासहृष्य भट्ट ४६ ४७ ५२, ५६
 १७ १२३ १२६ १८२, ३३२
 बास्त्राक धानरेव ६७ ११४ १७४
 २१४ ३४३ ३४७ ३४८
 बास्यपाल सुख १७१ २४२ ३५६,
 बबिन एगिजावेन ३८
 बिमबे का मुबार ५३
 बीज १७६ २१४ २१५
 बुशबिया गिओवन्नी ३७ १३१
 ३०४
 बुधुपा की बटी (मनुष्यान्न्द) ७७
 १६८ १६१ १६२ १६३
 बुनिग इमान ११७
 बुद्धियों की कहानी १ ६
 बुनिबिएर ३६३
 बृहदारण्यकोपनिषद्, ८४
 बेमरसे जॉन ४
 बेकर एनस्ट ३५ ३६ ३८ ४
 ४२ ४३ ८६ १ ११ २ ११२
 ३२२ ३६७
 बेचन सर्मा उषा पण्डित ७६ ७७
 १२६, १३ १५३ १५६, १६८
 १७४ १८३ १८४ १६१ १६३
 २३३ २३४ ३४६, ३६१ ३६८
 ३७१ ३७२ ३७४ ३७५ ३७६
 ३७७ ३८१ ३६६ ४ ४ ८२
 बेटिया श्रीर बटे १११
 बेटे श्रीर प्रेमी (सम्ब एण्ड लक्स)
 ११२ २३७ ४८ २४२ २६१
 ३ ७ ३ ८ ३१७
 बेन फेडा ४
 बेनेट धानजि १ ८ १ ६, १५०
 १७५ ३४३
 बेनेट, मिंग कोम्पुस ११
 बेन्गार्ड गिस्सेल् १७१
 बेर्नादिन व मेट गिण ६१

बैस एमी १ ५, १३२ १५७ १६०
 ३६६ ३७२ ३७५, ३७६
 बैलिडा ६२
 बेमिन्सकी बी बी २३८
 बेनुतगियों की भीरफ़ ३८
 बैरी मिहन की स्मरलार्थ ६८
 बोघ और भेतम्ब ६५
 बोयस रोगर ४
 बोर्बे पॉल १६
 बोबा कार्लेविच ४२
 ब्यूबेन्सो मिसेल १२१ ३५८
 ब्योचाम्पु करियर, १ २
 ब्रजन्वन सहाय ५३ ५७ २३२
 ब्रह्म एण्ड डिस्टर्ब १११
 ब्रये मा ४१ ५७
 ब्रह्मचारी ११६
 ब्राउन २६७ २६८ २६९, २७८
 २८ २८४ २६६, ३ ३७
 ब्राण्टी एमिली ६६ ६६ १
 १७७
 ब्राण्टी चारलटी ४७ ६६ ६६,
 १
 ब्राण्टी बहने ४७ ६६ १०
 ब्राह्मण ४३ ४४
 ब्रैटन निकोलास ४१
 ब्रावल्स्की मचाम १८१
 ब्रीक हाउस ६८
 ब्रायान ३२७
 ब्र
 ब्रमवतीचरण बर्मा ७८ ७६, ८१
 ८२ १०४ १२६ १२७ १२८
 १३४ १३८ १३६, १६३ १६६,
 १८६, १६३ १६४ २१२ २१३
 २४२ ३४३ ३४५ ३४८ ३४६,
 ३८६ ३६१ ४ ४ ४ ६ ८ ७
 ४१५

मगवतीप्रसाद बाजपेयी ७६, ७७ ७८
८१ ८२ ८३ १३ १३४ १३८
१३३ १३५ १३८ १३९ १७४
१७५, १७८ १८३ १८६, १९
२३३ २३४ २६२ ३३३ ३९७
३९८ ४ ३ ४ ५

भगवानदीन सासा ३३

महृ निबन्धमाला ५६, ५७

मार्च, १९८

मार्च महर्ने १११

माम्यवती ५२

भाष्यानु हरिचन्द्र ३२ ५७

भाष्यक अनुप्य ६१

भाष्यक सिसा १ ३ १ ४

मिस्कारिणी ७७ ७८ ७९ १२९

१३, १३८ १३८ १७४ १८९

४ ५

भूतकाल परीक्षा ११४ ११५ १३२

१३३ १३६ १४९, १५७ १६३

१७२ २३९ २६ २९१ ३१३

३१४ ३१६

भूतनाथ ५४ ७६ १३२

म

मंगलसूत्र ६६ ७ ७२

मन्त्रो पत्तो ७६

मदन मोपान ६८ ६९ २३५

३३४

मदाम डिब्लेम १७१

मदाम-बन्ताएल ६३ १३१

मदाम बोवारी १ २, १ ४ १३७

१३८ १६ १६३ १७१ २३६

२३७ २४८ २५२, २५४ ३ ५

३१२ ४१३

मधु, १४१ १४२

मधुर स्वप्न ८६

मनुष्य धीर वैवता १३

मनुष्य के रूप ८२ ८३ १३८ २१५
३४

मनुष्यात्म

दे कुमुद्या की भेटी

मन्तरसा हीनरी ११५, ११६

१७५

मन्त्राग द्विषेरी ५३

मन्मथनाथ गुप्त १२९ १३ १५३

१५९ १७४ १८४ १९१ २३४

३४९ ३६८ ३७१ ३७२ ३७७

३८१ ४ ३ ४२

मरियन ८८

ममरो भाग्य ११५ ११६ १३९

३९२

महान पीटर ११९

महामारत ४४ ५ ४

महामूर्ख १ ३ १३३ २३६ २३७

२४७ २५४ ३१३ ३९ ४१

मी (मोर्फी) १६३ २११ २१२

३३४ ३५५

मी (मोर्फी) ११७ १२९, १३६

१३८ १७४ १८९

मी-बाप मोरबाग्य १११

मीस का मार्ग १३५ ३६७

माते-मो-मासेमान ३९

मादमोबल-व-मापिन ६६ १३७

२४७

मानन पापित १६३ ३१६ ३१७

३८९

मानन सिस्का ६१ १ ३ १३७

१३८ १६१ १६३ २३७ २४७

३ ५, ४१३

माननीय बन्धन १११

माम सौमरीट ११ १११

मारिया फातो ३२ ११५, ११६

१२३ १३९ १५७ १६ १६१

१७१ १७५, १७७ १७८ २४८
 २४९, २५१ २६१ ३ ६ ३२१
 ३६२ ३६४ ४ १
 मारियो पिएर प्लेमेन ४ ८८
 मार्स काँ ३६ १ ८ २१७
 २५८ ३५३ ५६, ४१६
 मॉन्-डि पार्बेट, ३६ १२२
 मार्टिन-दु गार्ड रोवे ११५, १४६
 मार्ड यर्स ६४
 मास फर्नैण्डर्स ८६ १३१
 मास्को का प्रकाण ११६
 मिडिल मार्च १३१ १६६
 मिस्की प्रिम ४२
 मिस प्रॉन डि फर्माँस १ १
 मिडिज ब्रमोवे ११३
 मि पोमी १ ६
 मीटी ब्रुटकी ७६ १८३
 मृत्तिका ८४ १३३ १३३ १३७
 १५६ १६ १७१ १७६ १८४
 २ ६ २३७ २४४ २४५, २४२
 २५५, २६१ २७६ २७७ २७६
 २८७ २८८ २८६ २८७ २८४
 २८९ २८८ ३ ॥ ३१६, ३६४
 ४ १ ४ २
 मुगडकोपनिपद् ४४
 मुर्दों का टीला ८७ १३४
 मुगास्त्रिजू ८६
 मुस्कास ७६ ७७ ७८ १३
 मूर आर्थ १०६ ३६७
 मृदतयणी ८६ १३८ १३३ ३४
 ४२
 मृणालिनी ४८
 मृद पारिपार् ६६
 मेहनको पार्थ ४
 मेहनकी फेरी ६१
 मेह दन बैटिंग १ ६

मेण्डस ३६४ ३६५, ३७
 मेन एण्ड बीमेन १११
 मेनयोडा ३६
 मेम्माइट, ४१
 मेरा बचपन ११७
 मेरिडिय आर्थ ६६, १ २ १२५
 १७७ २४३ ४१३
 मेरिमे प्राप्ते ६६
 मेरी थोमिड ११३
 मेरे विषयविद्यालय ११७
 मकवेन २१४
 मैकम्बी कोम्पटन १३६
 मंगनेट १५६ २१२
 मेन फॉक प्रॉपर्टी १ ६
 मैन्सपीरिड पार्क ६२
 मेसा सीचस ८३ १२७ १३८
 १४३ १४४ १४६ १५१ १५४
 १७ १७२ १७६, २२४ ७३
 २६२ ३४३ ३४६ ३४६ ३८७
 ४ ६ ४ ७ ४ ८ ४१३ ४१५,
 ४२
 मैमोरी ३३
 मोपासी गी ६ १ ५, १ ६, १२३
 १२६, १२८ १३२ १५७ १६
 १६१ १७१ १७४ १७५, १७७
 २७५, ३ ६ ३१२ ३६२ ३६६
 ३६८ ३६६ ३७२ ३७३ ३७४
 ३७५ ३७६ ३७७ ३७८, ३८६
 ३८१ ३८२
 मोर बीमेन बीन मेन १११
 मोर्मन आत्म ११
 मोरिपर जेम्स डिस्टीनिगन ६३
 मोरिज सन्त ३५
 म्निमी फेड २८१
 म्येन वास्टर एम १३१ ३७३
 ३०६ ३६४

घ

योग किम्बास २८१
 यमवत् ८२, १३ १३४ १३३
 १३६ १७६ १६५ २१६ २१८
 २२ २२१ २४१ २४२ ३३३
 ३४१ ४ ४१८
 यथार्थ स भागे ८३ १३ १३४
 १३८ १६६ १७८ २६२ ३६७
 ३६८ ४ ५ ४१३
 यथोपास ८१ ८२ १७६ १२८
 १३८ १३६, १७२ २१३ २२६
 २६७ २६८ ३ ८ ३४ ३६
 ४ ४
 यथोपरा शीत गर्ह ८७
 युग सी पी १ ८ २७२ २६३
 ३ ५ ३ ६ ३८४
 युक्त प्रौर घान्ति १ ३ ११८ १४
 १४१ १४४ १४५, १४६ १६६
 २२५ २३५, २६ ३१३, ३६१
 ४ ६ ४१ ४११ ४१३
 युनीसस ७४ ११३ १२७ ७५१
 १७
 युक्त कलाकार का एक विषय १५१
 यूरोप पर अक्षरवस्ती ११६
 र
 रमभूमि ६६ ६६ ७ ७१ ७४
 ११७ १४२ १५३ १५५ १५८
 १८६, २१ २११ २१३ ३६५,
 ३३६
 रघुवंश ४४
 रतिनाथ की बाणी ८३ १२६ १३४
 १५१ २४२ २६२ ३४८ ३ ६
 ४१८
 रत्नचन्द्र प्लोडर ४६ ५२ ५७
 रत्ना की बाण ८७
 रघुमन एमोनिएशन यौक्त प्रानि

टेरियल राइटर्स ३५६

रसम बर्द्ध १ ७ १ ८
 रास १४३
 रायिय रायव ८३ ८७ १२४ १२७
 १३ १४३ १५४ १५७ १५६
 १६१ १७ १७२ १७६ १८४
 २१२ २१३ २६ ३६५ ३५
 ३५१ ३८६ ४ ४ ४१८
 राजपथ ११६
 राजस्थानी रतिनाथ ८६
 राजक बार्न ३५३
 राणापुष्पावास बाबू ४६ ५२ ५७
 १२३ १२६ ३१२ ४ ६
 राणारानी ४८
 राविकारमगप्रसाद सिंह ८१ १२६,
 १८३
 रानी कतकी की कहानी ४३, ४६
 राबिनसन क्रुसी ८६ १२३, १३१
 राबेनर मोहान ३१८
 रामचन्द्र परमहंस १ १
 रामचन्द्र मुक्त ४७ ५२ ५६
 रामचरित जगध्याय ५६
 रामतीर्थ स्वामी १८१
 राममोहनराय राबा १८१
 राम रहीम ८१
 रामसाज ३३
 रामविभाष धर्मा ३८४
 रामायण ४४
 रामेश्वर धुक्त 'श्रीधर' ८१ ८२,
 ८३ १२६ १५३ १५६ २१८
 २१६ २६६ ३४१ ३५६ ३६
 राहुम साहत्यायन ८६ १३ १५३
 १५६, ४२
 रिचर्ड केवरम १ २
 रिचर्डसन डोरीनी १११ ११२,
 १२३ १७१ १७८ २५८, २३५

२६ २६१ ३६७ ३६८ ३७५
रिषडंसम सामुएल ८६ ४७ ८८
८८, ९ ९७ १२२ १३१ १८३

२३२, ३६२
रिमार्क एरिक मरिया ११४
रिखरेवसन के पुमर्जीवन
रीड वार्स ९८
रीड हर्बर्ट ३२६ ३३३
रीम्बी ९५
रीमनिसम एम्ब्र्याइडिफिकेशन बियोड
३२६ ३२८

रीमनिसम नेटव, १३१ ३७३ ३७६
३६४

रीवे जार्ज ३५२ ३५७
स्वरछोड मार्क १ ६ ३६७
रविन १ ३ १ ५, १३३ १३६,
१६ १६८ २३६ २५२ ३४५,
३६१

रुम १ ७
रुसी धमबीबी मलक संघ ११८
११९

रुसी सावित्र लेखक संघ ११९
रुणु के फणीरवराय
रुनाइड ४७

रुन ९४
रुप फाउंड यूरोप ११९
रुडगिलड, मिडिड ९१ १३३
रुडोले फ्रांसो ३६ ३७ ११२ १३१
रुपन मन्हार सपम्पास १ ४ १ ५,
११४ १५ १६१ ३६३ ३६६
३७२

रुडरिक रूडम ९
रुमे (मूल मुय) ११५ १८९, ३६२
रुमा रोम्पा ८५, ११४ १२३ १२८
१४७ १४८ १४९ १६४ १६५,
१७ १७५, ३१६ ३६६ ३६७

३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५,
३७६ ३८

स

स ससम्भार, १ ४ ३६५, ३७८
स सोधर १ ४ ३६५
सकडी क कृत ११४
स कास्ट डि मोट मिस्टो ९५
स कीरवट, ४१
स क्वाथ इवायले ३६६
सकमीमारयण नाम १२४ १३४
१४३ १५२ १६५, २४२ २६२
४१८
सखनऊ की कब ५४
सगन ७७ १३ १८९ १९१
३३९ ४ ३
सज्जा के पुणामयी
सज्जायम धर्मा मेहता ४६ ४९,
५३ ५७ ७७ १२९ १६८ १८३
२३२ ४२

स दुया मोल्फटाघर ९५
स मेयो वि रामो ८९
सत्यन रूस्य ४७ ४८
स पेजान परवेनु ८८
स वेर मोपियो ९७
स वेत ह्य मेन ३६५
स वेर्ने एक्स्त्रावर्गा ४
सम्भक पसी २८ १२८ १३९, १६६
१६७

स मार स डायमिस ९५
स मित्रराजस ९४ १५४ १५७
१६३ २३६ २३७ २४७ ४ ९
४१३

स रोज ए सग्वा (लाल श्रीरामा)
९७ १५४
स रोमन कुर्ज घा ४
स रोमान एक्स्परिमण्ट ३६२

विवेकामय १८१
 विष्णुमरणाथ शर्मा 'कीर्तिक' ७६,
 ७७ ७८ ७९ १२९ १५३
 १५८ १६८ १७४ १८३ १८९,
 २३३ २६४ ४ ३ ४ ५
 विषय ४८
 विषादमठ ८३ १२७ १४३ १५४
 १५७ १७ १७२ १७९, ३३
 ३५१ ४१८
 विष्णु प्रभाकर ८२ १२४ १२६
 १३ १३० १३४ १३८ १५४
 १५९, १६२ १६६
 विस्तर्त १४ १५५, १६६, १७४
 १८४ १८५
 विस्तृति के यम में ८७
 वीमेन इन सय ११२
 वीरेन्द्रवीर या कटोरा मर खून २४
 वुदरिय हाइडन ९९
 वृक्ष वर्गीनिया ३२, ३३ ११३
 १२३ १२८ १३९ १५१ १७१
 १७५, १७८ २२७ २२८ २३५,
 ३६२
 वृत्तावतलाम यमा ७७ ८२, ८४ ८६
 १३ १३७ १३८ १५३ १६१
 १६८ १८९, १९ १९१ २१८
 २२ ३३३ ३३९, ३४ ४ ३
 ४१३ ४२
 वेद ८३ ४४
 वेतिस में एक मरण ३१६
 वेत्स एष की १ ८ १ ९
 वेवर्मा ९५
 वेवा पुत्र १९१
 वेल्ड, रेवेका १ ८ १११ ११२
 ११३ १२७ १३९
 वेताल पंच विपति ४४
 वेनिटी केयर, ९८ १८३

वेतासी की नगरवसु ८६ १३१
 १७६ १५४ १६९
 वोलेकाम्स्क का शास्त्र ३५८
 वोल्गा कैस्पियन की ओर बहती है
 ११९, १५५, १५६ ३५६
 व्यतीत ८२ ८४ ८५, १३८ १३९,
 १५३ १५९, १९८ १९९, २४५,
 २५२ २८६ २९३ २९४ २९६
 २९८ ३ ८ ३१९
 व्यभिचार, ७६
 व्य
 वक्ति ११९, १५५, १७१ ३५६
 खाचीरानी कुटुंब ६८ ६९
 खतोविर्ग विम्बोम्ब-व, ९४ १२३
 खरन्ध ७४ १५८
 खराबी ७७ १६८ १९१ १९२
 ३६६
 खरीफ लक्षिक्यां ११६
 खलीव ९४
 खॉ बर्गार्ड १ ९
 खिबदानसिंह चौहान ६८ ६९, १९२
 ३६१ ३६२, ३८३
 खिबनारायण धीवास्तव ६८ ६९
 खिबसन्धु का पिता २६
 खिम्प १६
 खिलर ३२६
 खिबसपीवर, २५४
 खिलर एक बीवली २८ ८५, १३१
 १३५, १३७ १३८ १४८ १४९,
 १५३ २ ३ २५७ २५४ २५६
 २५२, २५४ २६२ २६९ २७५,
 २७९, २८ २९१ २९२ २९४
 २९६, २९८ ३ ८ ३२ ३८२,
 ३९९ ४१३ ४२
 खोटी का बाजार है बेनिटी केयर
 खोजी १०७ १५६, १७८

पेजी ११

पीसीसीय विवेक दयेस्पाइलेविष

सम्मा ब्रह्मविन की कथा ४२

सहस्र राजनी कथि ८७

सहस्रम मनुष्य १११ १४६ १५२

सावि ११३ १७ २१८ २२०

२२१ २२२

साहकोर्लोकी भाऊ एडवस्टमेष्ट २८१

साहकोर्लोकी एडिगनरीभाऊ, २७७

२८३

एनामिटिकस साहकोर्लोकी द्व एमज

इम २६३ ३ ५, ६ ७

एम्पोवस साहकोर्लोकी ६३ ३०५,

३०६ ३ ८ ३११

किस्टासट साहकोर्लोकी २६६ ३००

साहको एनामिटिकस इट्रोहकरी लेखन

धौन २६

साहको डायममिकस भाऊ एणामस

विदेविष, २६७-२६६ २७८

२८ २८४ २६६, ३ ३७०

साहमस मानेर १०१ १२५ १५८

१६३ १७७ २३७ ८१३

भायर सहरे धीर मनुष्य ८६ १३४

१३३ १६७ १७५, ७१ ७४०

७६१ ३८१ ३८७ ३४८ ८६

८७ ४७०

भावे जी पास १ ११५ ७५६

२३७ ३७७ ३३८

भाविनी मयमान ३८

माय पण्टू ३६ १७

माहिप का धर धीर प्रन १७७

माहिप का उड्ड ८ ३३८

माहिप विष्णु ८ १८ ११

८७८

माहिप विष्णु ११ ३६३, ३ ८

३८३

माहिप विष्णु ८५३

माहिप विष्णु ८५

स्वामस्वाम ४६, ४४

धदायम फिलीपी ५२

पौष्ट्यमास ५४ १६२ ३९१

पौष्ट्य नर का जीवन धीर मरण

४

पिपासबास भाभा ४६ ४७ ५२,

५७ १२६ १२६ १३२, १३८

१७६ १८२ २३२, ३३२, ५२

१३३ कथि ८२

पिपि कथि १२१ ३३८

४

पौष्ट्य ८४ ११ १३१ १३३

१३६, १६६, ७ ४ २ ५, २४४

१६६, २४६, १५ ७५२ २३३

१७६ ७६ २८६ २८७ २६६

१४ ३८७ ३६४

पौष्ट्य ११७

पौष्ट्य, ८६

पौष्ट्य नर के धरे धीर प्रन

३३ प्रनोकी का प्रनोपन १ ३

१६

पौष्ट्य का भावन ३३

पौष्ट्य, १ ६

पौष्ट्य १ ८

पौष्ट्य १७

पौष्ट्य ११३ १६७ ३८ १८६

११७ ३६

सिक्न्दर की जीवनी ३५

सिक्केमर मई १ ८ १११ ११२
११३ १२३ १२७ १३३ १३८
१५१ २५८ २६३ २६४ ३ ८
३६२

सिङ्गी ३८

सितारों क पस ८४ १३८ १५३
१६६ २४४

सिमेट ११८ १७१

सियाधमधरस कुप ७७ ॥ ८१
१५३ ३८३

सीषा साबा राम्हा १५७ २१५ २१३
३४५ ३८६

सुखदा ५८५ ५८६ ११५ ११५ ११६

१७८ १६८ १६६, २ १ २४४

२४५ २५२ २७५ २६३ २६४

२६५ २६६ २६७ ३ ३ ३ ४

३ ७ ३ ८ ३११ ३८३ ४ ४

सुनीठा ८० ८१ १३३ १३३ १५७

१५६ १६ १७१ १६८ १६६

२४४ २४५, २५५ २६४ २६३

२८४ २८५ २६५ २६७ २६८

३ २ ३ ३ ३ ८ ३१८ ३१६

३३६ ४ १ ४ २

सुबह के सुन ८५ १३५ १५३

१५६, १६ १७१ १७८ १८४

२३७ २५८, २५५, २६५ ३६४

सुन्दरी रसोदम ६१

सुसमाचार ३५

सुरज का साठवां घोड़ा ८७ १६१

सुप्रकाश विपाठी निवाला ४८ ७६

१२६, १६ १५३ १७४ १८३

१६

सफटम ब्लेक ७६

सैंट पिप, बर्नाडिन-व ६१

सैंटसबरी पार्ज ६३ ६४ ३६२

३७३

सेण्ड एण्ड सेम्मीबिलिटी ६२

सेरवान्ते, मिम्येस व १३१

सेलीन सुई फेडिभंड ११४

सेवासदग ३६, ६२, ६३ ६४ ६७

६८ ७ ७१ ७५, १२६ १३७]

१३५, १३८ १८३ १८७ १८६,

२११ ३३४ ३३५, ३३६ ३८४

४१६

सेबिका १०६

सेसीमिया ६१

सेण्ड बार्ज ६४ ६५ १२३ १३:

सेण्डो १ ४ १६ १७१

सेण्डो की काली १ ४

सेमनाथ ८७ १३१ १३६ १५४

१६६

सेरस बार्ज ४

सेरियस मिटरेण्ड ३५२ ३५७

सी बबान एक सुनाम ५२, ५७ १८२

३६२

सीविया बाह १५४

सीवियापासक ५६ ५७

स्फटि बाल्क, ४७ ६५ १२८ १३१

१५६, १६३ ३३२

स्फुटयवस्की ११८

स्फुटरी मादमीन-व ३६

स्टॉर्म के बर्गी

स्टीन रिज ४१ ५७

स्टीवेनसन राबर्ट लुई ६६, १

स्टेपी १ ७

स्टेर्म लारेन्स ८७ ६ १३१

स्टुबर्ट हेर्बट ३७८ ६७६

स्टीनहास (मरी हेनरी बेक्स) ६७

१३७ १५४

स्टुब ब्लेक ११६

स्टीमी मिटन ३३, ३७ १५४

स्थापन मन्त्रालय ६३ १३१
 स्त्रियों पर दमा ११६
 स्तिरिचिपन २४
 स्टेपेटर ८१
 स्पंस्टर, १७
 स्प्रिंग ग्रैन दि माँडर, १२१ १२६
 ३५८
 स्मॉलिट बोबियास ४६ ६
 स्वतंत्र दमा परतब लक्ष्मी ४६ ५३
 स्वरेण प्रम २३
 स्वर्गीय कुमुम या कुमुम कुमारी २३
 २७
 स्वाधीनता के बब पर, ८२ २१४
 हु
 हुँत ६१ ७१ १७७
 हुँतपीठ १ ६
 हुतरान चबद, ६८ ६९, ७२, २१४
 २१५
 हुक्मले एफुपस १ ८ ११ १३८
 १७१ १७५ २२८ २६
 हुजार घासिमाएँ १ ७
 हुजारीप्रमाण डिबरी ४८ ६८ ६९,
 ८७ १६२
 हुमकुमां व हुमसबाव ६१
 हुर हाहनेम १६१
 हुपंचरित ८७
 हुासमैन १ २
 हुाऊ दि स्टोल बास टेम्परे
 के मालिनीसा
 हुाईी नॉमन १ ४ १३१ १७७
 हुिपोपन्थ ४४
 हुिन्दी उपन्यास ६८ ६९

हुिन्दी उपन्यास धीर मधार्थबाव १६२
 हुिन्दी यद्य साहित्य का विकास ६८
 ६९
 हुिन्दी साहित्य ४८ ६८ ६९ ३६२
 हुिन्दी साहित्य का इतिहास ४७ ५२
 हुिन्दी साहित्य के वास्ती बप ६८ ६९
 हुिन्दी साहित्य बीसवीं शता ७४ ७५
 हुिन्दी ग्रन्थ २७ ७७
 हुिन्दी लघुवेपथ १ ६
 हुिनियोडोरस ३५
 हुडय की परब ७६
 हुडय की प्यास ७६ १६८ १७४
 १६१
 हुडयहारिणी का घास्य रमणी २४
 हुंघर, रिचर्ड ११६
 हुपल ३२६
 हुंघमन क्रिमिप ३ ३२ १८५
 हुंघामेरा ३७ ८७ १७१ १८६,
 ३ ४
 हुंघिटी हल दि लाइट माँड रीनैट
 मिश्र ६७
 हुंसलट २२४
 हुोगर्न बेसिल १६ २२७
 हुोटन बी ताव १६१
 हुोम्स थार्नर ७६
 हुोरम ३२७
 हुा मो बिबट ६४ १७१ १७७
 १५४ १५७ १६६ १७६ १७७
 २३६, २४७ ३६६, ३४६, ४ ६
 ४१३ ४१५, ४१७
 हुा मन कमिटी १७४

सिकन्दर की जीवनी २५

सिकन्दर मई १ ८ १११ ११२
११३ १२४ १२७ १३३ १४८
१५१ २२८ २६४ २६४ ३ ८
३६२

सिक्की २८

सितारों के घर ८४ १३८ १५२
१६६ २४४

सिमट ११८ १७१

सिमारासधररा मुष्ट ७७ ८ ८१
१५७ ३८३

सीमा साबा रास्ता १२७ २१२ २१३
३४५ ३८६

सुखवा ८२, ८३, १३८ १५५ १५६
१७८ १६८ १६६ २ १ २४४
२४५ २५२ २७५, २६३ २६४
२६५ २६६ २६७ ३ ३ ४
३ ७ ३ ८ ३११ ३८३ ४ ४

सुनीता ८ ८१ १३३ १५३ १५७
१५६, १६० १७१ १६८ १६६
२४४ २४५ २५२ २६४ २६५
२८४ २८५ २६५ २६७ २६८
३ २ ३ ३ ३ ८ ३१८ ३१६
३३६ ४ १ ४ २

सुबह के सुने ८५ १५५ १५३
१५६, १६ १७१ १७८ १८८
२३७ २३२ २५५, २६५ ३६४

सुन्वरी रसोइन ६१

सुसमाचार ३७

सुरज का सातवां घोड़ा ८७ १६१
सुर्यकान्त मिश्रा 'निराला' ४८ ७६
१२६, १३ १५३ १७४ १८३
१६

सिन्टन ब्लैक ७६

सेंट पिप, कर्नाटिन-४ ६१

सेंट्सबरी पार्क ६३ ६४ ३६२

३७३

सेन्स एन्ड सेन्सीबिलिटी ६२

सेरवान्ते, मिम्येल ५ १३१

सेलीन सुई फेडिनांड ११४

सेवाधर ५६, ६७, ६३ ६४ ६७
६८ ७ ७१ ७५, १२६, १३७
१३५, १५८ १८३ १८७ १८६
२११ ३३४ ३३५ ३३६ ३८४
४१६

सेविका १ ६

सेसीसिया ६१

सेन्स बार्न ६४ ६५ १२३ १३२

सेफो १ ४ १६ १७१

साल की बाली १ ४

सामनाथ ८७ १३१ १३६ १५४
१६६

सोरस चार्स ४

सोबियत सिटरेयर टुडे ३५२ ३५७

सो सजान एक सुमान ५२ ५७ १८२,
३३२

सीतिया डाह १७४

सीन्सोसासक ५३ ५७

स्कोट वास्टर, ४७ ६५ १२८ १३१
१५६ १६३ २३२

स्कुटरावस्की ११८

स्वजुवरी मादमीन-४ ३६

स्टॉर्म के घाँधी

स्टीम रिचर्ड ४१ ५७

स्टीबेनसन राबर्ट सुई ६६ १

स्टेपी १ ७

स्टेन लारेन्स ४७ ६ १३१

स्वर्त हेबट ३७८ १७६

स्टैन्डहास (मेरी हेमरी बेम्ल) ६७
१३२ १५४

स्व ब्लैक ११६

स्ट्रुंभी मिटल ३५, ३७ १५४

स्थापन मन्त्रालय २१ १११
 स्विमिंग बर बहा ११६
 स्विमिंग १४
 स्वेडेट्ट, ४१
 स्वेडर, ३७
 स्विन मॉन दि मॉर्न, १२१ १२८
 ३२८
 स्मिथ कोरिया ४६ २
 स्मिथ रमा वरुण मन्त्री ४६, २१
 स्मिथ प्रेम ११
 स्मिथ कुमुम मा कुमुम कुमारी ११,
 २७
 स्वाधीनता के पत्र पर, ८२ २१४
 ४
 सुंद ६१ ७१ १७७
 सुवर्ण १ २
 सुवर्ण रत्न ६८ ६८, ७२, ७१४
 ७१४
 सुवर्ण एवम् १०८ ११ ११८
 १७१ १७१, २२८ २६०
 सुवर्ण आत्मा १ ७
 सुवर्ण आत्मा द्वितीय ४८ ६८ ६८,
 ८७, १६२
 सुवर्ण न सुवर्ण ६१
 सुवर्ण १६१
 सुवर्ण ८७
 सुवर्ण १ २
 सुवर्ण दि लीन बाव टेम्पल
 ३ धर्मिणी
 सुवर्ण पत्र १ ४ १११ १७७
 सुवर्ण ४४
 सुवर्ण उपवास ६८ ६८

सुवर्ण उपवास धीरवर्णवर्ण १६२
 सुवर्ण वर साहित्य का विकास ६८
 ६८
 सुवर्ण साहित्य ४८ ६८ ६८, १६२
 सुवर्ण साहित्य का इतिहास ४७ २२
 सुवर्ण साहित्य के पत्रों पर ६८ ६८
 सुवर्ण साहित्य बीसवीं पृष्ठी ७४ ७४
 सुवर्ण सुवर्ण २१ ७७
 सुवर्ण लेखन १ ६
 सुवर्ण लेखन ११
 सुवर्ण की परवा ७६
 सुवर्ण की परवा ७६, १६८ १७४
 १६१
 सुवर्ण साहित्य का पत्रों पर २४
 सुवर्ण, रिचर्ड ११६
 सुवर्ण १२१
 सुवर्ण लिपि १ १२ १६६
 सुवर्ण १७ ८७ १११ १६६,
 १०४
 सुवर्ण दि लीन बाव टेम्पल
 रिचर्ड १७
 सुवर्ण २१४
 सुवर्ण लिपि १६ २२७
 सुवर्ण की परवा १६१
 सुवर्ण पत्र, ७६
 सुवर्ण १२२
 सुवर्ण लिपि १४ १२१ ११२
 १२४ १२७ १६६, १७६, १७७
 २२६, २४७ १६६, १७६, ४०६
 ४११ ४१२, ४१७
 सुवर्ण लिपि ११४

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८४	३	परा-अपरा	परा-अपरा
१७	१६	अग्नावनी	अग्नावनी
१८	१३	बटनाचक्र	जिस बटनाचक्र
६७	७	बिचरे	निखरे
८३	१७	आकर्षक	आकर्षण
१२	३१	उपन्यासों	उपन्यास
१६३	१२	प्रेमचन्द के	प्रेमचन्द के बाह के
२२३	३	मत्स्यवाचियों	मत्स्यवाचियों
२३६	१५	भाषा	भाषा
२४३	६	यही प्रथा	यही प्रथा
२५२	२६	अविच्छेद	अविच्छेद
२७२	२६	इडियम	इडियम
२८८	१५	शान्ति	शान्ति
३१४	३१	गुमने	गुम
३१५	२८	गमता	गमता
३२३	२४	कमाकार प्रतिबिम्ब	कमाकार प्रतिबिम्ब
३२४	२	प्रभावोत्पन्न	प्रभावोत्पादन
३३५	१	उपभोग	उपभोग
३३२	३४	(रिक्त स्थान में पढ़ें)	Realism means that we make.
३५४	७	मानव-जीवन का	मानव-जीवन को
३५४	८-६	मनुष्य का	मनुष्य को
३५४	१	परिस्थितियों से	परिस्थितियों को
३५४	२६	Studies in a	Studies in a
३५४	३४	Gaudwell	Dying
३६२	३२	अनुच्छेद की	Caudwell
३६२	२५	दर्शन	अनुच्छेद ३८४ की
३६८	३	रहती है	हरीन
३६४	१२	होया	रहने है
८१	१३	जरोप	हाये
४५	१७	वाजपेयीजी के	धरोम
			वाजपेयीजी का

